उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन
मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

MAHI-117
प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास

खंड

1

झूठा सच

इकाई 1

यशपाल का उपन्यास साहित्य और 'झूठा सच' 5

इकाई 2

देश का विभाजन और 'झूठा सच' 20

इकाई 3

देश का भविष्य और 'झूठा सच' 35

इकाई 4

औपन्यासिक महाकाव्य के रूप में 'झूठा सच' 48

परिशिष्ट 64

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रो. नित्यानंद तिवारी
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली

प्रो. निर्मला जैन
ए-20/17, कुतुब एन्क्लेव, फेज़-1,
गुड़गाँव, हरियाणा

प्रो. मैनेजर पाण्डेय
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

प्रो. असगर वजाहत
जामिया मिलिया इस्लामिया
नई दिल्ली

प्रो. गोपाल राय
सी-3, कावेरी, इग्नो आवासीय परिसर,
मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

प्रो. सत्यप्रकाश मिश्र
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

प्रो. ललिताम्बा
देवी अहिल्या विश्वविद्यालय
इंदौर

संकाय सदस्य
प्रो. वी. रा. जगन्नाथन
डॉ. जवरीमल्ल पारख
प्रो. रीता रानी पालीवाल
डॉ. सत्यकाम
डॉ. राकेश वत्स
डॉ. शत्रुघ्न कुमार
डॉ. विमल खांडेकर
सुश्री स्मिता चतुर्वेदी

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

पाठ लेखक	इकाई संख्या	खंड संपादक
डॉ० मधुरेश बरेली	1, 2, 3 एवं 4	प्रो. लल्लन राय शिमला
श्री संजीब कुमार दिल्ली	परिशिष्ट	**पाठ्यक्रम संयोजक एवं संपादक** सुश्री स्मिता चतुर्वेदी इं.गां.रा.मु.वि.वि.

सामग्री निर्माण सहयोग

मुद्रण
श्री कुलवंत सिंह
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)
मानविकी विद्यापीठ
इग्नू, नई दिल्ली

फरवरी 2004 (पुनर्मुद्रित)

© *इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2002*

ISBN-81-266-0525-1

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कार्य का कोई भी अंश इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफ (मुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की अनुमति से पुनः मुद्रित। उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से कर्नल विनय कुमार, कुलसचिव द्वारा पुनः मुद्रित एवं प्रकाशित, २०२४

मुद्रक : चन्द्रकला यूनिवर्सल प्रा० लि०, 42/7 जवाहर लाल नेहरु रोड, प्रयागराज।

PEPE-031

MAHI-117/2

पाठ्यक्रम परिचय

अब आप एम.ए. हिन्दी (द्वितीय वर्ष) के पाठ्यक्रमों का अध्ययन प्रारंभ कर रहे हैं। प्रस्तुत पाठ्यक्रम एम.एच.डी.-15 'हिंदी उपन्यास-2' है। यह चार क्रेडिट का पाठ्यक्रम है। इस पाठ्यक्रम में आप हिन्दी के चार विशिष्ट उपन्यासों का अध्ययन करेंगे। ये उपन्यास हैं- यशपाल का 'झूठा सच'; कृष्णा सोबती का 'ज़िन्दगीनामा'; धर्मवीर भारती का 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' तथा श्रीलाल शुक्ल का 'राग दरबारी'। इन उपन्यासों के रचनाकारों की अनुभव-यात्रा अलग-अलग प्रकार की है इसलिए उनके उपन्यासों का ढाँचा और कलेवर बदला हुआ है। 'झूठा सच' राजनैतिक उपन्यास है। इस उपन्यास में विभाजन की त्रासदी और स्वातंत्र्योत्तर भारत के यथार्थ को समाचार पत्र की रिपोर्ट की तरह प्रस्तुत किया गया है। 'जिन्दगीनामा' में भी विभाजन का दर्द है परन्तु उसकी अनुभव यात्रा बिल्कुल भिन्न है। अविभाजित पंजाब की लोक-संस्कृति का चित्र खींचकर लेखिका ने इस यात्रा को और गहरा कर दिया है। 'राग दरबारी' में श्री लाल शुक्ल ने स्थानीय राजनीति और शिक्षा संस्थान पर पड़ रहे गलत भाव का व्यंग्यपूर्ण चित्रण किया है। 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' अपने शिल्प में बिल्कुल भिन्न है।

इस पाठ्यक्रम का अध्ययन करने के लिए आवश्यक है कि आप सबसे पहले उपर्युक्त चारों उपन्यासों का अध्ययन कर लें। इन उपन्यासों को पुस्तकालय अथवा पुस्तक विक्रेताओं से प्राप्त किया जा सकता है। प्रत्येक खंड में हमने इकाइयों के साथ 'परिशिष्ट' भी दिया है जिसमें उपन्यास एवं उपन्यासकार के बारे में विशेष बातें बताई जाएँगी तथा उपन्यास के महत्वपूर्ण व्याख्यांशो का उल्लेख भी होगा। उपन्यास में आपको कठिन शब्दों के अर्थ भी दिए जाएँगे तथा विषय के विशेष अध्ययन के लिए उपयोगी पुस्तकों की सूची भी होगी।

यह पाठ्यक्रम चार क्रेडिट का है तथा इसमें पढ़ाए जा रहे चारों उपन्यासों पर आधारित एक-एक खंड है। प्रत्येक खंड में चार-चार इकाइयाँ हैं जिनमें उस खंड में पढ़ाए जा रहे उपन्यास विशेष के विषय एवं शिल्प से संबंधित इकाइयाँ है। इनके साथ ही उस उपन्यास के लेखक की अन्य रचनाओं का भी परिचय प्रस्तुत किया गया है। ये खंड हैं–

खंड-1 : झूठा सच

खंड-2 : ज़िन्दगीनामा

खंड-3 : सूरज का सातवाँ घोड़ा

खंड-4 : राग दरबारी

पाठ्यक्रम के चारों उपन्यासों के प्रत्येक पक्ष पर चर्चा करना एक खंड में संभव नहीं है। अत: हमने रचना तथा रचनाकार से संबंधित कुछ आलेखों को संग्रहीत कर उसे पुस्तक के रूप में प्रकाशित करने का निर्णय लिया है। ये आलेख पहले से ही विविध पुस्तकों एवं पत्र-पत्रिकाओं में उपलब्ध हैं। यह संग्रह भी आपको विश्वविद्यालय द्वारा ही प्राप्त होगा। इसके अतिरिक्त खंड के अन्त में उपयोगी पुस्तकों की सूची दी गई है। ये पुस्तकें आपको पुस्तकालयों में उपलब्ध होंगी। उनका भी अध्ययन कीजिए।

खंड परिचय

एम.ए. हिन्दी के पाठ्यक्रम-15 हिन्दी उपन्यास-2 का यह प्रथम खंड है। यह खंड यशपाल के विशिष्ट उपन्यास झूठा सच' पर आधारित है। यशपाल का हिन्दी के उपन्यास साहित्य में विशिष्ट योगदान है। उनके उपन्यासों में समाज और मनुष्य के संबंध को गहराई से अंकित किया गया है। इनके अनुसार मनुष्य रूढ़ियों, अंधविश्वास, पुरानी मान्यताओं, अज्ञान और आर्थिक दबाव के तहत शोषित होने को विवश होता है। अपने साहित्य में उन्होंने रूढ़ियों, अंधविश्वासों, अज्ञानता आदि का विरोध करते हुए नवीन जीवन मूल्यों को अपनाने का संदेश दिया।

प्रस्तुत खंड में आप यशपाल के उपन्यास 'झूठा सच' का अध्ययन करेंगे। यह उपन्यास दो खंडों में विभाजित है। इस उपन्यास में सन् 1942 से 1952 तक के भारत का समग्र रूप में चित्रण किया है। इस खंड में कुल चार इकाइयाँ हैं।

खंड की पहली इकाई यशपाल का उपन्यास साहित्य और 'झूठा सच' है। इस इकाई का मूल उद्देश्य यशपाल के संपूर्ण उपन्यासों का परिचयात्मक सर्वेक्षण है। इसी क्रम में हमने यशपाल के जीवन लक्ष्य, उनके गहरे सामाजिक सरोकार, ठोस जीवन दर्शन और कलात्मक क्षमता को भी उभारने का प्रयास किया है।

दूसरी इकाई 'देश का विभाजन और झूठा सच' है। यह इकाई 'झूठा सच' उपन्यास के प्रथम खंड 'वतन और देश' पर आधारित है।

तीसरी इकाई देश का भविष्य और झूठा सच' है। इसमें उपन्यास के दूसरे भाग देश का भविष्य को केन्द्र में रखा गया है।

चौथी इकाई 'औपन्यासिक महाकाव्य के रूप में 'झूठा सच' है। अपनी संरचनागत विशिष्टताओं तथा व्यापक युगाभिव्यक्ति के कारण 'झूठा सच' को महाकाव्यात्मक उपन्यास से भी अभिहित किया गया है। इस इकाई में एक उपन्यास के रूप में 'झूठा सच' के शिल्प एवं विषय पर विस्तार से विचार किया गया है।

इन सभी इकाइयों का अध्ययन करने से पहले हम अपेक्षा करते हैं कि आप 'झूठा सच' उपन्यास का अध्ययन अवश्य करें। उपन्यास में आए कठिन शब्दों के अर्थ हमने परिशिष्ट के अन्तर्गत दिए हैं। खंड के अन्त में कुछ उपयोगी पुस्तकों की सूची दी गई है जो विषय विशेष के अध्ययन में आपकी सहायक होंगी। ये आपको विविध पुस्तकालयों में उपलब्ध होंगी।

इकाई 1 यशपाल का उपन्यास साहित्य और 'झूठा सच'

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 दादा-कॉमरेड

1.3 देशद्रोही

1.4 दिव्या

1.5 पार्टी, कॉमरेड

1.6 मनुष्य के रूप

1.7 अमिता

1.8 झूठा सच

1.9 'झूठा सच' के बाद के तीन लघु उपन्यास : बारह घंटे, अप्सरा का श्राप और क्यों फँसे!

1.10 मेरी तेरी उसकी बात

1.11 सारांश

1.12 अभ्यास प्रश्न

1.0 उद्देश्य

'झूठा सच' यशपाल के सर्वश्रेष्ठ उपन्यास के रूप में स्वीकृत और समादृत है। इस इकाई में इस तथ्य को विस्तार से रेखांकित करने के लिए पृष्ठभूमि के रूप में उनके पूर्ववर्ती और परवर्ती और सभी उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय आपके सामने प्रस्तुत किया जा रहा है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- यशपाल के संपूर्ण उपन्यास साहित्य का परिचय दे सकेंगे;
- विशिष्ट उपन्यासकार के रूप में यशपाल की चर्चा कर सकेंगे;
- उनके अन्य उपन्यासों की तुलना में 'झूठा सच' की विशिष्टता का प्रतिपादन कर सकेंगे; और
- यशपाल के जीवन लक्ष्य, उनकी व्यापक चेतना एवं कलात्मक क्षमता का परिचय दे सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

हिंदुस्तानी समाजवादी प्रजातंत्र सेना के सक्रिय और उत्साही कार्यकर्त्ता के रूप में अपनी क्रांतिकारी गतिविधियों के लिए यशपाल को आजन्म कारावास का दंड मिला था। 23 जनवरी सन् 1932 को इलाहाबाद में वे पुलिस से भिड़ंत के बाद, कारतूस समाप्त हो जाने पर, गिरफ्तार हुए थे। उनकी रिहाई, सन 1937 में कांग्रेसी मंत्रिमंडल बन जाने पर, अन्य क्रांतिकारी बंदियों की रिहाई के बाद, अनेक अड़चनों के बीच, 2 मार्च सन् 1938 को हुई थी। पंजाब-प्रवेश में लगी पाबंदी के कारण लखनऊ में रहकर उन्होंने 'विप्लव' के संपादन के साथ ही एक लेखक के रूप में जीवन-निर्वाह का निर्णय लिया। अपने इस निर्णय को यशपाल ने 'बुलेट की जगह बुलेटिन' का निर्णय कहा है।

फरवरी, 1938 में जेल से मुक्त होकर उसी वर्ष यशपाल ने नवम्बर से 'विप्लव' का प्रकाशन शुरू किया। बाद में उसका उर्दू संस्करण 'बागी' भी निकला। इन पत्रों के द्वारा यशपाल ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरोध के साथ ही राजनैतिक चेतना के प्रचार-प्रसार को अपना उद्देश्य घोषित किया। एक लेखक के रूप में अपने पुनर्वास को जब वे 'बुलेट की जगह बुलेटिन' कहकर परिभाषित करते हैं तो स्पष्ट ही साहित्य में वे विचार की भूमिका पर उचित बल दे रहे होते हैं। उनके पहले प्रेमचंद का उदाहरण उनके सामने था। नंद दुलारे वाजपेयी सहित अनेक तत्कालीन आलोचकों ने प्रेमचंद को 'प्रचारवादी' कहकर उनका अवमूल्यन किया। ब्राह्मणवादी वर्चस्व के विरुद्ध साधारण और साधनहीन लोगों के शोषण एवं उत्पीड़न के सजीव चित्र प्रस्तुत करने के कारण ही उन्हें घृणा का प्रचारक' कहा गया। एक लेखक के रूप में प्रेमचंद अपने लक्ष्य को कहीं भी धूमिल नहीं होने देते। वे इसे कहीं अस्पष्ट नहीं छोड़ते कि साहित्य में उन्हें किसका पक्ष लेना है और किसका विरोध करना है। अपने ऊपर लगाए गए आक्षेपों का उत्तर देते हुए प्रेमचंद ने किंचित रोषपूर्वक लिखा, "इसका क्या जबाव दिया जा सकता है.....सभी लेखक कोई न कोई प्रोपेगेंडा करते हैं - सामाजिक, नैतिक या बौद्धिक। अगर प्रोपेगेंडा न हो तो संसार में साहित्य की जरूरत न रहे। जो प्रोपेगेंडा नहीं कर सकता वह विचारशून्य है और उसे कलम हाथ में लेने का कोई अधिकार नहीं। मैं उस प्रोपेगेंडा को गर्व से स्वीकार करता हूँ.....
(प्रेमचंद: कलम का सिपाही, पृ० 492) प्रेमचंद की भांति यशपाल के लिए भी साहित्य की एक सुनिश्चित और सोची-समझी भूमिका थी। उनके रचनात्मक विकास में भटकाव और अपनी गलतियों से ही सीखने वाली स्थितियाँ नगण्य हैं। जिन विचारों के कारण वे क्रांतिकारी संगठन में शामिल हुए थे, परिवर्तित समय में वे उन्हीं विचारों को लिखित रूप में जनता को सम्प्रेषित करना चाहते थे। बदलाव विचारों में न होकर सिर्फ उनके सम्प्रेषण के माध्यम में हुआ था। इस प्रकार उनकी क्रांतिकारी राजनीतिक राजनीति ने ही साहित्यिक रणनीति का रूप ग्रहण किया है। इस संदर्भ में, टिप्पणी करते हुए उन्होंने अपने एक पत्र में लिखा है, "मेरे साहित्यिक कार्यकलाप हमेशा ही राजनीति से अभिन्न रहे हैं।.....

मेरे लिए दोनों ही एक दूसरे के पूरक हैं जो मुझे मेरे अभीष्ट उद्देश्य की सिद्धि में सहायता देते हैं। मेरा उद्देश्य है जनता के हितों की रक्षा करना। जब मैं सक्रिय क्रांतिकारी था तब भी मैने कलम को नहीं छोड़ा और जेल में भी लिखता था क्योंकि मैं समझता हूँ कि साहित्य विद्रोह की भावना पैदा करने का साधन है और उससे जनता की क्रांतिकारी चेतना विकसित होती है -" (यशपाल के पत्र, मधुरेश, पृ. 121) इसी प्रसंग में यशपाल की एक और टिप्पणी है, "मैं जीने की कामना से, जी सकने के प्रयत्न के लिए लिखता हूँ। बहुत चतुर और दक्ष न होने पर भी यह बहुत अच्छी तरह समझता हूँ कि मैं समाज और संसार से परान्मुख होकर असांसारिक और अलौकिक शक्ति में विश्वास के सहारे नहीं जी सकूँगा। इसीलिए मैं जी सकने की कामना में, जी सकने के प्रयत्न के लिए समाज और संसार की ओर देखता हूँ। उनसे अपना हेतुभाव का अटूट संबंध अनुभव करता हूँ। मेरा सुनिश्चित दृढ़ विश्वास है कि मैं समाज और अपने समाज के व्यक्तियों के प्रशिक्षण, सहयोग और सहायता के बिना क्षण-भर भी नहीं जी सकूँगा, इसलिए मैं जीवन की प्रक्रिया और जीवन के मार्ग में अनुभव होने वाली अड़चनों और उचित तथा विकासशील जीवन की संभावनाओं के संबंध में अपना दृष्टिकोण अपनी रचनाओं द्वारा समाज के सम्मुख रखने का आग्रह करता रहता हूँ। मैं अपनी अभिव्यक्ति और रचनात्मक प्रवृत्ति अथवा अपनी आत्मा की पुकार नहीं समझता....." (मैं क्यों लिखता हूँ? पृ० 126/127) वस्तुत: यह साहित्य नीति एक कार्यनीति के रूप में उनके उपन्यासों में मिलेगी।

1.2 दादा-कॉमरेड

'दादा-कॉमरेड' से लेकर 'मेरी तेरी उसकी बात' तक यशपाल का रचना-काल लगभग बत्तीस वर्षों के काल-खण्ड में फैला हुआ है - सन् 1941 से सन् 1973 के बीच।

राजनैतिक घटनाक्रम और सामाजिक विकास की दृष्टि से यह अत्यंत महत्वपूर्ण कालावधि है। 'दादा कॉमरेड' (1941) में यशपाल एक ओर यदि 'समाज की मौजूदा परिस्थिति में और क्रमागत आचार और नैतिक धारणा में वैषम्य की ओर संकेत करना चाहते हैं तो दूसरी ओर वे उस ऐतिहासिक दौर को भी कथाबद्ध करना चाहते हैं, जब उनके सहयोगी एवं सहकर्मी एक व्यापक विघटन का शिकार हो रहे थे। उनमें से अधिकांश को जेलों में डाल दिया गया था या फाँसी पर चढ़ा दिया गया था। जो थोड़े-बहुत लोग बच रहे थे उनके आगे किसी सार्थक कार्यक्रम एवं रणनीति का अभाव उनमें उद्वेलन पैदा कर रहा था। अपने इस उपन्यास में यशपाल सन् 1929 से सन् 1933 के बीच के राजनैतिक परिदृश्य को, उसकी समूची मानसिकता और बदलाव की बेचैनी के साथ अंकित करते हैं। राजनैतिक दृष्टि से यह वह समय था जब महात्मा गांधी के सत्याग्रह आंदोलन से लोगों को निराशा होने लगी थी और पंजाब एवं उत्तर प्रदेश के क्रांतिकारी दल विघटन की प्रक्रिया में थे। भगतसिंह और उनके साथियों के अब तक उपलब्ध दस्तावेजों से यह स्पष्ट है कि वे लोग मार्क्सवाद और वोल्शेविक क्रांति की ओर आकृष्ट थे।'' यशपाल स्वयं उन क्रांतिकारियों में से थे, जिनकी आस्था क्रांति के आतंकवादी तरीकों से उठ चुकी थी और जो व्यापक जन-सम्पर्क एवं जन-सहयोग के द्वारा सामाजिक- राजनैतिक परिवर्तन की दिशा में गहराई से सोच रहे थे। 'दादा-कॉमरेड' का हरीश एक स्थल पर कहता है, "मैं केवल यह कहना चाहता हूँ कि उद्देश्य को ध्यान में रखकर आंदोलन को अपने कार्यक्रमों में परिवर्तन करना पड़ता है। रूस में भी पहले स्वतंत्रता के आंदोलन ने आतंकवादी कार्यों का रूप लिया था और उस समय रूस की जनता का आतंकवादियों के कार्यों से कोई संबंध नहीं था। लेनिन ने रूस के क्रांतिकारियों की इस कमजोरी को समझा। उसने क्रांतिकारियों को अपनी शक्ति राजनैतिक हत्याओं में नष्ट न कर सर्वसाधारण जनता के जीवन के प्रश्नों को लेकर जनता में चेतना और अधिकार की भावना पैदा करने के लिए कहा.....।'' (दादा कॉमरेड, पृ० 53/54)

'दादा कॉमरेड' का महत्व एक ओर यदि क्रांति में आतंकवाद के बहिष्कार की दृष्टि से है, जिसे दादा और हरीश के विरोधी दृष्टिकोणों के माध्यम से अंकित किया गया है, वहीं दूसरी ओर वह वर्ग-समाज में स्त्री की वास्तविकता को भी उद्घाटित करता है। उसकी नायिका शैल के रूप में यशपाल एक आत्मसजग और अपने संदर्भ में निर्णय लेने में सक्षम युवती की परिकल्पना करते हैं। यशपाल के निजी जीवन के अनेक प्रसंग उपन्यास को एक आत्मीय संस्पर्श देते हैं। 'सिंहावलोकन' में यशपाल ने अपने और चंद्रशेखर आजाद के वैचारिक मतभेद का उल्लेख विस्तारपूर्वक किया है। वस्तुत: वही बहस उपन्यास के दो प्रमुख पात्रों, दादा और हरीश के माध्यम से प्रस्तुत की गई है। संतुलित सोच और स्पष्ट कार्यक्रम के अभाव वाले आतंकवादी आंदोलन के प्रति लगभग यही दृष्टिकोण अब्दुल्ला हुसैन 'उदास नस्लें' में नईम द्वारा प्रस्तुत करते हैं। प्रथम विश्व युद्ध से लौट कर वह आतंकवादियों के संपर्क में आता है, लेकिन जल्दी ही इस आंदोलन की सीमाएँ उसके आगे स्पष्ट हो जाती हैं। एक-दो रेलगाड़ियाँ उड़ाने के बदले उनमें सफर करने वाले हजारों-लाखों लोगों से सम्पर्क और उनके सहयोग की अहमियत वह समझ जाता है। सब मिलाकर 'दादा कॉमरेड' यशपाल के मार्क्सवादी चिन्तन का तद्युगीन व्यावहारिक दस्तावेज हैं।

1.3 देशद्रोही

'देशद्रोही' (1943) में दूसरे विश्वयुद्ध के आरंभिक दो-तीन वर्षों के बीच का (सन् 1939 से सन् 1942 तक) राजनैतिक परिदृश्य अंकित है। इसमें यशपाल ने तत्कालीन राजनैतिक अंतर्धारणाओं को बहुत स्पष्टता से चित्रित किया है। कांग्रेस की बुर्जुआ और जनविरोधी नीतियों एवं कार्यपद्धति के उद्घाटन में व्यंग्य का जैसा कलात्मक उपयोग इस उपन्यास में हुआ है, वह लेखक की भावी क्षमताओं का संकेत देता है। उपन्यास का नायक

डॉ० भगवान दास खन्ना सेना में डॉक्टर है, पश्चिमोत्तर सीमावर्ती एक कैंप से वजीरियों द्वारा जिसे कैद कर लिया जाता है। उसके जीवन के पर्याप्त घटनापूर्ण प्रसंगों द्वारा लेखक वजीरियों के कबीलाई समाज के अंतर्विरोधों को उद्घाटित करता है। अपने एक वर्ष के प्रवास में खन्ना वजीरियो के समाज को निकट से देखता है। वहाँ से वह रूस पहुँचकर वहाँ के समाजवादी समाज की उपलब्धियों को देखता-समझता है।

भारत लौटने पर उसे पता चलता है कि उसके प्रति सारी निष्ठा के बावजूद उसकी पत्नी राज बद्रीबाबू से विवाह कर चुकी है। सेना के कैंप से खन्ना की मृत्यु की विधिवत औपचारिक सूचना मिलने के बाद उसकी यह वापसी एक अप्रत्याशित घटना जैसी है। राज और उसकी बड़ी बहन चंदा के माध्यम से यशपाल एक बार फिर भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति पर टिप्पणी करते हैं। खन्ना अपनी पत्नी राज के पुनर्विवाह को स्वीकृति देता है। पति की मृत्यु की सूचना पाने के बाद जो कुछ उसने किया है, वही परिस्थितियों के अनुरूप और समीचीन है। चंदा के संदर्भ में भी वह स्त्री को सम्पत्ति और पुरुष के भोग की वस्तु मानने वाली दृष्टि का प्रतिवाद करता है। चंदा के पति राजाराम के रूप में यशपाल पुरुष के वर्चस्व और एकाधिकारवादी रूप पर चोट करते हैं। स्त्री की स्वाधीनता के लिए वे उसकी आर्थिक स्वतंत्रता को एक अनिवार्य घटक के रूप में देखते हैं। एक स्वाधीन और आत्मचेतस युवती के रूप में चंदा का रूपान्तरण ही कदाचित कल्पना का वह चांद है, जिसे पाने के प्रयत्न का उल्लेख संतोष, साहस और सुख के रूप में लेखक ने उपन्यास के अपने समर्पण में किया है।

उपन्यास का राजनैतिक परिदृश्य जिन पात्रों से बनता है उनमें बद्रीबाबू, शिवनाथ और स्वयं खन्ना प्रमुख हैं। बद्रीनाथ गांधीवादी कांग्रेसी हैं। वह महात्मा गांधी के ट्रस्टीशिप और रामराज्य के सिद्धान्तों को स्वीकृति देते हुए पश्चिम की मशीनी सभ्यता को सारी सामाजिक बुराइयों का मूल कारण मानते हैं। शिवनाथ कांग्रेसी-समाजवादी है और वैचारिक स्तर पर बद्रीबाबू का आलोचक है। मजदूरों की समस्या का समाधान भी वह इसी दृष्टि से चाहता है। सरकारी मशीनरी को ठप्प करके वह सरकार को पंगु बना देना चाहता है, जिससे उस पर राजनैतिक दबाव डाला जा सके। खन्ना रूस में सोवियत समाज-व्यवस्था के आदर्शों से प्रेरित कम्युनिस्ट है। वह तत्कालीन भारतीय कम्युनिस्ट विचारधारा का प्रतिनिधि पात्र है। अपने कानपुर प्रवास में वह दो मोर्चे खोलता है - एक मजदूर मोर्चा है और दूसरा सामाजिक-पारिवारिक जिसमें चंदा को केंद्र में रखकर वह पुरुष के निरंकुश वर्चस्व का विरोध करता है। कांग्रेस को वह भारतीय पूँजीपतियों की संस्था मानकर उसकी आलोचना करता है। दूसरे विश्वयुद्ध में वह फासिस्ट आक्रमण के विरोध में समाजवादी विचारधारा से सहानुभूति रखने वाले सहयोगियों का एक संयुक्त मोर्चा बनाना चाहता है। सोवियत संघ पर हिटलर के आक्रमण के बाद भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की युद्ध में ब्रिटिश सरकार के सहयोग की नीति के परिणामस्वरूप कांग्रेस द्वारा उस पर देशद्रोह का लांछन लगाया जा रहा था। घायलावस्था में खन्ना डांडी में चंदा के साथ रानीखेत जाते हुए राजाराम द्वारा पकड़ लिया जाता है। मारपीट कर, पति के अधिकार से वह चंदा को वापस लौटा लाता है। उस वीरान, निर्जन सन्नाटे में क्रमशः क्षीण होती खन्ना की जीवनशक्ति पीड़ा की उसकी अनुभूति को भी कम करती जाती है। मूर्छा और निद्रा की स्थिति में पत्थरों पर टिके अपने सिर को वह चंदा की गोद में रखा अनुभव करता है। उसे लगता है कि जीवन-संग्राम में फिर लड़ने के लिए स्वास्थ्य लाभ कर रहा है। उसी अचेतावस्था में वह बड़बड़ाता है....."चांद, मैं देशद्रोही नहीं.....चांद उनसे कहना .....हाँ साहस से....." (देशद्रोही, पृ० 271) वस्तुतः द्वितीय विश्वयुद्ध में सोवियत रूस के सहयोगी के रूप में ब्रिटिश सरकार का सहयोग करने की भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की नीति का औचित्य इस उपन्यास में यशपाल ने सिद्ध किया है। फलस्वरूप यह उपन्यास तद्युगीन राजनीतिक परिदृश्य में कम्युनिस्ट पार्टी का दस्तावेज माना जा सकता है।

देशद्रोही' का रचनाकाल द्वितीय विश्वयुद्ध का मध्यकाल था। इस समय तक पूरा सोवियत संघ हिटलर के भीषण आक्रमण की चपेट में आ चुका था। ऐसी घड़ी में केवल प्रगतिशील साहित्यकारों की ही नहीं, वरन् राष्ट्रवादी साहित्यकारों की दृष्टि भी सोवियत रूस की जय-पराजय पर केन्द्रित थी। हिंदी के प्रसिद्ध गांधीवादी सोहनलाल द्विवेदी जैसे कवि सोवियत रूस को संबोधित करते हुए उद्घोषणा कर रहे थे 'तुम हारे तो जग हार गया, तुम जीते तो है विश्व शेष'। इन परिस्थितियों में सोवियत रूस के सहयोगी ब्रिटिश सरकार के सहयोग की नीति भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी को अपनानी पड़ी थी। इसे देशद्रोही' उपन्यास में यशपाल ने अत्यंत कलात्मक ढंग से संकेतित किया है।

1.4 दिव्या

भारतीय सामाजिक संरचना में स्त्री की यातना का संदर्भ यशपाल का मुख्य रचनात्मक सरोकार है। 'दिव्या' (1945) में वे ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में स्त्री-उत्पीड़न के सामाजिक कारणों की खोज करते हैं। 'दिव्या' को वे बौद्धकालीन समाज की पृष्ठभूमि में एक ऐतिहासिक कल्पना के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इतिहास को वे विश्लेषण की वस्तु मानते हैं, विश्वास की नहीं। इस संदर्भ में उनकी टिप्पणी है, "अतीत में अपने रचनात्मक सामर्थ्य और परिस्थितियों के सुलझाव के अपने प्रयत्नों के परिचय से जाति वर्तमान और भविष्य के सुलझाव और रचना के लिए निर्देश पाती है".....(दिव्या, भूमिका पृ० 6) अपने लिए मनुष्य परम्पराओं और सामाजिक विधान की रचना करता है और कालांतर में उन्हीं के सम्मुख वह अपने को विवश अनुभव करता है। फिर मनुष्य ही उन सामाजिक विधानों को बदलता भी है।

'दिव्या' में यशपाल सागल के गण समाज को केन्द्र में रखकर पृथुसेन, मारिश और दिव्या के माध्यम से तत्कालीन सामाजिक अंतर्विरोधों को गहराई से उद्घाटित करते हैं। यहाँ यशपाल इतिहास की नियतिवादी अवधारणा के विरोध में इतिहास की विकासवादी अवधारणा प्रस्तुत करते हैं। इतिहास की यह विकासवादी अवधारणा विभिन्न परिस्थितियों में व्यक्ति और समाज की रचनात्मक क्षमता का विश्लेषण करने पर बल देती है। मनुष्य केवल उपस्थित और उत्पन्न परिस्थितियों को भोगता ही नहीं, उन्हें सुलझाने के प्रयत्न से भी आगे जाकर वह परिस्थितियों का निर्माण भी करता है। अपनी प्राकृतिक एवं भौतिक परिस्थितियों में परिवर्तन करके वह नयी सामाजिक परिस्थितियों की सृष्टि भी करता है। इतिहास की इस विकासवादी अवधारणा द्वारा यशपाल वस्तुत: भगवतीचरण वर्मा के 'चित्रलेखा' (1934) में प्रस्तुत इतिहास की नियतिवादी अवधारणा की सीमाओं की ओर संकेत करते हैं, जिसमें मनुष्य अपनी परिस्थितियों का भोक्ता और दास मात्र है और सिर्फ वही करता है जिसे करने को वह विवश है।

'दिव्या' में यशपाल मानते है कि न वर्णाश्रम व्यवस्था पर आधारित सामंती समाज स्त्री को सम्मान और सुरक्षा का आश्वासन दे सकता है और न ही बौद्धधर्म, जो स्त्री के स्वतंत्र व्यक्तित्व को शंका की दृष्टि से देखता है। वह स्त्री की स्वाधीनता को बाधित करता है। भौतिकवादी दार्शनिक मूर्तिकार मारिश न तो दिव्या को राजप्रसाद में महादेवी का आसन दे सकता है और न ही निर्वाण के मिथ्या चिरंतन सुख का आश्वासन दे सकता है। वह संसार के सुख-दुख का अनुभव करता है। इस अनुभूति का आदान-प्रदान ही वह दिव्या से कर सकता है। और फिर वह आश्वासन का निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए कहता है, "संतति की परम्परा के रूप में मानव की अमरता दे सकता है....." (दिव्या, पृ० 216) स्वर्ग और निर्वाण की मिथ्या कल्पनाओं की निस्सारता समझकर अंतत: दिव्या संतान की परम्परा में ही मनुष्य की अमरता के मारिश के भौतिकवादी आश्वासन को स्वीकृति देती है।

साहित्य में इतिहास के उपयोग को प्रेमचंद शंका की दृष्टि से देखते थे। स्वयं कर्बला की पृष्ठभूमि पर नाटक लिखने के बावजूद प्रेमचंद ने प्रसाद के ऐतिहासिक पृष्ठभूमि वाले

नाटकों और वृन्दावनलाल वर्मा के 'गढ़ कुण्डार' (1928) की कटु आलोचना की थी। इन्हें उन्होंने 'गड़े मुरदे उखाड़ने' की कोशिश के रूप में देखा था। दिव्या' मार्क्सवादी दृष्टि से इतिहास की नई संभावनाओं का संकेत देने वाला उपन्यास है। वह साहित्य में इतिहास के विनियोग की नई दिशाओं को उद्घाटित करने के अपने उपक्रम के कारण ही उल्लेखनीय और महत्वपूर्ण है। इतिहास के सही उपयोग की यह दृष्टि यशपाल ने अपने मार्क्सवादी चिंतन से उपलब्ध की थी। आगे चलकर अमिता' और 'अप्सरा का श्राप' शीर्षक उपन्यासों में भी यशपाल ने अपने तर्कसंगत इतिहास बोध का परिचय दिया है। अपने कल्पनाश्रित ऐतिहासिक उपन्यासों के माध्यम से उन्होंने यह सिद्ध किया है कि उपन्यास या नाटक में इतिहास का आश्रय लेना केवल 'गड़े मुर्दे उखाड़ने' का काम नहीं है। इसके माध्यम से वर्तमान समस्याओं की जड़ तक पहुँचकर भविष्य के लिए एक साथ स्वप्न निर्मित किया जा सकता है।

1.5 पार्टी कॉमरेड

'पार्टी कॉमरेड' (1946) गीता नामक एक कम्युनिस्ट युवती पर केन्द्रित है, जो पार्टी के प्रचार के लिए उसका अखबार बम्बई की सड़कों पर बेचकर पार्टी के लिए फंड इकट्ठा करती है। उपन्यास की पृष्ठभूमि में सन् 1945 का आम चुनाव और नाविक-विद्रोह की घटनाए हैं। अपने ऊपर लगाए गए प्रचार के आरोप का उत्तर देते हुए यशपाल उपन्यास की भूमिका में संकेत करते हैं कि वास्तविकता को दर्पण दिखाना भी प्रचार के अंतर्गत आ सकता है या नहीं, यह विचारणीय है। अपनी व्यंग्यात्मक शैली में वे लिखते हैं, "कुछ लोग इसे प्रचार कहेंगे, परन्तु यदि वास्तविक बात न कही जाए तो क्या बंदर, हाथी और गधे का वास्तविक परिचय या वर्णन हो सकेगा? जिन लोगों की कहानी लेखक लिखता है, उनके विचारों और व्यवहार का वर्णन करना उनका वास्तविक परिचय है प्रचार नहीं....." (पार्टी कॉमरेड, भूमिका, पृ. 6)। पार्टी के प्रति समर्पित निष्ठावान गीता पार्टी के काम के सिलसिले में अनेक लोगों के सम्पर्क में आती है। इन्हीं में से एक पदमलाल भावरिया भी है, जो पैसे के बल पर छोकरियों को फँसाता है। वह दुश्चरित्र और ऐय्याश किस्म का आदमी है। उसके साथी एक दिन उसे अखबार बेचती गीता को दिखाकर फँसाने की चुनौती देते हैं। गीता और भावरिया का लंबा सम्पर्क अंततः भावरिया को ही बदल देता है। अपने अन्य उपन्यासों की तरह इस उपन्यास में भी यशपाल कांग्रेस के वर्गचरित्र और उसके नेताओं के चारित्रिक अंतर्विरोधों को व्यंग्यात्मक शैली में उद्घाटित करते हैं। कांग्रेस पार्टी की नीतियों का सार्थक विरोध और कम्युनिस्ट पार्टी की नीतियों का समर्थन 'दादा कामरेड', 'देशद्रोही' से लेकर 'झूठा सच' तक में समान रूप में देखा जा सकता है।

1.6 मनुष्य के रूप

यशपाल का 'मनुष्य के रूप' (1949) एक पहाड़ी विधवा युवती सोमा के माध्यम से विभिन्न परिस्थितियों में एक ही मनुष्य के बदलते हुए विविध रूपों की कहानी के साथ ही समाज के विभिन्न वर्ग-रूपों की कहानी भी है। उपन्यास का कथानक पर्याप्त घटना बहुल है, जिसमें समाज के विभिन्न वर्गों के व्यवहार का अध्ययन किया गया है। पारिवारिक उत्पीड़न से त्रस्त होकर सोमा धनसिंह नामक एक ट्रक ड्राइवर के साथ भाग जाती है। बम्बई पहुँचकर अनेक घटनाक्रमों में फँसकर अंततः सोमा पहाड़न नाम से सिनेतारिका बन जाती है। बाद में जेल से छूटकर आने पर धनसिंह के प्रति उसके व्यवहार में भी अंतर आ जाता है। उपन्यास का फलक व्यापक है। यह बम्बई के पूँजी-जगत को सजीवता और विश्वसनीयता के साथ अंकित करता है। शोषण के अनेक रूपों की तरह यशपाल स्त्री के दैहिक और भावनात्मक शोषण के भी विरोधी है। सोमा ही नहीं, अभिजात परिवार की मनोरमा भी अनेक स्तरों पर इस शोषण का शिकार है। वह एक कम्युनिस्ट युवक भूषण से प्रेम करती

है। लेकिन अपने निम्नवर्गीय संस्कारों के कारण भूषण हीनता ग्रंथि के कारण उससे सहज नहीं हो पाता और अंततः उससे दूर चला जाता है। सुतलीवाला से मनोरमा का विवाह उसके जीवन की त्रासदी बन जाता है। पति से तलाक पाकर मनोरमा मुक्ति और अपमान का अनुभव एक साथ करती है। फिर वह अपने को समझाने की कोशिश करती है, "मुक्ति के लिए कुसंस्कारों से भी मुक्ति आवश्यक है.....(मनुष्य के रूप, पृ० 273) स्त्री-पुरुष के संबंधों में यशपाल नारी की इच्छा और भावना का आदर करने वाले लेखक हैं। जीवन साथी के चयन और उसके साथ निर्वाह के प्रसंग में वे उसके अपने विवेक को ही वरीयता देते हैं। लेकिन घटनाओं और संयोगों से निर्मित सोमा का चरित्र विश्वसनीय नहीं लगता। उसके माध्यम से यशपाल प्रेम की परिवर्तित और वर्गीय भूमिका की ओर संकेत करना चाहते हैं। प्रेम शाश्वत और अपरिवर्तनीय नहीं होता। सामाजिक स्थिति बदलने से प्रेम भी उस परिवर्तन से अछूता नहीं रहता। धनसिंह के प्रति सोमा का परिवर्तित व्यवहार इस सामाजिक और वर्गीय अंतर का ही एक स्वाभाविक परिणाम है।

कांग्रेसी नेताओं के छद्म और पाखंड को यशपाल इस उपन्यास में भी अपनी सुपरिचित व्यंग्य-शैली में उद्घाटित करते हैं। गांधीवादी सोमबाबू के चारित्रिक अंतर्विरोधों को यशपाल गहराई से पकड़ते हैं। सरकारी हुक्म से जेल में 'ए' क्लास मिलने पर भी वे इसे सिद्धान्त विरुद्ध मानकर 'सी' क्लास में ही रहते हैं। लेकिन 'सी' क्लास में रहकर भी वे उस वर्ग के कैदियों से बिल्कुल अलग अपनी पहचान रखते हैं। जेल का आम खाना न खाकर वे अपने खर्च से दूध और फल ही मँगवाकर लेते हैं। मिल के सूत से बना जेल का कपड़ा भी वे नहीं पहनते, शुद्ध खद्दर का केवल एक अंगोछा कमर में लपेटकर वे पशमीने का शाल ओढ़े रहते हैं। चूँकि चोरी से मंगवाया हुआ अखबार पढ़ना वे अनैतिक समझते हैं, केवल खबरें सुन लेते हैं। यशपाल कभी कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य नहीं रहे। वे उसकी विचारधारा और नीतियों के समर्थक लेखक थे। उपन्यास में कम्यून जीवन के अंकन की दृष्टि से 'मनुष्य के रूप' का ऐतिहासिक महत्व है। इसके लिए यशपाल काफी समय तक बम्बई में पार्टी कम्यून में रहे थे।

1.7 अमिता

'अमिता' (1956) शीतयुद्ध के दौर की रचना है। इसके लिखे जाने से पूर्व यशपाल ने वियेना में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय शांति सम्मेलन में भारतीय प्रतिनिधिमंडल के एक सदस्य के रूप में भाग लिया था। व्यापक विध्वंस के बाद यह शांति, सुरक्षा और मानवीय विकास की आकांक्षा का उपन्यास है। तब पंचशील और सहअस्तित्व के सिद्धान्तों की गूँज हवा में थी। यही कारण है कि पंडित नेहरू की अनेक नीतियों से गहरे मतभेद के बावजूद यह उपन्यास विश्वशांति के उनके प्रयासों के लिए उन्हें ही समर्पित है।

'दिव्या' की तरह 'अमिता' भी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में कल्पना को आधार बनाकर लिखा गया है। इसके केन्द्र में कलिंग पर अशोक के आक्रमण की घटना है। जिस युद्ध में हुए भारी विनाश और रक्तपात के परिणामस्वरूप अशोक द्वारा बौद्धधर्म स्वीकार करने की बात इतिहास सिद्ध है। यशपाल इस मूल घटना में किंचित परिवर्तन करके कलिंग की बालिका राजकुमारी अमिता को केन्द्र में रखकर कथा का ढाँचा खड़ा करते हैं। लेकिन 'अमिता' इस मूल अंतर्विरोध से बच नही सका है कि गांधीवादी अहिंसा और हृदय-परिवर्तन के सिद्धान्तों के प्रति अपनी गहरी असहमति के बावजूद अंततः लेखक इनका ही सहारा लेता है। लेकिन अशोक के हृदय परिवर्तन में अमिता जैसी शिशु बालिका को आधार बनाकर लेखक ने मनोवैज्ञानिक कारण प्रस्तुत किया है। 'अमिता' में एक असंगति यह भी है कि उसमें लेखक अशोक के प्रतिद्वन्द्वी के रूप में कलिंग के राजा खारवेल को प्रस्तुत करता है जबकि खारवेल कोई कल्पित नाम न होकर एक वास्तविक व्यक्ति था, जो कलिंग पर अशोक के आक्रमण के लगभग एक शताब्दी बाद कलिंग का शासक बना था।

'अमिता' में यशपाल तत्कालीन वातावरण और परिवेशगत प्रभाव के चित्रण की दृष्टि से सफल हैं। अमिता और सम्राट अशोक की मुठभेड़ उपन्यास का आकर्षक प्रसंग है, जिसमें वह अपनी बाल-सुलभ निश्छलता से अशोक को निरस्त्र करती है। राजमहल में दास-दासियों के जीवन के भी पर्याप्त विश्वसनीय चित्र उपन्यास में अंकित है। दास-दासियों की परतंत्रता के क्रूर विधान के चित्रण के साथ ही यशपाल ने उनकी दासत्व से मुक्ति के लिए एक नए विधान' की ओर संकेत कर अपनी प्रगतिशीलता का परिचय दिया है। बौद्धधर्म के अंतविरोधों को यशपाल प्राय: ही गांधीवाद में घटाकर प्रस्तुत करते हैं और गांधी-दर्शन के प्रति उनकी कटुता बौद्धधर्म के प्रति भी उन्हें वस्तुपरक नहीं रहने देती।

1.8 झूठा सच

झूठा सच निर्विवाद रूप से यशपाल का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। इसका पहला खंड सन् 1958 और दूसरा सन् 1960 में प्रकाशित हुआ। इन्द्रनाथ मदान ने रंगों के रूपक द्वारा इसे लाल से गुलाबी की ओर यशपाल के संचरण के रूप में देखा है। अर्थात् अपने पूर्ववर्ती उपन्यासों में कम्युनिस्ट पार्टी की विचारधारा और नीतियों के समर्थक जैसे नायकों की रचना यशपाल करते रहे थे, यहाँ वे उससे थोड़ा हटे हैं। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि कम्युनिस्ट विचारधारा के प्रति वे उदासीन हो गए हैं। 'दादा कामरेड', 'पार्टी कामरेड', 'देशद्रोही' आदि उपन्यासों का सामाजिक फलक बहुत छोटा है। इनमें पार्टी नीतियाँ प्रमुख होकर आई हैं। जबकि लाहौर को केन्द्र बनाकर लिखा गया 'झूठा सच' का पहला खण्ड पंजाब और पंजाबियत को समग्रता के साथ अपने में समाए हुए है। विभाजन की त्रासदी उस पर एक आघात बनकर आती है। इस खण्ड में भी असद, गिल जैसे कम्युनिस्ट पात्र हैं, लेकिन विभाजन की त्रासद पृष्ठभूमि में उनकी किसी क्रांतिकारी भूमिका का उल्लेख सम्भव नहीं था। जबकि उपन्यास के दूसरे खण्ड-'देश का भविष्य' में यशपाल ने कम्युनिस्ट पात्रों और उनकी गतिविधियों का समुचित उल्लेख किया है। पी.सी.जोशी और बी.टी. रणदिवे की पोलिटिकल लाइन पर खुलकर चर्चा हुई है। लेकिन इसका सम्बन्ध देश के वर्तमान से न होकर देश के भविष्य से अधिक है।

'झूठा सच' में भी कम्युनिस्ट पात्र हैं लेकिन उसमें पार्टी और उसकी विचारधारा के बाहर का एक खुला और भरा-पूरा संसार भी है और वही उपन्यास में अधिक महत्वपूर्ण है। उपन्यास का आरंभ लाहौर की एक गली में मास्टर राम लुभाया की माँ की मृत्यु से होता है। लाहौर का शांत और आपसी सद्भाव वाला यह जीवन देखते-देखते नेताओं के राजनैतिक स्वार्थों की भेंट चढ़ जाता है। इन्हीं आर्यसमाजी मास्टर राम लुभाया का बेटा जयदेवपुरी और बेटी तारा 'झूठा सच' के केन्द्रीय पात्रों के रूप में विकसित होते हैं। जयदेव पत्रकार हैं। साम्प्रदायिक दंगों में मारे गए दौलू मामा की मृत्यु पर लिखी गई उसकी टिप्पणी का एक अंश है, "तुम्हारे कत्ल के लिए उत्तेजना दिलाने की जिम्मेदारी उन नेताओं पर है जो तुम्हारे जैसे इंसानों को शासन के सिंहासन पर पहुँच सकने का जीना बनाने के लिए जनता को ईंट गारे की तरह प्रयोग करना चाहते हैं। क्या हम सर्वसाधारण स्वार्थों में अंधे और क्रूर लोगों के सपनों के महलों में पहुँचने के लिए जीने बनते रहेंगे? क्या सर्वसाधारण अपने नेताओं को मानवता की कसौटी पर जाँचकर नहीं परखेंगे? क्या अपने स्वार्थों के लिए सर्वसाधारण को अंधा बना देना ही धर्म की रक्षा, प्रजातंत्र और जनवाद है?....." (झूठा सच, पृ० 137)। जयदेव पुरी की इस टिप्पणी में पंत्रकारोचित आवेश के बावजूद राजनीति और नेताओं के प्रति हताशा का स्वर बहुत स्पष्ट है। 'झूठा सच' के समर्पण में यशपाल इन दो पक्षों को ही आमने-सामने रखकर उपन्यास के नामकरण की ओर संकेत करते हैं। एक ओर जनसंमुदाय है जो सदा झूठ से ठगा गया है और दूसरी ओर झूठ का व्यवसाय करने वाले नेता हैं, जिनके द्वारा झूठ से छली जाकर भी जनता सच के प्रति अपनी निष्ठा और उसकी ओर बढ़ने का साहस नहीं छोड़ती।

उपन्यास के दूसरे खण्ड 'देश का भविष्य' में यशपाल कांग्रेस की जनविरोधी राजनीति और उसके दूरगामी परिणामों की ओर संकेत करके अंतत: उससे मुक्ति का आह्वान करते हुए देश का भविष्य देश की जनता के ही हाथ में होने की घोषणा करते हैं। 'झूठा सच' के रूसी अनुवाद की भूमिका लिखते हुए चेलिशेव इस सवाल को उठाते हैं, 'ये कौन लोग हैं जिनके हाथ में भारत का भविष्य है? ये बहुत से लोग हैं, सूद जी जैसे लोगों से कहीं अधिक। ये वे भूखे लोग हैं जो अपनी रोटी का आखिरी टुकड़ा भी शरणार्थियों को दे देते हैं। ये साहसी नवयुवक और नवयुवतियाँ हैं जो धार्मिक कट्टरता की आग को बुझाने के लिए कृतसंकल्प हैं। ये वोट डालने वाली साधारण जनता हैं जो सूदजी तथा उन जैसे लोगों का विरोध करती है। उपन्यास के अंत में डॉ० नाथ का स्वगत कथन पूरी तरह से प्रतीकात्मक है। इससे विश्वास होता है कि जनता निर्जीव नहीं है और वह सदा मूक भी नहीं रहती.....''(यशपाल के पत्र, मधुरेश, पृ० 128)

यशपाल मूलत: एक मध्यवर्गीय समाज के लेखक हैं। मध्यवर्ग के चित्रण और प्रतिनिधित्व की दृष्टि से 'झूठा सच' एक बड़ा और सार्थक प्रयास है। राम ज्वाया, रामलुभाया, जयदेव, तारा, पंडित गिरधारी लाल, कनक, नैयर, डॉ० प्राणनाथ और पंजाब के असंख्य परिवार मध्यम वर्ग के विभिन्न स्तरों का प्रतिनिधित्व करते हैं। पारिवारिक स्वार्थों का तनाव और सम्मिलित परिवारों का विघटन, आर्थिक संकट और साधनहीन श्रेणी की विरासत, संघर्ष के लिए तैयार युवा पीढ़ी आदि 'झूठा सच' के फलक को एक प्रीतिकर विस्तार देते हैं। प्रेम, विवाह, शिक्षा और रोजगार की समस्याएँ एवं अर्थाभाव और हीन सामाजिक स्थिति से उत्पन्न कुंठाओं और हीनभाव के विभिन्न रूप जयदेव और तारा के चरित्रों में मिलते हैं। इस समाज में विवाह की समस्या सबसे बड़ी और जटिल है। तारा और कनक के माध्यम से लेखक इसके विविध पक्षों पर विचार करता है। गिरधारी लाल इन दो ध्रुवों के बीच जैसे सामंजस्य और संतुलन स्थापित करते हैं। विवाह को एक सामाजिक-आर्थिक समझौते के रूप में स्वीकृति देकर, वे विश्वास करते हैं कि सामाजिक-आर्थिक चौखटे के बाहर जाकर वह बिखर जाएगा। शीलो और रतन का प्रसंग इसी समस्या का एक और पक्ष है। भले ही समाज की दृष्टि में यह तारा पर व्यभिचार को प्रश्रय देने का उदाहरण हो, लेकिन तारा ने शीलो को रतन से मिलाकर सामाजिक क्रांति विशेषत: नारी मुक्ति की दिशा में एक सहा कदम उठाया है। उपन्यास के अधिकांश महत्वपूर्ण पात्र मध्यवर्गीय समाज से संबद्ध हैं और वे अपने समाज और परिवेश के प्रति सच्चे और ईमानदार हैं। पात्रों के इस वैविध्य के कारण ही 'झूठासच' वस्तुत: सामाजिक जीवन का महाकाव्य बन सका है। यह लेखक की एक बड़ी सफलता है कि वह प्रमुख और गौण दोनों प्रकार के पात्रों पर समान रूप से ध्यान केन्द्रित कर सकता है। तारा, पुरी और कनक जैसे मुख्य पात्रों के साथ गिरधारी लाल, नैयर, गिल, असद, मर्सी, दत्ता, उर्मिला के अतिरिक्त शीलो, रतन, भगवंती, पूरणदेई, सीता, मेलादेई, कर्त्तारो, खुशालसिंह आदि जैसे ढेरों पात्रों को लेखक ने गहरी आत्मीयता और संयम के साथ गढ़ा है।

जयदेवपुरी उपन्यास का नायक और मुख्यपात्र है। वह अपनी सारी दुर्बलताओं, शक्ति और संभावनाओं के साथ उपन्यास में उपस्थित है। उसके आदर्शों पर धीरे-धीरे मध्यवर्गीय जीवन का यथार्थ और उसकी वास्तविकताएँ हावी होती जाती हैं। सारे जद्दोजहद के बाद, परिस्थितियों से समझौता करके, वह एक वामपंथी कांग्रेसी और फिर अवसरवादी नेता बन जाता है। यदि लेखक चाहता तो अपने पूर्व उपन्यासों की परम्परा में उसे आसानी से कम्युनिस्ट हीरो बनाया जा सकता था। लेकिन यह काम वह उससे न लेकर गिल जैसे बहुत से दूसरे पात्रों से लेता है। पुरी मध्यवर्गीय आकांक्षाओं और विडम्बनाओं का एक प्रतिनिधि चरित्र है, जिसमें विकास के स्थान पर लगातार ह्रास लक्षित किया जा सकता है।

उपन्यास के स्त्री-पात्रों में तारा और कनक दोनों ही समान रूप से महत्वपूर्ण हैं। अपने-अपने ढंग से वे दोनों ही मध्यवर्ग के दो भिन्न स्तरों का प्रतिनिधित्व करती हैं।

तारा आरंभ में एक साधारण लड़की के रूप में सामने आती है जो अपने परिवेश की विद्रूपताओं से लड़ने के लिए अपनी सारी सीमाओं के बीच, हर मुमकिन कोशिश करती है। उसकी त्रासदी किन्हीं अर्थों में समूचे मध्यवर्ग की त्रासदी है। घटनाचक्र के बहाव में वह सोमा की तरह बहती नहीं है, बल्कि बहाव को काटकर मनचाही दिशा में बढ़ने के लिए संघर्ष करती है। कनक अपेक्षाकृत अधिक सहज और सरल है। सारी कठिन और विपरीत स्थितियों के बीच भी वह अपनी निष्ठा और आस्था को बचाए रखती है। उर्मिला शुरू में एक अल्हड़ किशोरी है जो सिर्फ अपनी धमनियों में बहते रक्त के प्रति ही सच्ची है। लेकिन बाद में वह गलत समझौतों से ऊपर उठकर अपने पैरों पर खड़ी हो अपने जीवन और भाग्य का निर्माण करने वाली स्त्री में बदल जाती है। इनके अलावा भी सैंकड़ों छोटे-बड़े पात्र हैं जो पंजाब की धरती की बू-बास लिए हैं, जो संघर्ष करते हैं और जीवन की बेहतरी के लिए हर मुमकिन कोशिश करते हैं।

उपन्यास का पहला खंड 'वतन और देश' मुख्य रूप से लाहौर पर केन्द्रित है। पंजाबी जीवन का लोक-रस, उसके रीति-रिवाज, आचार-व्यवहार, बोलियाँ, फेरी वालों की आवाजें और गीत आदि उसे गहरी स्थानीय रंगत देते हैं। लेकिन इसमें आंचलिकता का कहीं कोई आग्रह नहीं है। उपन्यास का आरंभ ही रामज्वाया और रामलुभाया की माँ की मृत्यु पर स्यापे से होता है। यह वह सूत्र है जो उपन्यास के भावी विकास की दिशा का संकेत देता है। लाहौर की गलियाँ और बाजार, अनारकली, मालरोड, ग्वालमंडी, मजंग, नीला गुंबद, शाहमली, भाटी दरवाजा, भोला पांधे की गली आदि लगता है जैसे समूचा लाहौर मूर्तरूप से सामने खड़ा है। स्यापे में कौला नाइन उलाहना देती है-"बोल मेरिए राणिए रामजीदा नाम .....'' फेरी वाले चिल्लाते हैं, "लै लौ जीकेल्ले हरी छाल दे.....मरूद अलाहाबादी, नार काबल कंधार देखे.....'' भागवंती गाली देती है.....''ये झूठे चुगली लगाने वाले बच्चे-पिट्टे, एडीचड्णे मरैं, इनकी सात पीढ़ियाँ औन्तर रहे।''.....ये सारी चीजें उपन्यास की प्रामाणिक स्थानीयता की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। कदाचित पहली बार यशपाल 'झूठा सच' में पंजाब के जनजीवन के बहाव में इतना तन्मय होकर बहे हैं।

भाषिक प्रयोग की दृष्टि से भी 'झूठा सच' एक श्रेष्ठ, सफल और जन-जीवन की भाषा का प्रतिनिधि उपन्यास है। संतुलन, अनुपात और स्थान का ध्यान रखते हुए लेखक ने उपन्यास की भाषा को पंजाबी रंगत दी है, जिसमें भाषा की अपनी स्थानीय गंध सी बसी है। उसमें कितने ही पंजाबी शब्द-अमरू, भाया, कुड़माई, भाइया, सिरसड़े, झाई-नालदा आदि अपने मूल रूप में उपस्थित हैं। पढ़े-लिखे मध्यवर्गीय पात्र बोलचाल में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी करते हैं-अपने खास पंजाबी उच्चारण के साथ। भोला पांधे की गली का निम्न मध्य वर्ग जो भाषा बोलता है, उससे उसकी मिट्टी का आत्मीय और अन्तरंग संबंध है। उपन्यास के प्रथम खण्ड में कितने ही मुस्लिम पात्र हैं जो उर्दू बोलते हैं। लेकिन इन पात्रों की उर्दू का भी अपना-अपना रंग और स्तर है। गौस मुहम्मद की भाषा ठीक वैसी ही नहीं है जैसी हाफ़िज जी की है। उपन्यास में ब्यौरों और वृत्तांत वाला रचना-विधान ठीक वैसा ही है जैसा किसी विशाल जनजीवन का चित्रण करने वाले किसी बड़े फलक के उपन्यास का होना चाहिए। उसका शिल्प 'बूँद और समुद्र', 'भूले बिसरे चित्र और प्रेमचंद के अधिकांश बड़े फलक वाले उपन्यासों वाला शिल्प है।

भाषा की दृष्टि से विचार करें तो 'झूठा सच' के शब्द या वाक्यांश प्रयोग में एक बात खटकती है। लगता है, यशपाल रेणु के उपन्यासों की भाषा की अत्यधिक आंचलिकता, जो प्राय: पठनीयता में बाधक बनी है, से उबरने के प्रति काफी सावधान दिखाई देते हैं। इसलिए वे ठेठ पंजाबी शब्दों और वाक्यांशों का हिन्दी रूपान्तर कोष्ठकों में देते चलते हैं। जैसे-उलाहनी (विलाप के बोल), डिट्ठे पलंगा वालिए (भरे पूरे घर वाली), हुंदया हुक्मां वालिए (जिसका हुक्म चलता हो), लग्गे बागां वालिए (अनेक बागों की मालकन) इसके साथ ही विशिष्ट पात्रों द्वारा बोले गए अंग्रेजी शब्दों, वाक्यांशों का कोष्ठकों में हिन्दी

रूपान्तर भी देते चलते हैं। वस्तुत: भाषा प्रयोग की यह पद्धति उपन्यास के पाठ-प्रवाह में बाधक बनी है।

'झूठा सच' के दूसरे खण्ड 'देश का भविष्य' में यशपाल उस समूची प्रक्रिया को बहुत विश्वसनीय रूप में अंकित करते हैं कि कैसे रातों-रात कांग्रेसियों और उनके हिमायतियों की एक पूरी की पूरी फौज खड़ी हो जाती है। सूद जी, अवस्थी जी ठाकुर साहब और मिसेज अगरवाला जैसे लोग अपनी उपस्थिति में अकेले नहीं हैं। देश की आजादी के साथ जन्मे वे एक पूरे वर्ग के रूप में उभरे हैं। अंग्रेजों के जमाने में यही मिसेज अगरवाला ब्रिटिश निटिंग क्लब की मेंबर थीं और किराए पर स्वेटर बुनवाकर ब्रिटिश जवानों को भिजवाती थीं। अब वे खद्दर पहनने लगी हैं-जो, उन्हीं के अनुसार, उनके पेट पर मूँज की तरह गड़ता है। गांधी जी की हत्या वाली रात में शराब के बीच कांग्रेसी नेताओं की बहसों के प्रसंग कहीं-कहीं अतिरंजनापूर्ण लग सकते हैं, लेकिन फिर लेखक जल्दी ही पाठक का विश्वास पा लेता है।

'झूठा सच' जैसे बड़े फलक और आकार वाले उपन्यासों पर 'बाह्य विस्तार' का आरोप जब-तब लगाया जाता रहा है। उसका पहला खण्ड अपेक्षाकृत अधिक संश्लिष्ट और सुगठित है। लेकिन उसमें भी अंत तक पहुँचते-पहुँचते इस विस्तार का मोह सचमुच बढ़ा है। बंतो, अमरो, सतवंत और दुर्गा आदि की अलग-अलग कहानियों का भी सार एक ही है। वे सब अमानुषिकता और नृशंसता के ही बयान हैं। उपन्यास का दूसरा खण्ड ढीला-ढाला सा है। उसमें जनता के संघर्ष और नेताओं के व्यापक भ्रष्टाचार का संतुलन भी डगमगाया है। लेकिन इन सारी सीमाओं के बावजूद 'झूठा सच' यशपाल का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास तो है ही, वह हिन्दी के कुछ उल्लेखनीय उपन्यासों में से भी एक है। प्रेमचंद की जनवादी परम्परा का विकसित, परिष्कृत और समयानुकूल परिवर्तित रूप उसमें देखा जा सकता है। अपने विशाल फलक, बहुविध समस्याओं और व्यापक जीवन चित्रों के कारण यह उनके अन्य उपन्यासों से विशिष्ट और श्रेष्ठ है।

1.9 'झूठा सच' के बाद के तीन लघु उपन्यास: 'बारह घंटे', 'अप्सरा का श्राप' और 'क्यों फँसे!'

'झूठा सच' और 'मेरी तेरी उसकी बात (1973) के बीच यशपाल ने तीन छोटे उपन्यास लिखे। इनमें से 'बारह घंटे' सन् 1963 में छपा, 'अप्सरा का श्राप' सन् 1965 में और 'क्यों फँसे!' सन् 1968 में। रचनात्मकता की दृष्टि से ये यशपाल की साधारण रचनाएँ हैं-वैसी ही जैसी बीच-बीच में प्राय: हर बड़े लेखक के यहाँ होती हैं। 'झूठा सच' जैसे बड़े उपन्यास के बाद यह विश्राम की मुद्रा भी मानी जा सकती है। लेकिन इसके अतिरिक्त भी कुछ कारण थे। इस बीच वे आँखों के कष्ट से पीड़ित रहे। एक आँख का ऑपरेशन मास्को में हुआ और दूसरा का बाद में लखनऊ में ही। इसके अतिरिक्त अपने निजी प्रकाशन के बावजूद, वे लेखन पर ही आश्रित थे। वैसे भी खाली बैठना उनका स्वभाव नहीं था। इसलिए पत्रिकाओं की मांग पर ये उपन्यास लिखे गए। पुस्तकाकार प्रकाशन के पूर्व शुरू के दोनों उपन्यास 'धर्म युग' और 'भाषा' में धारावाहिक रूप से छपते रहे।

'बारह घंटे' में यशपाल प्रेम को जीवन की समांतरता में देखते हैं। बिनी दुर्घटना में मरे अपने पति की समाधि-दर्शन के लिए नैनीताल पहुँचती है। वहीं सेमेट्री में एक प्रौढ विधुर से उसकी भेंट होती है जो अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद छोड़कर नहीं जा सका है। बारिश के कारण रास्ता खराब होने से बिनी अपनी बहन जेनी के यहाँ नहीं लौट पाती। 'बैलेरिया' में बैठकर चाय पीते हुए दोनों अपनी पिछली जिंदगी की चर्चा करते हैं। फिर फेंटम के अनुरोध पर वह उसके साथ उसके घर चली जाती है। वहीं से वस्तुस्थिति की सूचना वह पत्र द्वारा जेनी को भिजवा देती है। उपन्यास में कुल पाँच पात्र हैं-बिनी, फेंटम, जेनी, उसका पति पामर और उनका पारिवारिक मित्र लारेंस जो पुलिस का अफसर है।

उपन्यास विचारों के सहारे विकसित होने से अधिकांश पात्र अपना स्वतंत्र जीवन न जीकर विचारों और आदर्शों की अभिव्यक्ति का माध्यम ही अधिक हैं। बिनी और फेंटम अपेक्षाकृत अधिक सहज और विश्वसनीय हैं। दो समान रूप से दुखी व्यक्तियों के लिए एक सामान्य सूत्र में बाँधने वाले भावों और मनोदशाओं को यशपाल पर्याप्त विश्वसनीय बनाकर प्रस्तुत कर सके हैं। दो मूल्य-दृष्टियों के संघर्ष के रूप में कहानी विकसित हुई है। अपनी कहानी 'पाप की कोचड़' की तरह ही यशपाल यहाँ देह और मन की एकता पर जोर देते हैं। यह वस्तुत: उनकी उसी सोच का विस्तार है, जिसमें वे शुरू से ही आर्यसमाजी वर्जनाओं और निषेधवादी दृष्टि की आलोचना करते रहे थे। बारह घंटे' का एक बिन्दु यह भी है कि उसमें यशपाल ईसाई समाज का चित्रण करते हैं और उसके सामाजिक अंतर्विरोधों को अंकित करते हैं।

'अप्सरा का श्राप' की भूमिका में यशपाल ने कुछ ऐसे संकेत दिए हैं, जिनसे उसके प्रयोजन को समझने में सहायता मिल सकती है। उन्होंने स्पष्ट स्वीकार किया है कि शकुंतला की इस कथा की पुनर्रचना के मूल में 'कालिदास से कलात्मक स्पर्धा नहीं अपितु आधुनिक समाज पर कालिदास की महान कृति 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' के गहरे प्रभाव की स्वीकृति है.....'' (अप्सरा का श्राप, पृ० 10) लेखक ने कालिदास और अपने युग के भावक वर्ग के अंतर की ओर भी संकेत किया है। चाहकर भी कालिदास दुष्यंत के प्रति कटु नहीं हो सकते थे क्योंकि यह राजाश्रित कवि की सीमाओं का सवाल भी था। लेकिन युगीन अपेक्षाओं के अनुरूप यशपाल ने दुष्यंत एवं शकुंतला के मिथ को बदलकर समसामयिक यथार्थ का रूप दिया है। यहाँ यशपाल अलौकिक और अतिमानवीय तत्वों, आकाशवाणी, शाप आदि को अस्वीकार करते हैं। 'अप्सरा का श्राप' का नायक दुष्यंत कालिदास की भांति धीरोदात्त शास्त्रीय नायक नहीं है। प्रारंभ में ही वह एक कामुक और विलासी राजा के रूप में सामने आता है। उसके व्यवहार में लंपटता, क्षुद्रता और स्वार्थ की गंध है। यही दुष्यंत जब ऋषि कश्यप से शकुंतला को पाने के लिए पत्नी पर पति के नीति-विहित अधिकार का दावा करता है तो पुरुष वर्चस्व वाले समाज में पुरुष का मिथ्या दंभ ही उद्घाटित होता है। लेकिन ऋषि कश्यप के माध्यम से स्त्री-पुरुष संबंध का केवल स्पृहणीय रूप ही सामने नहीं आता, वरन् लेखकीय प्रयोजन भी स्पष्ट होता है। अपने विचारों के लिए यशपाल शकुंतला को माध्यम नहीं बनाते। इसके लिए उन्होंने सानुमती और मेनका की कल्पना की है। अलौकिक और अतिमानवीय तत्वों की अपेक्षा यशपाल कथानक में राजनैतिक कारणों की कल्पना करते हैं। एक तापस कन्या से विवाह करके और उसके पुत्र को उत्तराधिकारी बनाकर वह अपनी तीन रानियों के पितृकुलों-मद्र गौड़ और विदर्भ को नाराज नहीं करना चाहता था। वह शकुंतला को 'कुलटा' और कपटी कहकर लांछित करता है। इस अपमान को सहकर भी वह पतिव्रता का अपना धर्म पूरा करती है। वह मेनका से कहती है, "माता, पतिव्रता नारी, व्यक्ति तथा मानव नहीं पतिव्रता मात्र से होती है.....'' (वही, पृ० 128) इसे सुनकर खीझ और झुंझलाहट में यह शाप देकर वह चली जाती है कि 'तुम्हारे साथ ऐसा ही होना चाहिए।' इस शाप की व्यंजना का निहितार्थ है कि स्त्री को अपनी मुक्ति और अस्मिता की रक्षा की लड़ाई स्वयं लड़नी पड़ेगी।

इस उपन्यास में भी एक पुराणेतिहासिक कथानक की पुनर्रचना की गई है। दुष्यंत और शकुंतला के संबंध की नयी निर्मिति द्वारा यशपाल ने जहाँ इतिहास से मिथ को अलग कर उसकी तद्युगीन वास्तविकता को उजागर किया है, वहीं वर्तमान में नारी मुक्ति और नारी अस्मिता की रक्षा के लिए संघर्ष-मार्ग की अनिवार्यता को भी रेखांकित किया है। इस संघर्ष में नारी को स्वयं बागडोर संभालनी पड़ेगी। यह सही है कि शिक्षित अभिजात वर्ग के लिए दुष्यंत संबंधी उपन्यासकार की मान्यता नागवार गुजर सकती है। बावजूद इसके, पातिव्रत्य के आदर्श की आड़ में पुरुष वर्चस्व की क्रूर परिणति आज नारी मुक्ति के मार्ग में एक बहुत बड़ी बाधा सिद्ध हो रही है, इसकी ओर भी उपन्यासकार ने परोक्ष रूप से संकेत

किया है। कनक के पिता पं० गिरधारीलाल भी 'झूठा सच' में कनक और जयदेव पुरी के वैधानिक संबंध विच्छेद का प्रस्ताव कर उसी दिशा की ओर संकेत करते हैं।

'क्यों फँसे!' की अंतर्वस्तु पर टिप्पणी करते हुए यशपाल ने अपने एक पत्र में लिखा है, "जहाँ तक कथ्य का प्रश्न है, उसे मैंने विश्वास और सामाजिक दृष्टि से आवश्यक समझकर लिखने का निश्चय किया है। स्वच्छंद भोग शब्द असाधु है। परन्तु स्वच्छंदता और स्वतंत्रता का अंतर भी महत्वपूर्ण है। स्वतंत्रता की कोई भी सीमा अवांछनीय नहीं है। यदि वह दूसरों की स्वतंत्रता पर आक्रमण न हो। स्वतंत्रता में केवल अतिस्वार्थ बुद्धि ही या दूसरों की स्वतंत्रता की उपेक्षा ही निंदनीय स्वच्छंदता होगी। हमारी परंपरागत यौन संबंधी मान्यताएँ शाश्वत सत्य नहीं मानीं जा सकतीं! वे परिस्थिति विशेष में सामाजिक सुव्यवस्था के लिए स्वीकार की गई थीं। तब से परिस्थितियाँ कितनी बदल चुकी हैं। सबसे बड़ी बात संतति विस्तार, जो व्यक्ति और समाज की सबसे बड़ी शक्ति थी, आज की परिस्थितियों में सबसे बड़ा खतरा बन गई है। यौन प्रवृत्ति को मनुष्य का कोई विकास या विज्ञान रोक नहीं सका है परन्तु यौन तृप्ति के परिणाम को रोकना संभव हो गया है। इसलिए यौन संबंधी मान्यताओं द्वारा व्यक्ति को बाँधे रखने में क्या संगति है - बशर्ते वे अव्यवस्था का कारण न बनें....." (यशपाल के पत्र, मधुरेश, पृ० 90) इसी पत्र में उन्होंने यौन संबंधों में पुरुष की Possessions की प्रवृत्तिं की भूमिका को भी स्पष्ट किया है।

'क्यों फँसे!' यशपाल का एक विवादास्पद उपन्यास है। यह युवा पत्रकार भास्कर और मोती के रति संबंधों को आधार बनाकर लिखा गया है। चित्र प्रदर्शनी में मोती का 'व्यायाम' शीर्षक चित्र देखकर भास्कर को लगता है जैसे यह मोती की अपनी ही अतृप्ति की स्वीकृति है। विवाहिता और एक बच्चे की माँ होने पर भी वह प्रेम से अपरिचित है। मोती में अतृप्ति और नैतिक संकोच का तनाव भास्कर को अंतत: हेना की ओर ले जाता है। यशपाल की सारी सफाई के बावजूद 'क्यों फँसे!' स्त्री-पुरुष संबंधों की किसी स्पृहणीय और स्वस्थ दिशा का संकेत नहीं देता।

1.10 मेरी तेरी उसकी बात

'मेरी तेरी उसकी बात' उपन्यास पूर्वी उत्तर प्रदेश में सन् 1942 के 'भारत छोड़ो' आंदोलन की पृष्ठभूमि पर लिखा गया है। लेकिन आंदोलन की यह पृष्ठभूमि उपन्यास का महत्वपूर्ण भाग होने पर भी उसका एक हिस्सा मात्र है। रतन लाल सेठ, मास्टर मथुरा प्रसाद और वकील कोहली के माध्यम से मुहल्ले की एक गली को आधार बनाकर लेखक पूरे समाज में राजनैतिक चेतना के निर्माण की प्रक्रिया अंकित करता है। मथुरा प्रसाद के आर्यसमाजी विचारों का प्रभाव अगली पीढ़ी के अमर और नरेन्द्र पर पड़ता है। उपन्यास में तत्कालीन राजनैतिक परिदृश्य को गहरी अंतर्दृष्टि से अंकित किया गया है। इसमें अमर, नरेन्द्र और उषा के माध्यम से विभिन्न राजनैतिक अंतर्विरोधों को पकडने की कोशिश की गई है। युवा आकांक्षाओं की उपेक्षा और शक्तिशाली जन आंदोलन के प्रति गांधी जी के आत्मघाती रवैये की उपन्यास में विस्तार से आलोचना की गई है। इतनी उथल-पुथल और लम्बे अन्तराल के बाद भी यशपाल महात्मा गांधी के संबंध में अपने विचारों में किसी प्रकार के परिवर्तन की आवश्यकता नहीं समझते। वे 'गांधीवाद की शव परीक्षा' (1942) वाले विचारों पर ही अंत तक कायम रहे हैं।

'मेरी तेरी उसकी बात' का एक उल्लेखनीय पक्ष नारी की सामाजिक स्थिति और मुक्ति के संघर्ष से संबंधित है। इस दृष्टि से इसे 'झूठा सच' वाली परिवर्तित दृष्टि का विस्तार भी माना जा सकता है। 'झूठा सच' की तारा को इसमें उषा के रूप में विस्तार मिला है। उषा इस पूरे उपन्यास पर छाई हुई है। उसे एक साथ दो मोर्चों पर लड़ना पड़ा है। उसका संघर्ष राजनैतिक क्षेत्र में जितना महत्वपूर्ण है, उतना ही सामाजिक क्षेत्र में भी। उसके पैर

की हड्डी टूट जाने से पंत के साथ उसकी सगाई टूट जाती है क्योंकि एक अफसर की पत्नी को शारीरिक दृष्टि से भी क्लब और सोसायटी में उठने-बैठने लायक होना चाहिए। नई पीढ़ी सामाजिक मर्यादा के नाम पर अपने को ढोंग और पाखण्ड से मुक्त करने के लिए गहरा और निर्णायक संघर्ष करती है। पुरानी पीढ़ी के रतनलाल सेठ मजहब की 'मर्यादा' बनाए रखकर इंशा को जीवन भर अपनाए रहे। उसके घर पर उनके लिए पान हमेशा बाहर से लड़का लेकर आता था। लेकिन अमर के लिए संबंधों की हार्दिकता ही सब कुछ है। उषा, अमर, गेती, रज़ा जैसे नौजवान लोग पूरे भारतीय समाज के प्रतिनिधि पात्र हैं–हिंदू, मुस्लिम और ईसाई जैसे मुख्य धर्मों से। समूची पीढ़ी जैसे व्यापक मोहभंग की शिकार है। अवसरवादी सत्तालोलुप राजनीति ने जैसे इस पीढ़ी के संघर्ष को विफल और अर्थहीन कर दिया है। इस उपन्यास में यशपाल 'झूठा सच' के अंतवाले आशावाद से भी बचते हैं। इस उपन्यास के उपशीर्षक 'किसकी बलि?'..... से यह स्पष्ट है कि भले ही अपनी संतान के भविष्य के लिए उषा अपनी बलि देने की बात करे लेकिन यह बलि सिर्फ उसकी न होकर उन सबकी है, जो इस व्यापक संघर्ष में आज गहरे मोहभंग के शिकार हैं।

उपर्युक्त उपन्यासों के संक्षिप्त अध्ययन से आप आसानी से इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि 'झूठा सच' इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचना है। यह महत्ता वृहदाकार, विस्तृत फलक और एक अत्यंत मर्मस्पर्शी घटना के कारण ही नहीं है। इस उपन्यास में जन-जीवन की गहरी परख, सामान्य लोगों की आशा-निराशा, आपसी सद्भाव-स्नेह, हेल-मेल, वैर-विरोध आदि सभी कुछ लेखक के गहरे और विस्तृत जीवनानुभवों से ओत-प्रोत है। इसके साथ ही इस उपन्यास में उस युग के राजनीतिक-सामाजिक परिदृश्य की अत्यंत तर्कसंगत और यथार्थ समीक्षा भी प्रस्तुत हुई है। 'झूठा सच' उपन्यास में यशपाल की समग्र विश्वदृष्टि अत्यंत कौशलपूर्ण ढंग से पूरी कलात्मक संवेदना के साथ उजागर हुई है। इसलिए इसे हिन्दी के कुछ इने-गिने महत्वपूर्ण उपन्यासों की पंक्ति में बेहिचक रखा जा सकता है।

1.11 सारांश

- यशपाल सक्रिय क्रांतिकारी रहकर साहित्य की ओर आए थे। हिंदुस्तानी प्रजातंत्र समाजवादी सेना के एक सक्रिय सदस्य के रूप में अर्थात् भगतसिंह, चंद्रशेखर आजाद, भगवती चरण आदि के सहयोगी के रूप में, सामाजिक परिवर्तन द्वारा जिस शोषणहीन वर्ग-मुक्त समाज का निर्माण वे करना चाहते थे, वही काम उन्होंने साहित्य से किया। इसी उद्देश्य से उन्होंने सन् 1938 में 'विप्लव' नामक मासिक पत्र शुरू किया।

- अपने निजी अनुभवों को विस्तार देते हुए उन्होंने उपन्यास लेखन किया। अपने ऊपर लगाए गए प्रचार के आरोप को उन्होंने अपने विचारों की सफलता माना। उनकी दृष्टि में विचारहीन लेखक ही प्रचारहीन हो सकता है। लेकिन उनके साहित्य में विचार सामान्यत: रचना का अंग बनकर आते हैं।

- उनकी सामाजिक चिंता का दायरा बहुत बड़ा था। जिस वर्ग-मुक्त समाज की कल्पना वे करते थे उसमें किसी के किसी प्रकार के शोषण की कोई गुंजाइश वे नहीं छोड़ना चाहते। वे मुख्यत: मध्यवर्ग के लेखक हैं। इसीलिए मध्यवर्ग की समस्याएँ ही उनके उपन्यासों में मुख्य रूप से उभरी हैं। स्त्री के भावनात्मक और दैहिक शोषण का विरोध करते वे नारी की कुण्ठामुक्ति का संदेश देते हैं।

- सोवियत संघ और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने भी भारतीय स्वाधीनता संग्राम में महात्मा गांधी की भूमिका पर पुनर्विचार करके अपनी दृष्टि में परिवर्तन किया, लेकिन यशपाल महात्मा गांधी के संबंध में अपने विचारों में कोई परिवर्तन नहीं करते। उनकी यह धारणा 'दादा कामरेड', 'देशद्रोही', 'पार्टी कामरेड', 'झूठा सच' से लेकर अंतिम उपन्यास 'मेरी तेरी उसकी बात' तक लगातार बनी रही है।

- उनके उपन्यास कांग्रेस की नीतियों की आलोचना करके एक व्यापक मोहभंग एवं हताशा को अंकित करते हैं। वे जनता की चेतना पर विश्वास करते है और उसे ही सामाजिक परिवर्तन का वाहक मानते हुए उज्ज्वल भविष्य की आशा का संकेत भी करते हैं।

1.12 अभ्यास प्रश्न

1. 'बुलेट से बुलेटिन' से यशपाल का क्या तात्पर्य था? स्पष्ट कीजिए।
2. 'सामाजिक क्रांति को अपना उद्देश्य मानकर यशपाल इतिहास की ओर जाते हैं।' 'दिव्या' उपन्यास के माध्यम से इस कथन के औचित्य पर प्रकाश डालें।
3. अपने विभिन्न उपन्यासों के माध्यम से यशपाल द्वारा प्रस्तुत उनकी नारी विषयक दृष्टि को स्पष्ट करें।
4. गांधी और गांधीवाद के प्रति यशपाल की कटुता के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए उसके कारणों पर प्रकाश डालें।
5. क्या यशपाल के उपन्यास राजनैतिक उपन्यास हैं? सोदाहरण उत्तर दें।
6. अन्य उपन्यासों की तुलना में 'झूठा सच' क्यों विशिष्ट और सर्वाधिक महत्वपूर्ण है?

इकाई 2 देश का विभाजन और 'झूठा सच'

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 विभाजन और ब्रिटिश सरकार की साम्राज्यवादी नीति

2.3 विभाजन की राजनैतिक पृष्ठभूमि

2.4 विभाजन संबंधी अन्य उपन्यास और 'झूठा सच'

2.5 विभाजन से प्रभावित पंजाब और उसके सामाजिक जन-जीवन का अंकन

2.6 सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य, सांझा संस्कृति की विरासत

2.7 सारांश

2.8 अभ्यास प्रश्न

2.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई से पूर्व इस खण्ड की इकाई-1 में आपको एक उपन्यासकार के रूप में यशपाल के व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचित कराया जा चुका है। प्रस्तुत इकाई का मुख्य उद्देश्य 'झूठा सच' के पहले खण्ड 'वतन और देश' के आधार पर विभाजन से कुछ महीने पूर्व पंजाब के रंगारंग, जीवंत और शान्तिमय जीवन पर अचानक आघात करने वाली विभाजन की क्रूर त्रासदी के प्रभाव और उसके वास्तविक कारणों की जाँच-पड़ताल करना है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- विभाजन को अपरिहार्य बनाने में ब्रिटिश सरकार की साम्राज्यवादी भूमिका को समझ सकेंगे;
- कांग्रेस और मुस्लिम लीग के तथाकथित नेताओं की भूमिका की चर्चा कर सकेंगे;
- हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में लिखे गए विभाजन संबंधी उपन्यासों के संदर्भ में 'झूठा सच' की विशिष्टता को जान सकेंगे;
- इसी क्रम में विभाजनपूर्व साम्प्रदायिक सद्भाव और सांझा सांस्कृतिक विरासत के प्रति सामान्य पंजाबी जनता की दृष्टि का भी उद्घाटन कर सकेंगे;
- साम्राज्यवादी नीतियों और देश के तथाकथित हिन्दू-मुस्लिम नेताओं तथा धार्मिक कट्टरपंथियों के स्वार्थपूर्ण अवसरवादी रवैये ने एक सांझा सांस्कृतिक विरासत को किस प्रकार और किस रूप में क्षत-विक्षत किया, इसे भी समझा सकेंगे; और
- किस प्रकार अपने निहित स्वार्थ के लिए कुछ इने-गिने लोगों ने 'मनुष्यों के एक सुसम्बद्ध देश को धर्मों के दो विरोधी देशों के रूप में बदल दिया, इसका विवेचन कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

'झूठा सच' का आरंभ लाहौर में भोला पांधे की गली से होता है। इस निम्न-मध्यवर्गीय परिवेश में बहुत साधारण आर्थिक हैसियत वाले लोग रहते हैं। अपने दैनदिन अभावों के बीच

भी वे पारस्परिक सौहार्द, पड़ोसदारी और मुहल्लेदारी की भावना से गहराई के साथ जुड़े हैं। इसी गली में आर्यसमाजी मास्टर राम लुभाया की वृद्धा माँ के निधन से कथानक शुरू होता है। मास्टर राम लुभाया, आर्यसमाजी विचारधारा के प्रभाव में, सुधारवादी विचारों के व्यक्ति हैं। कुछ सुधारवादी आग्रह और कुछ कमजोर आर्थिक स्थिति के कारण उन्होंने सादगी को अपने जीवन का मूल मंत्र बनाया हुआ है और इसका प्रभाव उनके परिवार पर भी स्पष्ट देखा जा सकता है। उपन्यास के मुख्य पात्र-जयदेवपुरी और तारा-उन्हीं की संतानें हैं। यह परिवार इस गली में एक किराए के मकान में रहता है। ऊपर के हिस्से में एक बड़ी कोठरी, रसोई और बरामदा है। नीचे मकान मालिक का कपड़े का गोदाम है। वहीं आँगन में नल लगा है। चूँकि गोदाम अधिकतर बंद रहता है, नीचे का वह हिस्सा भी वक्त-जरूरत परिवार के काम आता है। चार बड़े बच्चों और पत्नी के साथ मास्टर राम लुभाया इसी हिस्से में गुज़र करते हैं। उनकी माँ बड़े और अपेक्षाकृत सम्पन्न बेटे बाबू रामज्वाया के साथ न रहकर, इस छोटे बेटे के परिवार के साथ ही रहती थी। यहीं वे मरी हैं। मास्टर राम लुभाया का बड़ा भाई बाबू रामज्वाया आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न व्यक्ति है। उसने 26 वर्ष रेलवे में नौकरी की है और उस नौकरी का प्रभाव उसके और परिवार के ऊपर स्पष्ट है। उसने 'उच्ची' गली में दो नए मकान बनवाए हैं। सामाजिक मर्यादा के हिसाब से बेटे का विवाह किया है। पहली पत्नी की मृत्यु के बाद उसने दूसरी शादी की है। उसकी दूसरी पत्नी तेज दिमाग और घमंडी है। तारा की उम्र की उसकी एक बेटी शीलो है, जिसकी सगाई हो चुकी है। इस शांत और अपने हिसाब से चलने वाले जीवन में यकायक जैसे कोई भूचाल आ जाता है-देश-विभाजन की अफवाहों और सूचनाओं के रूप में। किसी तेज गतिवाली आँधी की तरह वह क्रमशः उग्र होता जाता है, जब तक कि सब-कुछ तहस-नहस नहीं कर देता।

2.2 विभाजन और ब्रिटिश सरकार की साम्राज्यवादी नीति

यह एक स्वीकृत तथ्य है कि जब-जब भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में तेजी आई, ब्रिटिश सरकार ने देश की संगठित और एकजुट जनता में फूट डाल कर राज्य करने की अपनी नीति को अधिक सक्रिय करने की कोशिश की। वस्तुतः 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम के क्रूर दमन के बाद ही ब्रिटिश रणनीतिकारों का ध्यान इस ओर गया। इस तेजस्वी और काफी-कुछ स्वतः-स्फूर्त उभार के दमन में भी ब्रिटिश सरकार ने अपनी इसी नीति से काम लिया था और आगे तो यह उसकी आत्मरक्षा का एक अघोषित सिद्धान्त जैसा बन गया। इसके बाद 1905 में बंगाल के संगठित राष्ट्रीय और सांस्कृतिक अस्मिता के दमन के विरुद्ध उसे बंग-भंग का हथियार इस्तेमाल करना पड़ा। लेकिन अंततः इसके विरुद्ध उग्र और प्रबल जन-आंदोलन के कारण उसे अपनी इस घोषणा को वापस लेना पड़ा। लेकिन इसी के अगले वर्ष, 1906 में ढाका में मुस्लिम लीग की स्थापना हुई, जिसका घोषित उद्देश्य भारतीय मुसलमानों द्वारा ब्रिटिश राज के प्रति भक्ति और समर्पण का भाव था। इसी मंच से नवाब मुश्ताक हुसैन और लीग के दूसरे संस्थापक सदस्यों ने, हिंदू तथा अन्य जातियों की तुलना में मुलसमानों को भी ब्रिटिश राज की सेवाओं में बराबर के प्रतिनिधित्व की मांग उठाई। यह आंदोलन कांग्रेस को हिंदुओं की संस्था मानता था और कांग्रेस द्वारा चलाए जाने वाले स्वाधीनता आंदोलन में उसका कोई विश्वास न था। कांग्रेस द्वारा चलाए जाने वाले स्वाधीनता आंदोलन को कमजोर करने की अपनी कूटनीतिक योजना के तहत ब्रिटिश सरकार ने 1909 में मार्ले-मिंटो योजना लागू की। इस योजना में देश में हिंदुओं से अलग मुस्लिम संप्रदाय के अस्तित्व को स्वीकार किया गया। 1919 में मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार-योजना द्वारा ब्रिटिश सरकार ने इस पृथकतावाद को और सुदृढ़ आधार देने का सफल प्रयास किया। दूसरी गोलमेज कांफ्रेंस के बाद मैकडोनल्ड एवार्ड में ब्रिटिश सरकार ने जैसे अपने इस मत को ही विस्तार दिया। देश में हिंदू-मुस्लिम संप्रदायों के साथ ही डिप्रैस्ट क्लासेज, सिखों और भारतीय रियासतों के निवासियों को अलग-अलग माना गया। इन सबका उद्देश्य प्रकारांतर से स्वाधीनता आंदोलन की एकजुटता को ही समाप्त करना था।

जयदेवपुरी, जो आरंभ में राष्ट्रीय विचारों का गहरी साहित्यिक अभिरुचि वाला युवक है और अपने विचारों को अमलीजामा देने के लिए सन् 1943 में जेल जाता है। उसका कम्युनिस्टों से विरोध है क्योंकि वे दो कौमों के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं, जिसका मतलब है–देश का विभाजन। ब्रिटिश सरकार किस प्रकार मुस्लिम लीग की पीठ थपथपा रही थी, यह पं० गिरधारी लाल के इस कथन से स्पष्ट है : "भई लीग तो एबसर्ड डिमांड करेगी ही। एटली ने उन्हें बढ़ावा दे दिया है कि जिस तजबीज में लीग शामिल नहीं होगी, उसे ब्रिटिश सरकार मंजूर नहीं करेगी। जब आप डेमोक्रेसी की बात करते हैं तो लीग और कांग्रेस का क्या सवाल? जो मेजोरिटी में हो उसकी बात मानिए.....।" (झूठा सच-1 पृ० 198)

अंग्रेजों ने भारत छोड़ने का फैसला बढ़ते हुए उग्र जनांदोलनों से भयभीत होकर किया था। द्वितीय विश्वयुद्ध में बदली हुई स्थितियों के कारण अपनी सुरक्षित वापसी तो उनका लक्ष्य था ही लेकिन इसके साथ ही वे अपने लिए एक ऐसा आधार भी चाहते थे, जो उन्हें भारत छोड़ने के बाद भी, भारत के आसपास रहकर ही भारत के विरुद्ध अपने अभियान को चलाए रख पाने की सुविधा दे सके। डॉ० प्राण ब्रिटिश सरकार की इसी नीति पर टिप्पणी करते हुए कहता है, "जैकिंस की तो चाल है कि पाकिस्तान ब्रिटिश डोमिनियन में ही बना रहे..... ..।" (वही, पृ० 356)

ब्रिटिश सरकार सब कहीं इस उग्र सांप्रदायिकता को प्रोत्साहित कर रही थी। लाहौर में जब मुस्लिम सांप्रदायिकता के विरोध में हिंदू सांप्रदायिकता अपना सिर उठाती है तो भोला पांधे की शांत गली भी इससे अप्रभावित नहीं रहती। अनेक हिंदू युवकों की तरह रतन भी मुस्लिम सांप्रदायिकता की काट हिंदू सांप्रदायिकता में देखता है। इसके विरोध में पुरी उसे समझाते हुए कहता है, "....जहर फैलाने वालों ने तो जहर फैला दिया। आदमी जहर खा ले तो इलाज करना चाहिए या उसे गोली मार देना ठीक होगा?" (वही, पृ० 169) लेकिन पुरी इसे कहता नहीं क्योंकि उसे लगता है कि रतन कहने-सुनने की किसी भी स्थिति से बहुत आगे जा चुका है। ब्रिटिश नीतियों द्वारा पौंड़ाई गई यह विष-बेल खूब छतनार हो चुकी है।

सांप्रदायिक विद्वेष की शुरू हुई गर्म हवा का पहला झोंका भोला पांधे की गली में तब आता है जब हिंदू रक्षा समिति की दो स्त्रियाँ, कलकत्ता में हिंदुओं पर हुए कथित अत्याचारों के विरुद्ध सहायतार्थ चंदा करने पहुँचती हैं। अपनी इस मुहिम में वे लोग धन और काम लायक पुराने कपड़े तो इकट्ठा करती ही हैं, गली की स्त्रियों को मुसलमानों द्वारा किए जाने वाले अत्याचारों की अतिरंजित जानकारी भी देती हैं। जब उन्हीं के सामने हमेशा की तरह घूमने वाले दो-एक मुसलमान फेरी वाले आवाजें जगाते हैं, तो वे उन हिंदू स्त्रियों को उनके विरुद्ध उकसाती हैं। आखिर हिंदुओं के मुहल्ले में मुसलमान फेरी वालों का क्या काम? हिंदू लोग उनसे सामान खरीदते ही क्यों हैं? और इस तरह भोला पांधे की वह गली कुछ अधिक 'हिंदू' बन जाती है।

रतन के साथ गली में कुछ और लोगों के चेहरे भी बदलते नजर आते हैं। पगड़ी या कपड़े से ढके ये चेहरे मोची दरवाजे की ओर से हाँफते हुए भागते-आते दिखाई देते हैं। जयदेव पुरी के ताया रामज्वाया के रेलवे में होने के कारण रतन से उनकी सांठ-गांठ शुरू हो गई है और धीरे-धीरे यह राज खुलता है कि उन्हीं की मदद से हथियारों का पार्सल आता है। नूरामिश्ती की गली वाली मस्जिद में बम फेंका जाता है, जिसके उत्तर में एक पुरबिया हिंदू मोची की हत्या हो जाती है जो बरसों से वहीं गली के कोने पर बैठकर जूते गांठा करता था। साम्प्रदायिक उत्तेजना के इस उग्र होते माहौल में कभी किसी नेता या बड़े आदमी के मरने की खबर नहीं आती। मरने वालों में हमेशा छोटे-मोटे फेरी वाले, भिश्ती-मोची, दिहाड़ी पर काम करने वाले मजदूर या फिर दौलू मामा जैसे लोग हैं। हमेशा शांत और गहरे भाई-चारे वाले छोटे-छोटे मुहल्ले और गली-कूचे इस साम्प्रदायिकता की जद में सबसे

पहले और सबसे अधिक आते हैं। ग्वाल मंडी जैसे सम्पन्न इलाकों में यह आग अपेक्षाकृत बाद में और देर से फैलती है, जब एक तरह से पूरा लाहौर ही उग्रता और विद्वेष की आग में जलने लगता है।

भोला पांधे की गली में हुई आगजनी और हमले में पुलिस आखिर कुछ नहीं करती। सरकार के कान पर जूँ तक नहीं रेंगती। लोग अपने प्रयासों से ही आत्म-रक्षा को तत्पर होते हैं। उनके संगठित प्रतिरोध से ही हमलावर भागते हैं और वे ही जैसे-तैसे उस आग को और अधिक फैलने से रोकते हैं। पुलिस बहुत बाद में आती है और उन पन्नालाल और मेवाराम को ही पकड़कर ले जाती है, जिनके मकानों का प्लास्टर बम से उड़ गया था और उन पर आग के निशान थे। शांत सभाओं और एकता के प्रयासों से कहीं कुछ नहीं होता। एक पत्रकार की हैसियत से जयदेवपुरी अपने अखबार में दौलू मामा की हत्या पर एक तेज-तर्रार टिप्पणी लिखता है और इस पर जब-तब अपनी खीझ भी प्रगट करता है कि कामरेडों के पास पैंतालीस हजार आदमियों की रेलवे यूनियन हैं-वे पूरे मन से लगें तो अलबत्ता कुछ हो सकता है। लेकिन बहुत कम समय में ही हालात इतने बेकाबू हो जाते हैं कि जैसे किसी को करने को कुछ रह ही नहीं जाता है। जो हो रहा है लोग बस उन सबके मूक-दर्शक बने रह सकते हैं और धीरे-धीरे पूरा पंजाब हिंसा और पलायन की मार झेलता दिखाई देता है।

डॉ प्राणनाथ इस सांप्रदायिक घृणा और विद्वेष का अधिक मूल गामी विश्लेषण करता है। वह इसे स्वीकार नहीं करता कि हिंदुस्तान-पाकिस्तान के बँटवारे के बीज सरकारी नौकरियों को हिंदू-मुसलमानों में सांप्रदायिक अनुपात से बाँटने के दिन या उनके चुनाव-क्षेत्र अलग-अलग बना देने से ही बोया गया। वह इसका मूल कारण हिंदू समाज की असहिष्णुता और मुसलमानों के प्रति उसकी घृणा में देखता है। अपने इस विश्लेषण के पक्ष में तर्क देता हुआ वह कहता है.....'बल्कि मुसलमानों को म्लेच्छ और अछूत समझने के दिन से ही वह बीज बो दिया गया था। हिंदू को आप अछूत बनाकर भी दबा सकते हैं क्योंकि वह आपसे धर्म से बँधा है। मुसलमान तो उस धर्म से बँधा नहीं। वह अछूत समझे जाने का अपमान क्यों बर्दाश्त करे? जिस नियम को हमने अपनी सत्ता की रक्षा के लिए अपनाया था, उसी नियम ने हमें खा लिया.....'' (झूठा सच-2, पृ० 456) अपने इस विश्लेषण में वह लगातार इस बात पर बल देता है कि जिन्हें हम सामाजिक रूप से छूना असह्य समझते थे, बहुत आत्मीय माने-खाने वाले संबंधों के बावजूद हिंदूघरों में जिनके खाने-पीने के बर्तन अलग रखे जाते थे, उन्हें अपना अंग बताकर कैसे धोखा दिखा जा सकता था? दो धर्मों और जातियों का सिद्धांत वस्तुत: हिंदुओं की संकीर्णता में ही छिपा था। अंग्रेजों ने सिर्फ इस स्थिति को बढ़ाकर इसका लाभ उठाया है।

2.3 विभाजन की राजनैतिक पृष्ठभूमि

लार्ड माउंटबैटन 22 मार्च सन् 1947 को भारत पहुँचे। इसके दो दिन बाद उन्हें भारत के नए वायसराय के रूप में शपथ दिलाई गई। 24 मार्च से अप्रैल के मध्य तक माउंट बैटन ने विभिन्न प्रांतों के गवर्नरों और कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग के नेताओं से मिलकर स्थिति की वास्तविकता को समझने और उसके क्रियान्वयन की योजना पर अमल शुरू किया। महात्मा गांधी अभी भी विभाजन के विरोध में थे। माउंट बैटन से हुई अपनी पहली ही भेंट में उन्होंने प्रस्ताव रखा कि देश का विभाजन न हो और आजादी के बाद जिन्ना सरकार चलाएँ। लेकिन गांधी जी का यह प्रस्ताव, इस गंभीर स्थिति में, माउंट बैटन को ऊटपटांग लगा। इस प्रस्ताव से न कांग्रेस सहमत थी और न स्वयं जिन्ना। देश का विभाजन और पाकिस्तान के रूप में एक नए इस्लामी राष्ट्र के निर्माण से कम जिन्ना किसी भी बात के लिए तैयार नहीं थे। गांधी जी के सरकार चलाने वाले प्रस्ताव पर उनकी

प्रतिक्रिया थी-इसमें सिर्फ अधिकार है, जिम्मेदारी नहीं। जिन्ना के ठंडे और काफी कुछ अप्रत्याशित स्वभाव की अपेक्षा माउंट बैटन नेहरू पर अधिक भरोसा करते थे। माउंट बैटन दम्पत्ति की दलीलों से नेहरू 210 अप्रैल तक इस निष्कर्ष पर पहुँच चुके थे 'मुस्लिम लीग अगर चाहे तो पाकिस्तान ले ले।' संविधान सभा के अध्यक्ष के रूप में डॉ० राजेन्द्र प्रसाद का मानना था कि बँटवारे का मतलब सिर्फ देश का ही नहीं, कुछ प्रांतों का भी विभाजन होगा। पंजाब में लाहौर और बंगाल में कलकत्ता की स्थिति बहुत समय तक अनिश्चित बनी रही। बंगाल के तत्कालीन प्रधानमंत्री एच.एस. सुहरावर्दी ने यह भी प्रस्ताव रखा कि बंगाल अविभाजित और स्वतंत्र रह सकता हैं। जिन्ना कलकत्ता के बिना बंगाल की कल्पना भी करने को तैयार नहीं थे। ये सारी स्थितियाँ, वायसराय के रूप में माउंट बैटन की परेशानी बढ़ाने वाली थीं। इसी हालत में 'बालकन योजना' का मसविदा तैयार किया गया, जिसे अंततः ब्रिटिश मंत्रिमंडल की स्वीकृति मिली। जिन्ना और नेहरू दोनों ही इससे असंतुष्ट थे। जिन्ना प्रांतों कें विभाजन के विरोधी थे जबकि नेहरू पंजाब और बंगाल के विभाजन पर जोर दे रहे थे। असहमति और उग्रविरोध की स्थिति में हताश माउंट बैटन को यह भी लगता था कि जो काम उन्हें सौंपा गया है, शायद उसे सम्पन्न किए बिना ही उन्हें लौट जाना होगा। 'बालकन योजना' पर नेहरू ने जो आपत्तियाँ दर्ज की थीं, उन्हें ध्यान में रखते हुए वी.पी.मेनन ने एक वैकल्पिक मसविदा तैयार किया। मेनन की इस योजना से नेहरू और कांग्रेस काफी हद तक सहमत थे। इस संशोधित योजना के लिए माउंट बैटन ने वी.पी.मेनन के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता भी व्यक्त की। लेकिन इस प्रस्ताव पर व्यक्तिगत रूप से अपनी सहमति के बावजूद जिन्ना ने इसे मुस्लिम लीग की स्वीकृति के बहाने टाल दिया। जिन्ना के टालमटोल को माउंट बैटन ने सख्ती से लिया और काफी कुछ धमकाने वाली भाषा में उन्हें अगले दिन होने वाली मीटिंग में उनकी मौन-स्वीकृति के लिए तैयार कर लिया।

4 जून, सन् 1947 को एक संवाददाता सम्मेलन में माउंट बैटन ने इस योजना के तहत देश के विभाजन की विधिवत घोषणा की। इसी सम्मेलन में संकेत दिया गया कि भारत और पाकिस्तान डोमिनियन को सत्ता का वास्तविक हस्तांतरण 15 अगस्त को किया जा सकता है। भारतीय नेताओं में महात्मा गांधी ही अकेले थे जो अभी भी इस वस्तुस्थिति से सहमत नहीं थे। अपनी प्रार्थना-सभा में इसके विरुद्ध गांधी जी के बोलने की सूचना, एक बार फिर, माउंट बैटन के लिए चिंता का कारण बनी। माउंट बैटन ने प्रार्थना-सभा से पहले बुलवाकर गांधी जी से भेंट की। वायसराय की कूट-बुद्धि ने अंततः उनका काम आसान कर दिया। वे गांधी जी को जैसे-तैसे यह समझा पाने में सफल रहे कि उनके प्रयासों के बावजूद इस विभाजन को रोका नहीं जा सकता और बल प्रयोग से बचने के लिए इसे गांधीवादी सिद्धांत से ही हल करने की कोशिश की गई है। इस बैठक के बाद जैसे गांधी जी को भी करने को कुछ अधिक रह नहीं गया था। वायसराय गांधी जी को यह समझाने में सफल रहे थे कि इस संकट की स्थिति में इससे बहतर और कुछ हो ही नहीं सकता था। वायसराय भवन से भारी मन से लौटने के बाद अपनी प्रार्थना सभा में गांधी जी ने कहा, "अगर हम-हिंदू और मुसलमान-दोनों किसी और बात पर राजी नहीं हो सकते, तो फिर वायसराय के सामने कोई विकल्प ही नहीं बचता.....।" गांधी सचमुच इस सारे घटना-क्रम पर बहुत हताश, पराजित और अकेला अनुभव कर रहे थे। अपनी इस पीड़ा को छिपाने की भी कोई कोशिश उन्होंने नहीं की। अपनी पीड़ा को व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा, "ब्रितानी सेना की संगीनों के सहारे हम पर थोपे जा रहे विभाजन से बेहतर तो अराजकता होती। भारत का विभाजन रोकने के लिए अव्यवस्था और गृहयुद्ध भी बहुत बड़ी कीमत नहीं होती....." (50 दिन 50 साल पहले, मधुकर उपाध्याय, पृ० 12) लेकिन अव्यवस्था, अराजकता और गृहयुद्ध जैसी हिंसा को फिर भी रोका नहीं जा सका।

'झूठा सच' में यशपाल ने विभाजन की अनिश्चितता से लाहौर के जन-जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव की विस्तृत चर्चा की है। जुलाई के पहले सप्ताह में यह लगने लगा था कि

लाहौर पाकिस्तान में जा सकता है। लेकिन सुनिश्चित अभी-भी कुछ नहीं था। लाहौर में अस्सी प्रतिशत जायदाद हिंदुओं की थी। अन्य जगहों के मुकाबले यहाँ हिंदुओं के मुसलमानों से राह-रस्म की एक बेहतर और समृद्ध परंपरा थी। उन्हें लगता था कि राजनीति की यह आँधी थोड़े-बहुत समय ही है। घर-बार और अपनी जायदाद छोड़कर कौन जाएगा और क्यों जाएगा? थोड़े समय के बाद हमेशा की तरह फिर सब कुछ ठीक हो जाएगा। भोला पांधे की गली के लोगों ने एक तरह से सामूहिक निर्णय ले लिया था कि मर जाएँगे, लेकिन अपना घर-द्वार नहीं छोड़ेंगे।

लेकिन जल्दी ही सब कुछ उलट-पुलट जाता है। पूर्व से मुसलमानों और पश्चिम से हिंदुओं के जत्थे लाहौर आने लगते हैं-कपूरथला, जालंधर और दूसरे शहरों के मुसलमान तथा सियालकोट, सरगोधा, शेखपुरा आदि के हिंदू। बड़ी संख्या में प्रतिदिन पहुँचने वाले इन जत्थों के कारण स्वयंसेवी संस्थाओं की व्यस्तता बढ़ने लगती है।

बड़े और पैसे वाले आदमी इस अनिश्चय और असुरक्षा की स्थिति में लाहौर छोड़कर बाहर जाने लगे थे। डॉ० प्राणनाथ की हवेली में आग लगा दिए जाने से उसका पूरा परिवार लखनऊ चला गया था और वह अपनी नौकरी के सबब से सेवॉय होटल में रहने लगते हैं। कनक का परिवार नैनीताल चला गया था। उसके बाद कनक और उसके बहन-बहनोई-नैयर दंपत्ति-उस छूटे हुए अविभाजित पंजाब (लाहौर) में कभी नहीं लौट सके। विभाजन की प्रक्रिया पूरी हो जाने पर उन्हें लंबा संघर्ष करना होता है। फिर भी उनकी लाहौर वाली सम्पन्न और सुरक्षित स्थिति कभी नहीं लौट पाती। नैयर दंपति के साथ नैनीताल में रहते हुए कनक का संपर्क बना हुआ था। उसने पुरी को सूचना दी थी कि किसी पार्लियामेंट के सचिव से उसकी बात हो चुकी है। स्वयं उसके और पुरी के लिए दो-दो सौ रुपये की नौकरी की व्यवस्था लखनऊ में हो सकती है। इन्हीं दिनों तारा का विवाह होने के कारण पुरी तत्काल लाहौर छोड़ने की स्थिति में नहीं था। मास्टर रामलुभाया ने उससे कह रखा था कि चार दिन बाद तारा का विवाह निपटाकर वे बेशक 1 या 2 अगस्त तक चला जाए। लाहौर छोड़ने से पहले, सारी अफरा-तफरी के बावजूद, पुरी के मन में दूर-दूर तक ऐसा कोई विचार नहीं था कि उसका यह लाहौर छोड़ना हमेशा के लिए है। बाद में उत्तर प्रदेश से लौटते हुए, रेलों और शरणार्थी शिविरों में थर्रा देने वाले दृश्य से उसे जो और जैसे अनुभव होते हैं, वे उसकी आस्था को झकझोर देने के लिए काफी हैं।

हिंसा और सांप्रदायिक उन्माद की उग्र होती आँधी में हर अगला दिन लाहौर के लिए नए दुर्भाग्य की सूचना लेकर आता है। शाहलमी में लगाई गई आग तीन दिन तक जलती रहती है। उसके बाद पूरे शहर में जैसे आतंक छा जाता है। शाहलमी की प्रतिक्रिया में शहर, बस्तियों में भी दंगे भड़कते हैं-कर्फ्यु और पुलिस की गश्त के बावजूद। शाहलमी दरवाजे पर एक हिंदू लड़के द्वारा मजिस्ट्रेट चीमा के पक्षपात से चिढ़कर उसे गोली मार देने की खबर भी आती है। सब लोग अच्छी तरह से जानते हैं कि अफसर नि:संकोच अपने-अपने संप्रदाय का पक्षपात कर रहे हैं-जैसे समूची नौकरशाही 'हिंदू' और 'मुसलमान' हो गई है। जिस अफसर पर गोली चलाई गई थी, वह वहीं लड़के को गोलियों से छलनी करवा देता है। लेकिन उसका गुस्सा इतने से ही शांत नहीं होता। रात को अपने सामने वह शाहलमी के बाजार में हिंदुओं की दुकानों के किवाड़ तुड़वाकर मिट्टी का तेल छिड़वाकर उनमें आग लगवा देता है। उस भाग में मुसलमानों की दुकानें कम थीं। जो लोग आग बुझाने आते हैं उन पर कर्फ्यू में निकलने के अपराध में गोली चलवा दी जाती है।

बाद में, अगले दिन, शाहलमी दरवाजे की आग बुझाने के लिए जाने वाले लोगों में पुरी भी गिरफ्तार कर लिया जाता है। इन गिरफ्तार किए गए युवकों का मामला पुलिस कई दिन तक अदालत में पेश नहीं करती है। उन्हें पुरानी अनारकली हवालात में रखा गया था। इन लोगों को सामान्य कानूनी सहूलियतों से वंचित रखकर उनके साथ अनुचित कड़ाई

बरती जाती थी। हवालात में बंद लोगों की सूची में पुरी का भी नाम अखबार में पढ़कर कनक का कलेजा धक्क से रह जाता है। अपने पिता से सच्ची बात छिपाकर अपनी सहेली के यहाँ जाने के बहाने से, वह पुरानी अनारकली की हवालात में पुरी से मिलती है और बाद में अपने बहनोई नैयर के द्वारा उसकी जमानत की व्यवस्था करवाती है। इस वहशी उन्माद में हर संप्रदाय के नेताओं की भूमिका बेहद अमानवीय और संवेदनहीन थी। भोला पांधे की गली के ही खुशालसिंह और कर्त्तारो का जवान बेटा वीरसिंह एक रात घर नहीं लौटता। पूरी गली सकते और शोक में डूब जाती है और वीरसिंह की हर संभव तलाश करने के बावजूद उसका कहीं कोई पता नहीं चलता। तारा को विवाह का हल्दी तेल चढ़ चुकने के कारण उसके पिता उसे शोक में जाने से बरजते हैं। लेकिन फिर पुरी के समर्थन से उसे जाने की छूट मिल जाती है। पिछले कुछ समय से सिखों और मुसलमानों के आपसी संबंध लगातार बिगड़ते रहे। वीरसिंह के सिख होने के सबब से ही गली के बुजुर्ग और सयाने लोग उसे गली से बाहर जाने से बरजते थे। अन्य लोगों की पहचान के लिए फिर भी संकट कुछ कम था, लेकिन सिक्ख तो अपनी वेशभूषा से तुरंत पहचान में आ जाता था। सिक्ख को पहचानने में क्या लगता है?

इसी प्रसंग में सिक्ख नेता मास्टर तारा सिंह की भूमिका का उल्लेख करते हुए पुरी झुंझला कर कहता है, "मास्टर तारासिंह तलवार की धमकी देकर खुद तो लाहौर से भाग गए और यहाँ मुसलमानों की नजरों में सिक्खों को खास बैरी बना गए....."। नेताओं के इस तरह के गैरजिम्मेदार वक्तव्यों और कार्रवाइयों की सजा सब कहीं सामान्य जनता को भुगतनी होती है। पुत्र-शोक में कर्त्तारो गली के युवकों - रतन, मेवाराम और पुरी - को ही गालियाँ देती है कि इन लोगों ने ही उसके नादान बेटे को बहकाकर इस हाल में पहुँचा दिया। रविवार को संध्या समय तारा के विवाह का मुहूर्त था परन्तु गली में वीरसिंह की मृत्यु का शोक छाया हुआ था। खुशाल सिंह अपनी गठरी-मुटरी समेट कर, तीस बरस पूर्व छोड़े दोआब के अपने गाँव लौट जाने को तैयार हो गया था। कर्त्तारो छाती पीट-पीट कर बैन और कीरनों से गली को अभिशाप दे रही थी। गली की स्त्रियाँ आँसू पोंछती हुई ग़ली के फाटक तक उन्हें छोड़ने जाती हैं। रतन, पुरी, मेवाराम और टीकाराम उन्हें स्टेशन तक जाकर गाड़ी में बैठाते हैं।

अपनी बातचीत और अखबार में जब भी अवसर मिलता है पुरी इस बात पर जोर देता है कि मरते भले ही दौलू मामा जैसे लोग हों, लेकिन दौलू मामा जैसे गामे-भाजे, फज्जे तो पाकिस्तान नहीं बना रहे हैं। 'पैरोकार' की अपनी 'दौलू मामा' शीर्षक संपादकीय टिप्पणी में पुरी पत्रकारोचित आवेश में लिखता भी है....." मामा, जब तुमसे खुदा तुम्हारे कातिल का नाम पूछेगा तो तुम्हारी उंगली किसकी तरफ उठेगी? क्या खुदा नहीं जानता कि तुम्हारे कत्ल के लिए उत्तेजना दिलाने की जिम्मेदारी उन नेताओं पर है जो तुम्हारे जैसे इंसानों को शासन के सिंहासन पर पहुँच सकने का जीना बनाने के लिए, जनता का ईंट-गारे की तरह प्रयोग करना चाहते हैं। क्या हमारे सर्व-साधारण, स्वार्थ में अंधे और क्रूर लोगों के स्वप्नों के महलों में पहुँचने के जीने बनते रहेंगे? क्या अपने स्वार्थों के लिए सर्व-साधारण को अंधा बना देना ही धर्म की रक्षा, प्रजातंत्र और जनवाद है?....." (वही, पृ० 137) अपनी यह टिप्पणी पुरी के लिए महँगी पड़ती है और 'पैरोकार' की अपनी नौकरी के रूप में उसे इसकी कीमत चुकानी होती है।

2.4 विभाजन संबंधी अन्य उपन्यास और 'झूठा सच'

देश के विभाजन की कीमत पर मिली आजादी एक ऐसा भयावह और क्रूर सत्य थी कि बहुत बड़ी संख्या में लोग इसे आजादी मानने को तैयार ही नहीं थे। कम से कम यह वह आजादी तो बिल्कुल नहीं थी, जिसकी कल्पना करके स्वाधीनता की यह लड़ाई लड़ी गई थी और इतना अधिक बलिदान दिया गया था। विभाजन बीसवीं शताब्दी की सर्वाधिक महत्वपूर्ण

महत्वपूर्ण और हृदय विदारक घटना थी। यह स्वाभाविक ही था कि ऐतिहासिक और शताब्दी की चंद महत्वपूर्ण घटनाओं में से इस एक पर विपुल मात्रा में लिखा गया। इस लेखन की मुख्य विशेषता यह है कि यह अधिकांशत: कथा-साहित्य के रूप में सामने आया और स्वाभाविकत: इसके लेखक वे ही लोग थे, जो इस त्रासद घटना से बहुत सीधे रूप से जुड़े थे। या फिर उन लोगों ने इस पर लिखा जो इस त्रासदी से सीधे जुड़े तो नहीं थे, लेकिन इसकी गंभीरता से मर्माहत थे। चूँकि देश के इस दुखद विभाजन से सीधे तौर पर प्रभावित प्रांत पंजाब और बंगाल थे, अत: अधिकतर उपन्यास हिन्दी, पंजाबी, उर्दू और बांग्ला में लिखे गए। जो लोग पाकिस्तान चले गए, लेकिन जिनके बचपन और किशोरावस्था इधर ही बीते थे, ऐसों में अब्दुल्ला हुसैन, इंतजार हुसैन आदि जैसे महत्वपूर्ण उपन्यासकार आते हैं। इन लोगों ने भी पारस्परिक संबंधों और संस्कृति की साझा विरासत की पड़ताल करते हुए 'उदास नस्ले' और 'आगे समन्दर है' जैसे उल्लेखनीय उपन्यास लिखे हैं। लेकिन विभाजन और उसके प्रभाव पर लिखने वाले कुछ ऐसे मुसलमान लेखक भी हैं, जो न इस त्रासदी से सीधे जुड़े हैं और न ही पाकिस्तान गए हैं। इनमें राही मासूम रज़ा और बदीउज्जमा जैसे लेखक हैं, जिन्होंने क्रमश: 'आधा गाँव' और 'छाको की वापसी' के माध्यम से हिंदी-उर्दू-भोजपुरी इलाके की गंगा-यमुनी साझा सांस्कृतिक विरासत को रेखांकित किया है। इनमें मुस्लिम अस्मिता का संकट विशेष रूप से रेखांकित हुआ है।

विभाजन को केन्द्र में रखने वाले इन भारतीय लेखकों में एक सामान्य बात यह है कि इनमें से कोई भी 'फ्रीडम एट मिडनाइट' के फ्रेंच लेखकों लैरी कॉलिंस और डोमीनीक लापीयर की तरह इस घटना के प्रमुख सूत्रधार और पर्यवेक्षक लार्ड माउंट बैटन को अपना नायक मानकर नहीं चलते, जिसके बारे में इन लेखकों की स्वीकृति है - 'माउंट बैटन अगर अपने मन में ठान लें तो वह गिद्ध पर भी ऐसा जादू कर सकते हैं कि वह लाश छोड़कर उड़ जाए।' विभाजन की पृष्ठभूमि पर प्रबोध कुमार सान्याल और खुशवंत सिंह ने 'हुस्न बानू' और 'ट्रेन टू पाकिस्तान' जैसे उपन्यास लिखे हैं। ये उपन्यास पूर्वी बंगाल और पूर्वी पंजाब की पृष्ठभूमि में प्रेम-कथाओं के रूप में लिखे गए हैं। कर्तार सिंह दुग्गल के 'हाल मुरीदों के' और सोहन सिंह 'सीतल' के 'शहतूतों वाला कुँआ' जैसे पंजाबी में लिखे गए उपन्यास हैं। ये सभी उपन्यास हिंदू-मुसलमानों की जिंदगी में मांस और नाखून वाले संबंधों को गहरी पीड़ा के साथ याद करते हैं। इनमें खुशवंत सिंह का अंग्रेजी में लिखा गया उपन्यास 'ट्रेन टू पाकिस्तान' इस साझा जीवन की सफलता को अधिक भाव प्रवण रूप में नहीं उकेर सका है। इसका एक कारण तो यही है कि अंग्रेजी में लिखे जाने के कारण यह मूलत: अंग्रेजी पाठकों की मानसिकता से जाने-अनजाने प्रभावित है और दूसरा कारण यह है कि पंजाबी जन-जीवन के अन्यान्य पक्षों के संवेदनशील अंकन के बदले वे रति-प्रसंगों और हत्या एवं बलात्कार के उत्तेजक ब्यौरों में अधिक रुचि लेते हैं। इस सीमा तक भले ही न हो, लेकिन चमन ताहल का भी अंग्रेजी में लिखा 'आजादी' इस दुर्बलता से बच नहीं सका है। अत्याचार की शिकार युवतियों के जुलूस के नंगे और उत्तेजक ब्यौरों में उनकी दिलचस्पी अधिक रही है। इनकी अपेक्षा कर्तार सिंह दुग्गल और सोहन सिंह 'सीतल' के उल्लिखित उपन्यासों में इस साझा जीवन के चित्र जैसे संवेदनशील ढंग से अंकित है उसके कारण इन उपन्यासों का प्रभाव देर तक मन पर बना रहता है। कर्तार सिंह दुग्गल के उपन्यास 'हाल मुरीदों के में पोठोहार के पठानों का जैसा यथार्थ और जीवंत अंकन हुआ है, उसमें एक प्रेम-कथा के रूप में ही, यह पीड़ा बहुत शिद्दत के साथ उभर कर आती है कि दो समुदायों के जो संबंध मांस और नाखून की तरह थे, उन्हें काटकर कैसे अलग कर दिया गया है। इसी तरह सोहन सिंह 'सीतल' का 'शहतूतों वाला कुँआ' पंजाब के एक छोटे से गाँव पीरूवाला के बहाने समूचे पंजाब के जीवन में रसी-बसी उस हार्दिकता को रेखांकित करता है। वह कुँआ अपने ठंडे और मीठे पानी के सबब से, इस सामाजिक जीवन का एक कवित्वपूर्ण प्रतीक बन गया है। दो समुदायों के प्रतीक-पात्र सज्जन सिंह और इलमदीन की जिन्दगी ही नहीं, नियति भी समान है। यह पंजाब के

सूरमाओं की साझा विरासत थी, जो कंधे-से कंधा मिलाकर आजादी की यह लड़ाई लड़े थे। लेकिन अपने निर्णायक अंत तक लड़ी जाकर भी यह लड़ाई अंतत: एक अधूरी लड़ाई की नियति को ही प्राप्त होती है। बाबा अकाली, इसी उपन्यास का एक पात्र, विभाजन की दरारों के भरने और एक ही लहू और एक ही कौम के होने के कारण भूख, बेरोजगारी, छुआछूत और फिरकापरस्ती के विरुद्ध जिस साझा लड़ाई का आह्वान करता है, निहित स्वार्थ वाले लोग उसे कभी पूरा नहीं होने देते। सत्ता के मद और जहालत के अंधेरे के बीच बाबा अकाली का यह सपना आज भी दोनों देशों की जनता की आंखों में एक ज्योति की तरह जगर-मगर झलमलाता है।

देश-विभाजन को केन्द्र बनाकर या फिर इस घटना से उद्वेलित होकर मोटे तौर पर तीन तरह के उपन्यास लिखे गए। एक ओर कुर्रतुल ऐन हैदर का 'आग का दरिया' और अब्दुल्ला हुसैन का 'उदास नस्लें' जैसे उपन्यास थे जो हिंदुस्तान और पाकिस्तान दोनों के ही बुद्धिजीवियों की मुसलमानों की नियति और संस्कृति की साझा विरासत को समझने की इच्छा के परिणाम थे। अपने 'आग का दरिया' को लेखिका ने मनुष्य के अस्तित्व की खोज का उपन्यास कहा है। लड़ाइयों, खून की नदियों और बेशुमार बरबादी के बीच भारत-इस्लामी संस्कृति का विकास और सांस्कृतिक अंतरावलंबन की प्रक्रिया शुरू हुई। ईसा पूर्व चौथी शताब्दी से शुरू करके लेखिका, वर्तमान काल तक आती है और इस साझा ऐतिहासिक-सांस्कृतिक विरासत पर गर्व का संदेश देती हैं, जो जितनी बुद्ध की अहिंसा और समता के सिद्धान्तो से बनी है, उतनी ही सूफियों, औलियों और फकीरों के चिंतन से। 'आग का दरिया' भारत-विभाजन की त्रासदी का सीधा परिणाम नहीं है। उसकी मुख्य चिंता यह है कि भारतीय उपमहाद्वीप की बहुजातीयता और सांस्कृतिक बहुलता को समझकर देश के बंटवारे के जख्मों को पूरा करने की कोई गंभीर कोशिश न हुई। न ही इसे बहुजातीयता और सांस्कृतिक बहुलता के बँटवारे के विरुद्ध एक प्रतिरोधी तर्क की तरह इस्तेमाल किया गया। इसकी तुलना में अब्दुल्ला हुसैन की 'उदास नस्लें' का फलक और कालावधि सीमित है। वह बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध को अपने केन्द्र में रखकर अपने नायक नईम के माध्यम से वैमनस्य और विद्वेष की ब्रिटिश कूटनीति के संदर्भ में, भारतीय मुसलमान की मानसिकता को समझने की कोशिश करता है।

विभाजन से सम्बद्ध दूसरी श्रेणी में आने वाले उपन्यासकारों में राही मासूम रजा (आधा गाँव) बदीउज्जमा (छाको की वापसी), अब्दुल्ला हुसैन (उदास नस्लें) आदि मुस्लिम लेखकों की समस्या भिन्न है। इन उपन्यासों की पृष्ठभूमि भारत की गंगा-जमुनी सामासिक संस्कृति का हिन्दी-उर्दू-भोजपुरी भाषी क्षेत्र है। इनमें मुसलमानों की राष्ट्रीय अस्मिता की खोज महत्वपूर्ण है। अत: इन उपन्यासों में देश के विभाजन की पृष्ठभूमि और प्रक्रिया को औपन्यासिक रूप दिया गया है। जबकि खुशवंत सिंह, यशपाल, भीष्म साहनी जैसे गैर मुस्लिम उपन्यासकारों ने विभाजन में निहित हिंसा और सीमान्त क्षेत्र के जीवन और कार्य-व्यापार में आयी हलचलों और उनकी राजनीतिक परिणतियों को अपना विषय बनाया है। ये तीसरे प्रकार के उपन्यासकार ही विभाजन की वास्तविक त्रासदी के भोक्ता हैं।

देश-विभाजन की घटना से संबंधित तीसरे प्रकार के उपन्यास वे हैं जो सीधे तौर पर इस विभाजन के ही परिणाम हैं। इसके अंतर्गत बलवंत सिंह का 'कालेकोस' यशपाल का 'झूठा सच' और भीष्म साहनी का 'तमस' आदि उपन्यास आते हैं। इनमें शताब्दी की इस भयावह त्रासदी के मूल कारणों और परिणामों को आकलित करने का प्रयास है। बलवंत सिंह उन लेखकों में से है जो कभी पंजाब के विभाजन को मानसिक रूप से स्वीकार नहीं कर सके और अपने बाद के उपन्यासों में भी वे अधिकांशत: उस अविभाजित पंजाब को ही अंकित करते रहे, जो कभी था लेकिन अब नहीं है। उनका 'कालेकोस' भी उस पंजाब को समर्पित है जो मर चुका है और उस पंजाब को जो जन्म ले रहा है। अपना यह उपन्यास वे उन लोगों द्वारा खासतौर से पढ़े जाने की आशा करते हैं जो 'पंजाबी कहलाना' पसंद करते

को समर्पित है जो मर चुका है और उस पंजाब को जो जन्म ले रहा है। अपना यह उपन्यास वे उन लोगों द्वारा खासतौर से पढ़े जाने की आशा करते हैं जो 'पंजाबी कहलाना' पसंद करते हैं और जिनके लिए पंजाबी होने का एक खास मतलब है। उपन्यास के नायक सिराज के माध्यम से लेखक आम आदमी के उस व्यापक मोहभंग को गहरी संवेदनशीलता से अंकित करता है, जो पाकिस्तान के नाम पर बुरी तरह ठगा गया है। अपने परिवार सहित जब सिराज पाकिस्तान की सीमा में पहुँचता है तो उसकी खुशी का ठिकाना नहीं रहता। लेकिन फिर फौरन ही वह भौंचक्का-सा रह जाता है। वह समझ ही नहीं पाता कि असली पाकिस्तान कहाँ है! जमीन, आकाश, मिट्टी और सितारे- सब कुछ उसे वैसे हीं लगते हैं और कहीं भी उसे कोई अंतर नहीं दिखाई पड़ता।

भीष्म साहनी का 'तमस' उनके अपने ही नगर रावलपिंडी को केन्द्र में रखकर विकसित उपन्यास है। यह विभाजन से लगभग 25 वर्ष बाद लिखा गया उपन्यास है, जिसमें विभाजन से पाँच दिन पहले की कहानी है। बहुत जल्दी ही आस-पास के कस्बे और गाँव भी उन्माद और हिंसा की चपेट में आ जाते हैं। प्रजा में समानता से अधिक विरोध के सूत्र ढूंढ़कर शासन करने के साम्राज्यवादी सूत्र को यहाँ पकड़ा गया है। इसी आधार पर मानवीय मूल्यों को शासकीय मूल्यों से अलग करके विभाजन की इस त्रासदी को समझने की कोशिश की गई है। 'तमस' में बहुत नया और मौलिक जैसा कुछ भले ही न हो, लेकिन जाने-पहचाने और परिचित तथ्यों के आत्मीय और कलापूर्ण संयोजन की दृष्टि से वह एक बेजोड़ उपन्यास है। इसीलिए विभाजन संबंधी उपन्यासों के बीच उसकी एक विशिष्ट पहचान है।

इन सारे उपन्यासों के बीच 'झूठा सच' अनेक कारणों से एक अलग और महत्वपूर्ण उपन्यास है। जैसा कि हमने खंड की इकाई सं-1 में भी उल्लिखित किया है कि इंद्रनाथ मदान ने रंगों के रूपक द्वारा इसे लाल से गुलाबी की ओर यशपाल के प्रस्थान के रूप में देखा है। ऐसा नहीं है कि 'झूठा सच' में कम्युनिस्ट पात्र नहीं है। लेकिन उसमें पार्टी और उसकी विचारधारा के बाहर का एक खुला और भरा-पूरा संसार भी है। लाहौर की भोला पांधे की गली में आर्यसमाजी मास्टर राम लुभाया के परिवार से शुरू होकर उपन्यास जल्दी ही समूचे लाहौर और प्रकारांतर से पूरे पंजाब की नियति की कहानी बन जाता है। लाहौर यशपाल के युवाकाल की स्मृतियों और गतिविधियों का शहर था, जो उपन्यास लिखे जाने से वर्षों पहले उनसे छूट चुका था। एक दशक से अधिक से तो वह अब दूसरे देश का हिस्सा था। उपन्यास में यशपाल गहरी तन्मयता के साथ उस लाहौर को अंकित करते हैं जो कभी उनके युवा सपनों और क्रांतिकारी गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र था। मध्य वर्ग के चित्रण और प्रतिनिधित्व की दृष्टि से भी 'झूठा सच' एक महत्वपूर्ण उपन्यास है, जिसमें मध्यवर्ग के विभिन्न स्तरों और उनकी समस्याओं का सघन अंकन उपन्यास में हुआ है। प्रेम, विवाह, शिक्षा और रोजगार की समस्याएँ, भारतीय समाज में स्त्री की नियति और साझा संस्कृति की विरासत आदि उपन्यास के फलक को एक प्रीतिकर विस्तार देते हैं। यशपाल साम्राज्यवादी नीतियों और भारतीय नेताओं के निहित स्वार्थों के परिणामस्वरूप व्यापक स्तर पर भारतीय जनता के साथ किए गए छल को उद्घाटित करते हैं। जनता के अवसाद, मोहभंग और हताशा के बावजूद वे उसके संघर्ष और आस्था पर अधिक बल देते हैं। देश के विभाजन पर 'झूठा सच' के पहले और बाद में भी अनेक उपन्यास लिखे गए लेकिन 'झूठा सच' जैसी संपूर्णता शायद ही किसी में हो। यशपाल के अपने लेखन के दोनों दौरों में-उसके पहले और बाद के उसकी विशिष्ट स्थिति है। वह यशपाल के लिए भी एक ऐसी चुनौती बन जाता है, जिस तक वह अपनी सारी रचनात्मक सक्रियता के बावजूद दुबारा कभी नहीं पहुँच सके।

2.5 विभाजन से प्रभावित पंजाब और उसके सामाजिक जन-जीवन का अंकन

रमेश कुंतल मेघ सहित और भी कुछ आलोचकों ने 'झूठा सच' के संदर्भ में तोल्सताय के प्रसिद्ध उपन्यास 'युद्ध और शांति' का उल्लेख किया है। इस उल्लेख का मुख्य आधार 'युद्ध और शांति' में रूस पर नेपोलियन के आक्रमण के पूर्व वहाँ के शांत, उत्सवधर्मी और उल्लासपूर्ण जीवन का तोल्सताय द्वारा किया गया भव्य और विस्तृत अंकन है। तोल्सताय इस जीवन के संदर्भ में युद्ध के विनाशकारी प्रभाव का संकेत देना चाहते हैं। आम लोगों का रोजमर्रा का सामान्य जीवन, सामूहिक नृत्यों और विशाल पार्टियों के आयोजन और रूस के रंगारंग जीवन पर युद्ध के कारण मची तबाही देखते-देखते ही जैसे सब कुछ नष्ट कर देती है। रमेश कुंतल मेघ के इस तुलनात्मक उल्लेख का अपना महत्व है। लेकिन सच्चाई यह है कि 'झूठा सच' लिखे जाने के पूर्व तोल्सताय का 'युद्ध और शांति' यशपाल ने नहीं पढ़ा था या फिर यदि पढ़ा भी था तो इतना पहले पढ़ा होगा कि उसमें का कुछ उन्हें याद नहीं रह गया था। उनसे शुरू हुए व्यवस्थित पत्राचार के बाद पहली बार मैं उनसे अगस्त, 1963 में मिला था। तब वे अपनी आँखों के कष्ट के कारण अधिक लिख पढ़ नहीं पाते थे। उन्हीं दिनों जब मैं, दो-तीन दिन वहाँ रहा तो मैंने उनके दामाद सुदर्शन बाबू को 'युद्ध और शांति' के माडर्न लायब्रेरी वाले वृहत अंग्रेजी संस्करण से उसे नियमित पढ़वाकर सुनते देखा था। उसके पाठ में प्राय: मैं भी शामिल रहता था। इस प्रसंग में पूछे जाने पर यशपाल ने बताया था कि 'झूठा सच' के संदर्भ में 'युद्ध और शांति' के उल्लेख के बाद इसे देखने और जानने की उनकी जिज्ञासा बढ़ी थी। इसी भेंट में उन्होंने यह स्वीकार किया था कि इसके पहले वे उसे नहीं पढ़ सके थे।

'झूठा सच' के पहले खण्ड 'वतन और देश' में लाहौर के गली-मुहल्लों, बाजारों का शांत और छोटी-छोटी खुशियों भरा जीवन विस्तारपूर्वक अंकित है। मास्टर रामलुभाया की माँ की मृत्यु से, भोला पांधे की गली में, उपन्यास शुरू होता है। शोक के इस अनुष्ठान के बीच जवान लड़कियों की संगत अलग बैठती है। तारा की तहेरी बहन शीलों भी आई है। उसकी सगाई हो जाने के कारण दादी के 'मरने' के शगुन के दो रुपये उसे भी मिले थे जबकि तारा उससे कुछ माह बड़ी होने पर भी इससे वंचित रही थी। तारा के यहाँ आते समय गली के मोड़ से दो आने का ताजा मोंगरा दोने में लेकर शीलो उसके यहाँ आती है। सगाई तय हो जाने के कारण उसकी प्रगल्भता कुछ और बढ़ी है। अपनी भाभी के भैया के साथ दिन में भी कमरे में बंद रहने की उसकी 'बेशर्मी' का बयान वह उत्साहपूर्वक तारा से करती है-तारा के संकुचित होने की चिंता किए बिना। जवान लड़कियों की यह बतकही कहीं न कहीं उनकी दमित आकांक्षाओं और सपनों का संकेत भी देती है। ऐसे ही रस-प्रसंग में शीलो का तारा के पड़ोसी रतन के साथ दीदार होता है जो एक गंभीर प्रेम-प्रसंग में बदल जाता है। गली-मुहल्ले में आवाज लगाकर घूमने वाले तरह-तरह का सामान बेचते फेरी वाले, गर्मी की लंबी दोपहरों में, मर्दों के काम-काज पर निकल जाने के बाद, चबूतरे पर लगा औरतों का मेला और बतरस में, ऐसे-वैसे प्रसंग में, किसी जवान लड़की की उपस्थिति के कारण, किसी वृद्धा द्वारा संकेत, बरजने और उलाहने की खीझ में जीवन की पूरी रवानगी मिलती है। इसे 'झूठा सच' की एक अतिरिक्त उपलब्धि माना जा सकता है।

ग्वालमंडी में, अमृतधारा के समीप, तारा की सहेली सुरेन्द्र कौर के भांजे के नामकरण का आयोजन इस शांत और सांप्रदायिक सौहार्द का एक अच्छा उदाहरण है। सिक्ख-परिवार में हुए इस आयोजन में अनेक धर्मों-संप्रदायों के लोग जुटते हैं। इन लोगों में स्टूडेंट फेडरेशन का असद भी है। अपने घुंघराले बालों पर वह कभी टोपी या साफा नहीं रखता। सिक्ख-समाज के रीति-रिवाजों का भी उसे अधिक परिचय न था। दूसरे लोगों

को गुरु ग्रंथ साहब की ओर हाथ जोड़े देखकर, संगत के प्रति सम्मान के लिए वह भी हाथ जोड़कर बैठ जाता है। पास बैठे एक सरदार जी उसे सिर ढँक लेने का संकेत करते हैं। किसी हिंदू युवक को सिर पर रूमाल रखे देख वह अपनी जेब टटोलता है। संयोग से वहाँ रूमाल नहीं था। पास बैठी तारा उसकी परेशानी समझकर, अपना रूमाल उसकी ओर बढ़ा देती है।

इस शांत जीवन में अभी कोई बड़ा भूचाल नहीं आया है, लेकिन शांत तालाब में फेंकी गई कंकड़ियों के मानिन्द घटने वाली घटनाओं का सिलसिला शुरू हो चुका है। लाहौर के व्यस्त और चकाचौंधपूर्ण बाजार अनारकली का एक दृश्य है, "कड़ाके की सर्दी पड़ने लगी थी। सूर्यास्त के पश्चात तुरन्त ही कोहरा उतर आता और आकाश की ओर उड़ते हुए धुएँ को नीचे दबाकर नगर पर छत्र की तरह छा जाता था। नाक-कान पाले से ठिठुरने लगते। सड़कों और बाजारों में चलते लोगों के नाक और मुख से भाप की विरल-सी फूँके छूटती रहतीं। टांगों में जुते, दौड़ से हाँफते घोड़ों के नथुनों से ऐसे भाप उड़ती रहती है जैसे चूल्हें पर रखी केतली की सूंड से फुफकार छूट रही हो। आँखे कोहरे में मिले धुएं से चरमराने लगती। दुकानों पर तेज बिजली की बत्तियों का प्रकाश, उस धुएँ और कोहरे को भी बेधकर अनारकली बाजार में कंधे से कंधा रगड़ती भीड़ को जगमगाता रहता....."। लेकिन इस भीड़ में भी अब प्रति संध्या 'अल्लाहो अकबर', 'मुस्लिम लीग जिन्दाबाद', 'कायदे आजम जिन्दाबाद', हिन्दू-मुस्लिम इत्तहाद जिन्दाबाद', 'पाकिस्तान ले कर रहेंगें' आदि नारे लगाते हुए जुलूस निकलने लगे थे। इन सबसे विभाजन से पूर्व का जो स्वरूप उभरता है, उसमें सब सीधा-सीधा ही नहीं तीखे कोणों का संकेत भी मिलता है।

भीष्म साहनी के 'तमस' एक यह आरोप लगाया गया है कि पंजाब में यह काल मुस्लिम सांप्रदायिकता के उभार का था जबकि भीष्म साहनी ने हिंदू सांप्रदायिकता के उभार और प्रसार को अधिक फोकस किया है। लेकिन 'झूठा सच' में यशपाल ने अपनी चित्रण-विधि के कौशल से इस प्रकार के आरोप से अपने को बचाया है। वस्तुत: यहाँ इस तथ्य को ध्यान में रखना आवश्यक है कि 'तमस' विभाजन से लगभग 25 वर्ष बाद लिखा गया है। इस लम्बे अन्तराल में धर्म निरपेक्षता और साम्प्रदायिक सौहार्द के अत्यधिक दबाव के कारण भीष्म साहनी अधिक तटस्थ नहीं रह सके हैं। अत: उन्हें हिन्दू और मुस्लिम साम्प्रदायिकता के अनुपात को लगभग ठीक या बराबर करके दिखाना जरूरी लगा था। लेकिन इस जरूरत को उन्होंने नारों और सीधी कार्रवाईयों के माध्यम से पूरा किया है। सातवं दशक में अल्पसंख्यक साम्प्रदायिकता की अपेक्षा उन्हें बहुसंख्यक साम्प्रदायिकता की प्रकृति अधिक खतरनाक लगी थी। इस कारण उन्हें अपनी साहित्यिक रणनीति को तत्कलीन राजनीतिक रणनीति के संदर्भ में निर्मित करना पड़ा। यशपाल पर इस प्रकार का कोई युगीन दबाव नहीं था।

'झूठा सच' 'तमस' से प्राय: डेढ़ दशक पहले लिखा गया, फिर भी इन नारों के अनुपात से यशपाल की रचनात्मक वस्तुपरकता को आसानी से समझा जा सकता है। इसकी क्षति-पूर्ति यशपाल दूसरे ढंग से करते हैं। जब शहर की फ़िज़ा बिगड़ने लगती है तो, छतों पर सोने पर, दूर-दूर तक चीख-पुकार और शोर सुनाई देता है। तारा और उषा अपने दुपट्टों में लिपटी होती हैं। पुरी ने मास्टर साहब की खाट खींचकर बरसाती में कर दी है और स्वयं खुले में लेट गया है। दिल्ली दरवाजे, पीपल बेहड़े और परीमहल की ओर से चीख-पुकार की आवाजें आ रही थीं। आसपास की छतों से सुनाई देने वाले शब्दों से लगता था कि सभी की नींद उचट गई है। आतंक के कारण लोग सो नहीं पा रहे हैं। तारा वीरसिंह के तीर में डब्बा बाँधकर फेंकने के बारे में सोच रही थी। नींद न आने पर वह सोचती रहती है-यह लोग गरीब मुसलमानों को क्यों मार रहे हैं? रतन और यह लोग पहले भी उनके मोहल्ले में जाकर बम फेंक आए थे, नमाज में भी बम फेंका था, अब और भी फेंकना चाहते हैं। .....फिर वह गली में आने वाली राई और खाकी कपड़े पहने टांगा

हाँकने वाले मुसलमानों के बारे में सोचती है जो मीठी आवाज़ और दिलकश चेतावनियों से लोगों को हटने-बचने का अनुरोध करते हैं। इसी तरह पुरी को गौस मुहम्मद, मसऊद और दौलू मामा जैसे रोजी-रोटी का संघर्ष करने वाले लोगों की हत्या एक ऐसा सदमा है, जिससे उबरने में उसे वक्त लगता है। इसी प्रकार त्रस्त बंगालियों की सहायता के लिए चन्दा इकट्ठा करने वाली स्त्रियाँ, कभी जयदेवपुरी द्वारा मास्टर तारा सिंह की घोषणा के उल्लेख और कभी डॉ. प्राणनाथ द्वारा मुसलमानों के प्रति हिन्दुओं की संकीर्णता के उल्लेख द्वारा यशपाल ने साम्प्रदायिक दंगो में हिन्दुओं की पहल का संकेत अवश्य किया है। अपनी इस चित्रण-विधि के कारण यशपाल पर भीष्म साहनी जैसा आरोप नहीं लग सका है।

2.6 सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य, साझा संस्कृति की विरासत

लाहौर हिन्दुओं, मुस्लिमों और सिखों की सामासिक संस्कृति का केन्द्र था। ननकाना साहिब सहित सिखों के अनेक प्रसिद्ध तीर्थ और पवित्र स्थल उसके आस-पास ही थे। अमृतसर का स्वर्ण मंदिर भी उससे बहुत दूर नहीं था। लाहौर में अस्सी प्रतिशत सम्पत्ति और जायदाद हिंदुओं की थी। लेकिन छोटे कारीगर और मेहनत-मजदूरी करने वाले लोगों में मुसलमानों का अनुपात अधिक था। जून, 1947 में विधिवत पंजाब के विभाजन की घोषणा होती है और किसी निश्चित सीमा रेखा की घोषणा के अभाव में अनुमान लगाया जाता है कि वह लाहौर के आस-पास ही होगी। 'झूठा सच' में यशपाल सूफी संतों, पीर-फकीरों, दरगाहों, सिख-संगतों, गुरुद्वारों, लंगरों और पर्वों आदि पर अपने को केन्द्रित नहीं करते। साझा संस्कृति की इस विरासत को वे रोजमर्रा के सामाजिक जीवन में अंकित करने पर अधिक बल देते हैं। सुरेन्द्र कौर के भांजे के नामकरण का उत्सव जो उपन्यास में एक अपवाद की तरह अंकित है, इस सामासिक संस्कृति का ही एक उल्लेखनीय उदाहरण है। तारा के असद के साथ विकसित होते संबंध और उसकी सहेलियों में जुबैदा और सुरेन्द्र कौर जैसी लड़कियों की उपस्थिति, उसके परिवार की कट्टर आर्यसमाजी पृष्ठभूमि के बावजूद उसके मानसिक विकास की दिशा का स्पष्ट संकेत है। उसकी इस मानसिक उदारता में उसके भाई और स्टूडेंट फेडरेशन के साथियों की एक निर्णायक भूमिका है। लेकिन इन लोगों में भी इस दृष्टि का निर्माण और विकास उस साझा संस्कृति की विरासत से ही हुआ है। पंजाब में इसकी एक दृढ़ और दीर्घ परंपरा थी और बदले हुए समय में, सारे सांप्रदायिक उन्माद के बावजूद उसकी जड़ें बहुत गहरी थीं। यशपाल इस संस्कृति के धार्मिक पर्वों और आयोजनों से अधिक उसके सामाजिक प्रभाव पर अपने को अधिक केन्द्रित करते हैं। पंजाब के विभाजन की घोषणा ने और लाहौर को लेकर अनिश्चय की स्थिति ने, दंगों की धीमे-धीमे सुलगती आग को एक बार फिर भड़का दिया। इसी के परिणामस्वरूप कृष्णनगर, देवनगर के समीप राजगढ़ की मुस्लिम बस्ती पर हुए आक्रमण में सौ से अधिक मुसलमानों की हत्या कर दी जाती है और बहुत बड़ी संख्या में उनके घरों में आग लगा दी जाती है। हिंदू मुहल्लों या उससे एकदम निकट मुसलमानों की बस्ती का होना ही इस सामासिक संस्कृति की गहरी जड़ों का प्रमाण है। लेकिन इस घटना के बाद मुसलमानों में आतंक फैल जाता है और उनका पलायन शुरू हो जाता है। लोग बहुत बड़ी संख्या में लाहौर छोड़कर भागने लगते हैं। डूंगी गली में मुसलमानों के अधिकांश मकान बिक चुके थे। वह हिंदू बस्ती हो गई थी परन्तु अंत के सात गिरे-पड़े मकान अभी भी मुसलमानों के थे। तारा के लिए ली गई किताबें कालीचरण को लौटाने जाने पर पुरी देखता है कि डूंगी गली के सामने एक टांगा रास्ता रोके खड़ा था। टांगे पर फटी-सी दरी में मूँज की रस्सी से बंधा बिस्तर, तरह-तरह के सामान से भरी एक बोरी और दो ढक्कन लगे कनस्तर रखे थे। जगह की तंगी के कारण पुरी दबकर गली में एक ओर हो जाता है। कालीचरण के साथ पुरी का परिचित कामरेड राजवंश महाजन गली से जाने के लिए तैयार एक गरीब मुसलमान परिवार का रास्ता रोके खड़े थे। बुरका ओढ़े मुसलमान बुढ़िया कल शाम इन युवकों के

'ताऊ' अर्थात अपने बूढ़े पति को शादीलाल द्वारा दी गई धमकी से आहत हुई है। उसी का परिणाम यह उनका तुरत-फुरत लिया गया फैसला है। बुढ़िया को दुख है कि उसी ने शादीलाल का नाड़ काटा था गला खराब होने पर उसकी माँ उसी से चूंडी लगवाती थी और वह नामुराद भी उसे 'बुआ' कहता था। वह उलाहने के स्वर में कहती है कि यह वही शादीलाल है जिसके घर से बुरका ओढ़ खड़ी उसकी जवान बेटी निस्सो रोज छाछ ले आती थी। बुढ़िया की आहत भावनाओं के उत्तर में महाजन ऊँचे स्वर में दुहाई देता है, 'ताई तू हमारी नाक क्यों कटवा रही है? तेरा दिल चाहता है तो ले (महाजन ने सिर झुका दिया) अपनी जूती हमारे सिर पर मार ले! हमारे सिर कट जायेंगे तो कोई तुम्हारी तरफ नजर उठा सकेगा! हमारे लिए विमला और निस्सो क्या दो हैं?.....' (वही, पृ० 271) फिर महाजन बुर्का ओढ़े खड़ी लड़की की ओर देखता है- 'बड़ी चली है, बुर्का ओढ़कर गली से भागने। भूल गई, मेरे लट्टुओं की डोरियाँ सलवारों में नाड़े डालने के लिए छीन-छीन कर ले जाती थी। अब भी देख ले निशान', महाजन ने कोहनी दिखा दी, 'बिल्ली की तरह काट लिया था। बुर्का पहने लड़की की गर्दन झुक गई। बुर्के के भीतर उसके हाथ आँसू पोंछने के लिए उठ गए।''.....

काली ने पड़ोसी इमामबक्श का हाथ अपने दोनों हाथों में लेकर समझाया- "ताया, यह सब पागलपन दो दिन का है। जो भागकर गए हैं वो भी चार दिन में लौट कर आयेंगे। पाकिस्तान हुआ तो क्या और हिंदुस्तान हुआ तो क्या हम लोग तो लाहौरी हैं, डूंगी गली के पड़ोसी हैं। चल बैठ तू घर में! तेरी दुकान जल गई है तो और बन जाएगी। रब्ब का भरोसा कर!'' गली के अन्य लोग-स्त्री-पुरुष दोनों निकलकर कालीचरण और महाजन का समर्थन करते हैं। देर होने के सबब से टांगे वाले के बड़बड़ाने पर कालीचरण उसे डपटकर मट्टू को पुकारकर उसके कोट की जेब में बारह आने पैसे लाकर टांगे वाले को दे देने को कहता है। पलायन करने वाले जत्थे के साथ जाने को तैयार फातां हाथ उठाकर उन युवकों को आशीष देती है- "बड़ी-बड़ी उम्रे हों! तुम्हारे जातक भी तुम्हारे जैसे हों!''

'झूठा सच' के पहले खण्ड 'वतन और देश' का समापन एक विडम्बनापूर्ण स्थिति से होता है। मनुष्यों के देश को धर्मों के आधार पर बाँटकर अंतत: उसे 'धर्मों का देश' बना दिया जाता है। शेखूपुरा से मुक्त कराई गई हिंदू स्त्रियों के काफिले की मोटर का ड्राइवर सीमा के इस ओर पहुँचने पर कहता है, 'रब्ब ने जिन्हें एक बनाया था, रब्ब के बंदों ने वहम और जुल्म से उसे दो कर दिया.....।'' उपर्युक्त तथ्यों के माध्यम से यशपाल ने पंजाब की साझा सांस्कृतिक विरासत और हिंदू मुस्लिम सौहार्द को रेखांकित किया है।

2.7 सारांश

- लाहौर की एक गली-भोला पांधे की गली-को केन्द्र में रखकर यशपाल सामाजिक जीवन का आत्मीय चित्र प्रस्तुत करते हैं। उसे देखकर लगता ही नहीं कि बहुत जल्दी यह जीवन तहस-नहस होने वाला है। लेखक एक गली के जीवन से शुरू करके धीरे-धीरे पूरे शहर को अपनी चिंता और चेतना की परिधि में ले आता है।
- स्वाधीनता संग्राम की उग्रता और वेग को दबाने के लिए ब्रिटिश सरकार द्वारा विभाजित करके राज्य करने की नीति का उद्घाटन उपन्यास बहुत विश्वसनीय ढंग से करता है। शहर के वातावरण और सांप्रदायिक सद्भाव को बिगाड़ने वाली घटनाओं का अंकन बहुत चित्रात्मक ढंग से हुआ है।
- विभाजन से संबंधित उपन्यास स्वाभाविक रूप से उससे प्रभावित क्षेत्रों की भाषाओं-उर्दू, हिंदी, पंजाबी और बांग्ला में लिखे गए। या फिर कुछ लेखकों द्वारा जो मूलत: इस संबद्ध क्षेत्र से आए थे लेकिन उनके अंग्रेजी भाषा के विशिष्ट ज्ञान के

कारण अंग्रेजी में लिखे गए। इन उपन्यासों की तुलना में 'झूठा सच' का महत्व कदाचित उसके व्यापक फलक और उसमें अंकित जीवन की संपूर्णता की दृष्टि से है।

- यशपाल साझा-सांस्कृतिक विरासत के धार्मिक स्वरूप को अधिक महत्व नहीं देते क्योंकि वे इसमें निहित खतरों की ओर से पर्याप्त सजग हैं। वे सामाजिक जीवन के सद्भावपूर्ण और आत्मीय अंकन द्वारा ही इसके वास्तविक स्वरूप को समझने का प्रयास करते हैं। इस दृष्टि से डूंगी गली में मुस्लिम परिवारों के पलायन को रोकने का दृश्य महत्वपूर्ण है।
- 'झूठा सच' इस विडम्बना को बहुत प्रभावी ढंग से उद्घाटित करता है कि मनुष्यों के देश को कैसे अपने स्वार्थ के लिए लोगों ने धर्मों के देश में बदल दिया है।

2.8 अभ्यास प्रश्न

1. ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने भारत में सांप्रदायिकता को किस प्रकार और किस उद्देश्य से प्रोत्साहित किया?
2. देश के विभाजन के संबंध में ब्रिटिश सरकार की नीति क्या थी?
3. भोला पांधे की गली के जीवन के आधार पर पंजाबी जन-जीवन की विशेषताओं का परिचय दीजिए।
4. देश के विभाजन में कांग्रेस और मुस्लिम लीग के नेतृत्व की भूमिका को स्पष्ट कीजिए।
5. 'झूठा सच' में यशपाल पंजाब की सामासिक और बहुलतावादी संस्कृति के चित्रण की क्या विधि अपनाते हैं?
6. विभाजन पर लिखे गए हिन्दी के अन्य उपन्यासों में 'झूठा सच' के महत्व का निर्धारण कीजिए।

इकाई 3 देश का भविष्य और 'झूठा सच'

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 मोहभंग की व्यापकता

3.3 सत्ता की राजनीति और कांग्रेसी अवसरवाद

3.4 पुनर्वास का संघर्ष और प्रक्रिया

3.5 राजनैतिक मूल्यहीनता के अन्य रूप

3.6 सरलीकृत आशावाद के आरोप पर विचार

3.7 उपन्यास के धारावाहिक प्रकाशन के प्रभाव की पड़ताल

3.8 सारांश

3.9 अभ्यास प्रश्न

3.0 उद्देश्य

इस पाठ्यक्रम के खण्ड एक की दूसरी इकाई में 'झूठा सच' उपन्यास के पहले भाग देश और वतन' को केन्द्र में रखकर पंजाबी की साझा संस्कृति और देश के विभाजन के त्रासद प्रभाव से आपको परिचित कराया जा चुका है। इस इकाई में 'झूठा सच' के दूसरे भाग देश का भविष्य को केन्द्र में रखकर स्वाधीनता के बाद देश और विशेष रूप से पंजाब की वास्तविक स्थिति से आपको परिचित कराया जाएगा। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- स्वाधीनता के बाद लोगों के व्यापक मोहभंग की मनोदशा का परिचय दे सकेंगे;
- सत्ता की राजनीति और कांग्रेसी अवसरवाद की चर्चा कर सकेंगे;
- पंजाबियों के विस्थापन और पुनर्वास की गंभीर समस्या का विवेचन कर सकेंगे;
- इस प्रक्रिया में आप राजनीतिक मूल्यहीनता के विविध रूपों की चर्चा कर सकेंगे;
- उपन्यासकार यशपाल की आशावादी दृष्टि के औचित्य-अनौचित्य के बिन्दुओं का विश्लेषण कर सकेंगे; और
- इस उपन्यास के धारावाहिक प्रकाशन से इसके स्वरूप पर पड़ने वाले प्रभाव की जानकारी दे सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

उपन्यास के इस दूसरे खण्ड का आरंभ जयदेव पुरी की भटकन और मोहभंग से होता है। कुछ दिन पहले लाहौर छोड़कर जब वह अपनी नौकरी और भविष्य की तलाश में उत्तर प्रदेश में आया था तो उसे इस बात का जरा भी अनुमान नहीं था कि लाहौर उससे हमेशा के लिए छूट रहा है। फिर जैसे एक झटके में ही सब कुछ हो गया। उसने अपने परिवार को लाहौर में छोड़ा था, विभाजन की खबरें सुनकर वह फिर पंजाब जाने के लिए चल पड़ता है ताकि लाहौर पहुँचकर अपने छूटे हुए परिवार को अपने साथ ला सके। लेकिन ऐसा नहीं हो पाता। पुरी को जालंधर में ही उतरना पड़ता है क्योंकि लाहौर

अब एक दूसरे देश का हिस्सा है। बेरोजगारी और पारिवारिक समस्याओं के कारण उसके मोहभंग की जो प्रक्रिया शुरू हुई थी, वह जैसे अब और भी भयावह रूप में उसके सामने थी। अपनी बेरोजगारी और परिवार के छोटे-छोटे अभाव तब उसे कहीं बहुत अपने और निजी लगते थे। वे गहरी हताशा के कारण भी थे। लेकिन आज वह अभावों और रोजमर्रा की चीजों के लिए लांछित और अपमानित होते एक बहुत बड़े समुदाय का हिस्सा बन चुका था।

3 2 मोहभंग की व्यापकता

देश की स्वाधीनता और विभाजन की सूचना के बाद जब पुरी अपने परिवार की हितचिंता के विचार से पंजाब लौट रहा होता है तो अपनी इस यात्रा में जगह-जगह उसे विभाजन की इस विभीषिका का प्रमाण मिलता है। अमृतसर से अंबाला जाती ट्रेन के बाहर जगह-जगह उसे विस्थापित शरणार्थियों के जत्थे दिखाई देते हैं। दिल्ली, जालंधर, अंबाला, अमृतसर सब कहीं शरणार्थियों के कैंप और बस्तियाँ बस गई हैं। 'देश का भविष्य' का आरंभ ही जयदेव पुरी के शरणार्थियों के मुफ्त राशन बाँटने वाले डिपो के सामने कतार में खड़े होने से होता है। उसके आगे तीन स्त्रियाँ और नीन पुरुष और थे। कतार में सबसे आगे वाली स्त्री राशन देने वाले आदमी से अपने परिवार के अन्य सदस्यों और बच्चों का वास्ता देकर सेर भर आटा और देने का अनुरोध करती है। राशन देने वाला आदमी नियमों का वास्ता देकर उसे अपनी मजबूरी समझाने की कोशिश करता है। पुरी अपना बिस्तर बगल में दबाए लाइन में खड़ा है। मिलने वाले आटे-दाल के लिए वह बिस्तर से चादर निकालने की सोचकर भी इसलिए नहीं निकाल पाता कि वैसा करने पर उसे लाइन से हटना होगा और तब उसकी जगह कई और आदमियों के पीछे हो जाती। नम्बर आने पर कमीज के दामन के एक छोर में डेढ पाव आटा और दूसरे छोर में छटाक भर दाल थामे मंडी बाजार की ओर निकल पड़ता है। थोड़ा आगे चलकर ताजी रोटी की महक अनुभव होने पर आस-पास तलाश करने पर, उसे एक ढाबा भी दिखाई देता है। लेकिन कच्चे सामान के बदले रोटी और पकी हुई दाल बदलने के लिए उसके पास जरूरी इकन्नी नहीं है। मैहरा हाथ में ली हुई लोई पीटते हुए उसे हिकारत से देखते हुए कहता है- 'चार पैसे भी नहीं है? मुफ्त में राशन लाया है?' पुरी को स्वीकारना पड़ता है कि ऐसा ही है। बिना इकन्नी के बदले में सिर्फ दो रोटियों और दाल-सब्जी के उसके प्रस्ताव को मान लेने के अतिरिक्त पुरी के आगे और कोई रास्ता नहीं है। अपना सामान उसे सौंपकर पुरी दुकान के भीतर बिछे टाट की पट्टी पर बैठ जाता है। फिर उसी ढाबे पर दिहाड़ी शुरू करके अपने लिए कोई आगे का रास्ता निकाल लेने को तैयार हो जाता है। कम से कम पुरी के लिए यहीं सूद जी से भेंट होने के बाद, आगे का यह रास्ता जल्दी ही निकल भी आता है जबकि और बहुतों के साथ ऐसा नहीं होता है।

पुरी के मोहभंग की प्रक्रिया वस्तुत: और बहुत पहले शुरू हो चुकी है। कनक का पत्र लेकर नौकरी की तलाश में लखनऊ जाने पर मिसेज पंत और अवस्थी जी जैसे कांग्रेसी नेताओं के व्यवहार से उसे आंतरिक पीड़ा होती है। उनके निवास और कार्यालय के उसके अनुभव उसमें खीझ पैदा करते हैं। 15 अगस्त को जब देश स्वाधीन हुआ, वह, नैनीताल में था। वहीं कनक अपने बहन-बहनोई के साथ उनके परिवार में रह रही थी। स्वाधीनता प्राप्ति पर मनाए जाने वाले जश्न में पुरी की कहीं कोई भावात्मक हिस्सेदारी नहीं है। उपेक्षा और अपमान की प्रतिक्रिया उसे तिलमिला देती है। स्वाधीनता की घोषणा के समय कनक उससे साथ रहने का अनुरोध करती है। उसके इस अनुरोध पर पुरी की खीझ भरी प्रतिक्रिया है- 'हमारे लिए क्या स्वतंत्रता है?.....हम लोगों के तो घर-बार उजड़ रहे हैं। हम लोग बलिदान हो रहे हैं। यह लोग तो दूसरों के बलिदानों से होम करके उसका श्रेय ले लेना चाहते हैं। यह लोग अपने आप को समझते क्या हैं? सन्

1942 में जब संकट था तो फोन करके जेल चले जाते थे कि पुलिस का थप्पड़ न सहना पड़ जाए। हमने भी स्वतंत्रता के लिए संकट सहा है, जेल भुगती है। अब हमारे लिए राष्ट्र-निर्माण के उपदेश रह गए हैं?'

कांग्रेस की जिस सुविधापरस्ती और संघर्षहीनता की पुरी कटु आलोचना करता है, पहला मौका मिलते ही वह जालंधर में सूद जी की इसी राजनीति का एक हिस्सा बन जाता है। अपना सारा अतीत, उसके आदर्श, सपने और नैतिक-राजनैतिक मूल्य वह भूल जाता है। लेकिन दूसरे लाखों लोगों के लिए ऐसी स्थिति नहीं थी। स्वयं सुविधा की स्थिति में हो जाने पर वह शरणार्थियों के कष्ट की ओर से बेपरवाह नहीं हो गया था। उनकी सहायता का काफी उत्तरदायित्व उसने संभाल लिया था। रोज सुबह-शाम वह घंटे-दो-घंटे के लिए संघ के दफ्तर में जाता था। सरकार की ओर से सिले-सिलाए कपड़े बाँटने का काम उसी के जिम्मे था। लेकिन धीरे-धीरे वह अपने सामाजिक और पारिवारिक उत्तरदायित्वों से बचते हुए अपने लिए सुखी और सम्पन्न व्यक्ति की राह पकड़कर संतुष्ट हो जाता है। स्वतंत्रता के बाद की मध्यवर्गीय पीढ़ी की यातनाएँ, असफलताएँ और मोहभंग के बाद व्यवस्था का हिस्सा बन जाने का जो रूपक मोहन राकेश कालिदास के माध्यम से 'आषाढ़ का एक दिन' में प्रस्तुत करते हैं, जयदेव पुरी की त्रासदी भी उससे बहुत भिन्न नहीं है।

स्वाधीनता और कांग्रेसी राज्य से मोहभंग का एक अन्य उदाहरण पुरी के विधानसभा क्षेत्र मुकेरियां का जाट किसान सरदार बेलसिंह और उसका परिवार है। इसे समूचे किसान-वर्ग के असंतोष और मोहभंग का एक प्रतिनिधि उदाहरण भी माना जा सकता है। यहाँ के पुराने निवासियों और वहाँ से पलायन करने वाले मुसलमान किसानों की धरती पर आकर बसे सिख-हिंदू किसानों ने अपना वोट पुरी को नहीं, कांग्रेस और दो बैलों की जोड़ी के चिह्न के नाम पर दिया था। एक दिन जब पुरी सूदजी के साथ बाहर गया हुआ था उसके बंगले में एक बहुत ऊँचे क़द का सिख जाट एक स्त्री और तीन बच्चों के साथ घुस आता है। लंब-तड़ंग जाट के हाथ में सिर से ऊँची लाठी थी। सुबह के समय खूब जाड़ा होने पर भी उसके शरीर पर कुर्ता नहीं था। घुटनों तक बहुत मैला-मटियाला जाँघिया था। सिर पर रस्सी की तरह लिपटी बहुत मैली पगड़ी में से केशों की लटें और पगड़ी की धज्जियां लटक रही थी। इसी तरह उसके साथ की स्त्री का दुपट्टा, कुर्ता, सलवार सब मैले और फटे हुए थे। उसकी गोद में पुरी की बेटी जया की आयु की नाक बहती बच्ची, फटे हुए खेस के टुकड़े में लिपटी थी। छः बरस का लड़का जाँघिया और फटी हुई सूती बनियान पहने था। सर्दी से उसके रोयें खड़े थे। उससे बड़े लड़के के शरीर पर फटा हुआ कुर्ता भी था। पुरी के चुनाव-क्षेत्र से लोग कभी-कभार शिकायत या किसी प्रार्थना के लिए सिफारिश के लिए आते रहते थे। पुरी उनसे चाय-लस्सी के लिए पूछकर सौजन्यपूर्वक व्यवहार करता था। उसकी अनुपस्थिति में कनक समझती है कि यह परिवार भी ऐसे ही किसी कारण से आया होगा। कनक के पूछने पर वह आदमी गुस्से और चुनौती के स्वर में बताता है कि उसने जमीन के लिए सभी संबंधित अधिकारियों को लिखा, दो चिट्ठियाँ पुरी को भी लिखीं लेकिन कहीं से कुछ न होने पर अब यहीं परिवार लेकर आ गया है। भूख से मरना है तो सब यहीं मरेंगे-पुरी और कुछ नहीं करेगा तो पाँच जीवों को मसान ले जाकर तो फूँकेगा। कोई संदर्भ स्पष्ट न होने पर कनक पूछती है-'कैसी चिट्ठी?' इससे वह बूढ़ा सिख और बिफर उठता है, 'कैसी चिट्ठी?' मर्द बिगड़ उठा, तुम लोग बंगलों में पलंगों पर लिहाफ ओढ़कर मेंबरी के ऐश करो। कुण के हलवे खाओ, लस्सी-दूध पियो। तुम्हें हमारी चिट्ठी पढ़ने की फुर्सत कहाँ? पुरी बाबू बड़े-बड़े चोंगे लगाकर, ऐसे-ऐसे 'लारे-लप्पे' देकर वोट माँगता था-कांग्रेस सरकार सबको जमीन देगी, हल-बैल के लिए तकावी देगी, बिजली से कुएँ चलेंगे। हमारे साथ यह जुल्म किया कि जो बारह घुमां जमीने अलाट हुई थी वह भी छीनकर अपने जमाइयों को सौ-सौ, दो-दो सौ घुमां दे दी है। या तो जमीन दो, नहीं तो वहाँ जाड़े-भूख से मरने से यहाँ तुम्हारे ही सिर पर मरेंगे। मरकर देव बनकर भी तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ेंगे।'

उसका गुस्सा कनक को दयनीय लगता है। वह अपनी बच्ची की पुरानी फ्राक उसकी बच्ची के लिए ले आती है और उसके सामने बैठकर शांति और हमदर्दी से उसकी समस्या सुनती है। यह बेला सिंह पश्चिम में सियालकोट जिले से आया था। आने के बाद उसने पश्चिम चले गए किसी मुसलमान किसान की बारह घुमां जमीन और कुएँ पर कब्जा कर लिया था। वह 'नरोहा' में शिकमी किसान था। पश्चिम में वह अपनी छूटी हुई जमीन का कोई प्रमाण पत्र नहीं दे सका था। सन् 1950 में उस पर बेदखली का हुक्म हो गया। उसकी जमीन दसौदा सिंह को दे दी गई जिसके पास डेढ़ मुरब्बा नहरी जमीन पश्चिम में छोड़कर आने के कागज थे। बेलासिंह अकाली और कांग्रेसी आंदोलनों में भाग ले चुका था और राजनीति से अपरिचित नहीं था। अब तीन वर्ष मालिक किसान बनकर, फिर खेत मजदूर बनने को तैयार न था। उसने अपनी बेदखली के खिलाफ अर्जी दे दी थी। चुनाव में उसने कांग्रेस का साथ दिया था। सन् 1952 तक उसकी बहुत सी तारीखें पड़ती रहीं और चुनाव के बाद ही उसके विरुद्ध फैसला हो गया। दासौदा सिंह ने कुर्क अमीन और सिपाही ले जाकर उसकी जमीन पर कब्जा कर लिया था।

बाद में जब पुरी उस बूढ़े जाट सिख को कानून की बराबरी और हेकड़ी छोड़कर अदालत में जाने की बात कहता है तो बेलासिंह और भी ऊँचे स्वर में कहता है देखता नहीं है, बदन ढकने और पेट भरने को पैसा नहीं है। तू मुझे अदालत में मुकद्दमा लड़ने की बातें सिखाता है। मैं सब जानता हूँ तुम्हीं कानून बनाने वाले हो, तुम्हीं अदालत में फैसला देने वाले हो। दसौदा सिंह अपनी हिम्मत पर मेरी जमीन छीन लेता तो मैं समझ लेता कि मैं नकारा हूँ, जिंदा रहने लायक नहीं हूँ, बाल-बच्चों को लेकर कुएँ में कूद पड़ता। तुम्हारी पुलिस ने मुझे जमीन से हटाया है, तो तुम्हारी पुलिस मुझे दूसरी जमीन दे या तुम दो। पहले 'नरोहा' से उखाड़ा, 'मुंदरी' में जाकर सिर छिपाया। वहाँ भी नहीं रहने दिया। जाड़े और भूख से मरना है तो तुम्हारे सामने ही मरेंगे। तुम देखकर दिल ठंडा कर लो।' बेलासिंह का एक ही तर्क है कि वह पुलिस और डिप्टी-लाट को नहीं जानता। जो उससे वोट माँगने गया था, वह अपने इंसाफ के लिए उसी को पकड़ेगा।

बेलासिंह पंजाब के उस विस्थापित छोटे किसान का एक प्रतिनिधि उदाहरण है जिसे विभाजन की आँधी में अपनी धरती छोड़नी पड़ी है और इस विस्थापन का कहीं कोई अंत नहीं है क्योंकि जिस कांग्रेस पार्टी को उसने वोट दिया है, जिससे वह कुछ अपेक्षा कर सकता है, वह अंततः पूँजीपतियों और साधन सम्पन्न लोगों की पार्टी है। पुलिस और सरकारी अमला इन बड़े आदमियों को ही लाभ पहुँचाने के लिए हैं। इस समस्या के समाधान के लिए आपसी बात-चीत में, गिल जब इस समस्या के समाधान के लिए उत्पादन के अन्य साधनों की व्यवस्था की तरह खेती की धरती की व्यवस्था या फिर उत्पादन के अन्य साधनों के राष्ट्रीयकरण की बात करता है तो पुरी उसे बीच में टोक कर रोक देता है। कुछ झल्लाहट के साथ वह पंजाब के मूल विधान की अवज्ञा का तर्क देता है, अर्थात् जो नियम देश में कहीं लागू है ही नहीं वह पंजाब में कैसे हो सकता है। सिर पर सवार समस्या का आसान समाधान उसे पुलिस ही दिखाई देती है। पुरी द्वारा कोतवाली में फोन किए जाने पर जब पुलिस की लारी आती है तो बेलासिंह शहीदी मुद्रा में नारे लगाने लगता है। पुलिस उसे लाठी दिखाकर सत्याग्रह का पाठ अच्छी तरह पढ़ाने की धमकी देती है। कनक हस्तक्षेप करके पुलिस को मारपीट से रोककर उस बूढ़े सिख को कहीं और ले जाने का अनुरोध करती है। फिर सिपाही यही करते हैं। इस स्थिति को चित्रांकित करते हुए लेखक लिखता है-'दो सिपाहियों ने बेलासिंह को कंधों और पांओं से पकड़कर उठा लिया। उसकी स्त्री और बच्ची चीख-चीख कर रोने लगीं। सिपाही बेलासिंह को लारी की ओर चले तो वह ऊंचे स्वर में चिल्ला रहा था- लोगों देखो, जुल्म हो रहा है! मैं इंसाफ के लिए अनशन कर रहा हूँ। ये मुझे जेल ले जा रहे हैं।' पति के अनिश्चित भविष्य से डरकर उसकी पत्नी भी अपने बच्चों को लेकर उस लारी में जा बैठती है। बेलासिंह के नारों और दुहाई और

उसकी पत्नी तथा बच्चों के रोने-बिलखने से बेखबर पुलिस की लारी उन्हें किसी अज्ञात दिशा की ओर ले जाती है। यह स्वाधीन देश के नेताओं और उसके तंत्र से गरीब और लुटी-पिटी जनता को मिली सौगात है, जिसकी इन नेताओं की नीतियों और सत्ता के मोह के कारण ही यह दशा हुई है।

एक भिन्न तथा और भी त्रासद स्तर पर मोहभंग कनक और गिल को भी होता है, जिन्होंने कभी अपने साझा सपनों के साथ यह लड़ाई पुरी के साथ खड़े होकर लड़ी थी। निजी संबंधों में पुरी की बेईमानी और राजनीतिक अवसरवाद उसे कनक से दूर कर देता है। वह अपने स्वतंत्रता के अधिकार के लिए जूझने वाली युवती है जो बहुत कुछ सहकर भी जब पुरी को सुधारने में असफल होती है तो अपने लिए अपनी स्वतंत्र राह चुनने का साहस दिखाती है। उसके और गिल के पत्रकारिता के अनुभव, स्वाधीन भारत में पत्रकारिता की गिरती हुई स्थिति और साख इस व्यापक मोहभंग का ही एक हिस्सा है।

सूद की सहायता से पुरी प्रेस और वहाँ से निकलने वाले अखबार 'नाजिर' का मालिक हो जाता है। कभी लाहौर में पत्रकार की वैचारिक स्वतंत्रता के लिए उसने जो कठिन संघर्ष किया था, वैसी कोई स्वतंत्रता वह अपने अधीनस्थ कर्मचारियों और पत्रकारों को देने को तैयार नहीं है। इसी वैचारिक टकराहट के कारण गिल अंततः 'नाजिर' की नौकरी छोड़ देता है। पत्रकारिता में वह जनता के हितों को वरीयता देता है और उसके लिए संघर्ष करता है। देश की स्वाधीनता से पूर्व जो पत्रकारिता साम्राज्य विरोधी संघर्ष का एक हिस्सा थी वह अब सरकार की मुखापेक्षी होकर अवसर और सुविधाओं की तलाश में भटक रही है। इससे ईमानदार, निष्ठावान और सिद्धान्तप्रिय पत्रकारों का मोहभंग अनिवार्य है। अब पत्रकारिता राष्ट्रीय प्रचार और दूतावासों से मिली सुविधाओं में सिमटकर रह गई है। स्थिति पर टिप्पणी करते हुए गिल कनक को समझाता है कि पत्रकार अब साफ तौर पर दो दलों में बँट गए हैं। एक ओर सत्ता से छूट और सुविधा लेकर उसकी जी-हजूरी करने वाले लोग हैं और दूसरी ओर सत्य, न्याय और साधारण जनता का पक्ष लेकर इन सबके लिए संघर्ष करने वाले लोग है। मोहभंग की प्रक्रिया से गुजरकर ही गिल इस सच्चाई को समझ सकता है। वह दिल्ली आने के लिए कनक को प्रोत्साहित करते हुए कहता है, 'बिक सकने वालों ने ईमानदारी की मेहनत का अवसर हम लोगों के लिए छोड़ दिया है। यहाँ तुम्हारे लिए काम की कमी नहीं होगी.....। यह वस्तुतः मोहभंग के शिकार लोगों की व्यापक एकजुटता का संकेत है। राष्ट्रीय हितों और देश की साधनहीन जनता की दृष्टि से सोचने-विचारने की क्षमता इनमें ही बची है। इसके माध्यम से उपन्यासकार ने अपने आशावादी दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है।

3.3 सत्ता की राजनीति और कांग्रेसी अवसरवाद

जनता की हताशा और मोहभंग का मुख्य कारण यह था कि अकूत बलिदानों और संघर्षों के बाद जो आधी-अधूरी और खंडित स्वतंत्रता मिली थी उसमें भी देश के कर्णधार बने नेता लोगों की अपेक्षाओं पर पूरा नहीं उतर रहे थे। धारासभाओं के सदस्यों को लोग एम.एल.ए. न कहकर घृणा से 'मैले' कहने लगे थे। इस स्थिति के आने में अधिक समय भी नहीं लगा। कांग्रेस के विरोध में कोई दूसरा शक्तिशाली प्रतिपक्षी राजनैतिक संगठन नहीं था। जो संगठन थोड़े बहुत सक्रिय थे उनमें कम्युनिस्ट पार्टी और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ प्रमुख थे। कम्युनिस्ट पार्टी ने देश को मिली आजादी को झूठी बताकर अपने लिए दमन का रास्ता खोल दिया था। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की सांस्कृतिक और आर्थिक नीतियों के कारण उसका कभी कोई व्यापक जनाधार नहीं बन सका। रही-सही कसर गांधी जी की हत्या में उसकी संलिप्तता के संदेह ने पूरी कर दी। इस तरह देश की स्वाधीनता से लेकर पहले आम चुनाव के बीच के पाँच वर्ष, सन् 1947 से 1952 तक, विरोधी राजनैतिक

पार्टियों के दमन और कांग्रेस के सत्ता सुख का स्वर्णकाल था। काले बाजारियों और भ्रष्टाचारियों को पास के लैंपपोस्ट पर फाँसी देने की नेहरू जी की सारी पूर्व घोषणाएँ झूठी साबित हो रही थी। लोग जानते थे कि किसी विकल्प के अभाव में चुनाव में कांग्रेस ही विजयी होकर पुन: सत्ता में आयेगी। निराशाजन्य उपेक्षा से लोग कह देते थे-इन्हें ही राज कर लेने दो। लोग मानते थे कि पाँच बरस से खाते रहने के बाद, इनका पेट कुछ तो भरा होगा। उन्हें लगता था कि थोड़ा और खाकर इनका पेट भर जाएगा। दूसरा कोई आयेगा तो जितना ये खा चुके हैं, पहले उतना खाकर फिर और खायेगा।

देश की स्वाधीनता आंदोलन के दौर में भी कांग्रेस पूँजीपतियों और सेठों की पार्टी मानी जाती थी। लेकिन गांधी जी ने चवन्नियां मेम्बर बनाकर उसे व्यापक जनाधार दिया था। देश की आजादी के बाद, सत्ता सुख की आकांक्षा में, वह और भी भ्रष्ट और अवसरवादी पार्टी में बदल गई। अंग्रेजी सरकार के पुराने राय बहादुर और खैर ख्वाह, अमन सभाई और सरकारी अमलदारी से लाभ उठाने वाले लोग, कांग्रेस के मेम्बर बनकर सफेद नोकीली टोपी पहनने लगे थे। अब कांग्रेस का चंदा चार-चार आने और रूपये रूपये की रसीदों से इकट्ठा नहीं किया जाता था। चुनाव फंड में मिलों, कपनियों और बड़े-बड़े करोड़पतियों से हजारों और लाखों में चंदा आता था। कांग्रेस से संबंध रखनें वाले जो लोग चार साल पहले सौ-सवा सौ की नौकरियों से निर्वाह करते थे अब अपने संबंधी और परिचितों के मंत्री बन जाने या किसी महत्वपूर्ण कमेटी का मेम्बर हो जाने पर जहाँ-तहाँ हजार-बारंह सौ की नौकरी करने लगे थे। योग्यता और क्षमताओं के बदले सिफारिश और पैरवी के दौर की शुरुआत वस्तुत: यहीं से हुई जिसके कारण परिश्रमी, ईमानदार और निष्ठावान लोगों में हताशा की अनुभूति और सघन एवं व्यापक हुई। मंत्रियों और राजनैतिक वर्चस्व वाले व्यक्तियों के मैट्रिक भी पास न कर पाने वाले सपूत, सरकारी विभागों के अध्यक्ष बन कर हजार रूपये मासिक पाकर भी असंतुष्ट थे। यह वह दौर था जिसमें मंत्रियों के दामादों के लिए मैनेजिंग डायरेक्टर से कम कोई पद सोचा ही नहीं जा सकता था।

जो जयदेव पुरी कभी धाँधली और भ्रष्टाचार से घृणा करता था, अपनी नौकरी और भविष्य को भी खतरे में डालकर जो लाभ के लिए संघर्ष करता था, अधिकार और सत्ता पाकर वह नैतिक पतन की पराकाष्ठा तक पहुँचता है। जिस कनक ने एक ओर तराजू में पूरी दुनिया और दूसरी ओर उसे रखकर, अपने परिवार और संबंधियों के लम्बे विरोध के बावजूद उसे पाया था, वही पुरी उर्मिला के प्रसंग में उसे धोखा देता है। अपने इस नैतिक पतन के कारण ही वह पिता और परिवार को झूठ बोलकर जालंधर आने से रोकता है क्योंकि उनसे वह छिपाता है कि वह इस तरह उर्मिला के साथ रह रहा है। सूद की सहायता से वह प्रेस और 'नाजिर' नामक अखबार का मालिक बन बैठता है और प्रेस की जिस स्वाधीनता के लिए उसने स्वयं संघर्ष किया था, वही स्वतंत्रता गिल जैसे ईमानदार कर्मचारियों को नहीं देता। वह अपनी राजनैतिक हैसियत के प्रति बहुत सजग है। अपने और सूदजी के प्रभाव से उसने बाद में पिता को बुलवाकर कोलडिपो और रिहायशी मकान दिलवा दिए हैं। वह विस्थापित पंजाबियों की नेतागिरी करके अपने वर्चस्व को बढ़ाता है। हाई स्कूल बोर्ड की पाठ्यपुस्तकों की अनुमोदक समिति सहित वह कई कमेटियों का सदस्य है। जिस सोमनाथ से अपनी बहिन तारा के विवाह का वह विरोधी था, दलाली और वैसे ही दूसरे धंधों में अपनी सामाजिक हैसियत बना चुके उसी सोमराज से संबंध कायमकर वह तारा को धोखा देता है। सोमनाथ और तारा के मध्य घटी घटनाओं की पूरी जानकारी के बाद भी पुरी सोमनाथ का ही पक्ष लेता है।

कांग्रेस में, सब कुछ के बावजूद, सूद जी जैसे नेता बहुत कम थे, जिनके प्रति अभी भी लोगों का विश्वास बना था। कांग्रेसी नेताओं और मंत्रियों के बीच वे बहुत कुछ अफवाहों से मुक्त थे। उनकी न जमीन-जायदाद बटोर लेने वालों के रूप में निंदा थी, न मकान खड़ा कर लेने या बैंक बैलेंस जमा करने की। उनके विरोधी भी उन्हें इन दोषों से मुक्त मानते थे।

उनके हजारों समर्थकों ने उनकी स्थिति से लाभ उठाया। और हजारों लाभ उठाने की आशा में थे। वे सब लोग उनके प्रति समर्पित और उनके कट्टर समर्थक थे। सूद जी सिर्फ इतना चाहते थे कि धारा सभा में अपने अधिक से अधिक समर्थक चुनवाकर भिजवा सकें।

कनक और पुरी में क्रमशः विकसित होते मतभेद और बढ़ती हुई दूरी का विश्लेषण करते हुए गिल कनक से कहता है - 'तुम अपने पति को अभी तक ठीक से नहीं पहचान पायीं।... .....पुरी अब बंटवारे से पहले का लंपन प्रोलिटेरियट (बेठौर, साधनहीन) नहीं रहा है। अब वह पेटी बूर्जुआ (कुछ पूंजी वाले) की भांति सोचता है। अब उसे सब ओर अवसर की कमी और व्यवसाय में विषमता नहीं जान पड़ती। उसकी जड़ें जम रही हैं। अब वह उलट-पुलट के विचारों से घबराता है। तुम मतभेदों को बढ़ाकर उसे चिढ़ा देती हो।' गिल द्वारा पुरी के अवसरवाद और सत्तासुख का यह विश्लेषण दूसरे कांग्रेसी नेताओं के संदर्भ में भी सटीक माना जा सकता है।

3.4 पुनर्वास का संघर्ष और प्रक्रिया

उपन्यास के पहले खण्ड के अंत में अब पाकिस्तान कहे जाने वाले क्षेत्र से लोगों को इस ओर लेकर आने वाला ट्रक ड्राइवर कहता है, 'मनुखों के देश धर्मों के देश बन गए। अपनी इस संक्षिप्त परन्तु अर्थपूर्ण टिप्पणी से वह वस्तुतः धर्म और राजनीति की मानव विरोधी प्रकृति को ही उद्घाटित करता है। लेकिन यह विभाजन देश की दोनों ओर की जनता के लिए एक भयंकर त्रासदी था। इस विभाजन की विभीषिका को सबसे अधिक स्त्रियों ने झेला। सामाजिक अपवाद और लोकाचार के भय से इस प्रकार खोई हुई स्त्रियों को फिर परिवार में वापस नहीं लिया गया। बंती अपने परिवार की चौखट पर ही सिर फोड़कर अपनी जान दे देती है, लेकिन उसके ससुराल वाले उसे स्वीकारने को तैयार नहीं होते।

एक अन्य दृश्य समाजसेविका कौशल्या देवी की देखरेख में शेखपुरा से आई स्त्रियों के जत्थे का है। उसमें भी चिंती नामक ऐसी ही एक युवती है। उसके पिता का परिवार लोहगढ़ कैंप में मिल जाता है। लेकिन वे लोग उसे अपने साथ लेने को तैयार नहीं होते। वे यह कहकर छुट्टी पा लेते हैं कि 'हमने तो ब्याह दी। अब ससुराल वाले जानें।' यह सुनकर काफिले की अन्य स्त्री गहरी साँस लेकर कहती है-'कहते हैं उन्होंने एक बार निबेड (निबटा) दिया।' रोती-बिलखती चिंती का दुख देखकर कैंप की अन्य स्त्रियाँ अपनी भूख-प्यास भूल चुकी थीं। नत्थासिंह की पुकार पर, प्रसाद छकने के नाम पर, दो मुट्ठी चनों के आहार ने उनकी भूख-प्यास को नए सिरे से चेता दिया।

कुरुक्षेत्र जाती गाड़ी से अंबाला शहर पर जब बंती और तारा अपनी पोटलियाँ बगल में दबाए, एक दूसरे का हाथ पकड़े, स्टेशन के बाहर निकलती हैं तो बंती तारा का हाथ खींचते हुए मूंगफली बेचते एक आठ-नौ बरस के बच्चे को दिखाते हुए कहती है-'साधू! ओ साधू रामा।' वह लड़का ऊँचे स्वर में पुकार-पुकार कर मूंगफलियाँ बेच रहा था। पुकार सुनकर कमीज-जांघियाँ पहने बंती की ओर देखता है और फिर दौड़कर उससे लिपट जाता है। वह उसकी ससुराल का बालक है जो बंती को 'चाच्ची', 'चाच्ची' कहकर बहुत-कुछ बताता है। साधू की मां की मृत्यु का समाचार बंती को मिल चुका था। अब उसकी बहन सन्नों की मृत्यु का समाचार उसे देना था।

पास-पड़ोस की दुकानों में रहने वाली शरणार्थी स्त्रियाँ इन लोगों को घेर लेती हैं। वे उनके शोक में उन्हें सहयोग देती हैं। और कुछ कर न पाने की स्थिति में संवेदना ही उनकी कुल पूँजी है। विभाजन से पहले यहाँ मुसलमान, नानबाई, टीनगर, लोहार, दूध-दही वाले और मोचियों की दुकानें थीं। अब इन दुकानों में पंजाबी शरणार्थियों ने हलवाई, परचून और

बिसाती की दूकानें लगा ली थीं। साधू गर्व से बताता है कि वह स्टेशन के सामने सड़क पर दिन भर में रूपये-सवा की मूंगफली बेच लेता है। सरकार और स्वयंसेवी संस्थाओं से अधिक सहायता ये लुटे-पिटे लोग ही एक-दूसरे की करते हैं बंती अपने ससुरालियों की चौखट पर सिर पटक-पटक कर तारा की गोद में ही अपने प्राण छोड़ती है। बंती की इस त्रासद मृत्यु से जैसे तारा एक बार फिर अकेली और असहाय हो जाती है। बंती की अर्थी उठ जाने पर एक युवती सहानुभूति से उसे अपने घर चलने को कहती है ताकि वह हाथ-मुंह धोकर पानी पी सके। लेकिन तारा कैंप जाने की जिद करती है तो दो लोग तारा को सहारा देते हुए टांगों के अड्डे तक पहुँचाते हैं।

कैंप में स्थिति और भयावह है। तारा के इतने विलम्ब से और वह भी अकेले लौटने पर निहालदेई ताने कसती है। बंती के खून में रंगी तारा की शलवार देखकर कैंप की औरतें उसका कुछ और ही अर्थ निकालती हैं। तारा में प्रतिवाद की शक्ति भी जैसे बची नहीं है। वहीं तारा श्यामा के संपर्क में आती है और अपने संघर्ष से अपना जीवन नए सिरे से गढ़ पाने में सफल होती है। लेकिन उसने यह भी देखा है कि सचमुच हताशा और परेशानियों ने जूझ न पाने के कारण धम्मो और सुखदेत जैसी अनेक जवान लड़कियाँ गलत राह भी पकड़ने को मजबूर हुई हैं। इसी तरह लाहौर में भोला पांधे की गली वाली पूरनदेई की लड़की सीता, तारा को अचानक अपने दफ्तर के बरामदे में मिल जाती है। नौ महीनों में ही उसमें आए परिवर्तन को देखकर तारा चकित रह जाती है। 'लग रहा था जैसे उसका ब्याह हो गया है। चेहरे पर पाउडर-सुर्खी, आँखों में कानों तक खिंचा हुआ सूर्मा, होंठों पर लाली, माथे पर बिंदी और भंवर डालकर बांधे गए बाल। सीने पर कमीज का उभार और कसाव देखकर तारा अपनी आंखे हटा लेती है।' तारा शरणार्थियों के पुनर्वास मंत्रालय के दफ्तर में ही काम करती है। आते-जाते बस-स्टैण्ड के पास पूरा चलता-फिरता रेस्त्रां वह साईकिल पर देखती है। संघर्ष करते शरणार्थियों के परिश्रम और स्वाभिमान को देखकर तारा को गर्व अनुभव होता है। मुफ्त राशन लेने से उलाहने जब-तब कैंप में सुनती रही थी। वह सोचती है-रिफ्यूजियों के मुफ्त स्थान और राशन मांगने की लांछना का इससे अच्छा उत्तर और क्या हो सकता है! वह स्वयं भी लोगों की भरपूर मदद करती है। संगरूर से आई बुढ़िया के परिवार की वह भरसक सहायता करती है। अंतत: सीतो को भी रतन से मिलाकर वह सही राह पर ले आती है। अनेक शंकाओं और ऊहापोह के बीच अंत में वह स्वयं भी समाजवादी अर्थशास्त्री डॉ. प्राणनाथ को अपना जीवनसाथी बना लेती है।

3.5 राजनैतिक मूल्यहीनता के अन्य रूप

जब पुरी कनक का पत्र लेकर अपनी नौकरी के सिलसिले में लखनऊ आकर मिसेज पंत और अवस्थी जी से मिलता है तो उत्तर प्रदेश के इन कांग्रेसी नेताओं से उसका गहरा मोहभंग होता है। इन लोगों का चारित्रिक और सांस्कृतिक स्तर देखकर उसे यह लगता ही नहीं है कि ये देश को मिलने वाली आजादी के कर्मठ सिपाही हैं। लंपटता, स्वार्थ और दूसरों की मजबूरी से लाभ उठाने की प्रवृत्ति उन्हें सहज मनुष्य भी नहीं रहने देती। पंजाबी लड़कियों के बारे में उनका ख्याल है कि वे खूब आजाद हैं और खुलकर खेलने वाली होती है। अपनी नौकरी के लिए इनसे टकराते हुए कनक का अनुभव भी यही रहा है। प्रसाद के संदर्भ में तारा की स्थिति भी बहुत भिन्न नहीं है। उपेक्षा द्वारा दूसरों में हीनताबोध का भाव पैदा करना उनका खास स्वभाव है। इन लोगों से मिलकर आने वाली आजादी को 'अपनी' समझ पाने का जैसे कोई भाव ही पुरी के मन में पैदा नहीं होता। यही कारण है कि नैनीताल लौटकर स्वतंत्रता प्राप्ति वाले जश्न में वह अपने को भावात्मक रूप से अनुपस्थित अनुभव करता है।

उपन्यास में अंकित जयदेवपुरी का पतन वस्तुत: इस राजनैतिक मूल्यहीनता को ही स्पष्ट करता है। जिस कनक ने अपना सब कुछ छोड़कर उसके साथ रहने का निर्णय लिया था, उर्मिला के कारण वह उसे धोखा देता है। उसका यह वैचारिक स्खलन ही अब उसे कनक जैसी निष्ठावान, भावप्रवण और समान साथी को छोड़कर उर्मिला जैसी नितान्त समर्पित प्रिया की ओर ले जाता है। तथाकथित नेताओं का ढोंग और छद्म उसके चरित्र का मुख्य हिस्सा बन जाता है। राजनीति, पत्रकारिता, समाजसेवा, परिवार हर कहीं वह मुखौटा लगाकर रहता है और अपने अलावा और किसी के प्रति सच्चा नहीं रह जाता। ऐसे आदमी की जो अनिवार्य नियति होती है, अंतत: सब ओर से कटकर अकेला हो जाना, वही सब उसके साथ भी होता है।

राजनीति में व्याप्त मूल्यहीनता और अक्षमता के कारण नौकरशाही को हावी होने का मौका मिलता है। चापलूसी और स्वार्थ साधना की इस विकसित होती परम्परा में उन्हें-नौकरशाहों को-यह समझने में देर नहीं लगती कि ऊपर के चंद लोगों को साधने से ही सब कुछ स्वत: सध जाता है। इसी तरह बुद्धिजीवियों में भी ह्रास का संकेत मिलने लगता है। सही बात को कहने का साहस छोड़कर वे चापलूसी से काम लेते हैं क्योंकि इसी में उन्हें अपना भविष्य दिखाई देता है। 'भारतीय मानव-विज्ञान परिषद्' के उद्घाटन में स्वागत समिति का अध्यक्ष प्रधानमंत्री नेहरू को 'हमारे वैज्ञानिक प्रधानमंत्री' कहकर संबोधित करता है। दिल्ली विश्वविद्यालय उन्हें 'डाक्टर आफ साइंस' की मानद उपाधि देता है। डॉ. सालिस जैसे कुछ लोग उनके सवा घंटे के भाषण में व्यक्त उनकी विकास-योजनाओं का विरोध करते हैं तो उनकी उपेक्षा की जाती है। स्वयं प्रधानमंत्री प्रतिक्रिया में उस पर खीझ प्रकट करते हैं। कनक, तारा और गिल इस प्रसंग पर बहस भी करते हैं कि इसमें गलती विश्वविद्यालय के अधिकारियों की है या स्वयं प्रधानमंत्री की-जो यह जानते हुए भी कि वह राजनीतिज्ञ हैं, वैज्ञानिक नहीं - ऐसी डिग्री को लेने से इंकार कर देना चाहिए। कनक इस कार्रवाई को खुले रूप में खुशामद को प्रोत्साहन देने वाली कार्रवाई कहती है। इस पर टिप्पणी करते हुए गिल कहता है, 'प्रधानमंत्री की आँखों में घी की सलाई लगा दीजिए। उन्हें कुछ दिखाई नहीं देगा, उन्हें जो कुछ आप कहेंगे, उसी पर विश्वास करना होगा.....' (झूठा सच -2, पृ. 649) और फिर वह विस्तार से जनता की उपेक्षा की कीमत पर नेताओं की साफ-सफाई का अपना अनुभव सुनाता है। चापलूसी, स्वार्थ और कामचोरी के विरुद्ध यशपाल बुद्धिजीवियों की एक कर्मठ और न्यायपूर्ण परम्परा का संकेत कालीचरण कौल, तारा, कनक, गिल, डॉ. सालिस, चड्ढा और डॉ. प्राण आदि के माध्यम से देते हैं।

बड़े उद्योगपतियों और पूँजीपतियों से धन या दूसरे रूप में पार्टी के लिए चंदे की एक नई परम्परा की शुरुआत इसी दौर में होती है। कांग्रेस पार्टी ने अपने होने वाले सत्र के लिए मय पेट्रोल के दो गाड़ियाँ उद्योगपति अगरवाला से मांगी है। इस पर क्षोभ व्यक्त करते हुए उनका बेटा नरोत्तम तारा से कहता है, 'जानती हैं पेट्रोल पर भी राशन है। कांग्रेस ने सेशन के लिए डैडी से मय पेट्रोल दो गाड़ियाँ मांगी हैं। उन्हें नहीं ख्याल पेट्रोल कहाँ से आएगा? इंग्लैंड में पेट्रोल का राशन था तो प्राइममिनिस्टर पार्टियों में पैदल जाता था.....।' लोग बहुत आसानी से इसे समझ लेते हैं कि अपना ऊपरी रख-रखाव बदलकर इस कांग्रेस में अंदर तक अपनी पैठ कैसे बनाई जा सकती है। जो मिसेज़ अगरवाला दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान ब्रिटिश निटिंग क्लब की मेम्बर थीं और स्वेटर बुनवाकर ब्रिटिश सिपाहियों को भिजवा करती थीं अब वे गांधी जी की प्रार्थना सभा में खद्दर पहन कर जाती हैं-भले ही वह उनकी कमर पर मूंज की तरह गड़ता हो। घर की साज-सज्जा के लिए भी अब वे गांधी भंडार से खद्दर ही मंगवाती हैं।

महात्मा गांधी की हत्या के अवसर पर उनकी शवयात्रा के समय सत्ता द्वारा शक्ति और शान का प्रदर्शन भी अनेक लोगों को उद्वेलित करता है। तारा और नरोत्तम के पीछे खड़ा,

खद्दर की धोती-कुर्ता पहने युवक इस तड़क-भड़क पर अपना रोष प्रकट करते हुए कहता है, सदा ही ऐसा हुआ है। संत अपने जीवन में गरीबों के होते हैं। मृत्यु के बाद अमीर उन्हें छीन लेते हैं। भगवान बुद्ध भिक्षावृत्ति से जीवन बिताते थे। उनके निर्वाण के बाद राजा उनके प्रचारक और प्रतिनिधि बन गए.....।' जनता की समस्याओं के प्रति अपेक्षा और निजी शानशौकत के प्रति नेताओं का बढ़ता हुआ आग्रह ही देश की स्वाधीनता को एक झूठी और नकली आजादी में बदल देता है। समाजवाद और घोषित आर्थिक विकास की कल्याणकारी योजनाएँ उसी प्रकार झूठी साबित होती हैं जैसे सोमराज से हुआ तारा विवाह जो होकर भी वस्तुत: हुआ नहीं है। ये ही वे तत्व हैं जो देश की स्वाधीनता के इतने बड़े 'सच' को 'झूठा सच' में बदल देते हैं। इसी से उपन्यास के शीर्षक की सार्थकता सिद्ध होती है।

3.6 सरलीकृत आशावाद के आरोप पर विचार

यशपाल ने 'झूठा सच' के दूसरे भाग का अंत दूसरे आम चुनाव में जालंधर सीट से कांग्रेस के प्रत्याशी सूद की पराजय पर बुद्धिजीवियों की प्रसन्नता और उल्लास की अभिव्यक्ति से किया है। समाचार एजेंसी का सहायक संपादक संगल हाथ में सौ रूपये का नोट लहराते हुए अपने साथियों को उस पर दस रूपये लगाने को उकसा रहा था-सूद जी के पक्ष में। लेकिन इसके लिए भी कोई तैयार नहीं था। सूद की हार-जीत से कांग्रेस पर कुछ प्रभाव पड़ने वाला नहीं था क्योंकि उसे बहुमत मिल चुका था। लेकिन फिर भी सूद की हार-जीत का फैसला उपन्यास में एक टेस्ट-केस के रूप में अंकित है। सूद के साधन सम्पन्न चुनाव के मुकाबले उसके विरोधियों के पास मोटर, जीप, ट्रक नहीं थे। लेकिन सूद और पुरी कांग्रेसी कुशासन और उसके शीघ्रता से हुए अध:पतन के प्रतीक हैं। प्रसाद एक चश्मदीद गवाह के तौर पर बताता है कि जालंधर की गली-गली में सूद और पुरी के चोर होने के नारों का शोर था। विरोधी तो विरोधी, कांग्रेस के भी कुछ निष्ठावान लोग कांग्रेस को पुरी जैसे व्यक्तियों से मुक्त करने की बातें कर रहे थे। इसी गहमा-गहमी के बीच टेलीप्रिंटर पर सूद की पराजय का समाचार उभरता है। लोग दफ्तर के अनुशासन को भूलकर खुशी में 'इंकलाब जिंदाबाद!' और 'तानाशाही मुर्दाबाद!' के नारे लगाने लगाते हैं। गिल यह समाचार कनक को देना चाहता है परन्तु वह घर पर नहीं है। फिर वह डॉ.साहब को फोन करना चाहता है, लेकिन इरादा बदलकर, मिठाई खरीदकर, टैक्सी पकड़कर स्वयं उसके यहाँ जा पहुँचता है। वह गिल के सत्रह हजार वोटों से हारने की सूचना नाथ और तारा को देकर मुंह मीठा कराने की बात कहता है। डॉक्टर सहसा गंभीर होकर टिप्पणी करता है-गिल अब तो विश्वास करोगे, जनता निर्जीव नहीं है! जनता मूक भी नहीं रहती 'देश का भविष्य' नेताओं और मंत्रियों की मुट्ठी में नहीं है, देश की जनता के ही हाथ में है'। नाथ की इस टिप्पणी से उपन्यास समाप्त होता है।

उपन्यास के इस आशावादी अंत को कुछ लोग सरलीकृत आशावाद का उदाहरण भी मानते हैं। कुछ लोग इसे लेखक के राजनीतिक अंतर्विरोध के रूप में भी देखते हैं कि वह जिस राजनीति का विरोध करता है, अंतत: उसकी जीत दिखाते हुए उसका समर्थन भी करता है। उपन्यास का यह आशावादी अंत आरोपित और यांत्रिक नहीं है। वह दो मूल्य-दृष्टियों के निर्णायक संघर्ष की एक सहज और स्वाभाविक परिणति है। जैसा कि 'झूठा सच' के रूसी अनुवाद की अपनी लंबी भूमिका में चेलिशेव संकेत करते हैं कि एक ओर यदि प्रसाद जी, अवस्थी जी, मिसेज पंत, सूद, अगरवाला दंपति जैसे अवसरवादी, भ्रष्ट, निकम्मे और अपनी राष्ट्रीय संस्कृति और मातृभाषा से घृणा करने वाले लोग हैं तो इनके प्रतिपक्ष के रूप में तारा, कनक, गिल, नाथ, चड्ढा, मर्सी, श्यामा, नरोत्तम आदि अनेक लोग हैं जो देश के बेहतर भविष्य के लिए एक निर्णायक संघर्ष करते हैं। इस संदर्भ में चेलिशेव लिखते हैं 'लेकिन यशपाल अपने आपको जीवन का केवल निषेधात्मक चित्रण करके ही सीमित नहीं

कर लेते हैं। वे बुराई और झूठ का पर्दाफाश केवल यथार्थ की बदसूरत अभिव्यक्ति की तीव्र आलोचना मात्र नहीं करते, वे वर्तमान से भिन्न एक बेहतर जीवन का स्वप्न भी देखते हैं,' जब जनता सुखी होगी और उनका बरसे से पीड़ित देश समृद्ध होगा। उनके ये सपने निराधार नहीं हैं.....' (यशपाल के पत्र : मधुरेश, संस्करण, 1977, उपन्यास के अंत को आरोपित आशावाद का उदाहरण मानना भ्रामक है। वह दो मूल्य-दृष्टियों वाले पात्रों के निर्णायक संघर्ष की एक स्वाभाविक परिणति है।

जहाँ तक लेखक के राजनीतिक अंतर्विरोध का सवाल है कांग्रेस की नीतियों और उसके सुस्पष्ट पतन के बावजूद उसकी जीत एक ऐतिहासिक सत्य है। लोग कांग्रेस की नीतियों से दुखी थे। उसका जनविरोधी चरित्र जनता में गहरे असंतोष का कारण था लेकिन राजनीतिक परिदृश्य में उसका कोई विकल्प भी नहीं था। जनसंघ घोर साम्प्रदायिक और फासीवादी पार्टी थी जो जातीय और सांस्कृतिक विद्वेष को ही अपना राष्ट्रीय एजेंडा मानती थी। लोहियावादी और कम्युनिस्ट आपस में गहरे मतभेद रखते थे और बाद में लोहियावादी भी जनसंघ के साथ चले गए। कम्युनिस्टों की वैचारिक प्रखरता और सुपरिभाषित आर्थिक-सामाजिक नीतियों के बावजूद कोई व्यापक जनाधार नहीं था–विशेषकर उत्तर भारत के हिंदी प्रदेश में। कांग्रेस के प्रत्याशी सूद जी की हार को एक टेस्टकेस बनाकर यशपाल केवल प्रतिपक्षी राजनीति की टोह लेते हैं। सूद इसलिए हारता है कि सारा विपक्ष उसके विरुद्ध एकजुट हो जाता है। यशपाल ऐतिहासिक तथ्यों के आधारहीन विरोध द्वारा दूसरे आम चुनाव में कांग्रेस को पराजित नहीं दिखा सकते थे क्योंकि सब कुछ के बावजूद सत्य यही था कि वह जीती थी और उसने केन्द्र सहित प्रायः सभी राज्यों में अपनी सरकार बनाई थी। सूद की हार से यशपाल यह संकेत देना चाहते हैं कि विपक्ष की ऐसी एकजुटता ही और जगह भी कांग्रेस को हरा सकती है। यह प्रयोग भारतीय राजनीति में एक दशक बाद शुरू हुआ जब संविद सरकारों ने कांग्रेस के वर्चस्व को चुनौती दी। यशपाल 'झूठा सच' में कांग्रेस की विजय दिखाकर भी, क्योंकि यह एक सत्य था, उसके वर्चस्व को समाप्त करने का संकेत देते हैं। कांग्रेस के संभावित प्रतिपक्ष का सजीव अंकन ही 'झूठा सच' को आरोपित और यांत्रिक निष्कर्ष से बचाता है।

3.7 उपन्यास के धारावाहिक प्रकाशन के प्रभाव की पड़ताल

'झूठा सच' के रूसी अनुवाद की अपनी भूमिका में चेलिशेव ने इस बात का उल्लेख किया है कि जब सन् 1957-58 में उसका धारावाहिक प्रकाशन 'धर्मयुग' में हो रहा था तो किसी कारणवश एक अंक में उसकी नियमित किस्त न छपने पर यशपाल को सात सौ पाठकों के पत्र मिले थे कि उसका धारावाहिक प्रकाशन बंद नहीं होना चाहिए। पता नहीं चेलिशेव की इस सूचना का स्रोत क्या है, वैसे वे यशपाल के संपर्क में भी रहे थे। हो सकता है यह सूचना आपसी बातचीत में उन्हें उन्हीं से मिली हो। यह भी संभव है कि पत्र लेखक पाठकों की संख्या कुछ अतिरंजित रही हो। लेकिन इतना सच है कि 'झूठा सच' का 'धर्मयुग' में धारावाहिक प्रकाशन उस पत्रिका के इतिहास और उसके समय की एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। उसके बाद, सन् 1963 में जब मैं स्वयं उनके संपर्क में आया, उनकी कुछ और रचनाएँ भी धारावाहिक रूप से 'धर्मयुग', 'सारिका' और 'माया' आदि पत्रिकाओं में छपीं। अभिमत और ब्लर्ब सामग्री के मुझे, सन् 1963 में, 'बारह घंटे' की 'धर्मयुग' में प्रकाशित किस्तें ही भिजवाई गई थीं। यशपाल की रचनाएँ धारावाहिक छपीं अवश्य, लेकिन ऐसा नहीं है कि चार्ल्स डिकेंस के धारावाहिक उपन्यासों की तरह उन्हें अपनी विक्टोरियन जनता की प्रतिक्रिया के अनुसार कथा में परिवर्तन की सुविधा रही हो। ऐसा भी नहीं था कि देवकी नंदन खत्री की तरह पुस्तक छप रही है और वे अगला हिस्सा, टुकड़े-टुकड़े, में नौकर या प्रेस के कर्मचारी के हाथ भिजवाते जाएँ। धारावाहिक प्रकाशन के लिए भिजवाई रचनाओं को भी वे एक ही बार में, संपूर्ण रूप में, पत्रिका को भिजवाते

थे। उसका कौन और कितना अंश पत्रिका में छपे इसकी पूरी छूट वे संपादक को देते थे। 'मेरी तेरी उसकी बात' का आरंभिक अंश कई किस्तों में 'सारिका' में छपा। 'सारिका' चूंकि मासिक पत्रिका थी, इतना बड़ा उपन्यास उसमें धारावाहिक छपना संभव नहीं था। इसी तरह 'सारिका' में प्रकाशित मौरिशस-यात्रा भी जितनी छपी है, मूल में उससे ढाई गुना तो है ही.....।' (यशपाल के पत्र, पृ. 105) कभी-कभी राजनीतिक कारणों से भी 'ध धर्मयुग' या अन्य पत्रिकाओं में प्रकाशित रचना के कुछ अंश निकाल दिए जाने का भी वे बुरा नहीं मानते थे-कम से कम अपने सम्मान का प्रश्न तो नहीं ही बनाते थे। बाद में पुस्तक अपने संपूर्ण रूप में ही छपती थी मूल पाण्डुलिपि के आधार पर। यही बात 'झूठा सच' के लिए भी लागू होती है।

'झूठा सच' के धारावाहिक प्रकाशन के बावजूद यह संभावना नहीं है कि पाठकों की प्रतिक्रिया के अनुसार उन्होंने उसमें कुछ परिवर्तन किया होगा। चूंकि रचना की संपूर्ण पाण्डुलिपि वे प्राय: एक ही बार में भिजवाते थे अत: उस पर प्राप्त पाठकों की प्रतिक्रियाओं से कृति की रचना-प्रक्रिया के प्रभावित होने की संभावना नहीं रहती थी। वैसे चूंकि उनकी पुस्तकें उनके अपने ही साथी प्रेस में छपती थीं, प्रूफ देखने की प्रक्रिया में वे अपेक्षित परिवर्तन अवश्य करते थे। लेकिन ये परिवर्तन सामान्यत: भाषा-शैली के परिमार्जन की दृष्टि से ही होते थे। छपने की प्रक्रिया में ऐसे परिवर्तन सबसे अधिक मेरी तेरी उसकी बात' में किए गए। उसके बारे में वे प्राय: ही कहते थे-इसे देखना तो एक तरह से इसे फिर से लिखना ही हो गया है।.....'झूठा सच' के संदर्भ में उसके धारावाहिक प्रकाशन के दौरान, पाठकों की व्यापक प्रतिक्रिया एक लेखक के रूप में उनके अहं को अवश्य संतुष्ट करती होंगी। उन प्रतिक्रियाओं का लाभ पाठकों की नब्ज पकड़ने की दृष्टि से वे अपनी आगामी रचनाओं में भी अवश्य उठाते होंगे। लेकिन इन सबसे रचना की प्रक्रिया अप्रभावित ही रहती थी।

3.8 सारांश

- देश की स्वाधीनता की घोषणा के पहले ही मोहभंग की प्रक्रिया शुरू हो चुकी थी। लखनऊ में कांग्रेसी नेताओं के उपेक्षापूर्ण रवैये से पुरी को लगता है कि जैसे वे लोग इस बात को मानने को तैयार ही नहीं है कि देश की इस स्वधीनता में उनके अलावा भी किसी और का योगदान है। जगह-जगह मनाए जाने वाले स्वाधीनता के उत्सवों में उसकी कोई मानसिक साझेदारी नहीं है। उत्तर प्रदेश से पंजाब की अपनी यात्रा में, परिवारियों और परिजनों की हितचिंता में, उसे जगह-जगह बर्बरता, लूटपाट और पंजाबियों के लिए बने अस्थायी शिविरों में इस अमानवीयता के दर्शन होते हैं।

- जालंधर में पुराने परिचित सूद जी के आकस्मिक भेंट के बाद पुरी के जीवन में एक निर्णायक बदलाव आता है। एक व्यक्ति के रूप में मध्यवर्गीय महत्वाकांक्षाओं और नैतिक पतन की उसकी कहानी यहीं से शुरू होती है और अबाध रूप से बढ़ती जाती है। सूद की सहायता और सहयोग से उसे 'नाजिर' जैसे अखबार और प्रेस मिल जाते हैं। वह कांग्रेस का विधायक हो जाता है। अनेक शैक्षिक और पाठ्य समितियों में उसकी पैठ बढ़ती है। लेकिन व्यक्ति जीवन में छद्म और पारिवारिक विघटन का उसका प्रस्थान बिंदु भी यहीं से शुरू होता है।

- पुरी के ही माध्यम से कांग्रेसी राजनीति की मूल्यहीनता, नैतिक पतन और अवसरवाद के अनेक रूप सामने आते हैं। कोटे और परमिट की राजनीतिक, पुनर्वास योजनाओं में व्याप्त धांधली और दलाल-संस्कृति का विकास यहीं से शुरू होता है।

- पुनर्वास की प्रक्रिया में पंजाबियों की अद्भुत जिजीविषा, संघर्ष-क्षमता आदि के दर्शन भी होते हैं। शरणार्थी शिविर से निकलकर पुनर्वास मंत्रालय तक की तारा की यात्रा इस

जिजीविषा और संघर्ष-क्षमता की ही स्वाभाविक परिणति है। अनेक ऐसे युवा लोग-पुरुष और स्त्रियाँ - निकलते और वैचारिक आधार पर आपस में जुड़ते चलते हैं जो कांग्रेस सरकार की नीतियों से असंतुष्ट हैं। ऐसे लोगों में तारा, नाथ, गिल, चड्ढा, कनक, मर्सी, नरोत्तम, श्यामा आदि हैं जो देश और जनता के बेहतर भविष्य के लिए, बिना किसी औपचारिक घोषणा के, एक निर्णायक संघर्ष करते हैं।

- जालंधर में, चुनाव में सूद की हार से यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि विपक्ष की एकजुटता ही देश को इस राजनैतिक जड़ता से मुक्ति दिला सकती है। चुनाव में कांग्रेस की विजय को अनदेखा नहीं किया जा सकता था, क्योंकि यह एक ऐतिहासिक सत्य था, फिर भी लेखक उसके वर्चस्व की समाप्ति के संकेत अवश्य देता है।

- उपन्यास के धारावाहिक प्रकाशन का उपन्यास की रचना-प्रक्रिया पर कोई प्रभाव लक्षित नहीं होता है। सामान्यत: संपूर्ण पाण्डुलिपि एक साथ प्रकाशनार्थ भिजवाई जाती थी। अत: पाठकों की प्रतिक्रिया से प्रभावित होकर यशपाल ने उपन्यास में किसी प्रकार की परिवर्तन किया हो ऐसा नहीं लगता।

3.9 अभ्यास प्रश्न

1. जयदेव पुरी की चरित्रगत विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
2. देश की स्वाधीनता के बाद जनता की हताशा और मोहभंग के क्या कारण थे?
3. लोगों के मोहभंग को कांग्रेस की सत्ताकांक्षा और मूल्यहीनता ने कैसे बढ़ाया?
4. पंजाबियों के विस्थापन और संघर्ष में मानवीय जिजीविषा के तत्वों को रेखांकित कीजिए।
5. उपन्यास के अंत को क्या सरलीकृत आशावाद का उदाहरण माना जा सकता है? अपने विचार दीजिए।

इकाई 4 औपन्यासिक महाकाव्य के रूप में 'झूठा सच'

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 औपन्यासिक महाकाव्य की अवधारणा : युगाभिव्यक्ति

4.3 व्यापकता का संदर्भ

4.4 जीवन का विस्तार, वैविध्य और सघनता

4.5 जनजीवन का अंकन

4.6 कवि-दृष्टि के अभाव का आरोप

4.7 युग की अभिव्यक्ति और समय की कसौटी

4.8 सारांश

4.9 अभ्यास प्रश्न

खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें

4.0 उद्देश्य

इस इकाई से पूर्व आप पिछली इकाई में एक लम्बी लड़ाई से प्राप्त स्वाधीनता के प्रति मोहभंग, देश-विभाजन की त्रासदी, पंजाबी जनजीवन के विस्थापन, उसके पुनर्वास के संघर्ष आदि के साथ ही कांग्रेसी राजनीति में पनपने वाले अवसरवाद से उत्पन्न व्यापक असंतोष आदि विशिष्ट बिन्दुओं का अध्ययन कर चुके हैं। प्रस्तुत इकाई में एक उपन्यास के रूप में 'झूठा सच' के स्वरूप पर विचार किया जाएगा। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- औपन्यासिक महाकाव्य की अवधारणा और युगाभिव्यक्ति के महत्व से परिचित हो सकेंगे;
- 'झूठा सच' के व्यापक आधारफलक की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे;
- उपन्यास के अन्तर्गत जीवन के विस्तार, वैविध्य और उसकी सघनता का परिचय प्राप्त कर सकेंगे;
- पंजाबी जनजीवन के व्यापक और प्रामाणिक चित्रण की चर्चा कर सकेंगे;
- उपन्यास में कवि-दृष्टि और प्रामाणिकता के अभाव के प्रत्यारोपों के औचित्य के संबंध की जानकारी दे सकेंगे; और
- युग की अभिव्यक्ति और समय की कसौटी पर इस उपन्यास के परिक्षण की दृष्टि आपको उपलब्ध हो सकेगी।

4.1 प्रस्तावना

'झूठा सच' के दो खण्डों में से, लगभग साढ़े बारह सौ पृष्ठों में, पहले खण्ड में यदि विभाजन की पृष्ठभूमि, उसके राजनैतिक कारण, पंजाब का सामासिक और सौहार्दपूर्ण जन जीवन, अंकित करने की कोशिश की गई है तो उसके दूसरे खण्ड में देश के विभाजन के बाद देश के नवनिर्माण, शरणार्थियों के संघर्ष और पुनर्वास आदि को बहुत विस्तारपूर्वक

अंकित करने की कोशिश हुई है। जैसे तोलस्तोय अपने उपन्यास 'युद्ध और शांति' में रूस पर नेपोलियन के आक्रमण से पूर्व, वहाँ के सामाजिक जीवन के भव्य और आकर्षक चित्र अंकित करते हैं उसी प्रकार यहाँ यशपाल भी विभाजन की आँधी से पूर्व पंजाब के गली मुहल्लों के जीवन का बहुत अन्तरंग और आत्मीय चित्र प्रस्तुत करते हैं। छोटे-छोटे सपनों और उन्हें पूरे करने के संघर्षों के बीच लोग पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष, स्पर्धा प्रेम और सहानुभूति के साथ कैसे रहते आ रहे हैं, इसी पृष्ठभूमि में बाद की विभीषिका, यातना और मानवीय त्रासदी को अंकित करने का प्रयास किया गया है। खान-पान, रीति-व्यवहार, सुख-दुख में हिन्दू-मुसलमानों के संबंधों में हार्दिकता और साझेदारी का जो भाव था, पंजाबी लेखक कर्त्तारसिंह दुग्गल अपने 'हाल मुरीदों का' में जिसे मांस और नाखूनों का संबंध कहते हैं, वह धीरे-धीरे प्रदूषित होकर भयंकर धर्मोन्माद और शत्रुता में बदल जाता है। हिंदू, मुसलमान और सिख भले ही अलग-अलग धर्मों के लोग हों लेकिन साझा सांस्कृतिक विरासत में सबकी बराबर की हिस्सेदारी थी। उत्सव, पर्व और परिवारिक आयोजनों में सबकी हिस्सेदारी थी और सब एक-दूसरे के दुख-सुख में बराबर के साझीदार थे। 'झूठा सच' इस जीवन के शांत, अशांत और फिर शांत होने के चक्र को बहुत सूक्ष्मता से अंकित कर पाने के कारण ही एक उल्लेखनीय उपन्यास बन सका है। अपनी संरचनागत विशिष्टताओं और व्यापक युगाभिव्यक्ति के कारण इसे महाकाव्यात्मक उपन्यास की भी संज्ञा दी गई है।

4.2 औपन्यासिक महाकाव्य की अवधारणा : युगाभिव्यक्ति

उपन्यास को महाकाव्य के रूप में देखे जाने की शुरुआत ब्रिटिश मार्क्सवादी आलोचक राल्फ फॉक्स की उपन्यास को विश्व की कल्पना प्रसूत संस्कृति को पूँजीवादी सभ्यता की सर्वाधिक महत्वपूर्ण देन घोषित करने के बाद ही हुई। राल्फ फॉक्स उपन्यास लेखन को एक 'दार्शनिक धंधे' के रूप में परिभाषित करते हैं। चिंतन के अपने इस गुण के कारण ही उपन्यास जीवन की अत्यन्त भावपूर्ण और प्रेरक टीका है। विश्व में ऐसे अनेक उपन्यास हैं जो दार्शनिकों द्वारा लिखे जाकर भी घोर असफल उपन्यास सिद्ध हुए हैं लेकिन ऐसे किसी उपन्यास का नामोल्लेख मुश्किल है जो उपन्यास के रूप में श्रेष्ठ भी हो जिसमें जीवन के प्रति कोई दार्शनिक दृष्टिकोण न हो। अनेक महान माने जाने वाले उपन्यासकारों से राल्फ फॉक्स ने कुछ ऐसे तत्वों के अधिग्रहण पर बल दिया जैसे-मानवीय यथार्थवाद, संवेदनशीलता, हास्यव्यंग्य, प्रकृति-प्रेम आदि-जिसमें उपन्यास जीवन की प्रमाणिक टीका की स्वीकृति पा सके। इन्हीं सबके आधार पर राल्फ फॉक्स उपन्यास को समाज के विरुद्ध संघर्ष के महाकाव्य के रूप में देखे जाने पर बल देते हैं।

राल्फ फॉक्स ने अपने 'उपन्यास और लोकजीवन' शीर्षक ग्रंथ में जब उपन्यास को आधुनिक युग का गद्यात्मक महाकाव्य कहा था तो उनके सामने कई महत्वपूर्ण तत्व केन्द्र में रहे हैं। पहला है व्यापक लोकजीवन, दूसरा है अनुभवाधारित संवेदनशीलता, तीसरा है एक मुकम्मल जीवन दर्शन, चौथा है प्रखर आलोचनात्मक दृष्टि। इनके अभाव में सफल सार्थक उपन्यास की रचना संभव नहीं है। इन मानकों के प्रकाश में पश्चिम के आलोचकों ने तोलस्तोय के 'युद्ध और शांति' उपन्यास को पहला महाकाव्यात्मक उपन्यास कहा, जिसकी परम्परा को मैक्सिन गोर्की का 'माँ' उपन्यास आगे बढ़ाता है। लेकिन यहाँ सबसे महत्वपूर्ण बात जो ध्यान में रखने की है, वह है महाकाव्यात्मक उपन्यास के उपर्युक्त निर्माणक तत्वों के समावेश के बावजूद कोई भी औपन्यासिक रचना सफल नहीं हो सकती, जब तक कि उसमें कलात्मकता का समुचित उपयोग न किया जाए। इन सभी तथ्यों को ध्यान में रखकर ही हिन्दी महाकाव्यात्मक उपन्यासों की चर्चा कर सकते हैं।

हिंदी में बड़े फलक वाले, सामाजिक-राष्ट्रीय अंतर्वस्तु वाले उपन्यासों को महाकाव्यात्मक उपन्यास के रूप में गौरवान्वित किए जाने की प्रवृत्ति भी आलोचना में विद्यमान रही है। इसके प्रस्थान बिंदु के रूप में लोग प्राय: ही प्रेमचन्द के उपन्यासों-'रंगभूमि' और 'गोदान'

का उल्लेख करते रहे हैं। फिर अपनी-अपनी दृष्टि और सुविधानुसार जिन और उपन्यासों का उल्लेख लोग करते रहे हैं उनमें अज्ञेय का 'शेखर: एक जीवनी', रेणु का 'मैला आँचल', अमृत लाल नागर का 'बूँद और समुद्र', यशपाल का 'झूठा सच' आदि मुख्य रूप से शामिल हैं। जब किसी उपन्यास को महाकाव्य के रूप में देखे जाने या परिभाषित किए जाने का सवाल उठता है तो सबसे अधिक बल जीवन की सर्वांगीणता पर दिया जाता है। मनुष्य का बाह्य जीवन जितना महत्वपूर्ण है उससे कम महत्वपूर्ण उसका आंतरिक जीवन नहीं है। आंतरिक और बाह्य के इस संतुलन में जीवन की संपूर्णता निहित है।

अपने उपन्यास की शुरुआत यशपाल, तोलस्तोय के 'युद्ध और शांति' की तरह, पंजाब में लाहौर के शांत और व्यवस्थित जीवन से करते हैं। बाबू रामज्वाया और मास्टर रामलुभाया दो भाई हैं और उनकी वृद्धा माँ की मृत्यु की घटना से ही समाज में दो परस्पर विरोधी शक्तियों के द्वन्द्व के संकेत उभरने लगते हैं। माँ भोला पांधे की गली में अपने छोटे बेटे मास्टर रामलुभाया के साथ ही रहती थी और वहीं उसकी मृत्यु हुई है। बड़ा बेटा अच्छी आर्थिक स्थिति के कारण गली में नहीं रहता। रेलवे की अपनी छब्बीस वर्ष की नौकरी में उसने खूब कमाया है और उच्ची गली में दो नए मकान बनवाकर अपने परिवार के साथ वहीं रहता है। बेटे का विवाह हो चुका है और बेटी की सगाई कुछ समय पहले ही हुई है। उसकी दूसरी पत्नी है जो तेज़ दिमाग और घमंडी है। इसके विपरीत मास्टर राम लुभाया का परिवार सुधारवादी मूल्य-दृष्टि से प्रभावित है। वह डी.ए.वी. स्कूल में अध्यापक है-कमजोर आर्थिक स्थिति और सादगी को जीवन का आदर्श बनाकर जीने वाला। उसका बेटा जयदेव और बेटी तारा करीब-करीब अपने ताया के बच्चों के ही हम उम्र हैं-लेकिन उनके जीवन और सोच पर पिता के आदर्शों और संघर्ष की छाप स्पष्ट है। यशपाल बहुत सूक्ष्मता से दो सगे भाइयों की सामाजिक स्थिति, उनके आय के स्त्रोतों का, उनके परिवारों की मानसिकता पर पड़ने वाला प्रभाव और उनकी जीवन पद्धतियों को आकलित करते हैं। शीलो के बेहतू और खिलंदरे स्वभाव की तुलना में, सगाई हो जाने के बाद भी वह दादी के स्यापे में आने पर तारा के पड़ोसी युवक रतन से लुका-छिपी खेलती है, तारा का गंभीर और शांत स्वभाव वस्तुत: पारिवारिक पृष्ठभूमि के अंतर की ओर ही संकेत करता है। इसी तरह जयदेव पुरी का संघर्ष, ट्यूशनें और पत्रकारिता के साथ की जाने वाली पढ़ाई और राजनैतिक सिद्धांतों एवं सोच की खातिर जेल जाने आदि का अनुभव उसके उस चरित्र का एक पक्ष है जो तब निम्नमध्यवर्गीय युवकों की एक खास पहचान थी। वृद्धा माँ की मृत्यु पर 'बुद्ध समाज' की बहिनों द्वारा गाये जाने वाले भक्ति-वैराग्य के भजन और बड़ी बहू द्वारा सामाजिक लोकाचार के नाते, ताकि बिरादरी में उसकी नाक न कटे, कौलां नाऊन को बुलवा कर स्यापे की पुरानी रीति का जोर-शोर से अनुपालन, वस्तुत: इन सुधारवादी और रूढ़िवादी मूल्य-दृष्टियों के ही संघर्ष का प्रतीक है।

यशपाल धीरे-धीरे, बहुत धैर्यपूर्वक घर की सामान्य-सी घटना से शुरू करके देश की राजनैतिक उथल-पुथल और थरथराहट भरे दौर में प्रवेश करते हैं। उपद्रव से पहले का शांत जीवन, सांप्रदायिक सौहार्द और सद्भाव, खान-पान और लोक व्यवहार के बीच देश की आगत स्वाधीनता और विभाजन की खबरें जैसे आने वाली आँधी के पूर्व संकेत की तरह हवा में फड़फड़ाती हैं। गली में हिंदू रक्षा समिति की स्त्रियों की आमद, मुसलमानों द्वारा किए जाने वाले अत्याचारों का उनके द्वारा बढ़ा चढ़ाकर किया गया बखान, गली के शांत वातावरण में जैसे एक ऊँची उठी लहर की तरह है। उसके बाद सब कुछ वैसा ही नहीं रहता, जैसा वह अब तक रहता आया था। इस प्रकार 'झूठा सच' अपने पूरे युग को उसकी पूरी संवेदना के साथ मुखरित करता है।

यशपाल गली और शहर के बदलते हुए चेहरे को बहुत सूक्ष्मता से अंकित करते हैं। गली में मुसलमान फेरीवालों का आना-जाना बंद हो जाता है। गली के युवकों रतन, मेवाराम,

मेवाराम, वीरसिंह आदि की सक्रियता बढ़ जाती है। जब तब वे अपने चेहरों को कपड़े या पगड़ी से ढके मोची दरवाजे की ओर से भागते हुए आते दिखाई देते हैं। बाबू रामज्वाया से रतन की सांठ-गांठ शुरू हो जाती है और उनकी रेलवे की नौकरी का लाभ उठाकर हथियारों के गुप्त पार्सल आने शुरू हो जाते हैं। नूरा भिश्ती की गली वाली मसजिद में बम फेंका जाता है। जिसके उत्तर में मुसलमानों के द्वारा एक पुरबिया हिंदू मोची की हत्या कर दी जाती है जो बरसों से वहीं गली के कोने पर बैठकर जूते गाँठा करता था। इसी तरह दौलूभामा की हत्या कर दी जाती है। गली में हमले और आगजनी के बाद पुलिस और सरकार के कान पर जूँ नहीं रेंगती। शांति सभाओं और एकता प्रयासों की विफलता स्वयं सिद्ध है। बाद में जब पुलिस आती है तो उन्हीं पन्नालाल मेवाराम को पकड़कर ले जाती है जिनके मकानों का प्लास्टर बम से उखड़ गया था और दीवारों पर आग के निशान थे।

देश की स्वाधीनता अगस्त में आती थी और जुलाई के पहले सप्ताह तक लोगों को इस बात की कोई जानकारी नहीं थी कि लाहौर पाकिस्तान में जायेगा या हिंदुस्तान में रहेगा। इसके बाद ही लोगों को यह लगता है कि वह पाकिस्तान में जा सकता है। लाहौर में अस्सी प्रतिशत जायदाद हिंदुओं की थी। और जगहों के हिंदुओं के मुकाबले यहाँ उनका मुसलमानों से रहन-सहन का पुराना और बेहतर संबंध था। ऐसी स्थिति में लोग छोड़कर जाने की बात भी सोचने को तैयार नहीं थे। कौन छोड़कर जायेगा और क्यों जायेगा? लोगों को यह विश्वास था कि थोड़े समय की बात है और फिर सब कुछ ठीक हो जायेगा। भोला पांधे की गली के लोगों ने आपस में तय कर लिया था कि मर जायेंगे लेकिन अपना घर-द्वार नहीं छोड़ेंगे।

लेकिन फिर देखते ही देखते पूर्व से मुसलमानों और पश्चिम से हिंदुओं के जत्थे लाहौर आने लगते हैं। कपूरथला, जालंधर और दूसरे शहरों के मुसलमान, सियालकोट, शेखपुरा आदि के हिंदू लुटी-पिटी अवस्था में लाहौर पहुँचते हैं। अनेक स्वयं सेवी संस्थाएँ उनके लिए काम कर रही थीं। बड़े और पैसे वाले आदमी, इस अनिश्चय और असुरक्षा की स्थिति में, लाहौर छोड़कर बाहर जा रहे थे। डॉ. प्राण की हवेली में आग लगा दी जाने से उसका पूरा परिवार लखनऊ चला गया था और वह अकेला सेवॉय होटल में रह रहा था। उसी तरह से कनक का परिवार नैनीताल चला गया था। पुरी को लिखे गए कनक के पत्र से पता चलता है कि किसी पार्लियामेंट सेक्रेटरी से उसकी बात हुई थी। उसके और पुरी के लिए दो-दो सौ रुपये की नौकरी की व्यवस्था लखनऊ में हो सकती है। मास्टर राम लुभाया ने पुरी से कह रखा था कि चार दिन बाद तारा के विवाह से निबट कर वह हद से हद 1 या 2 अगस्त को चला जाए।

धीरे-धीरे, लेकिन बहुत थोड़े समय में ही, पूरा लाहौर सांप्रदायिक उपद्रवों की आग में धू-धू करके जलने लगता है। अनारकली, मालरोड, भजंग, मोरीगेट, लुहारी दरवाजे-सब कहीं लूट-पाट, आगज़नी और बलात्कार की घटनाएँ क्रमशः बढ़ती जाती हैं। यशपाल बहुत विस्तार-पूर्वक लाहौर के विध्वंस की यह कथा कहते हैं। छोटे-छोटे ब्यौरे और चित्र, जिनमें धर्म और राजनीति के नाम पर मनुष्य की यातना के हृदय द्रावक और कारुणिक चित्र अंकित हैं। इस विध्वंस से पहले की, एक अपेक्षाकृत शांत संध्या को, लाहौर के यौवन और सौंदर्य का चित्र यह है,-'अप्रैल मास की संध्या थी। लाहौर कड़ी सर्दी के लिहाफ फेंककर वसंत की अंगड़ाइयाँ ले रहा था। युवतियाँ अपने रूप-यौवन के उभार को छिपा देने वाले गरम कोटों को फेंककर लारेंसगार्डन चारदीवारी के बाहर के बागों-अनारकली और मालरोड पर तितलियों की तरह छूट पड़ी थीं। कपड़ों के रंग चारदीवारी के बागों और मालरोड की पैदल पटरियों के साथ लगी फूलों की क्यारियों से स्पर्धा कर रहे थे। युवक राहचलतों से कंधे भिड़ाने के लिए सीने फुलाकर सड़कों पर

घूमने लगे थे'। इसी तरह रावी की ओर क्षितिज पर पहुँचे सूर्य की अस्त होती किरणों के बीच, एक सुहावनी शाम को, कनक और पुरी सुहावनी हवा में निस्बत रोड पर घूमने का सुख लेते हैं। लेकिन फिर कुछ भी वैसा नहीं रहता, जैसा था।

शाहलमी में लगाई गई आग तीन दिन जलने के बाद अपने आप ही बुझती है-सब कुछ स्वाहा करती हुई। अनेक आशंकाओं और भयों के बीच, कई दिनों तक कनक का कोई समाचार न मिलने की स्थिति में, जब वह उससे मिलने ग्वाल मंडी जाता है तो जले हुए बाजार के वीभत्स दृश्य से बचने के लिए बच्छोवाली, सूत्तरमंडी और लाहौरी दरवाजे से चक्कर लगाकर हास्पिटल रोड के रास्ते ग्वालमंडी जाता है। लेकिन जैसे जीवन के उल्लास के दिनों में लाहौर दो हिस्सों में बँटा था, दो वर्गों के रूप में, वैसे ही इस विध्वंस में भी बँटा है। एक लाहौर अनारकली ग्वालमंडी और मालरोड का है दूसरा भोला पांधे की गली, मोरीगेट और लुहारी दरवाज़े का। जैसे एक नहीं दो लाहौर हों-वर्गों के हिसाब से बँटे। एक लाहौर में स्वाधीनता और विभाजन केवल बहसों तक ही सीमित रहते हैं जबकि दूसरे को उसकी यातना और त्रासदी से गुज़रना पड़ता है। दंगों और उपद्रवों में हमेशा गरीब मरते हैं-चाहें हिंदू हों या मुसलमान। ऐसा नहीं है कि अंत तक सब कुछ ऐसा ही बना रहा हो। लेकिन कनक और प्राण के अच्छी आर्थिक स्थिति वाले परिवारों को जहाँ जमीन-जायदाद और सम्पत्ति की ही हानि होती है, लोग सुरक्षित बाहर चले जाने में सफल होते हैं। जीवन और परिवारियों को बिछोह और स्त्रियों के प्रति किया जाने वाला दुराचार अधिकांशत: गरीब और कमजोर आर्थिक स्थिति के लोगों को ही सहना होता है। वे ही मरते हैं, वे ही बिछुड़ते हैं और वे ही खोते हैं।

इस भयावह विध्वंस के दौर में भी, उसके बीचोबीच, मानवीय सहायता, सहानुभूति और करुणा का घोर अभाव नहीं है। डूंगी गली से पलायन करते मुस्लिम परिवार को पुरी और उसके हिंदू साथियों द्वारा रोकने का प्रयास उसका एक प्रतिनिधि उदाहरण माना जा सकता है। जब ये लोग पहुँचते हैं तो गली के सामने एक टांगा रास्ता रोके खड़ा था। टांगे पर फटी-सी दरी में मूंज की रस्सी से बंधा बिस्तर, तरह-तरह के समान से भरी एक बोरी और दो ढक्कन लगे कनस्तर रखे थे। गली में कालीचरण और उसका पड़ोसी पुरी का परिचित कामरेड राजबंस महाजन गली से जाने के लिए तैयार इस गरीब मुसलमान परिवार का रास्ता रोके खड़ा था। गली के हिंदुओं के बदले हुए व्यवहार पर बुढ़िया की शिकायत पर महाजन उसे समझाने की कोशिश करता है। वह उसे आश्वस्त करता है कि बुढ़िया की बेटी निस्सो और उसकी अपनी बहन बिमला में कोई फर्क नहीं है। बुर्का ओढ़े खड़ी निस्सो के बचपन में उसे काटखाने के निशान का वास्ता देकर वह उसे समझाता है- 'गली में माँ बहन का रिश्ता खत्म नहीं हो गया है।' हमारी बहिन निस्सो की डोली इसी गली से जाने की बात सुनकर निस्सो बुर्के में छिपी आँखे पोंछती है। काली हमामबाख्श का हाथ पकड़कर समझाता है-'ताया, यह सब पागलपन दो दिन का है। जो भाग कर गए हैं वे भी चार दिन में लौटकर आयेंगे। पाकिस्तान हुआ तो क्या और हिंदुस्तान हुआ तो क्या? हम लोग तो लाहौरी हैं, डूंगी गली के पड़ोसी हैं। चल बैठ तू घर में! तेरी दूकान जल गई है तो और बनं जायेगी! रब्ब का भरोसा कर।' और वे लोग टांगे से समान उतारकर, पैसे देकर टांगे वाले को लौटा देते हैं।.... यह एक उदाहरण भर है। ऐसे मानवीय, उदात्त और करुण दृश्यों की 'झूठा सच' में बहुत बड़ी संख्या है।

इस प्रकार के छोटे-छोटे विवरणों के माध्यम से यशपाल ने झूठा सच में एक युग को उपस्थित किया है। यह पूरा इस उपन्यास की महाकाव्यात्मकता को उजागर करता है।

4.3 व्यापकता का संदर्भ

यशपाल का 'झूठा सच' एक बड़ी परिधि का उपन्यास है। उसका पहला खण्ड मुख्यत: लाहौर पर केंद्रित है और दूसरा खण्ड दिल्ली पर । उपन्यास में समाज के विभिन्न वर्गों, धर्मों, जातियों और संस्कृतियों के अनेक पात्र हैं। इन पात्रों की सोच, जीवन-दृष्टि आपसी व्यवहार और अपने समय एवं समाज के प्रति उनके सरोकारों में इतना अंतर है कि उनकी उपस्थिति हमें एक भरे-पूरे, वैविध्यपूर्ण और सामासिक संसार का बोध कराती है। यशपाल यहाँ कथा सरंचना की अपनी उस पद्धति को छोड़ते दिखाई देते हैं जिसे वे 'दादा कॉमरेड' से शुरू करके 'मनुष्य के रूप' तक उपयोग में लाते हैं। इन उपन्यासों में प्राय: सब कहीं कम्युनिस्ट पात्रों को केंद्र में रखकर चलते हैं। वहाँ उनकी मुख्य विपक्षी विचारधारा के रूप में कांग्रेस पार्टी और उसकी नीतियों की आलोचना है। यहाँ 'झूठा सच' में अपनी इस पद्धति को छोड़कर वे एक बड़े फलक पर सामाजिक शक्तियों के द्वन्द्व और उनके वैचारिक अंतर्विरोधों को अंकित करते हैं।

युवा पीढ़ी की उमंगों, सपनों, संघर्षों और आदर्शों का प्रतिनिधित्व जयदेव और तारा की पीढ़ी के युवक युवतियाँ करते हैं। इस ओर संकेत किया जा चुका है कि उपन्यास के एक प्रमुख पात्र से अधिक एक राष्ट्रीय रूपक के रूप में भी अंकित है। अपने आदर्शों और विचारों से समझौता करके वह उस मध्यवर्गीय भारतीय समाज का एक प्रतिनिधि चरित्र बनकर उभरता है जो अपनी सामाजिक सफलता के लिए कुछ भी कर सकता है और किसी सीमा जा सकता है। तारा के होने वाले पति सोमनाथ की गुंडागर्दी, परीक्षा में नकल करते हुए पकड़े जाने पर उसके द्वारा अध्यापक की पिटाई के जिस समाचार से वह शुरू में विचलित होता दिखाई देता है, बाद में जालंधर में वही सोमनाथ उसके राजनैतिक कैरियर में उसका सहायक बन जाता है। तारा और कनक का वैचारिक विकास अधिक समरस और संतुलित है।

तारा अपने भाई जयदेव के वैचारिक और पूरे परिवार के संस्कारगत विरोध के बावजूद असद से विवाह का निर्णय लेती है। उस भयंकर उथल-पुथल के दौर में वह अपने निर्णय पर दृढ़ रहती है। असद स्त्रियों की नियति को 'पेन और टियर्स'-यातना और आँसू-की भाषा में परिभाषित करने पर भी तत्काल विवाह के निर्णय को पार्टी की नीतियों और आदर्शों के विरुद्ध मानकर पीछे हट जाता है। उस अभी या फिर कभी नहीं वाली स्थिति में तारा के पास रुकने और प्रतीक्षा करने का समय नहीं है। असद अपनी जाती समस्याओं की अपेक्षा राष्ट्र और जनता की समस्याओं को वरीयता देने वाली पार्टी-लाइन के कारण तारा के प्रस्ताव को सहमति और सहानुभूति के साथ नहीं ले पाता। बाद में, नाटकीय स्थिति में, असद से कैंप में भेंट होने पर भी वह मन की बात उससे कह नहीं पाती। उसे सांत्वना देते हुए आराम से सोचने और शाम के पाँच और छ: बजे के बीच फिर अपने आने की बात कहकर वह चला जाता है। लेकिन उसके आने से पूर्व ही उसे कैंप की स्त्रियों के साथ जबर्दस्ती अमृतसर जाने वाले ट्रक पर बिठा दिया जाता है। कैंप से एक उत्तरदायित्व पूर्ण सरकारी पद तक पहुँचने का असम और बीहड़ रास्ता वह अपनी क्षमता, संघर्ष और विवेक से पूरा करती है।

कनक को अपने और पुरी के प्रेम के बीच अपने पिता या बहनोई नैयर का हस्तक्षेप देश-विभाजन के लिए अंग्रेजी या लीग की जिद जैसा लगता है। वह नैयर से कहती भी है, 'प्रश्न तो मेरे जीवन का है, किसी दूसरे के निर्णय का प्रश्न क्या?' इस प्रेम प्रसंग में जब नैयर उसकी या पुरी की पहल का सवाल उठाता है तो वह कहती है, 'अच्छा मेरा आग्रह सही.... पुरुष ही चुन सकता है, स्त्री नहीं चुन सकती है?' बाद में पुरी के रवैये और परिवर्तन से दुखी होकर वह उसे छोड़ने का निर्णय बहुत भारी मन से लेती है, जिसने

तराजू में एक ओर दुनिया को रखकर उसे (पुरी को) ही पाने की जिद उसने कभी की थी। गिल के प्रति उसका आकर्षण उस पारस्परिक समादर से उपजा है जिसे उसने पुरी में लगातार और लंबे समय तक छीजते अनुभव किया था।

'झूठा सच' भारतीय समाज में स्त्री की नियति के संदर्भ में उसकी स्थिति का सवाल बहुत विस्तार से उठाता है तथा कनक और तारा सहित अनेक स्तरों और वर्गों की स्त्रियों के माध्यम से स्त्री-विमर्श को अपने केंद्र में रखकर चलता है। श्यामा तैंतीस वर्ष की अविवाहित ईसाई युवती है। वह प्रेम में शरीर की अनिवार्य भूमिका पर बल देती है। डे से उसका संबंध है जो पहले से ही विवाहित और तीन बच्चों का पिता है। उसकी पत्नी फूहड़ किस्म की है जो पहले स्वयं किसी और से उलझी थी। श्यामा आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर है लेकिन वह भावात्मक दृष्टि से बहुत खाली और अकेली है। लोग तरह-तरह की बातें करते हैं। क्लब और सोसायटी में वह उन्मुक्त भाव से कभी-कभार सिगरेट और शराब भी पी लेती है। वह तारा से कहती है, 'सदा अपने आपको दबाते-कुचलते रहना यातना नहीं है? जो विवाहितों के लिए स्वाभाविक है वही अविवाहितों के लिए स्वाभाविक है। रोकने का यत्न करते ही हैं। रोके रखने के विश्वास में कुछ हो जाता है।' इस पर जब तारा प्रेम में व्यवहार के संयम का सवाल उठाती है तो श्यामा कहती है, 'तरसना ही प्यार है? प्यार क्या संतोष नहीं चाहता? रक्त-मांस का उन्मेष ही सही पर हृदय और क्या है, मस्तिष्क और क्या है? शरीर को काटकर परीक्षा करने से तो हृदय में प्यार या मस्तिष्क में विचार रखे हुए नहीं मिलते। प्यार और विचार शरीर का व्यवहार मात्र है।

यशपाल अभिभावकों द्वारा तय किए गए विवाह में विश्वास नहीं करते। यह अधिकार वे संबद्ध युवकों-युवतियों को ही दिए जाने के पक्ष में है। ऐसे आयोजित विवाह की सबसे गंभीर त्रासदी तारा भुगतती है। 'पति' नाम के जीव से ही उसे वितृष्णा हो जाती है। वैवाहिक जीवन की इस वंचना के भय से ही फिर वह नरोत्तम को कोई प्रोत्साहन नहीं दे पाती। अंतत: डॉ. नाथ के प्रति अपने सारे प्रच्छन्न और अव्यक्त आकर्षण के बावजूद वह बहुत संकोच और ऊहापोह के बाद ही इस संबंध को स्वीकार कर पाती है। विवाह से पूर्व भोला पांधे की गली में, लड़कियों को 'बोझ' और 'गाय' समझने वाली प्रवृत्ति उसे गहरे में जाकर छीलती है। संकोच वश वह केवल अपने भाई जयदेव से ही सोमराज से किए जाने वाले इस विवाह का विरोध करती है। लेकिन भाई की उदासीनता के कारण कुछ हो नहीं पाता। सोमनाथ के बारे में सब कुछ जानने के कारण उस विवाह के नाम पर वह जिबह के लिए ले जाने वाली गाय की तरह थर-थर काँपती है। समाज में बिन ब्याही नौकरी-पेशा युवती के प्रति जो आम रवैया है उसके प्रति, दिल्ली में अपने ही संदर्भ में वह मर्सी से कहती है, यह लोग समझते हैं कि बिन ब्याही औरत आवारा ही होती है, उसे किसी न किसी खूँटे से बाँध ही देना चाहिए किसी न किसी को उसका मालिक बन ही जाना चाहिए।'

पंजाबी लड़कियों के खुलेपन और साहसी स्वभाव का भी लोग गलत अर्थ लगाते हैं। लखनऊ में कनक के अनुभव इस प्रवृत्ति के विरुद्ध गहरी वितृष्णा उत्पन्न करते हैं। अनेक कारणों से प्रेम-विवाह भी असफल हो सकता है-जैसा कनक और पुरी का अंतत: होता ही है। ऐसी स्थिति में, टूटने की सारी पीड़ा के बावजूद यशपाल स्त्री के संबंध-विच्छेद का समर्थन ही नहीं करते, उसे अनिवार्य ठहराते भी दिखाई देते हैं। कनक अंतत: गिल के साथ नए सिरे से व्यवस्थित होने का प्रयास करती है और होती भी है। चाहे बहुत साधारण आर्थिक स्तर की बंती और शीलो जैसी स्त्रियाँ हों या अभिजात वर्ग की मिसेज अगरवाला जैसी स्त्रियाँ-सबकी सब पतियों द्वारा लांछित, उत्पीड़ित और अपमानित स्त्रियाँ हैं। भोला पांधे की गली में कौन सी औरत है जो पति की घुड़कियाँ नहीं सहती है। विवाह के नाम पर भारतीय समाज में औरत ही सब कुछ सहती और बर्दाश्त करती है। 'झूठा सच' में

ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जिनमें स्त्रियाँ कहीं विवाह के नाम पर, कहीं धर्म राजनीति के नाम पर, कहीं भारतीय समाज में प्रचलित देहशुद्धता के विश्वास के कारण सताई जाती है। इनमें बंती का उदाहरण सबसे त्रासद और करुण है जो अपनी ससुराल की चौखट पर सिर पटक-पटक कर अंतत: मर जाती है और वे लोग सब कुछ देखते रहने पर भी, इसलिए दरवाज़ा नहीं खोलते क्योंकि दंगों के समय वह परिवार से बिछुड़ जाने के बाद देर से वापस लौटी है। जो औरत जाने कहाँ-कहाँ रही और भटकी है, वह उनके किस काम की रह गई है? यशपाल एक ओर यदि जीवन साथी के चुनाव में स्त्री को अपनी इच्छा और विवेक का अधिकार देने के पक्ष में है, वहीं वे सामाजिक यातना और उत्पीड़न से बचाव के लिए उसकी आर्थिक आत्मनिर्भरता के पक्ष में हैं। तारा और कनक ही नहीं, उर्मिला भी काफी भटक लेने के बाद अंत में आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर होकर अपने लिए नए जीवन साथी का चुनाव करके अपना नया जीवन शुरू करती है। शीलो रतन से प्रेम करती है लेकिन उसके माँ बाप उसका विवाह कहीं और कर चुके हैं। बाद में तारा की सक्रिय सहायता से वह रतन को ही अपना जीवन-साथी बनाने में सफल होती है, अनेक बाधाओं और जटिलताओं के बावजूद। कुछ समय पहले लाहौर में भी लड़की का नौकरी करना एक असाधारण कल्पना थी। अब पुनर्वास के बाद दिल्ली में, पंजाब से आई, बहुत बड़ी संख्या में लड़कियाँ नौकरी करती हैं। यदि वे अपनी पसंद का जीवन-साथी चाहें तो इसमें हर्ज ही क्या है? यशपाल इस परिवर्तन को विभाजन की देन के साथ ही पंजाबी जाति की कर्मठता का परिणाम भी मानते हैं। जैसे अनेक छोटी-बड़ी धाराएँ बहते हुए परस्पर मिलकर एक महानदी का रूप ले लेती है-जीवन के ये छोटे-बड़े प्रसंग एक महागाथा का निर्माण करते हैं। इस महागाथा के केंद्र में सबका ही जीवन है। जीवन के इस अविरल प्रवाह में बहुत कुछ पुराना छूटता है, नया बनता है। खोने-पाने, मिलने, बिछुड़ने, बिगड़ने-बनने के दो पाटों के बीच जीवन अविराम गति से बहता रहता है। जीवन की यह विविधता-बहुरूपता अन्तत: एक रूप होकर युगधारा बन जाती है, पूरे युग को समेटकर एक महासागर का रूप ग्रहण कर लेती है। इसे 'झूठा सच' में आसानी से देखा जा सकता है, जो उसे महाकाव्यात्मक उपन्यास का रुतबा देने के लिए पर्याप्त है।

4.4 जीवन का विस्तार, वैविध्य और सघनता

'झूठासच' में जीवन के जितने विविध पक्षों को पूरे विस्तार के साथ अंकित किया गया है। उसका वह विस्तार ही उसे अपनी प्रकृति में एक महाकाव्यात्मक उपन्यास से निकट ले आता है। लाहौर की गलियों में फेरी लगाने वाले छोटे-छोटे खोमचे वाले और कुंजड़ें, भिश्ती, मोची और लुहार से लेकर ग्वालमंडी और मालरोड का अभिजात समाज-सब यहाँ अपनी पूरी जीवंतता के साथ उपस्थित हैं। राजनीतिक और साम्प्रदायिक उपद्रवों में आमतौर पर मारे जाने और उससे सीधे प्रभावित होने वाले ये गरीब-गुरबा लोग ही हैं जो रोज कुआँ खोदकर पानी पीने वाले मुहावरे के अनुरूप अपना जीवन गुजारते हैं। गलियों में लगने वाले साझा तंदूर मिली-सटी छतों पर से झाईं नालदा के लेन-देन और अदला-बदली का सौहार्दपूर्ण आत्मीय व्यवहार, राजनैतिक और सांप्रदायिक उपद्रव की लहरें सबसे पहले इस आपसी भाई चारा और सौहार्द को ही धोती-पोंछती है। उपद्रव से पहले के शांत और सौहार्दपूर्ण जीवन में आपसी भाई चारे का एक प्रतिनिधि चित्र तारा की सिख सहेली सुरेंद्र कौर के भतीजे के नामकरण का पारिवारिक आयोजन है जिसमें हिंदू तारा मुसलमान असद और दूसरे साथी इकठ्ठे होते हैं। सिखों के अतिरिक्त जो अन्य धर्मों के लोग पगड़ी नहीं बाँधे थे, वे सिर पर रूमाल रखकर बैठे थे। असद को सिखों के रीति-रिवाज का अधिक परिचय नहीं था। दूसरों को गुरु ग्रंथ साहब की ओर हाथ जोड़े देखकर वह भी संगत के प्रति सम्मान के भाव से हाथ जोड़कर बैठ जाता है। पास में बैठे एक सरदार जी ने उसे भी सिर ढंक लेने का संकेत किया। रूमाल जेब में न होने पर तारा उसकी परेशानी पर मन-ही-मन हँसकर अपना रूमाल उसकी ओर बढ़ा देती है।

बड़े-बड़े थालों में हाथों पर रखा गया कड़ाह-प्रसाद और उसे खाने के बाद चिकने हाथों को आमतौर पर सिख साहिबानों द्वारा अपनी पुहराती हुई दाढ़ियों से पोंछे गए हाथ जैसे चित्र बहुत जीवंत रूप में अंकित हैं।

'झूठा सच' का एक महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय पक्ष विभिन्न वर्गों, पेशों और धंधे के लोगों की सजीव उपस्थिति है। पत्रकार, राजनीतिक कार्यकर्त्ता, नेता, अध्यापक, प्रोफेसर, ब्यूरोकेट, बुद्धिजीवी, ठेकेदार, दलाल शायद ही कोई वर्ग और धंधा बचा हो, जो झूठा सच में समाविष्ट न हो। एक लेखक के रूप में यशपाल की सबसे बड़ी सफलता इन विभिन्न क्षेत्रों का बहुत प्रामाणिक, विश्वसनीय और सघन अंकन है। उपन्यास में केवल बड़े पात्रों से संबंधित विश्वसनीय सघन ब्यौरे ही किसी उपन्यास की सफलता का मुख्य कारण होते हैं। लाहौर में दंगों और जुलूसों के बेहद सूक्ष्म ब्यौरे, पुरी की रेल-यात्रा में शरणार्थियों के जत्थे, अगरवाला के यहाँ शराब-पार्टी के बीच गांधी जी के अनशन की चर्चा, शरणार्थी-कैंपों और बस्तियों की बदइंतजामी और बदहाली, हाफिज जी का धार्मिक उन्माद, जिसके तहत वे बेसहारा छूटी हिंदू युवतियों को मुसलमान बनाने पर आमादा हैं। इसी तरह पुनर्वास की प्रक्रिया में मूंगफली बेचते छोटे-छोटे लड़के, अखबार डालती लड़कियाँ और साइकिल पर चलते-फिरते रेंस्तेरा के दृश्य, और उनके पीछे छिपी पूरी पंजाबी कौम की जिजीविषा एवं संघर्ष की प्रकृति-ये सारे तत्व ही वस्तुत: 'झूठा सच' को एक महाकाव्य का औदात्य देते हैं।

हिंदी उपन्यास के संदर्भ में यह आरोप अब काफी कुछ आम हो चुका है कि प्रेमचंद ने हिंदू-मुस्लिम समाजों का जैसा आत्मीय अंकन किया वह उनके बाद के लेखकों में, एक हद तक, यशपाल और अमृतलाल नागर में ही मिलता है। मुस्लिम पात्रों और परिवेश के अनेक प्रामाणिक चित्र 'झूठा सच' में उपलब्ध हैं। भीष्म साहनी के 'तमस' के संदर्भ में यह शिकायत की गई है कि उसमें हिंदू सांप्रदायिकता पर जितना जोर है, उतना मुस्लिम सांप्रदायिकता पर नहीं है। एक प्रकार से मुस्लिम साम्प्रदायिकता की उपेक्षा की गई है। लेकिन 'झूठा सच' में लाहौर में, सांप्रदायिक उपद्रवों के दौरान लीग की सक्रियता और हिंदुओं के अपेक्षाकृत संकोच का भी यशपाल ने समाज शास्त्रीय विश्लेषण किया है। वे इस तथ्य को अनदेखा नहीं करते कि लाहौर में अस्सी प्रतिशत जायदाद हिंदुओं की होने के कारण हिन्दू सांप्रदायिक तत्वों को हवा देने में संकोच करते हैं। बाद में स्थितियाँ जो रूप लेती हैं उनमें वे भी पीछे नहीं रहते लेकिन इसकी शुरुआत आमतौर पर आत्मरक्षा और प्रतिक्रिया की भावना से ही होती है।

यहाँ यशपाल और भीष्म साहनी की साम्प्रदायिकता संबंधी मान्यताओं की तुलना करते समय हमें दोनों के रचना युग के अन्तर को ध्यान में रखना जरूरी है। 'झूठा सच' का रचना-युग 1947 से 1958 का है, जबकि 'तमस' का रचना-युग 1970-72 है। यशपाल और भीष्म साहनी दोनों ही कम्युनिस्ट पार्टी से जुड़े चिन्तक माने जाते हैं। लेकिन यशपाल कम्युनिस्ट पार्टी के एक बड़े हिस्से की तरह कांग्रेस को राष्ट्रीय बुर्जुआजी के प्रतिनिधि के रूप में एक प्रगतिशील पार्टी नहीं मानते थे। उस समय तक हिन्दू और मुस्लिम साम्प्रदायिकता-दोनों ही समान रूप से घातक मानी जाती थी। लेकिन राष्ट्रीय बुर्जुआजी को प्रगतिशील मानने के पक्षधर भीष्म साहनी 1970-72 में कांग्रेस को धर्मनिरपेक्ष और प्रगतिशील मानते हुए बहुसंख्यक हिन्दू साम्प्रदायिकता को अधिक खतरनाक समझने लगे थे। 'तमस' में धर्मनिरपेक्षता के अधिक जोर के कारण उस समय का ऐतिहासिक दबाव सक्रिय हुआ है, जो भीष्म जी को वस्तुनिष्ठ नहीं रहने देता। जनसंघ के रूप में हिन्दू साम्प्रदायिकता उस समय तक अधिक मुखरित होने लगी थी। परिणामस्वरूप बहुसंख्यक हिन्दू साम्प्रदायिकता उन्हें अधिक खतरनाक लगी। इसीलिए उन्होंने हिन्दू साम्प्रदायिकता को तमस में विशेष रूप से रेखांकित किया है। यशपाल के लिए ऐसी कोई अनिवार्यता नहीं थी, अत: इस संबंध में वे अधिक वस्तुनिष्ठ रह सके थे।

राजनीति और धर्म की भारत विरोधी और विघटनकारी भूमिका 'झूठा सच' का उल्लेखनीय पक्ष है। इसके कारण ही इतने बड़े पैमाने पर मानव-जीवन और मानव-मूल्यों की क्षति होती है। नेताओं ओर राजनैतिक कार्यकत्ताओं में यह विवेक भले ही न हो या उनके स्वार्थों ने उसे धूमिल कर दिया हो, लेकिन शेखपुरा से हिंदू स्त्रियों का जत्था लेकर आने वाला सिख ट्रक ड्राइवर इसे अच्छी तरह जानता है कि कैसे 'मनुखों के देश धर्मों के देश' बन गए हैं। इस मानवीय त्रासदी पर उसकी पीड़ा ही यह है कि रब्ब ने जिन्हें एक बनाया था, रब्ब के बंदों ने अपने वहम और जुल्म से उसे दो कर दिया है। ड्राइवर की यह टिप्पणी मानवीय करुणा का एक उदाहरण तो है ही, वह धर्म और राजनीति की विघटनकारी भूमिका पर भी एक सार्थक टिप्पणी है। इसके माध्यम से यशपाल की निजी दृष्टि भी संकेतिक हुई है।

4.5 जनजीवन का अंकन

'झूठा सच' में कदाचित् पहली बार यशपाल विशाल जन-जीवन के अंकन के प्रति इतने सजग दिखाई देते हैं। यशपाल के पूर्ववर्त्ती सामाजिक उपन्यास-'दादा-कॉमरेड' से 'मनुष्य के रूप' तक-कुछ कम्युनिस्ट पात्रों को केंद्र में रखकर सामाजिक-राजनैतिक परिवर्तन की शक्तियों को रेखांकित करते हैं। वहाँ उनका सबसे प्रबल प्रतिपक्ष कांग्रेस और गांधीवादी राजनीति है। 'झूठा सच' में यशपाल कथानक और पात्रों की इस सुपरिचित पद्धति से बाहर आते हैं। कांग्रेस और गांधीवाद की आलोचना यहाँ भी है, बल्कि कुछ ज्यादा ही है। लेकिन सामाजिक-राजनैतिक परिवर्तन में सक्रिय शक्तियाँ किसी पार्टी की विचारधारा से अपनी पहचान नहीं बनातीं। यद्यपि यहाँ भी मिस्टर गिल, असद जैसे कई कम्युनिस्ट पात्र हैं, जो शासक दल की कोपदृष्टि के भाजन हैं। फिर भी यथास्थिति को तोड़ने वाले इस उपन्यास के अधिकांश पात्र विभिन्न क्षेत्रों से आए और कार्यरत अनेक युवक और युवतियाँ हैं जो यथास्थितिवाद के विरोध में सामाजिक-राजनैतिक परिवर्तन की आकांक्षा रखते हैं और अपने-अपने क्षेत्रों में भरसक उसके लिए प्रयत्न भी करते हैं।

लेकिन 'झूठासच' का प्रमुख आकर्षण इससे अलग और बाहर कहीं है। उपन्यास के मुख्य पात्रों से अधिक महत्व उसमें बहुत बड़ी संख्या में उपस्थित छोटे-छोटे पात्रों का है जो उपन्यास के ताने-बाने में बहुत सफलता से विन्यस्त हैं। गलियों में घूमने वाले, फेरी वाले, स्यापे और विवाह आदि अवसरों पर गाए जाने वाले गीत और प्रथाएँ, छोटी-छोटी आशाओं और संघर्षों के बीच जीने वाले गलियों-मुहल्लों के लोग उपन्यास की मूल अन्तर्वस्तु को उजागर करते हैं। राजनैतिक जुलूसों और मीटिंगों की गहमा-गहमी, नारे लगाते और भाषणों में यशपाल ने उनकी विचारधारा की विश्वसनीयता पर पर्याप्त ध्यान दिया है। वे तो उन भाषणों की तिथियों और समय को भी वास्तविक बनाते हैं। गली और मुहल्लों में रहने वाले लोग घटित घटनाओं और प्रसंगों पर अपनी स्वत:स्फूर्त और तत्कालिक प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करते हैं। भोलापांधे की गली में बेहद शांत भाव से चलने वाला जीवन हिंदू रक्षा समिति की स्त्रियों के आने के बाद वैसा ही नहीं रहता, जैसा वह था। नूरा भिश्ती, दौलूमामा, खुशालसिंह, कर्त्तारो, पूरण देई जैसे सैकड़ों पात्र उपन्यास में हैं। वे सब बहुत थोड़े समय के लिए उपन्यास में आते हैं-लेकिन जब भी आते हैं, जीवन के उस वैविध्य और विस्तार को रेखांकित करते हैं जो सब कहीं ठाठें मारता दिखाई देता है। दंगों से आतंकित लोगों की मनोदशा, आत्मरक्षा के सामूहिक प्रयास, दंगों और उपद्रवों के बीच भी लोकाचार और मांगलिक पर्व-ये सारी चीजें उपन्यास का एक बड़ा भाग घेरती हैं। हताश और बेरोज़गार युवक, राशन की लंबी कतारें, शरणार्थियों के जत्थे, बलवाइयों की भीड़ और पुनर्वास के लिए संघर्ष करती पंजाबी जनता, यही सब 'झूठा सच' का वास्तविक सच है।

विभाजन की राजनीति से संबंधित कुछ पात्रों की प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण जन-जीवन की उपस्थिति और मानसिकता की दृष्टि से उपयोगी हो सकता है। उस विभाजन की राजनीति के निहितार्थ पर टिप्पणी करते हुए पंडित गिरधारी लाल कहते हैं, 'भाई लीग तो एब्सर्ड डिमांड करेगी ही। एटली ने उन्हें बढ़ावा दे दिया है कि जिस तजवीज में लीग शामिल नहीं होगी, उसे ब्रिटिश सरकार मंजूर नहीं करेगी। जब आप डेमोक्रेसी की बात करते हैं तो लीग और कांग्रेस का क्या सवाल ? जो मैजौरिटी में हो उसकी बात मानिए।'

इस विभाजन के नेताओं की भूमिका पर पुरी की टिप्पणी है, 'मास्टर तारा सिंह खुद तो कृपाण लहराकर लाहौर छोड़कर भाग गए। लैकिन सिखों को मुसलमानों का शत्रु बनवा दिया .....।'

पाकिस्तान के प्रति ब्रिटिश हमदर्दी के कारणों पर डा. नाथ की टिप्पणी है, 'जैकिंस की तो चाल है कि पाकिस्तान ब्रिटिश डोमिनियन में ही बना रहे।' अंग्रेज सरकार के कपटपूर्ण षड्यंत्र से नष्ट होते सांप्रदायिक सद्भाव को बचाने के प्रयास में, डूंगी गली से पलायन करते मुस्लिम परिवार से महाजन कहता है, 'बहन ... बंदरों के पुत्तर अंग्रेज हमें एक साथ रख सकते थे, हम खुद साथ-साथ नहीं रह सकते ?' 'झूठा सच' पात्रों, घटनाओं और प्रसंगों का एक महासमुद्र है, जिसमें वेगपूर्ण और अविरल प्रवाह भी है और छोटे-छोटे एकांत द्वीप भी। जीवन के प्रति गहरी संपृक्ति है और जो है उसे बेहतर बनाने का संघर्ष उसमें सब कहीं देखा जा सकता है। यही वह उदात्त तत्व है, जो उपन्यास को महाकाव्यात्मकता प्रदान करता है।

4.6 कवि-दृष्टि के अभाव का आरोप

नेमिचंद्र जैन ने 'झूठा सच' का मूल्यांकन 'बाह्य का विस्तार' कहकर किया है और कवि कुंवर नारायण ने स्पष्ट रूप से उस पर 'कवि दृष्टि का अभाव' का आरोप लगाया है। अपनी इसी समीक्षा में वे लेखक के मार्क्सवादी आग्रहों के प्रति अपने स्पष्ट पूर्वाग्रह की बात भी स्वीकार करते हैं। 'झूठा सच' के प्रसंग में कुंवर नारायण ने फ्लावेयर के 'मादाम बोवारी' का उल्लेख खासतौर से किया है। हिंदी में यथार्थवादी उपन्यास का विरोध और अमूर्तन का प्रश्रय देने वाले आलोचक प्राय: ही 'काव्यात्मक अनुभूति' और 'कवि-दृष्टि' जैसे पदों का उपयोग करते हैं। स्फीति, विस्तार और अनावश्यक ब्यौरे से बचकर गहरे रचनात्मक विवेक और अंतर्दृष्टि के साथ, फ्लावेयर ने 'मादाम बोवारी' की आंतरिक छटपटाहट और उद्वेलन को तत्कालीन फ्रेंच समाज की निषेधमूलक आचार संहिता के विरोध में अंकित किया, वस्तुत उस सघन संवदेनशीलता और कलात्मक संयम को ही कविदृष्टि के रूप में रेखांकित किया गया। यह यथार्थवाद विरोधी दृष्टि न होकर यथार्थ को अधिक प्रभविष्णु ढंग से अंकित करने वाली दृष्टि थी। कवि-दृष्टि के विरोध में जब यथार्थवाद को खड़ा किया जाता है तो प्राय: हमेशा ही उसे यथातथ्यता के रूप में लिया जाता है। परिवेशगत ब्यौरों और चित्रों की यथार्थवादी उपन्यास में एक विशिष्ट भूमिका होती है और कुंवर नारायण भी इससे इनकार नहीं करते।

अपनी समीक्षा में कुंवर नारायण इस ओर भी पर्याप्त सजग दिखाई नहीं देते हैं कि उपन्यास की मूल प्रकृति की उपेक्षा करके उस पर कोई टिप्पणी न की जाए। वे लिखते हैं, 'झूठा सच' मुख्यत: सामाजिक-राजनैतिक पृष्ठभूमि पर लिखा गया यथार्थवादी उपन्यास है। इससे भिन्न किसी दृष्टिकोण से जाँचते समय यह सावधानी बरतनी आवश्यक है कि विवेचना कृति के मूल मन्तव्य को देखते हुए असंतुलित न हो जाए।' इसके बाद उपन्यास की अंतर्वस्तु का संक्षेप में उल्लेख करते हुए वे आगे लिखते हैं, 'घटनाओं और चरित्रों की इतनी असाध्य विविधता को एक उपन्यास के दायरे में इस

इत्मीनान से संभाल लेना शिल्प की मामूली सफलता नहीं।' कुंवर नारायण 'झूठा सच' को इस बात का श्रेय भी देते हैं कि वह उनके अनेक पूर्वाग्रहों का स्पष्ट खण्डन करता है। उनका निष्कर्ष है, 'उपन्यास निस्संदेह मानव-जीवन के उन गण्यमान दस्तावेजों में है, जिनका मूल्यांकन एक कला कृति के रूप में होना चाहिए।'

जब कुंवर नारायण 'झूठा सच' के संदर्भ में कवि-दृष्टि के अभाव की बात करते हैं तो उनकी मुख्य शिकायत यह है कि उसके प्रमुख पात्र - पुरी, तारा और कनक - 'जीवन के प्रति एक बिल्कुल दैनिक और व्यावहारिक दृष्टिकोण रखकर चलते हैं। किसी भी परिस्थिति में उनका ध्यान तात्कालिक, सामाजिक या पारिवारिक या आर्थिक कठिनाइयों से आगे, उन जटिल प्रश्नों की ओर नहीं जाता जिनका संबंध हमारे अस्तित्व की बुनियादी मजबूरियों से है....' इस संबंध में सबसे विचारणीय बात यह है कि उपन्यास की जो पृष्ठभूमि है - देश-विभाजन और सांप्रदायिक उन्माद की उत्ताल लहरों का ज्वार - उसमें सुरक्षा, बुनियादी जरूरतों और पुनर्वास की समस्याएँ ही सबसे बड़ा सच हैं। इन स्थितियों में आदमी जीव-जगत, आत्मा और मोक्ष या अस्तित्व की ऐसी ही दूसरी आन्तरिक मजबूरियों के बारे में नहीं सोचता। वैसे भी पंजाबी लोग अपने वास्तविक, मूर्त और जीवन-संदर्भों से जुड़े व्यावहारिक दृष्टिकोण के लिए जाने जाते रहे हैं। अत: कवि-दृष्टि के अभाव का आरोप यहाँ निरर्थक सिद्ध होता है। यही नहीं, इसमें कवि दृष्टि का समावेश व्यावहारिक दृष्टि से आरोपित कर ऊपर से थोपा हुआ लगता।

'झूठा सच' के संदर्भ में इस कवि दृष्टि के अभाव का एक पक्ष कुंवर नारायण उसके नीरस और कवित्वहीन प्रेम-प्रसंगों में देखते हैं। उनका मानना है, "झूठा सच' के नीरस प्रेम-प्रसंग लेखक के स्थूल दृष्टिकोण की प्रत्यक्ष असफलताएँ हैं।' उपन्यास में चार प्रेम-प्रसंग प्रमुख हैं। तारा और असद, कनक और पुरी, पुरी और उर्मिला और शीलों और रतन के प्रेम-प्रसंगों का उल्लेख इस संदर्भ में किया जा सकता है। इनमें उर्मिला और शीलो के प्रेम-प्रसंग लुकाछिपी और दैहिक ज्वार के रूप में ही सामने आते हैं। ये दोनों ही प्रसंग अपने आवेग के कारण शुरू होते हैं और इन्हें भी यशपाल अपनी तार्किक परिणाति तक पहुँचाते हैं। उर्मिला अंतत: इस दुष्चक्र से बाहर आती है और अपने लिए स्वतंत्र राह बनाने में सफल होती है। तारा की सहायता से शीलो भी अपने पति से मुक्त होकर रतन को अपना जीवन-साथी बनाने में सफल होती है, जिसके बच्चे की माँ बनने की संभावना के बावजूद उसका विवाह अन्यत्र कर दिया गया है। जहाँ तक तारा और कनक का सवाल है, 'मादाम बोवारी' की तरह उनकी मुख्य समस्या प्रेम और सामाजिक निषेधों के द्वन्द्व की है ही नहीं। असद और तारा की कुछ संक्षिप्त सी मुलाकातें, संवाद और फिर तारा के साथ घटी सामाजिक त्रासदी उसके प्रति गहरी करुणा का भाव जगाती है। असद से उसकी अंतिम नाटकीय भेंट और फिर असफल प्रतीक्षा के बाद सब कुछ छूट जाने की उसकी पीड़ा गहरा अवसाद छोड़तीं है। कनक एक स्त्री के रूप में अपने निर्णय को ही सर्वोपरि महत्व देती है। उसके प्रेम-प्रसंग में अपने बहनोई तैयर और पिता गिरधारी लाल का किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप उसे स्वीकार्य नहीं है। यशपाल जीवन की समग्रता के संदर्भ में प्रेमानुभूति की अनिवार्यता पर बल देते हैं। वे उसके शारीरिक पक्ष की उपेक्षा नहीं करते। यशपाल प्रेम का कोई स्वतंत्र टापू नहीं बनाते। वे जीवन-संघर्षों के संदर्भ में ही प्रेम की अनिवार्यता स्वीकारते हैं। उनके यहाँ स्त्री केवल प्रेम ही नहीं करती, वह अपने जीवन और जीवन-जगत की वास्तविकताओं के बीच से ही अपनी राह बनाती है। अत: यहाँ कवित्व या कवि-दृष्टि का समावेश अनपेक्षित ही नहीं, वरन् लेखक की यथार्थवादी दृष्टि के विरोध में दिखाई देता।

4.7 युग की अभिव्यक्ति और समय की कसौटी

'झूठा सच' यशपाल की सर्वश्रेष्ठ रचना के रूप में स्वीकृत है वह हिंदी के श्रेष्ठ और उल्लेखनीय उपन्यासों में से भी एक है। उसकी एक श्रेष्ठता और स्वीकार्यता का मुख्य कारण यह है कि वह बीसवीं शताब्दी की एक ऐतिहासिक घटना को केन्द्र में रखकर चलता है और युग को बहुत प्रामाणिक और विश्वसनीय रूप में अंकित करता है। यशपाल के लेखन में विचार और कल्पना की एक दोहरी भूमिका शुरू से ही देखी जा सकती है। रचना की तैयारी में, एक लेखक के रूप में उनके परिश्रम का साक्ष्य 'देशद्रोही' और 'दिव्या' में ही मिल जाता है। 'देशद्रोही' की घटनाएँ गजनी और सोवियत रूस से संबंधित हैं। जब उपन्यास लिखा गया, तब तक यशपाल नें इन क्षेत्रों को देखा नहीं था। लेकिन उन्होंने इस कमी को इन क्षेत्रों के इतिहास, भूगोल और सामाजिक-राजनैतिक व्यवस्था संबंधी अध्ययन से पूरा किया। 'देशद्रोही' में वर्णित स्थानों और स्थितियों की प्रामाणिकता पर राहुल सांकृत्यायन ने गहरा संतोष व्यक्त किया था, जो वर्षों सोवियत संघ में रह चुके थे। इसी प्रकार 'दिव्या' की सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को समझने और जीवंत करने के लिए उन्होंने जातक कथाओं, तत्कालीन इतिहास और संस्कृति संबंधी ग्रंथों के अतिरिक्त अजंता और ऐलोरा की यात्रा भी की। इन उपन्यासों की सफलता और स्वीकार्यता से उनके इस परिश्रम के परिणाम स्पष्ट हैं।

यशपाल से जब-तब इस प्रसंग में बात हुई है, जिससे लगता है कि 'झूठा सच' के लेखन में भी, उसकी तैयारी के संदर्भ में, घटनाओं और प्रसंगों का उन्हें कोई प्रत्यक्ष अनुभव नहीं था। सन् 1931 के बाद यशपाल शायद ही कभी एकाध बार लाहौर गए हों। यह वह समय था जब हिंदुस्तानी प्रजातंत्र समाजवादी सेना के एक सक्रिय सदस्य के रूप में वे भूमिगत होकर फरारी का जीवन बिता रहे थे। सन् 1932 में एक पुलिस मुठभेड़ में वे इलाहाबाद में गिरफ्तार हुए थे। आजीवन कारावास की सजा के बाद, उत्तर प्रदेश में कांग्रेसी मंत्रिमण्डल बनने के बाद काफी कठिनाई से मार्च 1938 में उनकी रिहाई हुई थी। लेकिन उन पर पंजाब जाने के प्रतिबंध के कारण ही वे लखनऊ में ही बस गए और वहीं से उन्होंने बुलेट के स्थान पर बुलेटिन से अपनी लड़ाई जारी रखने के उद्देश्य से 'विप्लव' मासिक का प्रकाशन शुरू किया।

सन् 1938 से सन् 1947 के बीच वे दो-चार बार पंजाब गए अवश्य, लेकिन लाहौर शायद ही कभी गए हों। बहुत बाद में 'झूठा सच' संबंधी अपने आत्मकथन में उन्होंने काबुल के रास्ते सोवियत संघ जाते हुए एक-दो दिन अपने लाहौर रुकने का उल्लेख भी किया है। उन्होंने अपने युवाकाल के लाहौर की तुलना में बाद के उजाड़ और बेरौनक लाहौर पर गहरी पीड़ा भी व्यक्त की है।

देश के विभाजन के समय यशपाल लखनऊ में ही थे। वे और प्रकाशवती कुछ स्थानीय स्वयंसेवी संस्थाओं से जुड़कर पंजाब से आए शरणार्थियों के राहत कार्यों में भी शामिल थे। 'झूठा सच' लिखने जाने का विचार वस्तुत: उनके मन में इसी समय आया था। विस्थापित पंजाबियों की पीड़ाभरी करुण गाथाएँ उन्हें विचलित करती थीं। जिस 'झूठा सच' की आलोचना नेमिचंद्र जैन जैसे आलोचक 'अखबारों की विशाल कतरनें' कहकर करते हैं, वही वस्तुत: यशपाल की रचनात्मक तैयारी का एक जबर्दस्त प्रमाण है। अपने युवाकाल में, अध्ययन और क्रांतिकारी संगठन की गतिविधियों के दौर में, उन्होंने लाहौर के चप्पे-चप्पे को देखा और जाना था। उसी दौर के लाहौर को उन्होंने अपनी कल्पना से पुनर्जीवित किया। राजनैतिक उथल-पुथल, आंदोलन, सांप्रदायिक दंगों, जुलूसों और नेताओं के वक्तव्यों के लिए उन्होंने पुराने अखबारों का महीनों अध्ययन करके नोट्स लिए। इसी आधार पर यशपाल नेताओं के वक्तव्यों में उल्लिखित विचारों और शब्दों की प्रामाणिकता का भी दावा कर

सकने की स्थिति में थे। अत: अखबारी कतरनें उनकी रचनात्मक क्षमता को ही प्रमाणित करती हैं।

इस गंभीर और विशार तैयारी के परिणामस्वरूप ही वे 'झूठा सच' को अपने युग का एक प्रामाणिक साक्ष्य बना पाने में सफल हुए हैं। पंजाबियों के विस्थापन की पीड़ा सगे-संबंधियों को खोने और उनसे बिछुड़ने का अवसाद, पुनर्वास के लिए उनका संघर्ष और पहले ब्रिटिश और बाद में कांग्रेसी सरकारों की जनविरोधी नीतियों के कारण जनता का व्यापक मोहभंग - ये सारी चीज़ें मिलकर ही 'झूठा सच' को अपने युग की एक प्रतिनिधि और प्रामाणिक रचना बनाती हैं। 'झूठा सच' का लिखा जाना सन् 1956 में शुरू हुआ था। सन् 1958 में उसका पहला और सन् 1960 में दूसरा भाग प्रकाशित हुआ। किसी भी रचना के लिए यह कालखण्ड उसकी सार्थकता की कसौटी माना जा सकता है। इस बीच 'झूठा सच' का महत्व बढ़ा ही है। एक लेखक के रूप में यशपाल ने शासन, सत्ता और व्यवस्था की आलोचना का जोखिम उठाकर युग की सटीक और सच्ची अभिव्यक्ति की जो राह चुनी, एक रचना के रूप में 'झूठा सच' की वही सबसे बड़ी शक्ति है और शायद आगे भी बनी रहेगी। अत: झूठा सच पर न कवि-दृष्टि के अभाव का आरोप उचित है और नहीं प्रामाणिकता के अभाव का ही। यशपाल ने अपनी मार्क्सवादी दृष्टि के प्रकाश में ही उपलब्ध तथ्यों का उद्‌घाटन-आकलन किया है।

4.8 सारांश

- 'झूठा सच' एक बड़े फलक का उपन्यास है, जिसमें देश-विभाजन, सांप्रदायिक हिंसा, पुनर्वास और जनता के मोहभंग को विस्तार से अंकित किया गया है। इसी व्यापकता और सघनता के कारण उसे महाकाव्यात्मक उपन्यास भी कहा गया है। सामूहिक और सामासिक जीवन कैसे सांप्रदायिक हिंसा और उन्माद में बदलता है और उससे पारस्परिक सौहार्द और आपसी समझदारी कैसे आहत होती है - इसे प्रस्तुत इकाई में हमने विस्तार से स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है।

- उपन्यास को महाकाव्य के रूप में देखे जाने की शुरूआत ब्रिटिश मार्क्सवादी आलोचक राल्फ फॉक्स से हुई जब उन्होंने उपन्यास को 'पूँजीवादी सभ्यता का महाकाव्य' कहकर परिभाषित किया। घर और गली-मुहल्ले की जिंदगी से शुरू होकर 'झूठा सच' धीरे-धीरे पूरे लाहौर, फिर पंजाब और फिर समूचे देश की हलचलभरी घटनाओं को अंकित करने के कारण ही महत्वपूर्ण है। साधारण जीवन के छोटे-छोटे सघन ब्यौरे, गली-मुहल्ले के हार्दिक और सौहार्दपूर्ण जीवन की अन्तरंगता, एक-दूसरे के सुख-दुख में साझेदारी का भाव - इस उपन्यास में बहुत व्यापक और सघन रूप में अंकित है।

- अनेक वर्गों, संप्रदायों और राजनैतिक विकास-दृष्टियों वाले लोग यहाँ हैं। समूचा लाहौर अपने आकर्षण और वैभव के साथ एक जीवंत पात्र की तरह यहाँ उपस्थित है। उसका उत्कर्ष और पराभव जैसे मानव-जीवन के उत्थान और पतन का भी एक सार्थक प्रतीक है। दो वर्ग-दृष्टियों और जीवन-पद्धतियों वाला लाहौर मानव समाज की संपूर्णता का ही संकेत है। इकाई में इन सभी बिन्दुओं को विस्तार से उजागर किया गया है।

- कुछ आलोचकों ने 'झूठा सच' की आलोचना उसके बाह्य विस्तार, अख़बारी कतरनों का विशाल संग्रह और कवि-दृष्टि के अभाव को आधार बनाकर की है। ऐसी किसी आलोचना का मुख्य आधार ही विसंगतिपूर्ण है क्योंकि वह रचना की मूल प्रकृति की उपेक्षा करके उससे वह सब कुछ चाहता है जो उसमें न तो है, न हो सकता था। 'झूठा सच' यथार्थवादी उपन्यास है जो एक थरथराहटपूर्ण दौर को उसकी संपूर्णता में

अंकित करता है। जिसे 'बाह्य का विस्तार' और 'अखबारी कतरनों का विशाल भंडार' कहा गया है, वे चीजें ही एक रचना के तौर पर उसकी विशिष्ट उपलब्धियाँ हैं। इन ब्यौरों, हलचलों और वक्तव्यों से ही उसे प्रामाणिकता मिलती है। कवि-दृष्टि भी यथार्थवाद की विरोधी न होकर उसे और अधिक प्रभविष्णु बनाकर प्रस्तुत करने वाली दृष्टि है। 'झूठा सच' पर कवि-दृष्टि के अभाव का आरोप लगाने वाले कुंवर नारायण भी इसे स्वीकार करते हैं कि परिवेशगत ब्यौरों और चित्रों की यथार्थवादी उपन्यास में एक विशिष्ट भूमिका होती है। प्रेम-प्रसंगों की जिस कथित स्थूलता के आधार पर कुंवर नारायण यह आरोप लगाते हैं, उसके संबंध में यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि यशपाल प्रेम को संपूर्ण जीवन के महत्वपूर्ण कारक के रूप में देखते हैं। वहाँ प्रेम का महत्त्व जीवन के संघर्ष और सार्थकता के ही संदर्भ में है। उनकी नायिकाओं को इसी दृष्टि से देखा जाना चाहिए। 'झूठा सच' अपने युग की प्रामाणिक अभिव्यक्ति की दृष्टि से ही एक उल्लेखनीय उपन्यास है। इन सभी तथ्यों को विभिन्न आरोपों-प्रत्यारोपों के प्रकाश में प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत समुचित रूप से विवेचित-विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है।

4.9 अभ्यास प्रश्न

1. औपन्यासिक महाकाव्य से क्या तात्पर्य है?
2. महाकाव्यात्मक उपन्यास की आधारभूत विशेषताएँ 'झूठा सच' में कहाँ तक उपलब्ध हैं? क्या उसे एक सफल महाकाव्यात्मक उपन्यास कहा जा सकता है?
3. कवि-दृष्टि का क्या अभिप्राय है? यथार्थवादी उपन्यास के संदर्भ में इसे मूल्यांकन का आधार बनाना क्या उचित है?
4. अपने युग की प्रामाणिक अभिव्यक्ति की दृष्टि से 'झूठा सच' कहाँ तक सफल है?

खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें

1. यशपाल के पत्र : मधुरेश, मैकमिलन प्रकाशन, नई दिल्ली (नया प्रकाशन वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाश्य)।
2. क्रांतिकारी यशपाल : एक समर्पित व्यक्तित्व (सं.) मधुरेश, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
3. यशपाल और मार्क्सवाद : पारसनाथ मिश्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
4. क्रांति का विचार और हिन्दी उपन्यास : प्रेमसिंह, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला (अज्ञेय, यशपाल और रेणु का विशिष्ट संदर्भ)।

परिशिष्ट : यशपाल और 'झूठा सच'

जीवन परिचय

वस्तुत: रचनाकार की संवेदना के गठन में उसके जीवनानुभव की व्यापक भूमिका होती है।, यशपाल के जीवनानुभव का क्षेत्र समृद्ध और वैविध्य से भरा हुआ है। भारत में अंग्रेजविरोधी क्रांतिकारी आंदोलन में उनका महत्वपूर्ण योगदान था, उसकी छाया उनके संपूर्ण लेखन और चिंतन में दृष्टिगत होती है। भारत विभाजन का दर्द उन्होंने अनुभव किया था, इस पीड़ा की गंभीर अभिव्यक्ति उनके 'झूठा सच' उपन्यास में मिलती है।

यशपाल का जन्म 3 दिसम्बर सन् 1903 को फिरोजपुर छावनी में हुआ था। उनके पिता का मूल निवास स्थान कांगड़ा था। उनकी आर्थिक स्थिति वैसे भी अति सामान्य थी। यशपाल के पिता और चाचा के बीच बढ़ते कलह के कारण इनके घर की आर्थिक स्थिति और अधिक खराब हो गई। आर्थिक विपन्नता से लेखक के मन पर गहरा आघात लगा। वे इसे जीवन भर नहीं भूल पाए। उनके साहित्य में हमें ऐसे अनेक पात्र मिलेंगे, जो अभाव और मजबूरी के बीच जीने को विवश हैं। यशपाल की माता बदहाली की स्थिति में कांगड़ा छोड़कर पंजाब आ गई। उनके सगे संबंधी आर्यसमाज के आंदोलन से जुड़े हुए थे। इसलिए फिरोजपुर की एक आर्य कन्या पाठशाला में अध्यापिका के रूप में नियुक्ति में उन्हें विशेष परेशानी नहीं हुई। यशपाल ने सातवीं कक्षा तक की शिक्षा गुरुकुल कांगड़ी से प्राप्त की। उसके बाद की शिक्षा डी.ए.वी.लाहौर, तथा मनोहरलाल हाई स्कूल में प्राप्त की। यहीं से वे सन् 1921 में प्रथम श्रेणी में मैट्रिक की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। इसी समय हाथ से लिखी पत्रिका में उन्होंने 'अँगूठी' नामक अपनी प्रथम कहानी लिखी।

मैट्रिक परीक्षा पास कर वे पंजाब नेशनल कॉलेज के विद्यार्थी बने। इस समय देश में असहयोग आंदोलन छिड़ा हुआ था। विदेशी शासन के विरोध में आंदोलन उग्र रूप धारण करता जा रहा था। इसी बीच चौरी-चौरी का कांड हुआ। गांधी जी ने आंदोलन को स्थगित कर दिया। आंदोलन स्थगित होने से देश के नवयुवकों में बेहद निराशा व्याप्त हुई। जिन छात्रों ने आंदोलन की सफलता के लिए अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया था, वे असंतुष्ट थे। उन्हीं में से कुछ ने सशस्त्र क्रांति का मार्ग चुना। इन छात्रों में यशपाल भी थे। नेशनल कॉलेज में उनका संपर्क सुखदेव, भगतसिंह तथा चन्द्रशेखर आजाद जैसे सशस्त्र क्रांतिकारियों से हुआ। सामूहिक सशस्त्र क्रांति द्वारा अपने देश से विदेशी सत्ता का उन्मूलन करना इन क्रांतिकारियों का उद्देश्य था। सैण्डर्स हत्या, लाहौर बम कांड आदि में यशपाल की परोक्ष भूमिका थी। 1928 ई. में वे लार्ड इरविन की स्पेशल ट्रेन के नीचे विस्फोट का आयोजन करने तथा दिल्ली और रोहतक में बम निर्माण के काम में सक्रिय रहे। सन् 1931 में 'हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र सेना' के सेनापति 'आजाद' के मारे जाने पर इस संगठन के सेनापति नियुक्त हुए। 1932 ई. में पुलिस के साथ एक मुठभेड़ में इलाहाबाद में गिरफ्तार हुए। 1938 ई. में जेल से रिहा होकर वे साहित्य रचना की ओर प्रवृत्त हुए।

जल से मुक्त होने के बाद उन्होंने माता की बची बचायी पूँजी तीन सौ रुपयों से विप्लव' पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया। 1940 ई. में क्रांतिकारी विचारों से ओत प्रोत लेखों के कारण वे फिर गिरफ्तार कर लिये गए। बाध्य होकर उन्हें विप्लव का संपादन बंद कर देना पड़ा। उन्होंने स्वतंत्र रूप से साहित्य सृजन करते हुए कहानी, उपन्यास, निबंध, संस्मरण लिखे। स्वातंत्र्योतर पीढ़ी के रचनाकारों में विचारधारा और लेखन के स्तर पर उन्होंने एक अलग पहचान बनाई। जीवन के अंतिम समय में भी क्षीण होती आँख की रोशनी के बीच रचनारत रहे। 1976 ई. में उनका निधन हुआ।

यशपाल के विषय में राहुल सांकृत्यायन ने लिखा है "वे सीधे किताबों और विद्यालयों के भीतर से साहित्य के क्षेत्र में नहीं उतरे, बल्कि उन्होंने जीवन के बहुत कड़ुए-मीठे अनुभव हासिल किए हैं। उनकी लेखनी में जो पारदर्शिता, विविधता देखने में आती है वह इसी जीवन की देन है।" सामंती समाज के विघटन और पूँजीवादी व्यवस्था के आगमन के बीच किस प्रकार का दबाव मानवीय संबंधों पर पड़ रहा था, उसकी पहचान यशपाल के साहित्य में गहरी है। लेकिन इस कारण कहीं-कहीं उनके विश्लेषण जड़ और यांत्रिक हो गए हैं। सिद्धांतों को अत्यधिक महत्व देने के कारण वे मानवीय जीवन के जटिल यथार्थ को अनदेखा कर जाते हैं। यह उनके साहित्य की बड़ी सीमा है। लेकिन स्थितियों की जटिलता का विश्लेषण करने की उनकी क्षमता अचूक और धारदार है।

यशपाल प्रेमचंदोत्तर पीढ़ी के प्रतिनिधि कथाकार हैं। कहानी और उपन्यास में उन्होंने अपना विशिष्ट योगदान दिया है। 'पिंजरे की उड़ान' (1939), 'वो दुनिया' (1942) 'ज्ञानदान' (1943), 'तर्क का तूफान' (1943) 'भस्मावृत चिंगारी' (1949), 'फूलों का कुर्ता' (1949), 'धर्मयुद्ध' (1950), 'चित्र का शीर्षक' (1951), 'तुमने क्यों कहा था मैं सुंदर हूँ' (1954), 'उत्तमी की माँ' (1953) 'सच बोलने की भूल', (1962), 'खच्चर और आदमी' (1967) यशपाल के प्रतिनिधि कहानी संग्रह है। उनकी कहानी में शोषित और पीड़ितों के प्रति सहानुभूति है। उनकी मान्यता है कि मनुष्य रूढ़ि, अंधविश्वास, अज्ञान और आर्थिक सामाजिक दबाव में शोषित होने के लिए विवश किया जाता है। इसलिए कहानी में वे इन रूढ़ियों के विरुद्ध संघर्ष करने का संदेश देते हैं। यशपाल ने प्राय: उन्हीं समस्याओं का चुनाव किया जो प्रगतिशील जीवन दृष्टि की प्रेरणा देने में सक्षम हैं। उन्होंने पाठक को परंपरागत रूढ़ियों से अलग् करते हुए जीवन की कमजोरियों और मजबूरियों के वास्तविक संदर्भों से परिचित कराया। 'पहाड़ की स्मृति' की पहाड़िन, 'धर्मयुद्ध' के क्लर्क कन्हैयालाल, 'आतिथ्य' के रामशरण, 'अपनी-अपनी जिम्मेदारी' की साधारण मध्यवर्गीय कन्या प्रभा, 'हलाल का टुकड़ा' के देशप्रेमी रावत और 'तुमने क्यों कहा था कि मैं सुंदर हूँ' की क्षयरोग ग्रस्त माया और न जाने कितने ही ऐसे चरित्र यशपाल ने पेश किए जो उनकी रचनात्मक कल्पना के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। यशपाल के पात्रों में निजी जीवन की उलझन बहुत ही कम मिलती है। उनमें एक प्रकार की सपाटता है। कहानी के स्थापत्य के मामले में यशपाल सतर्क कथाकार हैं। उनकी कहानियों का ढाँचा सुनिर्मित है। भाव, विचार और कहानियों के कथानक प्राय: इकहरे होते हैं, लेकिन मार्मिकता से भरे होते हैं।

'दादा कामरेड' (1941) यशपाल का प्रथम उपन्यास है। इस उपन्यास में लेखक ने जनवादी चेतना के संदर्भ में स्वाधीनता और पराधीनता के प्रश्नों को उठाने का प्रयत्न किया है। वह एक ओर विदेशी शासन से लड़नेवाली शक्तियों का समर्थन करता है, दूसरी ओर वह उन शक्तियों के अंतर्विरोधों को परखकर शासन की जिम्मेदारी सही हाथों में सौंपना चाहता है। लेखक के मत में आजादी के लिए लड़नेवाली कांग्रेस, जो कहने के लिए जनता की भागीदारी से विदेशी शासन के विरुद्ध लड़ रही थी, अपनी मान्यताओं में अभिजात थी। यशपाल पराधीनता से मुक्ति की लड़ाई को केवल राजनीतिक सीमाओं में रखना नहीं चाहते हैं। वे जीवन के हर क्षेत्र में रूढ़ियों के खिलाफ आवाज उठाने का पक्ष लेते हैं। इस उपन्यास में वे सर्वप्रथम नारी को ही सामाजिक जकड़नों से मुक्त करना चाहते हैं। चूँकि सामाजिक पूर्वमान्य आचार संहिता में नारी को पराधीनता में रहने को विवश किया गया था, अत: नई मान्यताओं में स्त्री स्वतंत्रता की स्वीकृति आवश्यक है। इस उपन्यास में पात्र शैल को नये ढंग की नारी के रूप में चित्रित किया गया है, जो पुरुष की दी हुई परतंत्रता से टकराती चलती है।

देशद्राही' (1943) उपन्यास के कथानक का फलक 1930 के असहयोग आदोलन से महायुद्ध की राजनीतिक घटनाओं तक बिखरा हुआ है। पूँजीवाद का विरोध, वर्ग संघर्ष की प्रतिष्ठा जैसे श्रेष्ठ मानवीय मूल्यों को उपन्यास में उभारने का लेखक ने प्रयत्न किया है। 'दिव्या' (1945) की पृष्ठभूमि ऐतिहासिक है, परंतु उसके मूल्य बोध नितांत आधुनिक हैं। इस उपन्यास की कथायात्रा में कुलीन समाज के संबंधों और मूल्यों की रिक्तता पाठक के सामने स्पष्ट होती है। साथ ही नारी का शोषण करने वाले सामाजिक संस्थान का कुरूप चेहरा भी उभरता है। सामंती समाज में दिव्या नाम की नारी की यंत्रणा और यातना की पीड़ा का गतिमान चित्र धीरे-धीरे खुलता है। दिव्या वीर पृथुसेन से प्रेम करती है, परंतु कुलीनता के कारण वह अपने प्रेम को अभिव्यंजित नहीं कर पाती। दूसरी ओर उपन्यास में दासों का एक वर्ग है जो लगातार सामंती शोषण की चक्की में पिस रहा है। महाराज मिलिन्द ने दासों को मुक्त किया था, लेकिन वे पुन: दास बना लिए जाते हैं। इस प्रकार उपन्यास कहीं न कहीं हमारे समकालीन जीवन के पिछड़े और शोषित लोगों की कहानी कहता प्रतीत होता है।

'पार्टी कामरेड' (1947) की पृष्ठभूमि राजनैतिक है। बंबई के नाविक विद्रोह, तथा 1943 की राजनैतिक घटनाओं से उपन्यास का कथानक बुना गया है। 'मनुष्य के रूप' (1949) उपन्यास में लेखक ने प्रेम को सनातन भाव से स्वीकार न करके एक मानवीय आचरण के रूप में परिभाषित किया है, जो व्यक्तियों-वर्गों के सामाजिक-आर्थिक ढाँचों के अनुकूल बदलता है। उपन्यास की पात्रा सोमा का उपन्यास में प्रवेश विधवा के रूप में होता है और वह जीवन की यातनापूर्ण परिस्थितियों में धनसिंह से प्रेम करती है। उसी के सहारे वह आगे बढ़ती है। अपना अस्तित्व बचाने के लिए पग-पग पर स्त्रीत्व को दाँव पर लगाती है। वह अपने रूप और यौवन से ऐश्वर्य हासिल करती है। धन और ऐश्वर्य को पाकर वह अपने प्रेमी धनसिंह को ही भूल जाती है। इस प्रकार लेखक ने धन और ऐश्वर्य के अमानवीय पहलू को उजागर करने का प्रयत्न किया है।

'झूठा सच' यशपाल का महत्वपूर्ण उपन्यास है। झूठा सच उपन्यास के दो भाग हैं - प्रथम, 'वतन और देश' तथा दूसरा 'देश का भविष्य'। पहले भाग में विभाजन के समय की अराजकता का वर्णन है तथा दूसरे भाग में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के भारत का चित्रण है। लेकिन उपन्यास की कथा में कहीं भी गाँव को नहीं स्पर्श किया गया है। कथानक, घटना और पात्र कस्बे या शहर के इर्द गिर्द ही घूमते दिखाई पड़ते हैं। इस उपन्यास में सांप्रदायिक दंगे का हृदय विदारक वर्णन है। दंगे से प्रभावित लोगों का विस्थापन और उनकी समस्याओं का लेखक ने गहराई से निरीक्षण किया है। लेखक ने राजनीति के उन पहलुओं को भी पाठक के सामने रखा जिसके कारण सांप्रदायिक शक्तियों को बढ़ावा मिला था। इस रूप में यह उपन्यास ऐतिहासिक दस्तावेज जैसा प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त 'अमिता' (1956), 'बारह घंटे' (1983), 'अप्सरा का शाप' (1965), 'क्यों फँसे!' (1968) तथा 'मेरी तेरी उसकी बात' (1973) उपन्यासों की भी उन्होंने रचना की। अमिता में विश्वबंधुत्व का संदेश है। 'बारह घंटे' उपन्यास में दांपत्य जीवन के परस्पर आकर्षण, विकर्षण अथवा दांपत्य जीवन को केवल सामाजिक कर्तव्य के रूप में देखने पर प्रश्न चिन्ह लगाया गया है। 'अप्सरा का शाप' में मातृसत्तात्मक समाज की प्रतिनिधि मेनका के बहाने पुरुषसत्तात्मकता की निंदा की गई है। वास्तव में पुरुष ने नारी को बाँधकर उसके व्यक्तित्व को मात्र पत्नी के रूप तक सीमित कर दिया है। लेखक ने पतिव्रता की धारणा पर भी व्यंग्य किया है।

यशपाल ने वैचारिक निबंध भी लिखे। उनके निबंधों का स्वर मानवतावादी है। न्याय का संघर्ष' (1940), 'मार्क्सवाद' (1941), 'गाँधीवाद की शव परीक्षा' (1942), 'चक्कर क्लब' (1943), 'बात-बात में बात' (1950), 'रामराज्य की कथा' (1950) 'देखा सोचा समझा' (1951), 'बीबी जी कहती हैं,' 'मेरा चेहरा रोबीला है' (1961) तथा 'जग का

मुजरा' (1962) उनके श्रेष्ठ निबंध संग्रह हैं। यशपाल के निबंधों में पत्रकार की तात्कालिकता और रोचकता के साथ साथ विचाराधारा की टकराहट मिलती है। वर्ग वैषम्य और गैरबराबरी के मार्क्सवादी नजरिये को उन्होंने निबंधों में प्रातिपादित किया है। यशपाल ने आत्मकथा साहित्य में भी अपना योगदान दिया। 'सिहावलोकन' (तीन भाग) में उन्होंने अपने क्रांतिकारी जीवन के अनुभवों को लिपिबद्ध किया है। ये तीनों खण्ड क्रमश: 1951, 1952 और 1955 में प्रकाशित हुए। 'लोहे की दीवार के दोनों ओर' (1952) तथा यह बीती' (1953) उनके द्वारा रचित संस्मरण हैं।

कव लिखी गई

प्रस्तुत पाठयक्रम में 'झूठा सच' उपन्यास के दोनों भागों का अध्ययन प्रस्तावित है। 'झूठा सच' उपन्यास का प्रथम भाग (वतन और देश) 1958.ई. में प्रकाशित हुआ। झूठा सच (देश का भविष्य) 1960 ई. में प्रकाशित हुआ। वतन और देश पर्यायवाची शब्द हैं लेकिन देश के विभाजन के बाद ये शब्द दो विभाजित मानसिकता के प्रतीक बन गए। लेखक ने उपन्यास के बहाने देश को विभाजित करने वाली षड्यंत्रकारी शक्तियों को पहचानने की कोशिश की है। इस उपन्यास में स्वतंत्रता के समय की राजनैतिक घटनाओं और उससे उत्पन्न होने वाली स्थितियों को गहराई से विश्लेषित किया गया है तथा जनजीवन पर उसके प्रभाव की समीक्षा की गई है। झूठा सच (देश का भविष्य) मे स्वातंत्र्योतर सत्ता की सच्चाइयों तथा मध्यवर्गीय जीवन के वास्तविक चित्र को लेखक ने पाठक के सामने रखा हैं।

अंतर्वस्तु

झूठा सच (वतन और देश) की अंतर्वस्तु में 1946-48 ई. तक की राजनीतिक घटनाओं, का रचनात्मक उपयोग किया गया है। उपन्यास की कथावस्तु का आधार एक ओर पारंपरिक और सामुदायिक ढंग का समाज उसकी मूल्य और मान्यताओं की प्रस्तावना है, तो दूसरी ओर उसके टूटने और विघटन होने की प्रक्रिया को भी अभिव्यक्त किया गया है। लाहौर के भोलापांधे की गली में रामज्वाया और रामलुभाया, खुशालसिंह, आदि का परिवार, पुराने ढंग के मध्यवर्गीय समाज का चित्र उपस्थित करता है। उस समय आधुनिक ढंग की शिक्षा और नये विचारों से प्रसार से जाति और समुदाय की रूढ़ मनोवृत्ति को चुनौती मिल रही थी। उपन्यास में तारा, पुरी, कनक, नैयर, असद, प्रद्युम्न, नरेन्द्र आदि नई पीढ़ी के युवक और युवतियों के प्रगतिशील विचार से सामाजिक बदलाव की रूपरेखा बनती हुई दिखाई पड़ती है। परंतु मध्यवर्गीय मानसिकता के कारण कुछ अंतर्विरोध भी उपस्थित होता है। पुरी के माध्यम से लेखक ने इसको स्पष्ट किया है। पुरी स्वयं कनक से अंतर्जातीय विवाह करना चाहता है परंतु अपनी बहन तारा को असद से विवाह करने नहीं देना चाहता। इस प्रसंग के बहाने लेखक परिवार में पुरुष वर्चस्व की मानसिकता की आलोचना करता है। शीलो और रतन के अवैध प्रेम प्रसंग तथा तारा और असद के आत्मीय प्रेम प्रसंग के माध्यम से स्त्री की स्वतंत्र आकांक्षा का एक प्रतिरोधी स्वर उपन्यास में उभरता है। पति और पत्नी का विश्वसनीय संबंध सनातन सच के रूप में स्वीकार किया जाता रहा है लेकिन सोमराज साहनी ने तारा के साथ जो दुर्व्यवहार किया वह इस सच को कितना अधिक झूठ बनाता हुआ प्रतीत होता है। उपन्यास में इसी प्रकार के 'झूठे सच' को स्थान स्थान पर रेखांकित किया गया है। विभाजन के बाद भड़के दंगों में सबसे अधिक यातना भी स्त्री को ही भोगनी पड़ी। हिंदू और मुसलमान दोनों समुदायों की ओर से स्त्री पर ही अधिक प्रहार किया गया। स्त्री का बलात्कार, हत्या आदि से जुड़े कई प्रसंग रोंगटे खड़े करने वाले हैं। बंती, तारा, संतवंत आदि कई स्त्रियों को शेखूपुरा के एक घर में भूखा और नंगा रखा गया। यह जुल्म केवल हिन्दू औरतों के साथ ही नहीं हुआ मुसलमान औरतों के साथ भी भयानक अत्याचार हुए। इन सबका खुलासा उपन्यास में किया गया है।

उपन्यास में मध्यवर्गीय जीवन के संघर्ष और पीड़ाओं को भी लेखक ने अभिव्यक्ति दी है। पुरी की बेरोजगारी उसके संपूर्ण व्यक्तित्व पर एक प्रश्न चिन्ह है। वस्तुत: पैसा और पूँजी ही नई पूँजीवादी व्यवस्था में आत्मसम्मान और प्रतिष्ठा का मूलाधार बन गया। पैसे और पूंजी के कारण ही रामलुभाया और रामज्वाया सगे भाई होने पर भी दोनों की सामाजिक हैसियत में अंतर है। विचार कितने भी महान हों लेकिन सामाजिक प्रतिष्ठा को पैसे से आँकने की रूढ़ मनोवृत्ति की लेखक आलोचना करता है। सामाजिक विषमता को मिटाए बिना इस प्रकार की मनोवृत्ति को हटाना असंभव है, लेखक यह संदेश चुपके से पाठक को कह जाता है। असल लड़ाई साधनहीन और साधन संपन्न के बीच है। पुरी योग्यता रखने पर भी प्रकाशकों के द्वारा शोषित होने के लिए विवश है। वह सच्चाई पर चलकर कशिश के पत्र 'पैरोकार' से त्यागपत्र देता है। वास्तव में राजनीति, पूँजी और विज्ञापन के अदृश्य षड्यंत्र को पुरी देखकर नजर अंदाज नहीं पाता है। वह युवक है, उसकी लगन और प्रतिभा एक विशिष्ट उद्देश्य से संचालित है। वह अपने उच्च आदर्श के समक्ष जीविका के साधन को त्याग एक शहर से दूसरे शहर में भटकने से संकोच नहीं करता है।

उपन्यास का तीसरा और सबसे महत्वपूर्ण संदर्भ राजनीति का है। वस्तुत: 1937 के बाद सांप्रदायिकता औपनिवेशिक अधिकारियों का एकमात्र राजनीतिक औजार तथा फूट डालो और राज करो की अपनी नीति चलाने का एकमात्र माध्यम हो गई। पंजाब की विधान सभा को गवर्नर द्वारा भंग करना और मुस्लिम लीग को बढ़ावा देने के कारण संप्रदायिकता का विष धीरे-धीरे फैलने लगा था। मुस्लिम लीग और हिंदू महासभा दोनों इसके लिए समान रूप से जिम्मेवार थे। कांग्रेस कीं राजनीतिक निष्क्रियता विभाजन के लिए बहुत दूर तक दोषी थी। सांप्रदायिक शक्तियों का अपना प्रचार तंत्र था जिससे वे अफवाह फैला रहे थे। उपन्यास में एक प्रसंग सोमराज सहनी द्वारा प्रो. दीनमोहम्मद को पीटने का है। इस घटना की व्याख्या मुस्लिम लीग और हिंदू महासभा के पात्रों ने अपने-अपने सांप्रदायिक दृष्टिकोण के अनुसार की। अकालीदल और हिन्दू महासभा की रणनीति तो सांप्रदायिक थी ही, मुस्लिम लीग कांग्रेस को भी हिंदू समर्थक बताने में सक्षम हो गया। कांग्रेस ने इसे लगभग स्वीकार कर लिया। यह उस समय की राजनीति का सबसे भयानक पहलू है। प्रगतिशील लोग सांप्रदायिक सौहार्द के लिए लगातार प्रयास करते रहे जुलूस निकालते रहे और व्याख्यान देते रहे। परंतु धीरे-धीरे उनकी आवाज़ का स्वर क्षीण होने लगा क्योंकि उनके पास कोई प्रचार तंत्र नहीं था। शिक्षित लोग अंग्रेजों के खेल को समझ रहे थे। परंतु उनकी संख्या कम और नगण्य थी।

'झूठा सच' के दूसरे भाग (देश का भविष्य) में विस्थापितों की समस्या को मुख्य रूप से रखा गया तथा देश की राजनीतिक आर्थिक गतिविधि के प्रसंग को स्थान-स्थान पर विवेचित किया गया है। पश्चिमी पंजाब के विस्थापित लोग देश के विभिन्न नगरों में अपनी आजीविका के लिए संघर्षरत थे। ये लोग लुटे और पिटे थे, लगभग खाली हाथ थे, उनके सामने भूख और बेरोजगारी की समस्या थी। उन्हें अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए आत्मसम्मान से समझौता करना पड़ा परंतु धैर्यपूर्वक कार्य करने पर वे अपना जीवन नए ढंग से प्रारंभ करते हैं। गिरधारीलाल दिल्ली में प्रेस स्थापित करते हैं; नैयर जालंधर में वकालत जमाता है, पुरी जालंधर में सूद के संरक्षण में पूँजीपति ही नहीं राजनेता भी बन जाता है। तारा अपने पढ़ाई के बल से अंडर सेक्रेटरी के पद को प्राप्त करती है। इन पात्रों के जीवन-संघर्ष की नाटकीयता को लेखक ने बड़े ही सूक्ष्मता से उकेरने का प्रयत्न किया है। पुरी, जो अपने आदर्शवाद के कारण लाहौर में 'कशिश' जी के पत्र से इस्तीफा दे चुका था, अब तमाम तरह के समझौतों को स्वीकार करता है। युग के आदर्श और यथार्थ की स्थिति बदलते ही पात्रों के चरित्र में गुणात्मक परिवर्तन उपस्थित होता है। वस्तुत: स्वातंत्र्योतर भारत की राजनीति का यथार्थ गांधीयुग की राजनीति से बिल्कुल भिन्न था। स्वातंत्र्योतर यथार्थ में मध्यवर्ग की उभरती ताकत छद्म नैतिकता से परिचालित थी। उसके

आंतरिक जीवन और बाह्य जीवन में बड़ा अंतर था। क्लब, शराब, पार्टी, आदि में मध्यवर्ग की दिलचस्पी विशेष कारणों से बढ़ी। यह संपर्क बढ़ाने का साधन था, जिससे उसका अधिक से अधिक अपना स्वार्थ सिद्ध हो सके।

'झूठा सच' प्रथम भाग में स्त्रियों पर हुए जुल्म का मार्मिक चित्रण है। परंतु 'झूठा सच' (देश का भविष्य) में स्त्रियों की विवशता को दूसरे तरह से प्रस्तुत किया गया है। स्त्रियों पर दंगाइयों का कहर बरपा, वह किसी तरह वहाँ से जान बचाकर दिल्ली आती हैं। यहाँ उसका पति उसे स्वीकार करने से मना कर देता है। नये सामाजिक व्यवस्था में स्त्रियों की भूमिका को तो स्वीकार किया गया परंतु उसे उपभोग की वस्तु ही समझा जाता था। तारा, अफसर और राजनेता के लिए उपभोग का साधन समझी जाती थी। कनक को अवस्थी जी नौकरी से लगा देते हैं परंतु उससे उसका मूल्य माँगते हैं। व्यापार प्रतिष्ठान और राजनीति में स्त्रियों की भूमिका बदलने से वे आत्मनिर्भर तो होने लगी थीं, परंतु उनका शोषण अभी भी बंद नहीं हुआ था। केवल शोषक का चेहरा बदल गया था।

उपन्यास के अंत में एक राजनीतिक दाँवपेंच को रखा गया है। यह राजनीति घृणित और दूषित मनोवृत्ति को संकेतित करती है। सूदजी तारा के पूर्व पति सोमराज सहनी को तारा का पति सिद्ध करने के लिए अदालत में उससे याचिका देने के लिए प्रेरित करते हैं। जबकि सूद का वास्तविक निशाना डॉ. प्राणनाथ है। पंचवर्षीय योजना के सिलसिले में उनकी बातों को नहीं मानने का दंड वे उसे देना चाहते थे। लेकिन उनकी सत्ता अंत में छिन जाती है, सूद जी चुनाव हार जाते हैं। डाक्टर और तारा को अदालत से दोषमुक्त कर दिया जाता है। उपन्यास के अंत में उपन्यासकार जनता की शक्तियों पर विश्वास को प्रतिपादित करता है। अंतत: देश का भविष्य भी तो यहाँ की जनता ही है। उसका निर्णय ही अंतिम है।

महत्व

झूठा सच (वतन और देश) उपन्यास स्वतंत्रता के समय के, खासकर पंजाब के जीवन की जीती जागती तस्वीर है। लाहौर के भोला पांधे की गली पंजाब के कस्बाई समाज का एक प्रतीक है। लेखक ने उस समाज के जीवन्त संबंधों को रूपायित करने का प्रयत्न किया है। उन संबंधों को उपन्यास के आरंभिक अंश से लेकर अंतिम तक में इसे देखा जा सकता है। उपन्यास के आरंभ में रामलुभाया और रामज्वाया की माता की मृत्यु होती है। रामलुभाया और रामज्वाया के यहाँ उनकी माता के लिए कोठरी नहीं थी। दोनों के यहाँ वह उपेक्षित सी पड़ी रहती थी। यह मध्यवर्ग की संवेदनहीन दृष्टि का परिचायक है, इस निर्ममता पर लेखक ने व्यंग्य किया है। उपन्यास में निम्न वर्ग के परिवार के अभाव और पीड़ा को बड़ी ही सूक्ष्मता से उकेरा गया है। लेखक ने इस प्रकार के परिवार के पात्रों की मानसिकता को भी आत्मीयता से रचा है। विभाजन की ऐतिहासिक घटना के कारण कस्बाई समाज टूटता है और नई व्यवस्था के अनुकूल पुन: नगर और महानगर में व्यवस्थित होता है। देश में विभाजन की प्रक्रिया के बीच मानवीय स्थिति और उससे उत्पन्न होनेवाली समस्या को समग्रता में मूल्यांकन करने का प्रयास लेखक का रहा है।

राजनीति के निहित स्वार्थ के कारण सांप्रदायिक तनाव को फैलाया जाता हैं। कहीं भी सामान्य जनता उसमें भाग नहीं लेती है कुछ अपराधी किस्म के लोग ही इसके पीछे होते हैं, परन्तु दंगा होने पर सामान्य लोगों को ही उस पीड़ा को भोगना होता है। दंगा के उन्माद और अफवाह को शरारती तत्वों द्वारा बढ़ा-चढ़ाकर लोगों के बीच पेश किया जाता है। उग्र सांप्रदायवाद किसी भी समाज के लिए खतरनाक है। वास्तव में समाज के मूलभूत मुद्दे और आर्थिक विषमता को छिपाने के लिए सांप्रदायिकता के मुद्दे को उछाला जाता है। सांप्रदायिक शक्तियों की मानसिकता को समझने और परखने में इस उपन्यास का असाधारण महत्व है। लेखक ने हिंदू और मुस्लिम के दंगे का चित्रण ही नहीं उनमें कराहती मानवता की आवाज को भी सुनने का प्रयत्न किया। आज के समाज में भी निहित स्वार्थों के लिए दंगे भड़काए

जाते हैं, ऐसे कठिन क्षण में 'झूठा सच' उपन्यास की उपयोगिता और प्रासंगिकता और अधिक बढ़ जाती है।

झूठा सच (देश का भविष्य) में नेहरू युग की वास्तविकता को रेखांकित किया गया है। अंग्रेजों की औपनिवेशिक शासन से मुक्ति के बाद देश की राजनैतिक व्यवस्था में कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं हुआ। नौकरशाह, ठेकेदार, पूँजीपति, राजनेता और पत्रकार के बीच एक प्रकार का गठबंधन विकसित हुआ। इन्हीं के पास सत्ता के वास्तविक अधिकार थे। दूसरे शब्दों में कहें तो वे सत्ता का दुरुपयोग कर रहे थे। लेखक ने उपन्यास में इस यथार्थ को पहचाना और उसे अभिव्यक्त किया। नेहरू युग का यह क्रूर सच बाद की राजनीति में भी मिटा नहीं अपितु और अधिक प्रबल होता गया। इसलिए पचास साल के बाद हमारे युग के लिए भी यह उपन्यास उतना ही महत्वपूर्ण बना हुआ है। गांधी के लिए चरखा और खादी स्वराज के लिए संघर्ष का प्रतीक था। स्वतंत्रता के बाद गांधी के चरखे और खादी को पूजा की वस्तु मान लिया गया। वास्तव में पाखंडी लोगों का वर्चस्व जीवन के सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्रों में बढ़ रहा था। ऐसे लोग बेहतर सामाजिक व्यवस्था के प्रयासरत नहीं थे, इसलिए संघर्ष के दोनों प्रतीकों को पूजा की वस्तु मान लिया गया । लेखक ने संपूर्ण उपन्यास में दोहरी मानसिकता मे जीने वाले लोगों पर व्यंग्य किया है।

भाषा शैली

झूठा सच (वतन और देश) उपन्यास में कलात्मकता को बहुत अधिक महत्व नहीं दिया गया है। उपन्यास की शैली अखबारी है। समाचार पत्र में घटनाओं को जिस प्रकार संयोजित कर दिया जाता है, उसी प्रकार की शैली में उपन्यास के कथानक और घटनाओं का विस्तार होता है। कथानक धीरे-धीरे व्यापक रूप में फैल जाता है। घटना और रोचक प्रसंगों की योजना के द्वारा कथावस्तु परिणति की ओर बढ़ती है। कहीं भी शिथिलता का अनुभव पाठक को नहीं होता है। किस्सागो की तरह यशपाल उपन्यास के सूत्र को जोड़ते जाते हैं। उपन्यासकार ने जीवन, समाज और राजनीति के विविध प्रसंगों की योजना में ईमानदारी और प्रामाणिकता को बनाए रखा है। इसलिए उपन्यास बृहदाकार होने पर भी उबाऊ नहीं है। मार्मिक प्रसंग स्थान-स्थान पर कचोट और व्यथा उत्पन्न करते हैं। उपन्यासकार ने इतिहास के प्रश्नों को उपन्यास के केंद्र में रखा है इसलिए उपन्यास की गति इतिहास की गति के समान तीव्र है। उसमें क्षण भर का भी ठहराव नहीं हैं

जितने बड़े फलक पर सामाजिक जीवन को लेखक ने उपन्यास में उठाया है उसमें पात्र और परिवेश के अनुकूल भाषा की भी विविधता है। उदाहरण के लिए विवाह उत्सव में टप्पे का प्रयोग हुआ है। टप्पे में पंजाबी भाषा की मिठास और धुन है। इसी प्रकार पीढ़ी के अनुकूल भाषा में परिवर्तन हुआ है। खासकर पुरानी पीढ़ी की स्त्रियों की भाषा में आत्मीयता और अपनापन है, नई पढ़ी-लिखी लड़कियों की भाषा औपचारिक है। उपन्यास के परिवेश को रचने के लिए भाषा की विश्वसनीयता बनाए रखने में लेखक सफल हुआ है। लेखक ने शब्दावली चयन, पात्र और वातावरण को ध्यान में रखकर किया है। उपन्यास का कथानक लाहौर, दिल्ली, नैनीताल, हरियाणा आदि क्षेत्रों तक फैला है। इन क्षेत्रों की बोली के साथ भाषा की रचनात्मक संभावना के प्रति लेखक उदासीन है। उपन्यास के कथानक में इकहरापन के होने के कारण भाषा में भी व्यंजना की संभावना अत्यंत क्षीण है। वर्णनात्मक शैली में भाषा की नीरसता और समाचार पत्र की स्थूल भाषा प्रयोग से उपन्यास बोझिल प्रतीत होता है।

उपन्यास कैसे पढ़ें

झूठा सच बृहत आकार का उपन्यास हैं। इस उपन्यास में इतिहास की वास्तविकता को लेखक ने उकेरने का प्रयत्न किया है। लेखक ने उपन्यास के संदर्भ में भारत विभाजन की

राजनीतिक वास्तविकता को बिना किसी लाग लपेट के सीधे अभिव्यक्त कर दिया है। इसी प्रकार दूसरे भाग में स्वातंत्र्योतर भारत में विकास के नाम पर लूट को बढ़ावा दिया जा रहा था, उससे भी लेखक ने उपन्यास का संदर्भ निर्मित किया है। उपन्यास पढ़ते समय राजनीति की वास्तविकता को समझने का प्रयत्न कीजिए तथा उस वास्तविकता का प्रभाव किस प्रकार से पात्रों पर पड़ रहा था, उसे भी समझने की चेष्टा कीजिए।

उपन्यास में सामाजिक विकास के चरण को भी प्रतिपादित किया गया है। भोला पांधे की गली सामंती समाज के अवशेष के प्रतीक है। नई पूँजीवादी व्यवस्था की गली का सामुदायिक समाज उजड़ता है। वहाँ के लोग इस नई व्यवस्था में नए तरह से संघर्ष करने के लिए नगर और महानगर में जाते हैं। इसके साथ ही इस बात पर भी गौर करने की जरूरत है कि अंग्रेजों की औपनिवेशिक व्यवस्था के चले जाने बाद जो व्यवस्था हिंदुस्तान में आकार ले रही थी, वह किन मायनों में स्वदेशी थी। इस उपन्यास के संदर्भ में सबसे अहम् बात सांप्रदायिक शक्तियों के खिलाफ संघर्ष करने का संदेश है। सांप्रदायिक ताकत किस प्रकार का झूठा उन्माद फैलाते हैं इसे भी समझने की चेष्टा कीजिए। विभिन्न सामाजिक जीवन में नारियों के शोषण के मुद्दे को स्थान-स्थान पर यशपाल ने इस उपन्यास में उठाया है। इन मार्मिक प्रसंगों पर भी विचार करने की आवश्यकता है।

कठिन शब्दावली

सिद्धढ	-	सीधा सादा।
आशनाई	-	प्रेम
मजमून	-	लेख
मुखालफत	-	विरोधी
सलीस	-	सुगम
नमदे	-	कंबल
तकसीम	-	विभाजन
तस्सुब	-	कट्टरपन
एतकाद	-	विश्वास
तकरीर	-	भाषण
मुख्तलिफ	-	भिन्न-भिन्न
आयद	-	आरोपित
नादीदा	-	अविश्वास
तोहमत	-	वृथा दोषारोपन
नेकबख्त	-	सीधा

व्याख्या के लिए अंश (वतन और देश)

1. "अखबार-नवीसी कठिन तपस्या है और उसे सीखना पड़ता है,'' कशिश जी बोलते गये, "बड़े-बड़े लेखक तमाम उम्र सीखते रहे हैं। मिसाल के तौर पर ताल्सताय को लीजिये। डू यू नो, ताल्सताय ने अपनी कहानियों के पहले कलेक्शन को एक सौ बार रिवाइज किया था। आजकल के नौजवानों में टेलेण्ट की कमी ही नहीं, इट इज देयर लेकिन तपस्या नहीं है। वे सीखना नहीं चाहते। एकदम नाम, ओहदा और दौलत चाहते हैं। अगर आप ने कभी मोटर नहीं चलाई तो आप मोटर कैसे चला सकेंगे! जरूर एक्सीडेंट करेंगें, सर्टनली करेंगे! मोटर तो मामूली चीज़ है। जर्नलिज्म सियासत का जहाज है। जर्नलिस्ट चाहे तो स्टेट को बचा ले, चाहे तो डूबो दे। कितनी बड़ी जिम्मेदारी है।'' कशिश जी ने जिम्मेवारी के बोझ से दोनों बाहें फैला कर गहरी सांस ली।

2. प्रौढ़ाओं के शरीर पर केवल धोतियाँ ही। चढ़ती आयु की लडकियाँ जरूर सलवार-कमीज पहने थी। स्त्रियों के जीवन से लज्जा का उतार-चढ़ाव दिन के पहरों में ताप की भाँति होता है। बचपन में लाज की अनुभूति नहीं रहती। जीवन के दूसरे पहर में जब वे अपने शरीर में नारीत्व को पहचानने लगती हैं और जान जाती हैं कि उनके जीवन की परिणति उनकी आकर्षक शक्ति में है तो वे जो आकर्षण के प्रबल माध्यम लाज को बढ़ाने लगती है। यौवन में विवाह से पूर्ण लाज और संकोच की यह अनुभूति और उसका प्रदर्शन भी नवयुवति में अत्यन्त उत्कट होता है। विवाह के रूप में आकर्षण शक्ति के चरितार्थ हो जाने पर और विवाह की परिणति सन्तान के रूप में हो जाने पर अपने शरीर के सम्बन्ध में स्त्रियों की लाज घटने लगती है। जर्जर बुढ़ापे की संध्या आ जाने पर, आकर्षण का अवसर नहीं रहता तो स्त्रियों में शरीर के प्रति शैशव का सा निस्संकोच फिर लौट आता है।

3. मैं आर्थिक प्रश्नों के लिये परामर्शदाता हूँ। बिना पूछे मैं कोई सलाह नहीं दे सकता। गर्वनर भी जानता है कि यूनियनिस्ट मिनिस्ट्री के दिन गये। इस चुनाव से यह स्पष्ट हो गया है। मुझसे गर्वनर ने पंजाब के किसानों में फैले असंतोष के आर्थिक कारणों के विषय में रिपोर्ट मांगी थी। उसे मालूम है कि किसान भूमि व्यवस्था में परिवर्तन के लिये विद्रोह करने पर तुले हैं। यूनियनिस्ट मिनिस्ट्री उन्हें दबा नहीं सकेगी। सब शासन व्यवस्थाओं की नींव सामयिक भूमि व्यवस्था पर ही होती है। किसानों की ओर से सरकार पर आते संकट को टालने का फिलहाल यही उपाय हो सकता है कि वे अपनी समस्या साम्प्रदायिक झगड़ों में भूले रहें। यदि लीग और कांग्रेस आपस में नहीं लड़ेंगे तो अब सरकार के लिये इनमें से किसी एक को भी दबाना सम्भव नहीं रहा है। जेकिन्स तो कैबिनेट मिशन को यह दिखा देना चाहता है कि हिन्दुस्तानियों को शासन का अधिकार सौंपना व्यावहारिक नहीं है। अगर यह योजना सफल हो जाये तो अंग्रेज गर्वनर की जरूरत ही नहीं रह जायेगी।

4. एक दूसरे वक्ता बोले-'सृष्टि के आदि से इस देश को आर्यावर्त्त कहा गया है। यह भगवान राम और कृष्ण का देश है। इसे वेदों में 'पंचनद' कहा है। यहाँ पाकिस्तान कैसे बन सकता है! जो पाकिस्तान बनाना चाहते हैं, वे अरब जायें। गांधी और कांग्रेस की पॉलिसी हमेशा हिन्दुओं के खिलाफ रही है। कांग्रेस मुसलमानों को खुश करने के लिये हिन्दुओं के हकों को कुर्बान करती आयी है। आज मुसलमानों और लीग की इतनी हिम्मत है कि वे आधा मुल्क माँगते हैं। कांग्रेस के लीडर यह भी देने को तैयार हो गये हैं ताकि उन्हें वजारत की कुर्सियाँ मिल जायें लेकिन मुस्लिम लीग और जिन्ना की अपनी माँग पूरे हिन्दुस्तान की हुकूमत की होगी। जो बात औरंगजेब नहीं कर सका, मुहम्मदअली जिन्ना करना चाहता है। हमारे कलेजों पर नारे लगाये जाते हैं--हँस के लेंगे पाकिस्तान ! खून से लेंगे हिन्दुस्तान !''

5. दौलू मामा, तुम लाहौर की कितनी गलियों के कितने बच्चों के मामा थे। तुम उम्र भर रोजाना सैकड़ों बच्चों को हँसा-हँसा कर आज उन्हें फूट-फूट कर रोते छोड़ गये हो। इन भोले बच्चों का खिलौना किस जालिम ने छीन लिया ? मामा किसका दुश्मन था ? मामा न यूनियनिस्ट मंत्रिमंडल के मतलब रखता था, न लीग की वजारत से। वह तो मानव था, केवल निरीह मानव। उसका खून मानवता का खून है। बेबस मानव का खून है। मानवता के खून की इस प्यास को कौन भड़का रहा है ? दौलू मामा ने एक खाट की जगह के लिये भी, एक रोटी के लिये भी कभी किसी से झगड़ा नहीं किया। वह किसकी वजारत और रियासत की राह में रुकावट बन रहा था?

"मामा, जब तुमसे खुद तुम्हारे कातिल का नाम पूछेगा तो तुम्हारी उंगली किसकी तरफ उठेगी? क्या खुदा नहीं जानता कि तुम्हारे कत्ल के लिये उत्तेजना दिलाने की जिम्मेदारी उन नेताओं पर है जो तुम्हारे जैसे इंसानों को शासन के सिंहासन पर पहुँच सकने का जीना बनाने के लिये जनता का ईंट-गारे की तरह प्रयोग करना चाहते हैं। क्या हमारे सर्व-साधारण अपने नेताओं को मानवता की कसौटी पर जाँच कर नहीं परखेंगे? क्या अपने स्वार्थों के लिये सर्व-साधारण को अंधा बना देना ही ध र्म की रक्षा, प्रजातन्त्र और जनवाद है ...?''

6. भई, जिसकी मैजोरिटी है, उसकी मिनिस्ट्री बनने दो। देखो तो वे कैसे सम्भालते हैं? गवर्नर को यह कहने का क्या हक है कि मिनिस्ट्री में कौन हो और कौन न हो! तुम हिन्दुस्तान को अब नहीं सम्भाल सकते तो दफा हो जाओ! तुमने बाँट कर जाने की जिम्मेवारी क्यों ले ली है। छोड़ो हिन्दुस्तानियों पर। उन्हें जैसे बाँटना होगा, खुद कर लेंगे। खिजर से इस्तीफा दिलाने की क्या जरूरत थी ? यूनियनिस्ट मिनिस्ट्री नागरिक शांति की रक्षा नहीं कर पाती थी। तीन महीने से उससे कहीं बुरी हालत है, रोज बिगड़ रही है। रेलवे वर्कशाप में जो बम फेंके गये थे, मिलिटरी के ग्रिनेट थे। आज घर-घर बन्दूकें, राइफलें पहुँच गयी हैं। यह क्या हो रहा है ! यह अमन है? यह सरकार इतनी पुलिस और फौज से अमन नहीं कायम कर सकती ? यू. पी. में किदवई ने कैसे खाकसारों को ठण्डा कर दिया! यहाँ नहीं हो सकता!

7. "हाँ-हाँ'', काली ने समर्थन किया, -"4 जून को पार्टीशन के बारे में स्टेटमेंट आया था तो असद, प्रद्युम्न और मैं प्रोफेसर के यहाँ गये थे। तुम जानते हो, वह तो सब से मिलता-जुलता रहता है। कह रहा था, ब्रिटिश ब्यूरोक्रैट, एटली और माउंटबैटन की स्कीम से खुश नहीं हैं। वे दिखा रहे हैं कि हिन्दुस्तान को सेल्फ गवर्नमेंट देना मूर्खता है। अंग्रेज खूब जानते हैं, पार्टीशन से दोनों भाग लँगड़े हो जायेंगे ? अब तक तो देश का विकास इकाई के तौर पर हुआ है। अब पाकिस्तान इण्डस्ट्रियल गुड्स (औद्योगिक समान) के लिये तरसेगा, शेष भाग कच्चे माल के लिये ! बड़ा क्लेवर मूव (गहरी चाल) है। पश्चिम, पंजाब की रुई, दूसरी पैदावार और पूर्वी बंगाल का जूट कहाँ जायेंगे, ब्रिटेन में न! इससे उनके मरते उद्योग जरा जिन्दा हो सकेंगे।''

8. "बिलकुल स्वाभाविक है।'' नैयार ने अनुमोदन किया, "परन्तु विवाह केवल भावात्मक सम्बन्ध नहीं होता, आप मानेंगे। विवाह केवल दो व्यक्तियों का ही सम्बंध भी नहीं होता। कम से कम हमारे समाज में, यह परिवारों का भी सम्बन्ध बन जाता है। आप बुरा न मानें, मेरा विचार है कि आजीवन सब लोगों का विरोध या असहयोग झेलते रहना सुखद नहीं हो सकता। सीधी बात है, कनक आकर्षक लड़की है और कनक ही क्या, बहुत-सी शिक्षित और भावुक लड़कियाँ आपके प्रति आकर्षण अनुभव करेंगी। यह तो सब स्वाभाविक बात थी। साफ बात कहने में हर्ज क्या है ! जीवन में आकर्षण के अवसर तो आते ही रहते हैं पर उसमें जीवन भर के लिए बंधते समय बहुत सी बातों का ध्यान भी रखना पड़ता है। आप यह तो अनुभव कर रहे कि मैं बहुत अधिक अधिकार जता रहा हूँ।''

9. तारा को इतने समय तक कालेज के वातावरण में रह लेने के बाद विशेष कर कामरेडो की संगति मिलने के बाद के हिन्दू धर्म के विश्वास में कोई आस्था या प्रेम नहीं रहा था। स्वर्ग-नर्क पूजा-श्राद्ध और अवतारों के धार्मिक विश्वास उसे उपहासास्पद लगते थे परन्तु इस्लाम स्वीकार करने का दबाव उसे मानसिक यंत्रणा अनुभव हो रही थी। उसे याद आने लगा, एक दिन नरेन्द्रसिंह, जुबेदा, सुरेन्द्र और हमीद के सामने असद ने कहा था– "...हिन्दुत्व कोई मजहब और धर्म-विश्वास नहीं है। वह एक समाज और संस्कृति है। उसमें विश्वासों के बंधन है। आप भगवान् में विश्वास करें तो हिन्दू, विश्वास न करें तो भी अपने आप को हिन्दू कह सकते हैं।

आप चाहे जैसे भगवान् में, साकार में या निराकार में, एक ही भगवान् में या अनेक भगवानों में विश्वास कर सकते हैं। अवतार में विश्वास कीजिये या न कीजिये। ब्रह्म, जीव और माया को एक मानिये या पृथक-पृथक। पुनर्जन्म को भी मानने न मानने की स्वतंत्रता है, व्यवहार की नहीं। इस्लाम ऐसी स्वतन्त्रता सहन नहीं कर सकता। इस्लाम चिंतन का नहीं विश्वास का मार्ग है। आप खुदा से मुनकिर नहीं हो सकते। आप खुदा ने मुनकिर हैं तो आप काफिर हैं। खुदा पर भी आप मन चाहे ढंग से विश्वास नहीं कर सकते। सिर्फ एक ही खुदा - वाहिद मुतलिक, लाउलशरीक खुदा पर एतकाद करना होगा। यहीं तक हद नहीं है, उस खुदा का एक रसूल भी मानना होगा और वह रसूल केवल मुहम्मद साहब को माननां होगा। आप आज के विज्ञान और साइंस से खुदा के सम्बन्ध में तर्क नहीं कर सकते क्योंकि जिस वक्त मुहम्मद साहब पर इस्लाम का इलहाम नाजल हुआ था, वह विज्ञान मौजूद नहीं था।''

10. डाक्टर ने तर्जनी उठा कर असद को सुनने का संकेत किया - "मैं आर्थिक प्रश्नों के लिये परामर्शदाता हूँ। बिना पूछे मैं कोई सलाह नहीं दे सकता। गर्वनर भी जानता है कि यूनियनिस्ट मिनिस्ट्री के दिन गये। इस चुनाव से यह स्पष्ट हो गया है। मुझसे गर्वनर ने पंजाब के किसानों में फैले असंतोष के आर्थिक कारणों के विषय में रिपोर्ट माँगी थी। उसे मालूम है कि किसान भूमि व्यवस्था में परिवर्तन के लिये विद्रोह करने पर तुले हैं। यूनियनिस्ट मिनिस्ट्री उन्हें दबा नहीं सकेगी। सब शासन व्यवस्थाओं की नींव सामयिक भूमि व्यवस्था पर ही होती है। किसानों की ओर से सरकार पर आते संकट को टालने का फिलहाल यही उपाय हो सकता है कि वे अपनी समस्या साम्प्रदायिक झगड़ों में भूले रहें। यदि लीग और कांग्रेस आपस में नहीं लड़ेंगे तो अब सरकार के लिये इनमें से किसी एक को भी दबाना सम्भव नहीं रहा है। जेकिन्स तो कैबिनेट मिशन को यह दिखा देना चाहता है कि हिन्दुस्तानियों को शासन का अधिकार सौंपना व्यावहारिक नहीं है। अगर वह योजना सफल हो जाये तो अंग्रेज गर्वनर की जरूरत ही नहीं रह जायेगी।''

व्याख्या के लिए निर्देश

'डाक्टर ने तर्जनी उठाकर ..... जरूरत नहीं रह जायेगी।'

प्रेमचंदोत्तर पीढ़ी के मूर्धन्य रचनाकार यशपाल की प्रतिनिधि औपन्यासिक कृति झूठा सच (वतन और देश) विभाजन पर लिखे गए साहित्य में विशिष्ट स्थान रखती है। रचनाकार ने इतिहास और समाज के वैचारिक परिप्रेक्ष्य में विभाजन को देखने का प्रयत्न किया है। वस्तुत: विभाजन जनता की आकांक्षा नहीं थी, यह औपनिवेशिक सत्ता को बचाने के लिए रचे गए षड्यंत्र का दुष्परिणाम था।

व्याख्या के लिए चुने गए अंश का प्रसंग तारा, असद और डाक्टर प्राणनाथ की व्यक्तिगत बातचीत पर आधारित है। तारा और असद उसके यहाँ पढ़ने के लिए जाया करते थे। राजनीति पर चर्चा के संदर्भ में डाक्टर प्राणनाथ का यह वक्तव्य है।

उपन्यास के पात्र डाक्टर प्राणनाथ पंजाब सरकार के आर्थिक सलाहकार हैं। वे स्थितियों का गंभीरता से मूल्यांकन करते हैं। उसके बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि पंजाब में यूनियनिस्ट पार्टी ने किसानों की समस्याओं पर ध्यान नहीं दिया। इसलिए किसानों में नाराजगी और असंतोष है। किसानों में विद्रोह की संभावना बन रही है। किसान-विद्रोह होने की स्थिति में सरकार के सामने सरकार को बचाने का संकट खड़ा हो जायेगा। इस संकट से बचने के लिए सरकार ने सांप्रदायिक राजनीति को तूल देना शुरू किया । लीग और कांग्रेस सत्ता के लिए संघर्ष करते रहे जिससे मूल प्रश्न कभी भी उभर कर सामने नहीं आए। वास्तव में सरकार की विफलता को छिपाने के लिए सांप्रदायिकता के मुद्दे को

आगे करना अंग्रेजों की एक चाल थी। इसे सरकार के आर्थिक परामर्शदाता प्राणनाथ अच्छी तरह समझ रहे थे। परंतु यहाँ की राजनीतिक पार्टी ने इसे समझने का प्रयत्न ही नहीं किया।

उस समय की वास्तविकता यह थी कि युवा मजदूर और किसान तेजी से वामपंथ की ओर आकर्षित हो रहे थे। राष्ट्रीय आंदोलन की आर्थिक राजनीतिक नीतियों का रूपांतरण हो रहा था। इस स्थिति में जमींदार और भूस्वामियों को अपना स्वार्थ बचाना कठिन जान पड़ने लगा। अत: अपने वर्ग स्वार्थ के लिए वे सांप्रदायिकता की ओर मुड़े। पश्चिमी पंजाब के बड़े जमीन्दार और मुस्लिम नौकरशाह यूनियनिस्ट पार्टी के समर्थक थे। लेकिन जब उन्हें लगने लगा कि कांग्रेस की आर्थिक क्रांतिकारिता से वे नहीं बच सकते तो वे क्रमश: मुस्लिम लीग के इर्द गिर्द इकट्ठा होने लगे। पंजाब में हिंदू संप्रदायवादी साहूकार और व्यापारियों के हितों की रक्षा के लिए अधिक सक्रिय हो गए। डाक्टर प्राणनाथ ने इन चतुराइयों को समझा और उनका मूल्यांकन किया। पंजाब के गवर्नर जेकिन्स ने प्रांत में गवर्नर-शासन लगा कर यह बताने का प्रयत्न किया कि हिंदुस्तानी सफलतापूर्वक शासन के उत्तरदायित्व को नहीं सँभाल सकते। वास्तव में यह सारा षड्यंत्र औपनिवेशिकता बचाने के लिए ही किया गया था।

विशेष

1. जीवन से शब्दों को विश्वसनीयता मिलती है, इसके बिना अर्थहीन भाव पैदा होते है। लेखक ने इसे बहुत ही संक्षिप्त रूप में पाठक के सामने रखा है।
2. उपन्यास के इस अंश में इतिहास की सच्चाइयों को बताने का प्रयत्न किया है।
3. औपनिवेशिक छल से लेखक ने पाठक को परिचित करवाया है।
4. विभाजन के समय पंजाब की आर्थिक-सामाजिक स्थिति को स्पष्ट किया गया है।
5. उपन्यास के इस अंश में लेखक ने समाचार पत्र के रिपोर्ट की तरह की भाषा का प्रयोग किया है।

व्याख्या के लिए अंश (देश का भविष्य)

1. गाँधी जी ने हाथ जोड़ कर सुनने का अनुरोध किया - 'मेरे दिल में पाकिस्तान में मारे जाने वाले और पाकिस्तान से निकाले जाने वाले अपने भाई-बहनों के लिए भी उतना ही दरद है। मैं पाकिस्तान जाना चाहता हूँ और जाऊँगा। मैं कायदे आजम के सामने हाथ जोड़ कर दया और शान्ति के लिये प्रार्थना करूँगा। मैं उनसे कहूँगा कि इस कत्ल और खून को बन्द करायें, अमन कायम करायें। हिन्दू भाई-बहनें फिर अपने घरों में लौट कर शान्ति से निर्भय रह सकें लेकिन उससे पहले यहाँ से गये मुसलमानों का लौट आना जरूरी है। जब तक दिल्ली और हिन्दुस्तान में मुसलमानों के लिये खतरा मौजूद है, मैं किस मुँह से पाकिस्तान गवर्नमिण्ट पर कत्लो-खून और बदअमनी के लिए दोष लगा सकता हूँ किस मुँह से उन्हें शान्ति कायम करने के लिये कह सकता हूँ ? मैं हिन्दुस्तान और पाकिस्तान दोनों जगह शान्ति और अमन कायम करने के लिये अपने प्राणों की बाजी लगा रहा हूँ।''
2. पंडित गिरधारीलाल जी राजनीतिक कारणों से भी सिद्धान्त से च्युत हो जाना उचित नहीं समझते थे। वे राजनीति को क्षणिक और सिद्धान्त को स्थायी समझते थे। वे गाँधी जी और पंडित नेहरू की नीति के समर्थक थे। उनका कहना था–जब डण्डिया को सिक्यूलर स्टेट (धर्म निरपेक्ष राज्य) माना है तो प्रजा में हिन्दू-मुस्लिम के आधार पर भेद करने की, मुसलमानों को बर्दाश्त न करने की पालिसी असूलन गलत है। हम ट्रेटरों (देशद्रोहियों) को बर्दाश्त नहीं करेंगे लेकिन मजहब से ट्रेट का

इम्तयाज (निर्णय) गलत बात है। हिस्ट्री में क्या हिन्दू ट्रेटर नहीं हुए? यह मजहबी इश्तआल का जहर मुल्क को खत्म कर देगा। मेरे भाई, अभी से सिक्खिस्तान की बातें सुनायी देने लगी है। खुदा जाने आइन्दा क्या होगा? अगर मजहब को पोलिटिक्स की बुनियाद बना लिया गया तो सिक्ख, आर्यसमाजी, सनातनी, जैनी सब अलग हक माँगेंगे। मेरे भाई, मैंने तो पंजाब में सनातनियों और आर्यसमाजियों को भी एक दूसरे के सिर तोड़ते देखा है....।'

3. दरिद्रनारायण के सेवक, भंगी कालोनी में रहना चाहने वाले, केवल एक वस्त्र पहनने वाले, शस्त्रों पर सैनिक शक्ति का विरोध करने वाले गाँधी जी इस प्रदर्शन की अनुमति नहीं दे सकते थे। गाँधी जी को तो कैदी बना कर भी आगाखाँ के महल में रखा जाना पसंद नहीं था। उन्हें तो, उनके ऊपर पहरा रखने के लिया किया जाने वाला खर्च भी देश की जनता पर अत्याचार जान पड़ता था। गाँधी जी मंत्रियों को महल छोड़कर कुटिया में रहने का उपदेश देते थे। उनकी वाणी बन्द होते ही इन लोगों ने उन्हें महलों में पहुँचा दिया।

4 आपने तो अज्ञान दूर करने के पहले ही क्रान्ति शुरू कर दी है। शासन की शक्ति से लोगों को कम्युनिज्म समझाइयेगा? लेकिन लोग आपको शासन-शक्ति लेने नहीं देंगे। जिस जनता की भलाई के लिये कम्युनिज्म लाना चाहते हैं, वही आपका विरोध करेगी। वे आपका नहीं, गाँधी जी के वारिसों को साथ देंगे। अंग्रेजों के खिलाफ लोगों को विद्रोह की बात जँचती थी, अपनी सरकार के खिलाफ बगावत उन्हें नहीं जँचेगी। आपको वैज्ञानिक रास्ते पर चलना चाहिये था। काँग्रेस को लोगों ने कितने बरस में पहचाना? आप एक ही झटके में सब कुछ कर लेना चाहते हैं। बंगाल और मद्रास में आपकी पार्टी इल्लीगल हो गयी है, क्या कर लिया आपने?

5. माथुर उत्तेजित होकर बोला "आचार्य कृपलानी ने बिलकुल ठीक कहा है, रेवोल्युशन क्या हुआ, कहाँ हुआ? गाँधी जी के आदर्श कहाँ हैं ? दो ही साल में 'गाँधीजी की जय' खोखली पड़ गयी है। सब शासन पुराने आई. सी. एस. लोग चला रहे हैं। उन लोगों ने सेवा करनी नहीं, शासन करना सीखा है। उन्हें डेमोक्रेसी नहीं ब्यूरोक्रेसी की आदत है। वही कानून है, वही पुलिस का राज। अब भी बिना मुकदमा चलाये कैद, बल्कि 'डिफेंस आप इन्डिया ऐक्ट' से पुलिस के हाथ पूर्वापेक्षा लम्बे हो गये हैं। पुलिस बिलकुल निरंकुश हो गयी है। हाईकोर्ट लोगों को बरी कर देता है, पुलिस उन्हें दूसरी दफा लगाकर पकड़ लेती है। हमें तो शरम आती है। अंग्रेजी सरकार ने अदालत में दिये भगतसिंह के बयान को जब्त नहीं किया था पर इस सरकार ने गोड्से का अदालती बयान जब्त कर लिया है। क्या इनके पास गोड्से के लिए जवाब नहीं है ? मुँह बंद कर देना डेमोक्रेसी है? कृपलानी ठीक कहते हैं, रेवोल्यूशन में यह कभी नहीं होता कि पुराने ही शासक बने रहें। रेवोल्यूशन इज चेंज ऑफ रूलर्स (क्रांति से शासक बदल जाते है)। रेवोल्युशन हुआ कहाँ, आप ही बताइए।''

6. पहले नामिलवर्तन (असहयोग) में हजारों लड़कों के स्कूल-कालेज छुड़वाये, हजारों लोगों की नौकरियाँ छुड़वाईं और लाखों डंडे खाकर जेल गये और तुम्हारे बापू को लगा—ओह, हिमालयन ब्लंडर हो गयी। आन्दोलन वापस ले लिया। पहले विदेशी कपड़े की होली जलवानी शुरू की, उसे बन्द किया। नमक सत्याग्रह किया और बन्द किया। जंगल सत्याग्रह किया, लगान न देने का आन्दोलन चलाया और बन्द किया। काउन्सिलों का बायकाट किया और फिर कौंसिलों में गये। राउण्ड-टेबल कान्फ्रेंस का बायकाट किया, फिर उसमें भी गये। पहले जंग का बायकाट नामुनासिब बताया, फिर उसी जंग का बायकाट किया। पहले पार्टीशन की मुखालफत की फिर उसे कबूल किया। गाँधी और काँग्रेस ने कब, कितनी बार नीति नहीं बदली? तुम मुझे

सिखाती हो! मैं 1991 से, जब तुम पैदा भी नहीं हुई थी, आजादी के लिये लड़ रहा हूँ। तुम्हारी काँग्रेस का तो गोल (लक्ष्य) ही चेंज होता रहा है। क्रभी 'डोमीनियन स्टेटस' कभी 'फुल फ्रीडम अंडर द एम्पायर' कभी 'इनडिपेन्डेंस' कभी 'रिपब्लिक' कभी 'रामराज' कभी 'कैपिटलिज्म' कभी 'सोशलिज्म'! हमारी पार्टी का तो एक ही गोल है—मजदूरों-किसानों की डिक्टेटरशिप। टैक्टिक्स तो बदला ही करते हैं। तुम कांग्रेस वाले हमें सिखाने चले हो। जाकर शीशे में मुँह देखो..।

7. प्रोफेसर ने मेज पर कोहनी टिका ली। वह तारा की ओर झुक गया और शीशे के पेपरवेट को लट्टू की तरह घुमाते हुए याद कर-कर के कहता गया—"मास्टर जी सोनवाँ चले गये थे। मैं अगस्त के अन्त तक लाहौर में ही रहा। कैसा ध्वंस, कैसा हाहाकार! होटल से बाहर निकलने में डर था कि पहचान कर होटल का मुसलमान बैरा ही न छुरा मार दे! होटल में प्रायः यूरोपियन ही थे इसलिए भय नहीं था। बैठे-बैठे ख्याल आता था, हम तो हिन्दू-मुसलमानों की दो कौमें होने की बात पर विश्वास ही नहीं कर सकते थे लेकिन यह सामने प्रत्यक्ष क्या है? सब कुछ हमारे विश्वास पर ही निर्भर नहीं कर सकता। यदि पाकिस्तान बनाने वाले हमें शत्रु समझते हैं तो हम उन्हें जबरदस्ती अपने साथ बाँधकर नहीं रख सकते। हम, मेरा अभिप्राय है सामूहिक सामाजिक रूप से जिनसे छू जाना असह्य समझते रहे हों, आज उन्हें अपना अंग बता कर बहलाने का यत्न रखना धोखा नहीं है? हमने चाहे जिस कारण ऐसा व्यवहार किया हो, उसकी कीमत देनी होगी।
हिन्दू-मुसलमानों के हिन्दुस्तान-पाकिस्तान के बँटवारे का बीज सरकारी नौकरियों को हिन्दू मुसलमानों में साम्प्रदायिक अनुपात में बाँटने के दिन या उनके चुनाव क्षेत्र अलग-अलग बना देने से नहीं बोया गया था बल्कि मुसलमानों को म्लेच्छ और अछूत समझने के दिन से ही बो दिया गया था। हिन्दू को आप अछूत बनाकर भी दबा सकते है क्योंकि वह आपके धर्म से बँधा है। मुसलमान तो उस धर्म से बँधा नहीं। वह अछूत समझे जाने का अपमान क्यों बर्दाश्त करे? जिस नियम को हमने सत्ता की रक्षा के लिये अपनाया था, उसी नियम ने हमें खा लिया। कैसा द्वन्द्व है।''

8. सरोज चली गयी तो तारा फिर उसी मानसिक उधेड़बुन में उलझ गयी।...लड़की से खामुजा नाराज हैं कि वह जिन्दगी भर की मुसीबत सहेड़ने से इंकार कर रही है। माँ और बड़े भाई कर्त्तव्य पूरा न कर सकने के सामाजिक अपमान से डर रहे हैं। मेरी भी यह स्थिति थी।... जो लड़कियाँ जीविका कमाने का साहस कर रही हैं वे अपना भाग्य दूसरों के हाथ में क्यों दे दें? अब तो दिल्ली में लड़कियाँ सभी जगह काम करती दिखाई दे रही हैं.....विभाजन से पहले मैं नौकरी कर लेने की कल्पना करती थी तो खास साहस की आवश्यकता जान पड़ती थी पर अब तो साधारण बात है।....सरोज कहती है, अब तो लड़कियाँ ही ढूँढ लें।....
हजारों जवान लड़कियों के घर वाले अब यही चाहते होंगे। छः बरस पहले ऐसी बात सुनकर लोग कान में उँगली दे लेते। विभाजन से बहुत ध्वंस हुआ परन्तु समाज को जकड़े-दबाये रखने वाली मजबूत परतें भी ऐसे टूट गयी हैं जैसे जेल में बन्द लोगों को भूडोल में जेल की दीवारें गिरने से लोगों को चोटें तो लगें परन्तु बन्द लोग स्वतंत्र हो जायें। बहुत लोग मर गये, बहुत से उस चोट से फिर पनंप ही नहीं सके परन्तु पंजाबी अब पहले से अधिक जीवट से खड़े हो जान पड़ते हैं।

9. उस रात और अगले दिन तारा का मन बहुत भारी रहा। सोचती रही, उसे केन्द्र बना कर अच्छी-खासी घटना हो गयी है। बात फैल जाती तो मुसीबत हो जाती। कोई पुरुष चाहने लगे, स्त्री की अच्छी-खासी मुसीबत है। किसी स्त्री को कोई

चाहने लगे तो बदनामी स्त्री की है।.....स्त्री-पुरुष अपराध करें तो दण्ड स्त्री भोगे।....परीक्षा हो तो वह भी स्त्री की हो।....सौ-सवा सौ बरस पहले की बात होती तो रीझ जाने वाला सूरमा स्त्री को उठा कर चल देता।....आखिर वह गधा अपने आपको समझता क्या है.....?

10. कांता के जालन्धर लौट जाने के प्राय: मास भर बाद कनक को लगा, पंडित जी कुछ नये ढंग से या नयी-नयी बातें सोचने लगे थे। कुछ ऐसी बातें जो उनके लिए तीस-चालीस वर्ष पूर्व सोचना अधिक स्वाभाविक होता। उचित-अनुचित के लिये निर्णय में परम्परा और बहुमत की अपेक्षा अपने विवेक पर भरोसा करने के साहस की आवश्यकता। परिस्थिति के अनुसार जीवन की पूर्णता के लिये जो अनुकूल हो, वही उचित है। ..... औचित्य की कोई धारणा शाश्वत नहीं। मनुष्य कर्म का फल अवश्य पाता है। इसका अर्थ यह नहीं कि हम जिन कर्मों को जानते नहीं उनके फल से नियंत्रित हैं बल्कि यह कि हम अपने प्रयत्न और कर्म से स्वयं को, समाज को जैसा बनाने का प्रयत्न करते हैं, हमारा जीवन उसी के अनुसार बन जाता है। जीवन में प्रयत्न का समय कभी समाप्त नहीं होता। .....
सुकर्म-कुकर्म की कसौटी ज्ञान और भावना है।..... कार्य और कर्म तो क्षण में समाप्त हो जाते हैं। वे मनुष्य को नहीं बाँध सकते। भावना और ज्ञान बहुत समय तक बने रहते हैं। उनसे एक के बाद दूसरे कार्य और कर्म होते रहते हैं, ज्ञान और भावना ही मुख्य हैं। ..... यदि समझ और भावना ठीक है तो मनुष्य भूलों को सुधार सकता है। ..... भूल की परख तो ज्ञान से होती है।..... मनुष्य का ज्ञान सदा एक सा नहीं रहता। यदि हम पचास वर्ष पूर्व के समाज की आलोचना अपने आज के विचारों से करें तो कहेंगे, उस समय मनुष्य वैज्ञानिक नियमों के सम्बन्ध में, औषाधियों के सम्बन्ध में, खेती और कारीगरों के सम्बन्ध में, व्यवस्था और कानूनों के सम्बन्ध में भी बहुत गलतफहमियों और भूलों से सीख कर समाज आज यहाँ पहुँचा है।

11. "सदा ही ऐसा हुआ है। संत अपने जीवन में गरीबों के होते हैं। मृत्यु के बाद अमीर उन्हें छीन लेते हैं। भगवान् बुद्ध भिक्षा-वृत्ति से जीवन बिताते थे। उनके निर्वाण के बाद राजा उनके प्रचारक और प्रतिनिधि बन गये। ईसा के साथ भी यही हुआ। वही इस संत के साथ हो रहा है। कल यह लोग ताजमहल की लागत का एक गाँधी स्मारक बना देंगे और गाँधी जी के सिद्धांतों को उस महल की नींव में दबा देंगे। जैसे बुद्ध के दाँत को रखकर स्तूप बना दिये गये थे और बुद्ध के अपरिग्रह के नामलेवा सेनायें लेकर साम्राज्य-विस्तार के लिये चढ़ाइयाँ करने लगे थे। गाँधी, बुद्ध और ईसा की तरह अनुकरण के लिये नहीं, केवल पूजा के लिये अवतार बन कर रह जायेगा।"

व्याख्या के लिए निर्देश

सदा ही ऐसा हुआ ..... रह जाएगा।

वामपंथी विचारधारा की प्रतिबद्धता यशपाल के लेखन की विशेषता है। इसलिए उन्होंने समाज में शोषित, पीड़ित और हाशिए पर जीने वाले लोगों के प्रति स्वाभाविक सहानुभूति को अपने लेखन में स्थान दिया है। झूठा सच (देश का भविष्य) उनके द्वारा लिखा हुआ वृहदाकार उपन्यास है। इस उपन्यास में जीवन के विविध पक्षों में व्याप्त विषमता को विश्लेषित करने का प्रयत्न किया गया है। लेखक, तमाम विषमताओं के बावजूद 'देश का भविष्य' में सामान्य जनता के प्रति अगाध विश्वास व्यक्त करता है। वस्तुत: यह विश्वास लेखक के गहरे वैचारिक संघर्ष और मानदीय विवेक से उपजा जान पड़ता है।

उद्धृत अंश उपन्यास में गांधी जी की मृत्यु के प्रसंग से लिए गए हैं। गांधी जी की मृत्यु के बाद राजकीय ठाठ से उनकी अंत्येष्टि के संबंध में एक सामान्य युवक के विचार को लेखक ने इस प्रसंग में अभिव्यंजित किया है।

"सदा ही ऐसा हुआ है। संत अपने जीवन में गरीबों के होते हैं। मृत्यु के बाद उन्हें अमीर छीन लेते हैं।'' इस कथन के संदर्भ में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उस कथन का स्मरण हो जाता है जिसमें उन्होंने लोक और वेद की परंपरा की टकराहट को दिखाया है। उन्होंने यह स्थापित किया कि पांडित्य परंपरा लौकिक परंपरा के श्रेष्ठ तत्वों का अपहरण करती रही है। लोकजीवन में शास्त्रीय गरिष्ठता और बौद्धिक पाखंड को छोड़कर जनता हमेशा सहज बुद्धि विवेक से कार्य करती है। हमेशा यह सिद्ध करती रही है कि सहज दृष्टि उलझन से महत्वपूर्ण है। यशपाल इस बौद्धिक छल से सामान्य जनता को सतर्क करते हैं। भगवान बुद्ध ईसा मसीह और गांधी के संदर्भ से अपनी बात पुष्ट करते हुए अमीरों के छल और कपट को व्यंजित करते हैं। किसी के सिद्धांतों की तेजस्विता को कम करने का यह कारगर तरीका है। सिद्धांत को अपनाने और उसके अनुसार आचरण करना कठिन काम है। इसलिए अमीर लोग एक आडंबर को रचकर सिद्धांतों को हत्या किया करते हैं।

भगवान बुद्ध के धर्मप्रचारक जब राजा और सम्राट होने लगे, जो साम्राज्य विस्तार के लिए चढ़ाइयाँ किया करते थे, वास्तव में वे बौद्ध धर्म के सिद्धांत की हत्या कर रहे थे। बौद्ध धर्म ने धन संग्रह का विरोध किया। बौद्ध धर्म के अष्टांगिक मार्ग में अंहिसा पालन को सर्वोपरि बताया गया। किसी भी युद्ध में यह संभव नहीं है कि हिंसा नहीं होगी। सम्राट और राजा क्षेत्र विस्तार के लिए युद्ध भी कर रहे थे और बुद्ध के धर्म का प्रचार भी कर रहे थे। ये परस्पर विरोधी बातें है। वास्तव में विचार और सिद्धांत तथा व्यवहार में अंतर होने पर अर्थहीनता की समस्या पैदा होती है। इसलिए कथनी और करनी के बीच द्वैत नहीं होना चाहिए। द्वैत होने से सिद्धांत का खोखलापन उजागर होता है। स्तूप और स्मारक किसी मसीहा के कालजयी होने के प्रतिमान नहीं है। मनुष्य कालजयी जनता के विश्वास को जीतकर होता है। गांधी, बुद्ध और ईसा मसीह शांति, अहिंसा और विश्वबंधुत्व के संदेश के कारण अमर रहेंगे। वे किसी स्तूप और स्मारक के मुखापेक्षी नहीं हैं। इसलिए गांधी को जीवित रखने के लिए उनकी जीवन दृष्टि और मूल्यों को अपने आचरण में जीवित रखना जरूरी है। किसी महापुरुष के प्रति पूजाभाव होना गलत बात नहीं है, परंतु यह पूजाभाव श्रद्धा और आस्था के साथ-साथ एक आलोचनात्मक दृष्टि की माँग करता है। बिना इसके किसी के प्रति पूजाभाव होना विशुद्ध धोखा है। लेखक ने इस अंश में इस बात को स्पष्ट कर दिया कि सामान्य जनता मूल्यों की प्रतिष्ठा को स्वीकारती है, और असामान्य लोगों के व्यवहार और चिंतन में बड़ी फाँक होती है।

विशेष

1. विभाजन और सांप्रदायिकता की असाधारण स्थिति को ब्यौरे के रूप में लेखक ने यहाँ प्रस्तुत किया है।
2. लेखक गरीब और सामान्य जनता के पक्षधर के रूप में अपने विचारों को स्थापित करता है।
3. लेखक पाखंड, आडंबर और पूजाभाव के विरुद्ध आलोचनात्मक विवेक को महत्व देता है।
4. इस अंश में जीवनमूल्य और आचरण की एकता पर बल देने का प्रयास किया गया है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन
मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

MAHI-117
प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास

खंड

2

ज़िन्दगीनामा

इकाई 5
कृष्णा सोबती का कथा-साहित्य और ज़िन्दगीनामा 85

इकाई 6
'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास की अंतर्वस्तु और कथाशिल्प 96

इकाई 7
'ज़िन्दगीनामा' : प्रमुख पात्र एवं चरित्र चित्रण 108

इकाई 8
परिवेश और भाषा 119

परिशिष्ट 132

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रो. नित्यानंद तिवारी
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. निर्मला जैन
ए-20/17, कुतुब एन्क्लेव, फेज़-1,
गुड़गाँव, हरियाणा

प्रो. मैनेजर पाण्डेय
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

प्रो. असगर वजाहत
जामिया मिलिया इस्लामिया
नयी दिल्ली

प्रो. गोपाल राय
सी-3, कावेरी, इग्नो आवासीय परिसर,
मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

प्रो. सत्यप्रकाश मिश्र
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

प्रो. ललिताम्बा
देवी अहिल्या विश्वविद्यालय
इंदौर

संकाय सदस्य
प्रो. वी. रा. जगन्नाथन
डॉ. जवरीमल्ल पारख
डॉ. रीता रानी पालीवाल
डॉ. सत्यकाम
डॉ. राकेश वत्स
डॉ. शत्रुघ्न कुमार
डॉ. विमल खांडेकर
सुश्री स्मिता चतुर्वेदी

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

खंड लेखक	इकाई संख्या	खंड संपादक
डॉ० चमन लाल पटियाला	5, 6, 7, 8	प्रो. लल्लन राय
श्री संजीब कुमार दिल्ली	परिशिष्ट	**पाठ्यक्रम संयोजक** सुश्री स्मिता चतुर्वेदी वरिष्ठ व्याख्याता, हिन्दी विभाग इं.गा.रा.मु.वि.वि., नई दिल्ली

सामग्री निर्माण सहयोग

मुद्रण
श्री कुलवंत सिंह
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)
मानविकी विद्यापीठ
इग्नू, नई दिल्ली

फरवरी 2004 (पुनर्मुद्रित)

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2002

ISBN-81-266-0517-0

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कार्य का कोई भी अंश इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफ (मुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुन: प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

MAHI-117/82

खंड परिचय

एम.एच.डी.–15 (हिन्दी उपन्यास - 2) पाठ्यक्रम का यह दूसरा खण्ड है। यह खण्ड कृष्णा सोबती के उपन्यास 'ज़िन्दगीनामा' पर आधारित है। यह उपन्यास विभाजनपूर्व पंजाब के आंचलिक जीवन की मार्मिकता को अभिव्यक्त करता है। उपन्यास में विभाजनपूर्व पंजाब के सांप्रदायिक सौहार्द, पारिवारिक जीवन और सामाजिक गठन को जीवंतता से प्रस्तुत किया गया है। इस उपन्यास पर आधारित प्रस्तुत खण्ड में चार इकाइयाँ हैं।

पाँचवी इकाई 'कृष्णा सोबती का कथा साहित्य और 'जिन्दगीनामा' है। इस इकाई में हमने कृष्णा सोबती की कहानी एवं उपन्यास दोनों की विषयवस्तु पर चर्चा की है।

छठी इकाई 'ज़िन्दगीनामा'' की अंतर्वस्तु एवं कथाशिल्प' है। प्रस्तुत उपन्यास में अविभाजित पंजाब का सामाजिक-सांस्कृतिक चित्रण है। वास्तव में यह उपन्यास पारंपरिक उपन्यास से भिन्न और नया है। यह उपन्यास जीवनानुभव के अनुसार अपना ढाँचा स्वयं निर्मित करता है। इसमें लोककथाओं एवं लोकजीवन की ताज़गी है।

सातवीं इकाई 'ज़िन्दगीनामा' 'उपन्यास में चरित्र दृष्टि एवं जीवन दृष्टि' है। इसमें ज़िन्दगीनामा के प्रमुख पात्रों एवं उपन्यास में उनके विशिष्ट स्थान पर विचार किया गया है। इस उपन्यास में अलग-अलग व्यक्तिगत चरित्र कम हैं। समूह रूप के प्रतिनिधि चरित्र ही अधिक हैं।

आठवीं इकाई 'परिवेश और भाषा' है। यह उपन्यास विभाजनपूर्व पंजाब के आंचलिक जीवन पर आधारित है। अत: ज़िन्दगीनामा को समझने के लिए उस युग के परिवेश को समझना अत्यावश्यक है। उपन्यास की भाषा भी परिवेशानुकूल ही गढ़ी गई है। इन सभी बिन्दुओं पर इकाई में विस्तार सें चर्चा की गई है।

इन सभी इकाइयों का अध्ययन करने से पहले आप 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास को अवश्य पढ़ें। उपन्यास में कई ठेठ पंजाबी एवं उर्दू के शब्द आए हैं जिनके अर्थ हमने 'परिशिष्ट' के अंतर्गत दिए हैं। साथ ही कुछ सहायक पुस्तकों की सूची दी है जो उपन्यास के विशेष अध्ययन में आपको सहायक होंगी।

इकाई 5 कृष्णा सोबती का कथा-साहित्य और 'ज़िन्दगीनामा'

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 कृष्णा सोबती : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

5.3 कृष्णा सोबती का कथा-साहित्य

5.3.1 कहानी

5.3.2 लघु उपन्यास अथवा लंबी कहानियाँ

5.3.3 उपन्यास

5.4 कृष्णा सोबती का 'ज़िन्दगीनामा'

5.5 सारांश

5.6 अभ्यास प्रश्न

5.0 उद्देश्य

'हिन्दी उपन्यास-2' के खण्ड-2 के पाठ्यक्रम के अन्तर्गत यह पहली इकाई है। इस इकाई में आप हिन्दी के अत्यंत प्रसिद्ध उपन्यास 'ज़िन्दगीनामा' की लेखिका कृष्णा सोबती के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को पहचानते हुए उनके कथा-साहित्य पर एक विहंगम दृष्टि डालेंगे और पूरे कथा-साहित्य के संक्षिप्त परिचय के साथ-साथ उनके वृहत्काय उपन्यास 'ज़िन्दगीनामा' की संक्षिप्त रूपरेखा से परिचित होंगे। कृष्णा सोबती अविभाजित पंजाब मूल की लेखिका हैं, जिन्होंने अपने कथा-साहित्य में अविभाजित पंजाब की जीवंत संस्कृति के चित्र अपनी कथात्मक रचनाओं में बड़ी चित्रमयता से प्रस्तुत किए हैं। साथ ही दिल्ली महानगर के जीवन के विशिष्ट रूप भी उनकी कुछ रचनाओं में प्रस्तुत हुए हैं। 'ज़िन्दगीनामा' (भाग एक) में पंजाबी संस्कृति के जो खूबसूरत चित्र उभर कर सामने आए हैं, उनसे भी आप इस इकाई में परिचित हो सकेंगे। 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास का अध्ययन आप इस इकाई के अध्ययन से पहले भी करें व बाद में भी। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप:

- कृष्णा सोबती के जीवन और रचनात्मक व्यक्तित्व के विकास को रेखांकित कर सकेंगे;
- कृष्णा सोबती के रचनात्मक व्यक्तित्व के प्रमुख रूप-कथा-लेखिका के रूप में उनकी रचनात्मक क्षमता को पहचान सकेंगे;
- एक कथा-लेखिका के विभिन्न प्रयोगों - दीर्घाकार औपन्यासिक रचना, लघु आकार औपन्यासिक रचना व कहानी के विधागत स्वरूप की विशिष्टता भी रेखांकित कर सकेंगे;
- कथा-लेखिका के रूप में पंजाबी संस्कृति और दिल्ली महानगर की संस्कृति का विशेष रूप भी उनकी रचना के केन्द्र में रख कर देख सकेंगे;
- पंजाबी संस्कृति के विशिष्ट एवं महाकाव्यात्मक स्वरूप को 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास में जीवंत रूप में देख सकेंगे;
- पंजाबी जन-जीवन में पंजाबी स्त्री की स्थिति, उसकी सांस्कृतिक अस्मिता व उसके भावात्मक व्यक्तित्व के स्वरूप को कृष्णा सोबती की कथात्मक कृतियों के माध्यम से लक्षित कर सकेंगे; और
- कृष्णा सोबती के समस्त कथा-साहित्य की विराटता व भव्यता पर चर्चा कर सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

'हिन्दी उपन्यास - 2' के पाठ्यक्रम के अन्तर्गत कुछ अन्य उपन्यासों के साथ-साथ कृष्णा सोबती के 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास का अध्ययन आपको करना है।

हिन्दी उपन्यास के अध्ययन के क्रम में लगभग एक सौ बीस वर्ष की हिंदी उपन्यास-यात्रा के विभिन्न पड़ावों से गुजरते हुए आपको 1979 में प्रकाशित 'ज़िन्दगीनामा' तक पहुँचना है। दूसरे शब्दों में 'ज़िन्दगीनामा' के प्रकाशन तक हिंदी उपन्यास सौ वर्ष की यात्रा पूरी कर चुका था व अपनी परिपक्वता से भारतीय उपन्यास में तो विशिष्ट स्थान का अधिकारी बन ही चुका था, उसने एशियायी व विश्व उपन्यास में भी अपनी जगह बना ली थी। 1936 में प्रकाशित प्रेमचंद के 'गोदान' उपन्यास ने हिन्दी उपन्यास को नई ऊँचाइयाँ प्रदान कर दी थीं, जिन्हें बाद के उपन्यास भी कम ही छू पाए थे। यशपाल कृत 'झूठा सच', अज्ञेय रचित 'शेखर : एक जीवनी', जैनेन्द्र कुमार रचित 'त्याग पत्र', अमृतलाल नागर रचित 'बूँद और समुद्र' व फणीश्वरनाथ रेणु कृत 'मैला आँचल' से हिंदी उपन्यास जिन कलात्मक उँचाइयों तक पहुँच चुका था, उसके बाद 1967 में श्रीलाल शुक्ल रचित 'राग दरबारी' जैसे उपन्यास ही कई ज़मीन तोड़ पाए थे। इस सन्दर्भ में देखें तो 1979 में कृष्णा सोबती ने 'ज़िन्दगीनामा' के माध्यम से एक जीवंत संस्कृति के समूचे रूप के संश्लिष्ट चित्रण द्वारा हिंदी उपन्यास को फिर एक विशिष्ट औपन्यासिक रचना प्रदान की, जो पिछले दो दशक से भी अधिक समय से हिंदी व अनुवाद द्वारा हिंदीतर पाठकों के आकर्षण का केन्द्र बनी हुई है।

'ज़िन्दगीनामा' के प्रकाशन से पूर्व ही कृष्णा सोबती हिंदी की अत्यंत प्रतिष्ठित कथा-लेखिका के रूप में स्थान ग्रहण कर चुकी थीं। उनकी कुछ कृतियाँ चर्चित व बहुचर्चित हो चुकी थीं, कुछ विवाद भी उनकी रचनाओं को लेकर उठ चुके थे। आज भी कृष्णा सोबती के लेखन पर कभी-न-कभी कुछ विवाद उठते ही रहे हैं, जो उनकी रचना की शक्ति को ही इंगित करते हैं। प्रस्तुत इकाई में कृष्णा सोबती के रचनात्मक व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं का परिचय प्राप्त करने के साथ-साथ 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास की संक्षिप्त विषयवस्तु का अध्ययन भी आप करेंगे।

5.2 कृष्णा सोबती : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

कृष्णा सोबती का जन्म विभाजन-पूर्व पंजाब के ज़िला गुजरात (अब पाकिस्तान में) में 18 फरवरी 1925 को हुआ। उनकी शिक्षा-दीक्षा लाहौर, शिमला व दिल्ली में हुई। दिल्ली में ही कुछ समय उन्होंने नौकरी भी की, लेकिन पिछले काफी अर्से से वे पूरा समय अपने सृजनात्मक लेखन को दे रही हैं। 1980 से 1982 तक वे पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला की फेलो रही हैं और हाल के वर्षों में वे भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला की 'राष्ट्रीय फेलो' भी रही हैं, जहाँ उन्होंने गंभीर अध्ययन किया है।

कृष्णा सोबती का रचनात्मक जीवन 16-17 वर्ष की किशोरावस्था से ही शुरू हो गया था। 'बादलों के घेरे' कहानी संग्रह में संकलित 24 कहानियों में से कुछ का रचनाकाल सन् 1944 यानि 19 वर्ष की आयु से दर्ज है। उन्होंने अपने रचनात्मक जीवन की शुरुआत काव्य-रचना से की थी, लेकिन अपनी किशोरावस्था में रची कविताएँ कृष्णा सोबती ने छपवाई नहीं। सिर्फ अनुमान लगाया जा सकता है कि उनकी काव्य-रचना कहानी-रचना से दो-तीन वर्ष पहले शुरू हो चुकी होगी। अत: कृष्णा सोबती अपने जीवन के यदि सात दशक पार की चुकी हैं तो अपने सृजनात्मक जीवन के भी लगभग- पाँच दशक पूरे कर चुकी हैं। कृष्णा सोबती का पूरा जीवन एक तरह से सृजन का ही जीवन है। जीवन का अधिकांश उन्होंने अकेले जिया है,

लेकिन उनका व्यक्तित्व बहुत ही जीवंत व सामाजिक जीवन में घुलने मिलने वाला है। लेखक होने के बड़प्पन के झूठे 'अहं' से यद्यपि वे पूरी तरह मुक्त हैं, तथापि लेखक के आत्मसम्मान के प्रति वे पूर्णतया सजग हैं, जिसके चलते कई सरकारों द्वारा अपमानजनक ढंग से दिए गए पुरस्कारों को वे ठुकरा भी चुकी हैं। 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास पर वे साहित्य अकादमी के सर्वोच्च साहित्यिक पुरस्कार से 1980 में पुरस्कृत हो चुकी हैं और पंजाब सरकार द्वारा उन्हें 1981 का 'साहित्य शिरोमणि' पुरस्कार भी दिया जा चुका है। दिल्ली व मध्य प्रदेश सरकारों के कुछ पुरस्कारों को उन्होंने स्वीकार किया तो दिल्ली सरकार द्वारा ही घोषित अन्य पुरस्कार वे ठुकरा भी चुकी हैं। अपने लेखकीय आत्म सम्मान व अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा में भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला की कार्यसमिति के अध्यक्ष को भी उन्होंने पत्र लिखकर अपना विरोध दर्ज कराया था।

कृष्णा सोबती की अनेक रचनाओं का अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद हुआ है। 'ज़िन्दगीनामा' का पंजाबी अनुवाद ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता पंजाबी उपन्यासकार गुरदयाल सिंह ने किया, जो पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला द्वारा प्रकाशित किया गया। 'मित्रो मरजानी' का पंजाबी अनुवाद भी हुआ है। 'ऐ लड़की' का अंग्रेजी अनुवाद शिवनाथ ने किया है।

कृष्णा सोबती की अब तक प्रकाशित रचनाओं की सूची इस प्रकार है :

1.	हम हशमत (एक) संस्मरण/रेखाचित्र	प्र.सं. 1977
2.	हम हशमत (दो) संस्मरण/रेखाचित्र	प्र.सं. 1999
3.	बादलों के घेरे (कहानी संग्रह)	प्र.सं. 1980
4.	डार से बिछुड़ी (उपन्यास)	प्र.सं. 1958
5.	मित्रो मरजानी	प्र.सं. 1967
6.	यारों के यार/तिन पहाड़ (लघु उपन्यास)	प्र.सं. 1968
7.	सूरजमुखी अंधेरे के (उपन्यास)	प्र.सं. 1972
8.	जिन्दगीनामा (उपन्यास)	प्र.सं. 1979
9.	ऐ लड़की (उपन्यासिका)	प्र.सं. 1991
10.	दिलो-दानिश (उपन्यास)	प्र.सं. 1993
11.	समय सरगम (उपन्यास)	प्र.सं. 2000
12.	ज़िन्दगीनामा (भाग दो) कुछ अंश बहुवचन-1	प्र.सं. 1999
13.	फोन बजता रहा : समकालीन भारतीय साहित्य	प्र.सं. 2001

प्रकाशन की दृष्टि से 'डार से बिछुड़ी' उपन्यासिका उनकी सर्वप्रथम प्रकाशित रचना है। लेकिन 'बादलों के घेरे' (कहानी संग्रह) उनके रचनाकर्म का प्रथम पड़ाव है। इसमें संकलित 24 कहानियाँ उनके रचनात्मक जीवन के पहले दौर को रेखांक्रित करती हैं, जिनकी रचना 1944 से 1959 के पन्द्रह वर्षों के बीच हुई। वास्तव में कहानी और उपन्यास की रचना विधा भी कृष्णा सोबती के सृजनात्मक तनाव का एक बिंदु रहा है। 'मित्रो मरजानी', 'ऐ लड़की', 'यारों के यार' या 'तिन पहाड़' आदि रचनाएँ पहले पत्रिकाओं में कहानी या लंबी कहानी रूप में प्रकाशित हुई, बाद में पुस्तकाकार रूप में, उपन्यास रूप में विज्ञापित-प्रचारित हुई, व उसी रूप में बाद में इनकी गणना चर्चा भी होने लगी। 'यारों के यार' और 'तिन पहाड़' दो अलग रचनाएँ हैं, लेकिन एक ही जिल्द में होने से कई बार एक ही रचना का भ्रम देती हैं। 'मित्रो मरजानी', 'डार से बिछुड़ी' व 'ऐ लड़की' के नाट्य रूपांतर भी हुए हैं, जो बड़ी सफलता से मंचित भी हुए हैं।

'हम हशमत' (भाग एक व दो) में संकलित रचनाएँ संस्मरण और रेखाचित्र विधा या दोनों विधाओं का मिलाजुला रूप प्रस्तुत करने वाली रचनाएँ हैं।

'सोबती : एक सोहबत' संकलन में कृष्णा सोबती की रचनाओं में से चुनिन्दा अंशों का संकलन किया गया है।

'ज़िन्दगीनामा' के परिचय से पहले कृष्णा सोबती की अन्य रचनाओं से आपका संक्षिप्त परिचय उनके रचनात्मक व्यक्तित्व को समझने के लिए उपयोगी हो सकता है।

कृष्णा सोबती की हिंदी साहित्य-क्षेत्र में मुख्य प्रतिष्ठा यद्यपि एक सशक्त उपन्यासकार के रूप में स्थापित हुई है, तथापि कहानी वीसंस्मरण/रेखाचित्र विधाओं में भी उनका कृतित्व अत्यंत चर्चित हुआ है। रेखाचित्रों/संस्मरणों की अपनी प्रथम रचना 'हम हशमत' (एक) में कृष्णा सोबती ने 21 व्यक्तित्वों, जिनमें अधिकांश हिंदी लेखक ही हैं, के संस्मरण व व्यक्ति चित्र प्रस्तुत किए हैं। 1977 में पहली बार प्रकाशित इन संस्मरणात्मक चित्रों में निर्मल वर्मा, भीष्म साहनी, नागार्जुन, महेन्द्र भल्ला, मनोहर श्याम जोशी, गोविन्द मिश्र आदि प्रतिष्ठित हिंदी लेखकों के व्यक्ति-चित्र शामिल हैं। लेकिन इनके साथ-साथ मियाँ नसीरुद्दीन, सरदार जग्गा सिंह आदि साधारण मगर विशिष्ट व्यक्ति-चित्र भी लेखिका ने शामिल किए हैं। शैली के स्तर पर इन व्यक्ति चित्रों के रिपोर्टर रूप में लेखिका स्वयं उपस्थित हैं। 1985 में प्रकाशित इस पुस्तक के दूसरे संस्करण में लेखिक ने तीन-चार संस्मरण और शामिल किए हैं, जिनमें 1982 में रचा बाबा नागार्जुन का व्यक्ति-चित्र अत्यंत मर्मस्पर्शी है। लेखिका का अपना व्यक्ति-चित्र भी काफी प्रभावशाली है। इन संस्मरणों में कई दृश्य-चित्र साहित्यिक पार्टियों के हैं, जिनमें कई-कई लेखकों के व्यक्ति-चित्र एक साथ उभरे हैं। कृष्ण बलदेव वैद का रेखाचित्र भी इसी संकलन में शामिल हैं। लेखिका की घनिष्ठ मित्र व बड़ी प्रकाशकीय हस्ती शीला संधू भी यहाँ मौजूद हैं।

हम हशमत (एक) के बाईस वर्ष बाद 1999 में कृष्णा सोबती ने 'हम हशमत' (दो) शीर्षक से 337 पृष्ठों का बड़ा संकलन प्रस्तुत किया। इस संकलन में हिंदी, उर्दू व गुजराती आदि भाषाओं के 19 लेखकों के संस्मरणात्मक रेखाचित्र प्रस्तुत हैं। 'हम हशमत' (दो) के रेखाचित्र प्रथम संकलन की अपेक्षा अधिक विस्तार और गहराई लिए हुए हैं, इसलिए आकार में भी लंबे हैं।

इन संस्मरणों में 48 पृष्ठ का नामवर सिंह का संस्मरणात्मक व्यक्ति-चित्र है, जो है भी संग्रह का प्रथम चित्र। जाहिर है कि लेखिका ने नामवर सिंह को संकलन प्रकाशित होते समय हिंदी के सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यक्तियों में एक का दर्जा दिया है। नामवर सिंह के बाद 38 पृष्ठों का अशोक वाजपेयी का रेखाचित्र है, जिसे उसी मनोयोग से लेखिका ने रचा है। सबसे छोटा रेखाचित्र चार पृष्ठ का बलवंत सिंह का है, लेकिन पृष्ठ कम होने पर भी लेखिका के मन में बलवंत सिंह का स्थान या सम्मान कम नहीं है। वे उन्हें अत्यंत महत्वपूर्ण लेखक के रूप में याद करती हैं। अन्य लेखकों में भैरो और राजेन्द्र सिंह बेदी भी उपस्थित हैं तथा अज्ञेय, श्रीकांत वर्मा व उपेन्द्रनाथ अश्क भी। इसके अन्तर्गत कमलेश्वर, प्रयाग शुक्ल, न्मसिरा शर्मा व लेखक मित्र जोड़ियों - सत्येन कुमार और मंजूर एहतेशाम व सौमित्र मोहन-स्वदेश दीपक को भी स्थान मिला है। गुजराती के वरिष्ठ लेखक उमाशंकर जोशी (स्वर्गीय) पर भी लेखिका ने मनोयोग से लिखा है। शीला संधू के साथ ही अन्य प्रकाशक यहाँ प्रस्तुत हैं - अरविंद कुमार, जो राधाकृष्ण प्रकाशन छोड़कर नेशनल बुक ट्रस्ट के निदेशक बने थे और अब बच्चों के साहित्य के प्रकाशन के क्षेत्र में बड़ी अंतर्राष्ट्रीय हस्ती बन गए हैं।

'हम हशमत' के दोनों भागों में कृष्णा सोबती का पंजाब व पंजाबियत प्रेम भी अभिव्यक्त हुआ है। भीष्म साहनी, कृष्ण बलदेव वैद, भैरो, अश्क, बेदी, बलवंत सिंह, स्वदेश दीपक, शीला संधू, महेन्द्र भल्ला आदि पंजाबी पृष्ठभूमि के लेखक हैं, जो लेखिका को प्रिय रहे हैं। कुल मिलाकर कृष्णा सोबती ने 'हम हशमत' के दोनों भागों व समकालीन भारतीय साहित्य में अंग्रेज़ी विद्वान डॉ. जयदेव (स्वर्गीय) से सम्बद्ध संस्मरणों द्वारा सफलता प्राप्त की है।

5.3 कृष्णा सोबती का कथा-साहित्य

5.3.1 कहानी

'बादलों के घेरे' (कहानी संग्रह)

कृष्णा सोबती के अब तक प्रकाशित एकमात्र कहानी संग्रह 'बादलों के घेरे' का सर्वप्रथम प्रकाशन 1980 में हुआ। इस संग्रह के प्रकाशन से ही यह स्पष्ट हुआ कि यद्यपि कृष्णा सोबती की ख्याति एक उपन्यासकार के रूप में हुई लेकिन उनके सृजनात्मक लेखन का पहला दौर कहानी रचना से शुरू हुआ। 'बादल के घेरे' संग्रह में लेखिका की 24 छोटी-बड़ी कहानियाँ संकलित हैं, जिनका रचनाकाल 1944 से 1959 के 15-16 वर्षों में फैला है। संभव है कि इनमें से कुछ रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में पहले प्रकाशित हुई हों और कुछ रचनाएँ अप्रकाशित रही हो सकती हैं। इन रचनाओं में दो पृष्ठ की लघु कहानी से लेकर 21 पृष्ठ की सबसे लंबी कहानी 'बादलों के घेरे' तक शामिल है। संग्रह की सबसे छोटी कहानी 'नफीसा' कालक्रम की दृष्टि से कृष्णा सोबती की सबसे पहली कहानी है, जो जनवरी 1944 में या तो लिखी गई या प्रकाशित हुई। लेखिका ने कहानियों के अंत में वर्ष का उल्लेख किया है, संभवत: यह लेखन वर्ष है, न कि प्रकाशन वर्ष। मई 1944 की 'लामा' कहानी तीन पृष्ठ की है। दोनों ही कहानियाँ बाल मन की संवेदनशीलता की कहानियाँ हैं। 'नफीसा' एक मरती हुई बच्ची की दर्दनाक व्यथा की लघु रचना है तो 'लामा' के बच्चों में अभी तक मृत्युबोध भी उत्पन्न नहीं हुआ है, जो लामा की मृत्यु से प्रसन्न हो रहे हैं कि वह उन्हें दोबारा मिलेगा। यह दिलचस्प है कि कृष्णा सोबती ने 19 वर्ष की आयु में बच्चों को अपनी कहानियों के केन्द्र में रखा है। इस संग्रह की कई कहानियों के केन्द्र में हैं - 'मेरी माँ कहाँ' (1949), 'दादी अम्मा' (1954) 'टीलों ही टीलों' (1954) आदि।

'बादलों के घेरे' कहानी संग्रह की दो कहानियाँ अत्यधिक चर्चित कहानियाँ हैं। संग्रह के शीर्षक से सम्बद्ध कहानी 'बादलों के घेरे' 1955 में रची गई। जिन दिनों यह कहानी लिखी गई, उन दिनों टी.बी. या यक्ष्मा का रोग भी काफी व्यापक और असाध्य माना जाता था हिंदी के कई लेखकों ने इस रोग को केन्द्र में रखकर कहानियाँ भी लिखीं। 'बादलों के घेरे' का नायक सेनेटोरियम में दाखिल है। वह मृत्यु के अवसाद में घिरा अपनी पूर्व प्रेमिका को याद करता है, जो यक्ष्मा से ही मृत्यु को प्राप्त हुई थी। उसके प्रति वह चाहकर भी अपनी संवेदना व्यक्त न कर पाया था। अपने कथ्य में लेखिका की यह बहुत मार्मिक कहानी है। संभवत: 'बादलों के घेरे' कहानी लेखिका की भविष्य की औपन्यासिकाओं या लंबी कहानियों की रचना का पूर्वाभ्यास भी कही जा सकती है। लेखिका लगातार छोटी कहानियों से लंबी कहानियों के लेखन की ओर अग्रसर हुई हैं। बाद में तो उन्होंने छोटी कहानी लिखना छोड़ ही दिया। संस्मरण/रेखाचित्र विधा में भी वे लघु आकार से दीर्घाकार रचना की ओर गई हैं। यद्यपि यह सही है कि उनका रचना का दीर्घाकार अर्थहीन आकार विस्तार न होकर रचना की आंतरिक जरूरत से पैदा हुआ है।

जुलाई 1949 में रचित 'सिक्का बदल गया' कहानी हिंदी में इतनी अधिक चर्चित रही है (और है) कि विभाजन-आधारित कहानियों के एक संकलन का शीर्षक ही इसे बना लिया गया है। कुल सात पृष्ठ की यह अत्यंत मर्मस्पर्शी कहानी है, जिसमें विभाजनपूर्व पंजाब के एक गाँव की शाहनी भाजन के सांप्रदायिक तनाव के दिनों में अपनी पूरी संपत्ति छोड़ कर खाली हाथ ट्रक पर भारतीय पंजाब की ओर रवाना हो जाती है और पूरा गाँव शाहनी के साथ अपने पचास साल के लंबे संबंधों की मधुरता को याद कर दु:खी हो रहा है। विभाजन के दिनों के मानवीय दर्द की यह इतनी सशक्त आरंभिक दौर की कहानी है कि संभवत: उसी समय कृष्णा सोबती हिंदी की एक महत्वपूर्ण कथा लेखिका के रूप में प्रतिष्ठित हो गई होंगी।

'बादलों के घेरे' कृष्णा सोबती का यद्यपि एकमात्र प्रकाशित कहानी संग्रह है, लेकिन कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से इस संग्रह को हिंदी कहानी के विकास में एक महत्वपूर्ण संग्रह का स्थान हासिल हुआ है। 'बादलों के घेरे' संग्रह की रचना के क्रम में कृष्णा सोबती के भविष्य के उपन्यासकार व्यक्तित्व का निर्माण भी होता चला गया है। 'बादलों के घेरे' की कहानियाँ एक स्तर पर एक बड़े कथा-लेखक के विकास की संभावनाओं को उजागर करने वाली कहानियाँ हैं, जिन्हें हिंदी कहानी में उचित महत्व प्राप्त हुआ है।

5.3.2 लघु उपन्यास अथवा लंबी कहानियाँ

'डार से बिछुड़ी'

कृष्णा सोबती का यह प्रथम लघु उपन्यास पहली बार 1958 में प्रकाशित हुआ। पेपरबैक संस्करण के करीब 110 पृष्ठ के आकार के 17 छोटे अध्यायों वाले इस उपन्यास में लेखिका ने एक अभागी पंजाबी स्त्री पाशो की व्यथा-कथा कही है। उसकी माँ हिंदू सर्राफों की बेटी थी, जिसने उसी कस्बे में मुसलमान शेखों के यहाँ मर्जी से विवाह किया, परिणामतः दोनों परिवारों में दुश्मनी हो गयी। पाशों को उसके मामाआ व नाना ने पाला, मगर एक मुस्लिम लड़के से संबंध के शक में मार दिए जाने के षड्यंत्र का आभास मिलते ही पाशो अपनी माँ मेहर के यहाँ-शरण लेती है, जहाँ शेख उसे एक बड़ी उम्र के हिंदू मित्र दीवान लखपत से ब्याह देते हैं, जो काफी दूरी पर बसा है। इससे दोनों परिवारों की कटुता तो कम होती है, लेकिन पाशो का जीवन दुखांत के लंबे दौर से गुजरता है। दीवान लखपत तो उसे एक बेटा देकर चल बसता है, लेकिन उसके बाद तो उसका हश्र बाज़ार में बिकने वाली पण्य वस्तु जैसा है, जिसे कभी कोई खरीद लेता है, कभी कोई। यह काल खालसा राज की समाप्ति व अंग्रेजी अमलदारी की स्थापना का है। लंबे दुःखों के बाद पाशो का भाई उसका उद्धार कर 'डार से बिछुड़ी' को डार से मिलाता है।

कृष्णा सोबती की इस प्रथम प्रकाशित औपन्यासिक रचना ने ही हिन्दी उपन्यास में उन्हें प्रतिष्ठा दिली दी। भारतीय समाज में स्त्री की वास्तविक स्थिति, सामंती मूल्यों के वर्चस्व तले दबी कुचली नारी की व्यथा-कथा को उन्होंने अत्यंत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है।

'मित्रो मरजानी'

'डार से बिछुड़ी' के प्रकाशन के नौ वर्ष बाद 'मित्रो मरजानी छपा। इस उपन्यास के संबंध में भी यही कहा गया है कि 'ऐ लड़की' की तरह पहले यह लंबी कहानी रूप में पत्रिका में छपा, लेकिन इसका पुस्तकाकार रूप उपन्यास रूप में घोषित-प्रकाशित हुआ। अब तो 'मित्रो मरजानी' की चर्चा प्रायः उपन्यास रूप में ही होती है। 'वर्तमान साहित्य' पत्रिका के शती कथा-विशेषांक में बीसवीं सदी के दस बेहतरीन हिन्दी उपन्यासों में इस उपन्यास को शामिल किया गया है। 1967 में प्रकाशित इस उपन्यास में कस्बाई जीवन के व्यापारी पंजाबी जीवन का घरेलू चित्र अंकित हुआ है, जहाँ मित्रो या सुमित्रावंती अपनी शारीरिक कामना की भूख पति द्वारा संतुष्ट न किए जाने पर दुःखी रहती है। डॉ. गुरुदास व धनवंती के तीन बेटे व एक बेटी हैं। सभी ब्याहे हैं। बड़ा बेटा बनवारी अपनी पत्नी सुहागवंती से खुश है। मंझला पुत्र सरदारी सुमित्रावंती यानि मित्रो का पति है और युवा होकर भी शारीरिक सुख में रुचि नहीं लेता। तीसरा पुत्र गुलजारी अपनी पत्नी फूलवंती के वशीभूत है व घर में कलह का कारण भी। बेटी उनकी सबसे पहले माँ बनती है। मित्रो नूरमहल की उस मां की बेटी है, जिसने सौ-सौ मर्दों का साथ किया है और जो मित्रो को भी उसी रास्ते पर ले जाने पर तत्पर है, लेकिन मित्रो अपनी सारी खुली सेक्स चर्चा के बावजूद पति को ही अपनी कामना पूर्ति के रास्ते पर ले आती है।

यह कहानी अपनी बोल्ड' थीम के कारण खूब चर्चित रही है और स्त्री-पुरुष सेक्स समस्या पर इतने खुले, मगर स्वस्थ ढंग से लिखी गई कुछ चुनी हुई रचनाओं में से एक है।

'यारों के यार'/'तिन पहाड़'

प्रकाशन क्रम में अगली पुस्तकाकार रचना 'यारों के यार'/'तिन पहाड़' है, जो वास्तव में दो रचनाएँ हैं, जो एक ही जिल्द में संकलित हैं। इन्हें दो लंबी कहानियाँ भी कहा जा सकता है और उपन्यासिकाएँ भी। अब तो इन्हें उपन्यासिका ही माना जा रहा है। दोनों ही रचनाएँ 60-65 पृष्ठों के लघु आकार की हैं।

'यारों के यार' में दिल्ली के सरकारी दफ्तरों के भीतरी सड़े हुए माहौल को केन्द्र में रखा गया है, जो विशेषत: क्लर्क मानसिकता द्वारा मनुष्य के मानवीय बोध के नष्ट होने की दु:खद कथा का बयान है, जहाँ एक पिता अपने बच्चे की मृत्यु पर दफ्तर से एक दिन का भी अवकाश नहीं लेता। यहाँ सभी भ्रष्टाचार में लिप्त हैं और गालियाँ बकते हैं।

'तिन पहाड़' बिल्कुल भिन्न प्रकार की अत्यंत संवेदनशील दु:खांत प्रेम कहानी है। कंचनजंघा की दार्जिलिंग क्षेत्र की पहाड़ियों में जया-श्री-एडना के प्रेम-त्रिकोण और जया के दु:खद आत्मघात को केन्द्र बनाकर यह उपन्यास लिखा गया है। तपन भी जया की ओर आकर्षित हुआ था, लेकिन जया श्री की बेवफाई से उबर नहीं पाती। यह कहानी प्रेम संबंधों की मानवीयता की अत्यंत मार्मिक कहानी है।

'ऐ लड़की'

प्रकाशन क्रम में 1991 में पहली बार 'वर्तमान साहित्य' के कहानी महाविशेषांक में प्रकाशित, बहुचर्चित तथा बाद में उपन्यास रूप में विज्ञापित-प्रकाशित 'ऐ लड़की' भी एक अभिनव रचना है। कृष्णा सोबती की हर रचना एक नई मानवीय स्थिति को अभिव्यक्त करने वाली सशक्त रचना होती है। वे कहीं भी स्वयं को कथ्य या शिल्प के स्तर पर दोहराती नहीं। 'ऐ लड़की' में मर रही माँ और उसकी अकेली रह रही लड़की के संवाद, विशेषत: माँ के एकालाप पर आधारित कहानी है, जिसमें पंजाबी परिवारों के भीतर की सांस्कृतिक झलक भी मिलती है। माँ इसका अत्यंत सशक्त चरित्र है, जो जीवन का लुत्फ उठाने में विश्वास रखता है, जीवन को उत्सव की तरह जीने, न कि हर समय अवसादों में घिरे रहने को। 'ऐ लड़की' भी लंबे अर्से तक चर्चा के केन्द्र में रही रचना है।

5.3.3 उपन्यास

'सूरजमुखी अंधेरे के' (1972)

1972 में कृष्णा सोबती का करीब 127 पृष्ठ का उपन्यास 'सूरजमुखी अंधेरे के' प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास ने भी कथ्य की विशिष्टता के कारण पाठकों व विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया। यह एक ऐसी स्त्री की दर्दनाक कहानी है, जिसके व्यक्तित्व में बचपन की यौनहिंसा ने असुरक्षा व कुछ हद तक निस्संगता भी दी है। रति अपने व्यक्तित्व, अपने आत्मसम्मान के प्रति अतिशय संवदेनशील हो जाती है। उच्च मध्यवर्ग की यह लड़की कहीं भी सामान्य संबंध नहीं बना पाती। किशोरावस्था या युवावस्था का प्रथम मित्र असद अचानक चल बसता है। अंतत: विवाहित पुरुष दिवाकर के साथ रति अपना शरीर सुखभोग कर संतुष्ट होती है। स्त्री-पुरुष रति का ऐसा विस्तृत लेकिन नियंत्रित चित्रण हिन्दी उपन्यास में दुर्लभ है। बावजूद इसके अकेलापन रति की नियति बन गया है।

'सूजरमुखी अंधेरे के' अपने कथ्य और शिल्प दोनों में ही अभिनव प्रयास है। (1979 में प्रकाशित 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास की चर्चा विस्तार से अंत में की जाएगी)।

'दिलो दानिश' (1993)

करीब दो सौ पृष्ठ का कृष्णा सोबती रचित 'दिलो दानिश' उपन्यास 1993 में प्रकाशित हुआ। छपते ही इस उपन्यास पर हिन्दी और अंग्रेजी में अनेक साहित्य समीक्षकों ने लेख लिखे।

उपन्यास पाठकों में भी अत्यंत लोकप्रिय हुआ। इसका प्रमाण है कि एक ही साल में इसका प्रथम संस्करण समाप्त हो गया।

इस उपन्यास में लेखिका ने पुरानी दिल्ली की सामाजिक संस्कृति को केन्द्र में रखा है और वकील कृपानारायण के 'घर' और 'बाहर' की कहानी कही है। दिल्ली के सफल वकील के घर की बड़ी हवेली में एक ओर पत्नी कुटुंबप्यारी और बच्चे हैं तो दूसरी ओर एक मुकदमें के सिलसिले में आई महक बानो की माँ उन्हें महक बानो ही सौंप देती है, जिसकी जेवरों की संदूकची भी वकील साहिब सँभाल लेते हैं। वे महक बानो को फराशखाने में एक घर में रखते हैं और वहाँ भी उनके दो बच्चे मासूमा व बदरू हो जातें हैं। वकील के बेटे राजो भाई की सालगिरह पर पहली बार मासूमा व बदरू भी हवेली में आते हैं। 20 अध्यायों में बँटा कृष्णा सोबती का यह अत्यंत रोचक व औपन्यासिक कौशल की दृष्टि से सुगठित उपन्यास है। उपन्यास में बाद में धीरे-धीरे महक बानो अपने हकों के प्रति सचेत होती है और अपने ज़ेवर भी वापिस लेती है। वह वकील कृपानारायण की रखैल के दर्जे से भी मुक्त होती है और बेटी मासूमा की शादी में भी शान से शरीक होती हैं उपन्यास का अंत वकील कृपानारायण के देहांत और उनकी वसीयत के साथ होता है, जिसमें अपनी लंबी-चौड़ी जायदाद में उन्होंने महक बानो और उसके बच्चों के लिए भी कुछ व्यवस्था की है, जबकि जायदाद का अधिकांश भाग कानूनी विवाह की संतानों में ही बाँटा गया है।

'दिलो दानिश' उपन्यास में विभाजनपूर्ण दिल्ली का ही चित्र है, जिसमें अभी सांप्रदायिकता ने अपना रंग नहीं दिखाया है। यहाँ हिंदू-मुस्लिम संबंधों में शोषण का अंश भले ही हो, कटुता नहीं है। उपन्यास में सामाजिक यथार्थ के अनेक स्तरों को बड़े कलात्मक कौशल से उजागर किया गया है। यह अत्यंत प्रभावी रचना बन गई है।

'समय सरगम' (2000)

'समय सरगम' उपन्यास को कृष्णा सोबती ने '1999 की अंतिम व 2000 की प्रथम कृति' कहा है। करीब डेढ़ सौ पृष्ठ के इस उपन्यास के वर्ष 2000 में ही दो संस्करण निकल गए जिससे उपन्यास की लोकप्रियता का अनुमान लगाया जा सकता है। हमेशा की तरह इस उपन्यास में भी लेखिका ने बिल्कुल भिन्न प्रकार के विषय को प्रस्तुत किया है। संभवत: हिन्दी में तो क्या, पूरे भारतीय उपन्यास में ही ऐसा विषय पहली बार प्रस्तुत हुआ है।

इक्कीस अध्यायों में बँटे इस उपन्यास का कथ्य जीवन के सफर में अकेले चलते जाने वाले दो वरिष्ठ नागरिकों की अत्यंत संवेदनशील व मानवीय प्रेमकथा पर आधारित है। शिल्प के स्तर पर एक कलाकृति के रूप में इस उपन्यास में अछूतेपन, ताज़गी और विशिष्ट भाषाई रचाव का स्पर्श मिलता है।

उपन्यास में 'अरण्या' को एक सपने के माध्यम से जीवन के प्रति आत्ममंथन का अवसर मिलता है। उपन्यास के दूसरे चरित्र 'ईशान' हैं, जो सफल गृहस्थ जीवन जीकर भी एकमात्र बेटे और पत्नी की मृत्यु के कारण जीवन के अंतिम पड़ाव में अरण्या की तरह ही अकेले हो गए हैं। अरण्या ने तो गृहस्थ जीवन का रास्ता चुना ही नहीं था। दोनों के स्वभाव और जीवन शैली में ज़मीन-आसमान का अंतर है लेकिन दोनों ही बेहद संवेदनशील और ईमानदार इंसान हैं। एक दमनकारी समाज के दबाव उन्हें धीरे-धीरे एक दूसरे के करीब ले आते हैं और वे जीवन के अंतिम पड़ाव की यात्रा में हमसफर बन कर जीने लगते हैं।

'यही धरती' शीर्षक परिशिष्ट में ईशान के साले की जर्मन पत्नी एंग्लिका, अरण्या को ईशान के भारतीय प्रशासनिक सेवा में चुने जाने के बावजूद उसे डाक सेवा में भेजे जाने की चर्चा है और साथ ही एक ओर अंतरिक्ष में बस्तियाँ बनाने की योजनाओं की बातें है, तो दूसरी ओर धरती पर निर्धनों की बढ़ती कतारें हैं। उपन्यास का अंत मनुष्य की जीत की कामना व परमाणु हथियारों के विरोध के स्वर से होता है। कृष्णा सोबती की यह रचना भी अनूठी और सशक्त है।

'ज़िन्दगीनामा' (भाग दो) 'फोन बजता रहा'

महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय की पत्रिका 'बहुवचन' के 1999 में प्रकाशित प्रवेशांक में कृष्णा सोबती में बहु-प्रतीक्षित उपन्यास-'ज़िन्दगीनामा' (भाग दो) का एक अंश (करीब पचास पृष्ठ) छपा है, जिसमें 'ज़िन्दगीनामा' (भाग एक) की कथा आगे बढ़ती है। यह रचना भी भाग एक की तरह ही रोचक है और आगे की कथा के लिए जिज्ञासा पैदा करती है। कृष्णा सोबती ने शायद कहीं कहा है कि उन्होंने 'जिन्दगीनामा' (भाग दो) बहुत पहले पूरा कर लिया है, लेकिन अभी प्रकाशन के लिए नहीं दिया। यदि ऐसा है तो उम्मीद करनी चाहिए कि नई सदी में कृष्णा सोबती की प्रथम औपन्यासिक कृति 'ज़िन्दगीनामा' (भाग दो) ही सामने आएगी। खुद लेखिका की दृष्टि में 'ज़िन्दगीनामा' ही उनकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचना या 'मैग्नस ओपम' (Magnus Opum) है।

नई सदी के प्रथम वर्ष में कृष्णा सोबती की कलम से अत्यंत संवेदनशील व भारतीय साहित्य के गहन अध्येता जयदेव को उनके असमय निधन के बाद याद किया गया है। डॉ. जयदेव हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला में अंग्रेजी विभाग के प्रोफेसर थे व हाल के वर्षों में उन्होंने भारतीय साहित्य, जिसमें अधिकांश हिन्दी का ही साहित्य था, का अत्यंत गहराई से अध्ययन किया था। उनका सितम्बर, 2000 में कैंसर से असमय निधन हो गया था और यह विडंबना ही थी कि पूरे देश में उनके अनेक मित्र व प्रशंसक थे, लेकिन उनके व्यक्तित्व को मार्मिक श्रद्धांजलि कृष्णा सोबती ने ही 'समकालीन भारतीय साहित्य' (मई-जून, 2001 अंक 95) में प्रकाशित संस्मरण 'फोन बजता रहा' द्वारा दी। जयदेव ने हिन्दी के जिन लेखकों को अध्ययन का केन्द्र बनाया, उनमें भीष्म साहनी, कृष्णा सोबती, जगदीश चन्द्र, निर्मल वर्मा, कृष्ण बलदेव वैद, मृदुला गर्ग, मोहन राकेश आदि शामिल थे। महाश्वेता देवी के अध्ययन में उनकी विशेष रुचि रही। लिखा उन्होंने इन सभी लेखकों पर अंग्रेजी भाषा में।

5.4 कृष्णा सोबती का 'ज़िन्दगीनामा'

कृष्णा सोबती के जीवन, रचना व विशेषत: कथा-साहित्य के परिचय से आपको यह आभास हो गया होगा कि वे हिन्दी की एक महान् उपन्यास लेखिका हैं। उनकी अब तक प्रकाशित सभी रचनाओं में 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास आकार में भी अन्य सभी रचनाओं से बड़ा है और महत्व में भी। एक तरह से 1979 में प्रकाशित इस उपन्यास को लेखिका का मैग्नस ओपम (Magnus Opum) भी कह सकते हैं। साढ़े तीन सौ पृष्ठों से भी अधिक आकार की इस बृहत्तम रचना का पहला भाग ज़िंदा रुख' ही प्रकाशित हुआ है। जबकि उपन्यास के दूसरे भाग का एक अंश मात्र 'बहुवचन' पत्रिका के प्रवेशांक में लगभग बीस वर्षों बाद 1999 छपा है। इससे अब यह उम्मीद बँध गई है कि 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास का दूसरा भाग, पहले भाग के छपने के दो दशक से भी अधिक अंतराल के बाद प्रकाशित रूप में पाठकों को उपलब्ध हो सकेगा।

'ज़िन्दगीनामा' कृष्णा सोबती का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपन्यास है, यह उपन्यास बीसवीं सदी के हिन्दी उपन्यास साहित्य की भी बड़ी उपलब्धि है। 'ज़िन्दगीनामा' में विभाजनपूर्व पंजाब के जन-जीवन और संस्कृति का ऐसा अद्भुत पुन:सृजन किया गया है, जिसे पढ़ते हुए पाठक अभिभूत हो जाता है।

'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास दसवें व अंतिम सिख गुरु-गुरु गोविन्द सिंह के सुप्रसिद्ध फारसी कथन 'चूँ कार अज हमां हीलते दरगुज़श्त। हलालस्त बुर्दन ब-शमशीर दस्त' (जब दूसरे सब रास्ते कारगर न हो सकें तो जुल्म के खिलाफ तलवार उठा लेना ज़ायज़ है) को समर्पित है। उपन्यास का अंत भी उपन्यास के प्रमुख चरित्र शाह जी द्वारा इन्हीं पंक्तियों के उद्धरण से होता है। उपन्यास के आरंभ व अंत दोनों जगह गुरु गोविन्द सिंह के संदेश का सन्दर्भ लेखिका और रचना के पंजाबी संस्कृति से गहरे जुड़ाव का प्रमाण है।

कृष्णा सोबती ने 'ज़िन्दगीनामा' की संकल्पना पंजाब के सामाजिक-सांस्कृतिक इतिहास के रूप में की है। लेखिका ने इतिहास की व्याख्या दस्तावेजों के रूप में न करके, जन-सामान्य की सांस्कृतिक गतिविधियों द्वारा की है। कृष्णा सोबती का अपनी मातृभूति व संस्कृति से ऐसा गहरा लगाव है, जो उपन्यास के आरंभ में कविता बनकर फूट पड़ा है। उपन्यास के आरंभिक अट्ठाइस पृष्ठ कथा से अलग पंजाब का अत्यंत उदात्त और काव्यात्मक रेखाचित्र प्रस्तुत करते हैं।

उपन्यास में लेखिका के जन्मस्थान अविभाजित पंजाब के अब पाकिस्तान में रह गए ज़िला गुजरात की कथा बयान की गई है। उपन्यास में कथा तो कम है, दृश्यों का एक सतत् क्रम है। लेखिका ने डेरा जट्टा गाँव की यादों को एक संश्लिष्ट दृश्य में बाँधकर प्रस्तुत किया है।

उपन्यास का आरंभ शरद् पूर्णिमा की रात के खूबसूरत चित्रण से होता है। उसके बाद तो पंजाबी गाँवों में बसे तीनों समुदायों - हिंदू, मुसलमान व सिखों की घी-खिचड़ी ज़िन्दगी के अनेक चित्र सांस्कृतिक बिंबों द्वारा प्रस्तुत हुए हैं, जिनमें 'त्रिंजन' भी है, लोहड़ी भी, प्रेम कथाएँ भी, ईद और दशहरा भी और पंजाबी का विशेष त्यौहार 'बैसाखी' भी। शाह जी के परिवार को कथा के केन्द्र में रखकर लेखिका ने अनेकानेक अन्य कहानियाँ भी उपन्यास के कलेवर में सँजो दी है।

ज़िन्दगीनामा' उपन्यास में ; रा जट्टां गाँव के जीवन का हर पहलू जीवंत रूप में चित्रित है। उपन्यास के अंत तक देश के स्वतंत्रता संग्राम की गूँज भी सुनाई देने लगती है। भगत सिंह के चाचा अजीत सिंह, क्रांतिकारी कवि लालचंद 'फलक' और गदर (1914) के चर्चे उपन्यास के अंत तक शुरू हो जाते हैं ज़िन्दगीनामा' उपन्यास में वर्णित जीवन का कालखण्ड 1910 से 1915 के बीच का जान पड़ता है।

'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास एक सांस्कृतिक-ऐतिहासिक औपन्यासिक रचना है। इसमें व्यक्ति-कथा कम, संस्कृति-कथा अधिक चित्रित हुई है। हालांकि इस संस्कृति कथा को बयान करने में लेखिका ने पंजाबी प्रभाव युक्त जिस भाषा का प्रयोग किया है, उससे रेणु के 'मैला आँचल' की भाषा की तरह कुछ पाठकों के लिए संप्रेषण बाधा आई है, लेकिन सांस्कृतिक परिवेश की रचना की भाषा इसी रूप में सौन्दर्य सृजित कर सकती थी।

'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास के विभिन्न पक्षों पर अगले पाठों में विस्तार से विचार किया जाएगा। अभी तो आपको इस उपन्यास को पढ़कर इसके सांस्कृतिक सौन्दर्य-बोध को ग्रहण करना है।

5.5 सारांश

'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास की प्रथम इकाई का अध्ययन आपने किया। इस इकाई में आपने मुख्य रूप से हिन्दी उपन्यास के विकास के संदर्भ में 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास के महत्व को समझा। उपन्यास की लेखिका कृष्णा सोबती के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की अद्यतन जानकारी प्राप्त की। उनकी रचनाओं में उपन्यास साहित्य का महत्व सर्वाधिक है, अत: एक प्रमुख उपन्यासकार रूप में लेखिका की प्रतिष्ठा से साक्षात्कार किया। लेखिका की सभी औपन्यासिक रचनाओं का उनके महत्व के साथ संक्षिप्त परिचय प्राप्त किया। कृष्णा सोबती के उपन्यास लेखन की यह प्रमुख विशेषता है कि उन्होंने किसी भी रचना में खुद को दोहराया नहीं है और उनकी प्रत्येक औपन्यासिक रचना एक नए और अनूठे विषय को प्रस्तुत करने वाली सफल रचना है। इससे उनकी प्रतिष्ठा हिन्दी की एक अत्यंत महत्वपूर्ण उपन्यास लेखिका के रूप में स्थापित हुई है।

'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास की यहाँ सिर्फ पूर्व-पीठिका ही प्रस्तुत की गई है, क्योंकि इस उपन्यास के विभिन्न पक्षों पर अगली इकाइयों में विस्तार से विचार किया जाएगा। इतना तो स्पष्ट है कि 'ज़िन्दगीनामा' विभाजनपूर्व पंजाब का अत्यंत जीवंत सांस्कृतिक चित्र प्रस्तुत करने वाला

लेखिका का ही नहीं, हिन्दी का भी अत्यंत महत्वपूर्ण उपन्यास है। पंजाब की संस्कृति के सौन्दर्यमूलक चित्रण ने 'ज़िन्दगीनामा' को एक विशिष्ट उपन्यास का स्वरूप प्रदान कर दिया है।

5.6 अभ्यास प्रश्न

1. हिन्दी उपन्यास के विकासक्रम में 'ज़िन्दगीनामा' के महत्व को रेखांकित कीजिए।
2. कृष्णा सोबती की प्रमुख औपन्यासिक रचनाओं का परिचय दीजिए।
3. कृष्णा सोबती की रचनाओं में लंबी कहानी या लघु उपन्यास संबंधी चर्चा पर विचार कीजिए।
4. 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास का परिचय दीजिए।
5. उपन्यासकार रूप में कृष्णा सोबती की प्रमुख विशेषताएँ रेखांकित कीजिए।

इकाई 6 'ज़िन्दगीनामा' : उपन्यास की अंतर्वस्तु और कथा-शिल्प

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 अन्तर्वस्तु और कथाशिल्प का महत्व

6.3 'ज़िन्दगीनामा' : अन्तर्वस्तु

- 6.3.1 अविभाजित पंजाब की सांझी जनसंस्कृति का आख्यान
- 6.3.2 गाँव डेरा जट्टां का आख्यान
- 6.3.3 स्वतंत्रता संग्राम व देश-प्रेम का आख्यान
- 6.3.4 पंजाबी चरित्र के दुस्साहसिक कारनामों का आख्यान
- 6.3.5 शाहों की जिन्दगी का आख्यान

6.4 'ज़िन्दगीनामा' : कथाशिल्प

- 6.4.1 विवरण-क्रम की अपेक्षा दृश्यावली-क्रम में प्रस्तुतीकरण
- 6.4.2 चौपाल-चर्चा या मजलिस
- 6.4.3 लोक-शैली में इतिहास-विवरण
- 6.4.4 लोक-भाषा अर्थात् पंजाबी भाषा का प्रयोग
- 6.4.5 चित्रात्मक शैली

6.5 सारांश

6.6 अभ्यास प्रश्न

6.0 उद्देश्य

'हिन्दी उपन्यास - 2' के खण्ड दो के अन्तर्गत यह दूसरी इकाई है। इकाई एक में आपने हिन्दी की प्रसिद्ध उपन्यासकार कृष्णा सोबती के रचनात्मक व्यक्तित्व से परिचय हासिल करते हुए 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास की प्रारंभिक रूपरेखा की पहचान की थी। इस इकाई में आप 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास के गहन व विस्तृत अध्ययन की ओर प्रवृत्त होंगे। 'ज़िन्दगीनामा' आकार में भी बृहताकार उपन्यास है। और विषयवस्तु व शिल्प के स्तर पर भी यह काफी संश्लिष्ट रचना है। इस महाकाव्यात्मक औपन्यासिक रचना में अन्तर्वस्तु के विभिन्न स्तर संगुफित हैं और रचना का कथाशिल्प भी अत्यंत सधा हुआ है। उपन्यास की अन्तरात्मा को पहचानने के लिए उसकी अन्तर्वस्तु की तह तक पहुँचना आवश्यक है और उपन्यास की अन्तर्वस्तु की तह तक पहुँचने के लिए उपन्यास के कथाशिल्प के ताने-बाने को समझना अत्यावश्यक है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर प्रस्तुत इकाई में सर्वप्रथम अन्तर्वस्तु और शिल्प के महत्व पर विस्तार से विचार किया जाएगा। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप:

- 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास में व्यक्त पंजाबी जनजीवन के अध्ययन के ज़रिए उपन्यास की अन्तर्वस्तु की तह तक पहुँच सकेंगे;
- 'ज़िन्दगीनामा' की अन्तर्वस्तु के मुख्य सरोकारों को, पंजाबी जनजीवन और संस्कृति के अविरल प्रवाह को नज़दीक से पहचान सकेंगे;

- 'ज़िन्दगीनामा' की अन्तर्वस्तु को औपन्यासिक रूप देने के लिए कृष्णा सोबती द्वारा प्रयुक्त कथाशिल्प की तमाम बारीकियों को हृदयंगम कर सकेंगे;
- 'ज़िन्दगीनामा' के कथाशिल्प की बनावट-बुनावट में लेखिका ने किन-किन युक्तियों का प्रयोग किया है, उन्हें समझ सकेंगे।
- 'जिन्दगीनामा' की अन्तर्वस्तु और कथाशिल्प के संश्लिष्ट संगुंफन की प्रक्रिया से परिचित होकर उपन्यास के दूसरे पक्षों को सुगमता से समझ सकेंगे; और
- पंजाबी जन-जीवन में पंजाबी स्त्री की स्थिति, उसकी सांस्कृतिक अस्मिता व उसके भावनात्मक व्यक्तित्व के स्वरूप को कृष्णा सोबती की कथात्मक कृतियों के माध्यम से लक्षित कर सकेंगें।

6.1 प्रस्तावना

'हिन्दी उपन्यास - 2' के खण्ड-2 की इकाई पाँच के अन्तर्गत आपने कृष्णा सोबती के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के साथ-साथ 'ज़िन्दगीनामा' का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर लिया है। आपको इस इकाई में 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास की अन्तर्वस्तु व कथाशिल्प का अध्ययन करना है ताकि आप कृष्णा सोबती की औपन्यासिक रचना-प्रक्रिया से भी परिचित हो सकें।

कृष्णा सोबती ने ज़िन्दगीनामा' सहित अब तक नौ उपन्यासों-उपन्यासिकाओं की रचना की है। इस क्रम में उनकी अगली महत्वपूर्ण रचना 'ज़िन्दगीनामा' (भाग दो) भी छपने के लिए तैयार है। दिलचस्प बात यह है कि कृष्णा सोबती ने अपनी सभी रचनाओं में अन्तर्वस्तु व कथाशिल्प के स्तर पर अभिनव प्रयोग किए हैं। फलस्वरूप विषयवस्तु और शिल्प - दोनों ही स्तरों पर उनमें कहीं दुहराव नहीं मिलता। इस दृष्टि से कृष्णा सोबती हिन्दी की अत्यधिक विविधतापूर्ण विषयों को कथारूप में ढालने वाली लेखिका हैं। इसमें ध्यान देने वाली बात यह भी है कि उनकी विषय-विविधता शिल्प वैविध्य को भी साथ लेकर आती है। प्राय: उनकी प्रत्येक रचना छपते ही चर्चा के केन्द्र में आ जाती है तथा उनकी शायद ही कोई ऐसी रचना हो, जिसके एक से अधिक संस्करण न प्रकाशित हुए हों। कई रचनाओं के तो एक ही वर्ष में एकाधिक संस्करण प्रकाशित हुए हैं। इस अर्थ में कृष्णा सोबती हिन्दी की उन विरले लेखक-लेखिकाओं में से एक हैं, जिनकी रचना का अकादमिक व गंभीर साहित्य प्रेमी पाठकों के साथ ही लोकप्रिय साहित्य के पाठकों के बीच भी पूरा स्वागत हुआ है।

'ज़िन्दगीनामा' कृष्णा सोबती की सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृतियों में से एक है, जिसकी अन्तर्वस्तु व शिल्प दोनों स्तरों पर ही लेखिका ने बहुत अधिक ध्यान दिया है। वैसे भी कृष्णा सोबती की प्रतिष्ठा एक सजग लेखक के रूप में है। लेकिन उनकी सजगता सहज होकर ही उनके उपन्यास में आई है न कि आरोपित या बनावटी बनकर। इसीलिए उनका साहित्य अकादमिक क्षेत्र में अध्ययन व शोध के लिए एक चुनौती के रूप में सामने आता है, जिसके विश्लेषण में भी उतनी ही सजगता की ज़रूरत पड़ती है, जितनी लेखिका ने अपनी रचना-प्रक्रिया में अपनाई है। प्रस्तुत इकाई में इस तथ्य को आप आसानी से समझ सकेंगे।

6.2 अन्तर्वस्तु और कथाशिल्प का महत्व

वस्तु और शिल्प - दोनों ही अपने अस्तित्व के लिए एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं। किसी भी मानवीय कृति या रचना के संदर्भ में यह वास्तविकता समान रूप से लागू होती है। साहित्य और कला के क्षेत्र में वस्तु और रूप या शिल्प के तुलनात्मक महत्व के संबंध में विचारकों के मध्य पर्याप्त मतभेद दिखायी देता है। कुछ वस्तु-तत्व को अधिक महत्व देते हैं तो कुछ विचारक रूप या शिल्प को। लेकिन ये दोनों अतिवादी छोर हैं। वस्तु को सजाने संवारने और अधिक प्रेषणीय बनाने के लिए शिल्प या रूप की अहम् भूमिका होती है।

कम-से-कम साहित्य के अन्तर्गत उन्नत शिल्प के बिना कलात्मक वस्तु का निर्माण संभव ही नहीं है। कविता, कहानी, नाटक की तरह उपन्यास के लिए भी वस्तु और शिल्प की समतुल्यता अनिवार्य है। उपन्यास आधुनिक युग की एक महत्वपूर्ण गद्य विधा है, जिसमें युगीन समाज का सर्वाधिक व्यापक चित्रण संभव है। इसीलिए इसे आधुनिक युग के महाकाव्य की संज्ञा दी गयी है। प्राचीन और मध्य युग में प्रतिनिधित्व की दृष्टि से जो स्थान महाकाव्य को मिला हुआ था, आधुनिक युग में उपन्यास ही उसका अधिकारी है। इसका विकास सामाजिक यथार्थ के अधिकाधिक दबाव के कारण हुआ था। अपने विकासक्रम में इसका झुकाव अधिकाधिक लोकाश्रित कथाशिल्प और सहज सरल भाषा के माध्यम से ही अधिक हुआ। लेकिन आधुनिक युग की जटिलता ने इसके शिल्प को भी सपाट नहीं रहने दिया है। क्योंकि एक जटिल अन्तर्वस्तु अपने अनुरूप शिल्प की माँग प्रस्तुत करती है। फलस्वरूप उपन्यास के शिल्प में जटिलता का समावेश हुआ है, 'ज़िन्दगीनामा' इस तथ्य का प्रमाण है।

महाकाव्य जिस युग की प्रतिनिधि साहित्य विधा थी, वह युग अपेक्षाकृत कम जटिल युग था, जबकि उपन्यास जिस युग का प्रतिनिधित्व करता है वह पहले युगों की अपेक्षा अत्यंत जटिल युग है। इस युग की जटिलता के कारण ही उपन्यास इसकी प्रतिनिधि विधा बन कर उभरा। उपन्यास गद्यात्मक विधा है, जिसमें अनेक प्रकार की सामाजिक जटिलताओं को भाषा के अनेक स्तरों पर प्रस्तुत किया जा सकता है, जबकि महाकाव्य पद्यात्मक विधा होने से भाषिक स्तर पर भी अधिक जटिलताओं की अभिव्यक्ति करने में सक्षम विधा नहीं हो सकता था। महाकाव्य अपनी अभिव्यक्ति में अधिक अमूर्तन का सहारा ले सकता है, जबकि गद्य में मूर्त की अभिव्यक्ति पद्य से अधिक सहज है।

उपन्यास चूँकि अपने युगीन समाज का अधिकाधिक प्रातिनिधिक रूप प्रस्तुत करने वाली विधा है, इसलिए इस विधा में यथार्थ प्रस्तुति का महत्व अधिक बढ़ जाता है। यथार्थ अपने विभिन्न स्तरों व तहों के साथ उपन्यास विधा में व्यक्त हो सकता है, जिसकी अभिव्यक्ति-क्षमता अन्य गद्य-विधाओं में भी अधिक है। लेकिन उपन्यास में यथार्थ की प्रस्तुति कोई कैमरे जैसी फोटो-प्रतिलिपि प्रस्तुति नहीं है, यह प्रस्तुति एक सृजनात्मक-चित्रात्मक प्रस्तुति है, जिसके लिए उपन्यासकार को अपने कथाशिल्प की ओर बहुत अधिक ध्यान देना पड़ता है। अत: उपन्यास विधा में प्रस्तुत यथार्थ की अन्तर्वस्तु और उसे अभिव्यक्ति देने के माध्यम कथाशिल्प के बीच सामंजस्य और संतुलन का अत्यधिक महत्व है। वही उपन्यास प्रभावशाली उपन्यास का स्थान हासिल करता है, जिसमें प्रस्तुत यथार्थ की अन्तर्वस्तु व उपन्यास को संवारने वाले कथाशिल्प में शरीर व आत्मा जैसा संबंध हो। अन्तर्वस्तु यदि उपन्यास की आत्मा है तो कथाशिल्प उसका शरीर है और शरीर ही अपने सौन्दर्य से सबसे पहले ध्यान आकर्षित करता है। शरीर तक पहुँचने के बाद ही आत्मा की तलाश शुरू होती है। सीरत की पहचान सूरत की पहचान से ही शुरू होती हे, हालाँकि बहुत बार सूरतें व शक्लें धोखा भी देती हैं व शक्लों व रेखाओं से बाह्य ध्वनि कुछ और निकलती है और अन्तर्ध्वनि कुछ और। किंतु उपन्यास ऐसी विधा है, जिसमें सूरत और सीरत में फर्क बहुत कम रहता है, ज्यादातर उपन्यासों की सूरत उनकी सीरत का ही आईना होती है। कहने का मतलब यह कि उपन्यास के लिए अनिवार्यता है कि उसका कथा-शिल्प अन्तर्वस्तु की पूरी अनुकूलता में हो।

'ज़िन्दगीनामा' के सन्दर्भ में भी यह जानना जरूरी है कि उसकी अन्तर्वस्तु और कथाशिल्प का संबंध कैसा है ? क्या यह संबंध सहज स्वाभाविक हैउ या इसमें कहीं पेंच हैं? आगे हम अन्तर्वस्तु और शिल्प के संदर्भ में इसी समस्या पर विचार करेंगे।

6.3 'ज़िन्दगीनामा' : अन्तर्वस्तु

ज़िन्दगीनामा' की अन्तर्वस्तु पर विचार करने से पूर्व हमें रचना के विषय और उसकी अन्तर्वस्तु के बीच अन्तर को समझ लेना जरूरी है। जैसे 'ज़िन्दगीनामा' का विषय है, अविभाजित पंजाब का सामाजिक-सांस्कृतिक चित्रण। लेकिन उसकी अन्तर्वस्तु के रूप में पंजाब की सांझा संस्कृति, गाँव डेरा जट्टां की दिन-प्रतिदिन की गतिविधियाँ, चौपालों में व्यक्त वहाँ के लोगों की विविध प्रतिक्रियाएँ, स्वाधीनता संग्राम और देश-प्रेम की अनुगूँजें, कुछ लोगों के दुस्साहसिक कारनामें, शाहों की जिन्दगी के उतार-चढ़ाव आदि सभी कुछ आ जाते हैं। इन तमाम सारी चीजों से मिलकर 'ज़िन्दगीनामा' की अन्तर्वस्तु का निर्माण हुआ है। वस्तुतः किसी रचना का विषय जब रचनाकार की निजी दृष्टि से भावित और क्षालित होकर रचना में प्रस्तुत होता है तो वह उसकी अन्तर्वस्तु बन जाता है। इस रूप में रचना की अन्तर्वस्तु (थीम) उसके विषय वस्तु (सब्जेक्ट मैटर) का गुणात्मक रूपान्तरण है। इसे ही कृष्णा सोबती ने 'ज़िन्दगीनामा' का 'ज़िन्दा रुख' माना है। इसे उपन्यास का समग्र परिवेश माना जा सकता है, जो उसकी अन्तर्वस्तु को अपने में समाहित किए हुए है।

'ज़िन्दगीनामा' का उपशीर्षक है - 'ज़िन्दा रुख', जो उपन्यास के पहले भाग के उप-शीर्षक रूप में दर्ज है, उपन्यास के दूसरे भाग का उपशीर्षक क्या होगा, यह अभी स्पष्ट नहीं है। लेकिन 'ज़िन्दगीनामा' और -'ज़िन्दा रुख' दोनों कहीं काफी गहरे स्तर पर प्रतीकात्मक शीर्षक हैं, जिनके अध्ययन में, अर्थ ढूँढने में किंचित सजगता की ज़रूरत है।

व्यापकतम स्तर पर 'ज़िन्दगीनामा' से यह ध्वनित होता है कि यह एक विशेष कालखण्ड का, विशेष चरित्रों का, विशेष परिवेश का आख्यान है, लेकिन यह विशेष कालखण्ड, विशेष चरित्र या विशेष परिवेश क्या है, जिसे लेखिका ने इस दीर्घाकार कथा में बाँध कर प्रस्तुत किया है। विशेष कालखण्ड, चरित्र या परिवेश निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से संकेतित हुए हैं :

(i) अविभाजित पंजाब की सांझी जनसंस्कृति का आख्यान

(ii) गाँव डेरा जट्टां का आख्यान (ज़िन्दगीनामा)

(iii) स्वतंत्रता संग्राम व देशप्रेम का आख्यान

(iv) पंजाबी चरित्रों के दुस्साहसिक कारनामों का आख्यान

(v) शाहों की ज़िन्दगी का आख्यान

'ज़िन्दगीनामा' उपरोक्त में से किसी एक का या फिर इन सभी का आख्यान कहा जा सकता है। इन सभी पर अलग-अलग विचार कर हम उपन्यास की अन्तर्वस्तु का संधान कर सकते हैं।

6.3.1 अविभाजित पंजाब की सांझी जनसंस्कृति का आख्यान

वास्तव में उपन्यास के आदि से अंत तक या फिर उपन्यास के आरंभ से भी पहले, लेखिका के समर्पण भाव से ही लेखिका के सरोकार अत्यंत स्पष्ट हैं। उपन्यास के आरंभ और अंत में समर्पण की चेतना गुरु गोविन्द सिंह का फ़ारसी भाषा में रचित यह संदेश है -

चूँ कार अज हमां हीलते दरगुज़श्त।
हलालस्त बुर्दन ब-शमशीर दश्त।।

लेखिका ने उपन्यास के अंत में शाहजी के मुँह से इस कथन की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करते हुए लिखा है- 'गुरु गोविन्द सिंह जी महाराज ने मुगल बादशाह औरंगजेब के जोर-जुल्म देखकर उसे खत में लिखा' (ज़िन्दगीनामा, 1983, द्वितीय संस्करण, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली,

पृ० 361) जिसका अर्थ दिया गया है – 'जब दूसरे सब रास्ते कारगर न हो सकें तो जुल्म के खिलाफ तलवार उठा लेना ज़ायज है।' उपन्यास के आरंभ और अंत में अंकित गुरु गोविंद सिंह का यह संदेश यदि लेखिका का सरोकार है, तो वह उपन्यास में किस सीमा तक व्यक्त हुआ है, यह विचारणीय है। कृष्ण सोबती ने उपन्यास आरंभ करने से पहले काव्यमय अंदाज में अपनी इतिहास दृष्टि भी शब्दबद्ध की है, जिसमें उन्होंने इतिहास का सच्चा रूप 'लोकमानस के सांस्कृतिक पुख्तापन' में जिन्दा रहने में स्थित और स्थिर माना है, इस अर्थ में अपने उपन्यास को समझने की कुंजी भी उन्होंने दे दी है कि 'जिन्दगीनामा' उपन्यास में पंजाबी लोकमानस का संस्कृतिक पुख्तापन भागीरथी की तरह बहा, पनपा और फैला है।

पंजाबी लोकमानस की इसी बहती सांस्कृतिक भागीरथी को लेखिका ने उपन्यास के अंग-रूप में कथारंभ से पहले पूरे साढ़े सात पृष्ठ की काव्यात्मक अभिव्यक्ति में बाँध कर प्रस्तुत किया है। इसमें चनाब और ज़ेहलम की धरती के, पंजाब की खिलंदड़ी हीरों के, मेहनती किसानों के, बैसाखी-लोहड़ी आदि त्यौहारों के, बाग और फुलकारियों के, गुल्ली-डंडे और सॉंचियों की खेलों के, पंज दरियायों के पंजाब के खूबसूरत चित्र खींचकर इसके इतिहास की सबसे बड़ी और भयानकतम त्रासदी, इस संस्कृति-स्रोत, 'ज़िन्दा रुख' को 1947 के विभाजन द्वारा काटे जाने का चित्र प्रस्तुत किया गया है। वास्तव में कृष्णा सोबती की इस काव्यात्मक अभिव्यक्ति में भी 'ज़िन्दगीनामा' रूपी समुद्र 'गागर में सागर' की तरह समाया हुआ है। आगे की समूची गद्यात्मक कथा में इसी साढ़े सात पृष्ठ की काव्यात्मक अभिव्यक्ति की व्याख्या और विस्तार है।

'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास के पहले भाग 'जिन्दा रुख' शीर्षक और लेखिका द्वारा अपनी काव्यात्मक अभिव्यक्ति में प्रस्तुत 'ज़िन्दा रुख' के प्रतीक से यह स्पष्ट है कि 'ज़िन्दा रुख' पंजाब की सांझी जन संस्कृति का प्रतीक है, जो 1947 तक अपने पूरे खूबसूरत रूप में खिला, फला और फूला हुआ था, जो अपने नीचे बसे लोगों की सुरक्षा था, उनके लिए ठंडी छाँह था। पहले भाग का शीर्षक 'ज़िन्दा रुख' इसीलिए है, क्योंकि उपन्यास के आरंभ से अंत, लगभग 1907 से 1914-15 तक पंजाब का 'ज़िन्दा रुख' सुरक्षित था, जिसकी एक झलक उपन्यास में प्रस्तुत गुज़रात जिले के डेरा जट्टां गाँव के अविरल जीवन-प्रवाह से रूप में प्रस्तुत हुई है। ज़ाहिर है उपन्यास का अगला भाग, यदि वह 1947 के कालखण्ड तक को समेटने वाला होगा तो इस 'ज़िन्दा रुख' के काटे जाने की त्रासदी पर केन्द्रित होगा, लेकिन अभी उसके बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता, हालाँकि 'ज़िन्दगीनामा' भाग दो का एक अंश 'बहुवचन' पत्रिका में छपा है, जिसमें शाहों के परिवार के पारिवारिक त्रासदी पर ध्यान केन्द्रित है।

उपन्यास लेखिका की काव्यात्मक अभिव्यक्ति और उसके बाद के कथा-विस्तार से यह स्पष्ट ही है कि उपन्यास की प्रमुख अन्तर्वस्तु 'अविभाजित पंजाब की सांझी जन संस्कृति' की भागीरथी के अनवरत प्रवाह को ही लेखिका ने आख्यान रूप दिया है। लेकिन इस अनंत कथा को औपन्यासिक सीमाओं में लेखिका ने कैसे बाँधा, इसकी ज्यादा चर्चा तो लेखिका के कथा-शिल्प पर विचार करते हुए होगी, लेकिन कथा की अन्तर्वस्तु से भी इसका अनुमान लगाया जा सकता है।

वास्तव में 'ज़िन्दगीनामा' की अन्तर्वस्तु जैसी व्यापक है, उसे एक सीमित कथा के दायरे में बाँध कर प्रस्तुत करना कठिन व श्रमसाध्य लक्ष्य था जिसे लेखिका ने बाँधने का पूरा प्रयास किया है। इस कठिन साध्य के लिए लेखिका ने इस संस्कृति-कथा को डेरा जट्टां गाँव व गाँव में भी शाहों के परिवार की कथा तक सीमित करने के रूप में सांझी संस्कृति का प्रतीकात्मक चित्र प्रस्तुत किया है। इस प्रतीक रूप के विस्तार में लेखिका ने उपन्यास के पहले हिस्से में पंजाबी लोक साहित्य में प्रचलित रूप 'बारहमासा' शैली का प्रयोग किया हैं। उपन्यास की कथा का आरंभ शदर पुण्या की रात से करते हुए कथा में पूरे वर्ष के दौरान आने वाले सभी त्योहारों, ऋतुओं, मेलों का बड़ी चित्रमयता से वर्णन किया गया है, चाहे त्योहार लोहड़ी-बैसाखी-दशहरा-

ईद के हों या 'त्रिंजन' पर जुटी लड़कियाँ-स्त्रियाँ या गाँव में चलने वाली कथाएँ, सर्दी-गर्मी-बरसात ऋतुएँ-गाँव की ज़िन्दगी के प्रवाह रूप में इन सबका चित्रात्मक वर्णन हुआ है, साथ ही गाँव में पड़ने वाले डाकों-डकैतियों, हत्याओं, पुलिस के दबदबे व शाहों द्वारा किसानों के शोषण के चित्र भी साथ ही साथ उभरते गए हैं। इस पूरी ज़िन्दगी को डेरा जट्टां के आख्यान के रूप में भी पहचाना जा सकता है। लेकिन इनके माध्यम से पूरे पंजाब का 'जिन्दा रुख' भी संकेतित हुआ है।

6.3.2 गाँव डेरा जट्टां का आख्यान

'ज़िन्दगीनामा' का शाब्दिक अर्थ है - जीवन कथा, जीवन की कहानी। कृष्णा सोबती ने अपने उपन्यास 'ज़िन्दगीनामा' में किसकी जीवन-कथा कही है, कौन है उसकी कथा के केन्द्र में ? वास्तव में कृष्णा सोबती ने अपने उपन्यास को एक तरह से प्रतीक कथा के रूप में बुना है, उसकी कथा सांझी पंजाबी संस्कृति की कथा है, जो कुछ व्यक्तियों या डेरा जट्टा की कथा मात्र नहीं है। अपनी इस प्रतीक कथा को मूर्त रूप देने के लिए लेखिका ने गुजरात जिले का 'डेरा जट्टां' गाँव चुना है, जो संभवत: लेखिका का अपना जन्म स्थान भी है। अपनी जन्मभूमि के प्रति ऐसा गहरा भावनात्मक लगाव भी बहुत कम लोगों में होता है और इस भावनात्मक लगाव की ऐसी सौन्दर्यमूलक सृजनात्मक अभिव्यक्ति तो और भी विरल है, लेकिन लेखिका ने दोनों को ही संभव कर दिखाया है। ऐसे उत्कट भावों की इतनी सौन्दर्यमय कलात्मक अभिव्यक्ति जैसे एक अत्यंत कठिन साध्य को लेखिका ने आंतरिक-मानसिक अनुशासन द्वारा अत्यंत सधे ढंग से प्रस्तुत किया है।

अपने ही गाँव डेरा जट्टां के जीवन को पंजाबी जन संस्कृति की प्रतीक-कथा का रूप देने में लेखिका ने लगाव और अलगाव (Distance) दोनों का ही सहारा लिया है। भाव-संग्रह में लगाव और औपन्यासिक अभिव्यक्ति में ठहराव और अलगाव, प्रस्तुतीकरण में लेखिका की प्रमुख युक्तियाँ रही हैं।

डेरा जट्टा गाँव अविभाजित पंजाब के ज़िला गुजरात का एक बड़ा और प्रमुख गाँव रहा है, जिसकी आबादी में जाट (किसान) 'फौजी' हिंदू शाह, मुसलमान (किसान व कारीगर), निम्न जातियों के लोग (हिंदू-सिख-मुसलमान) सभी रचे-बसे हैं। यद्यपि इन सबकी आर्थिक-सामाजिक दर्जाबंदी में भेदभाव मौजूद है और संभवत: शाहों का अमीर परिवार ही गाँव का वर्चस्ववादी परिवार है, लेकिन शाहों के गाँव पर वर्चस्व में आर्थिक समृद्धि, गाँव की उन पर आर्थिक निर्भरता, लगभग सारा गाँव उनके कर्ज तले दबा होने आदि की भूमिका तो है ही, लेकिन इस आर्थिक पक्ष की विडंबना को शाहों ने अपने सामाजिक व्यवहार में सद्भावना और सरपरस्ती की भावना से ढक रखा है। यद्यपि इस सद्भावना और सरपरस्ती द्वारा शाहों की शोषण-प्रक्रिया में कोई कमी नहीं आती, लेकिन इससे वे शोषण प्रक्रिया को अधिक सहने योग्य बनाकर विद्रोह की संभावना को ज़रूर कम कर देते हैं। कहीं विद्रोह के दबे बीज नजर आते ही वे थोड़ा-बहुत कर्ज़ माफ कर बीज को ही नष्ट कर देते हैं। सौ रुपये लेकर गाँव में आए शाह इस समय आसपास के अनेक गाँवों की अधिकांश ज़मीन के अकेले मालिक बन चुके हैं। किसानों की जरूरतों ने कर्ज़ की प्रक्रिया द्वारा उन्हें शाहों के यहाँ जमीनें बंधक रखने को मजबूर कर दिया हैं, ये ज़मीनें फिर कभी भी शाहों की बहियों से मुक्त होकर किसानों के हाथ नहीं पहुँचतीं। खेती भले ही किसान ही उन ज़मीनों पर करते रहें, जमीनें उनकी न होकर शाहों की हो जाती हैं। शोषण की इस क्रूर प्रक्रिया को छोटा शाह-काशीशाह अपनी संत प्रवृत्ति से कुछ और सहने योग्य बना देता है, क्योंकि गाहे-बगाहे वह किसानों या शोषितों से सहानुभूति जताता रहता है, जिस सहानुभूति का उपयोग बड़े शाह जी अपनी व्यावहारिक चतुराई से शोषण के प्रति विद्रोह को दबाने में करते हैं। 'ज़िन्दगीनामा' के डेरा जट्टां गांव की कहानी 'गोदान' में व्यक्त उत्तर प्रदेश के सिमरी गाँव से कोई बहुत अलग नहीं है, लेकिन

इस उपन्यास की कथा के केन्द्र में शोषण नहीं है और न ही व्यापक स्तर पर देश का स्वतंत्रता संग्राम ही है। उपन्यास की कथा की केन्द्रीय धुरी गाँव की सांझी सांस्कृतिक ज़िन्दगी की विविध झलकियाँ दिखाने में हैं। लोहड़ी-बैसाखी-ईद-दशहरा आदि त्योहार हों या अलग-अलग आती-जाती ऋतुएँ या जन्म-विवाह आदि अवसरों के संस्कार, पूरा उपन्यास पंजाबी संस्कृति की विभिन्न व विविध झलकियों की सतरंगी पींग का सृजन करता चलता है और गाँव डेरा जट्टां इस सांस्कृतिक रंग-बिरंगेपन की प्रस्तुति का प्रतीक गाँव बन जाता है। पंजाब पलटन 40 और 33 की खूब चर्चा है। हर किसान परिवार से कोई न कोई व्यक्ति फौज में रहा है और अनेक ने शहादत भी प्राप्त की है। इन्हीं फौजियों में देशाभिमान की भावना भी जागृत होती है। पंजाबी जन जीवन के इस विशिष्ट पक्ष को भी लेखिका ने डेरा जट्टां गाँव की प्रतीक कथा में विन्यास किया है। इसी का विस्तार 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास में स्वतंत्रता संग्राम व देश प्रेम के चित्र प्रस्तुत करने में भी देखा जा सकता है।

6.3.3 स्वतंत्रता संग्राम व देश-प्रेम का आख्यान

'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास के समर्पण में व उपन्यास के अंत में गुरु गोविन्द सिंह के संदेश के अंकन द्वारा ही लेखिका ने देश के प्रति व समाज के प्रति अपने गहरे सरोकारों को स्पष्ट कर दिया है। उपन्यास में वर्णित कालखण्ड 1907 से 1914-1915 के दौरान स्वतंत्रता संग्राम व देशप्रेम की अनेक घटनाएँ पंजाब में व देश के दूसरे हिस्सों में घटती रही हैं। लेखिका ने उपन्यास में देश की व पंजाब की इन वीरतापूर्ण देशप्रेम की घटनाओं का उल्लेख बड़ी संवेदना व सहानुभूति से किया है। जिन विशेष घटनाओं की ओर 'ज़िन्दगीनामा' में ध्यान आकर्षित किया गया है, उनमें प्रमुख हैं :

(i) 1905 का बंगभंग व 1911 का बंग ऐक्य

(ii) 1907 में लाला लाजपतराय व अजीत सिंह (शहीद भगत सिंह के चाचा) का देश-निष्कासन

(iii) 1909 में मंदन लाल ढींगरा को इंग्लैण्ड में फाँसी दिए जाने की चर्चा

(iv) 1914 के गदर व ग़दरी इन्क्लाबियों की अनेक बार चर्चा

(v) कनाडा में कामागाटामारू जहाज की चर्चा

(vi) पंजाबी कवि और 'पगड़ी संभाल जट्टां' गीत के रचयिता लाल चंद फलक को अंग्रेज़ अधिकारियों द्वारा प्रताड़ित करने की चर्चा

(vii) फौज की शहीद रेजीमेंट व देसी सिपाहियों द्वारा अंग्रेज सिपाहियों की तरह तरक्की की माँग पर फौजियों की फौज से निष्कासन की चर्चा

(viii) गुजराती वकील गांधी द्वारा दक्षिण अफ्रीका में प्रतिरोध की चर्चा

ऐसे और भी अनेक प्रसंग है, जिनकी 'ज़िन्दगीनामा' में बार-बार चर्चा हुई है। लेखिका ने इन सभी घटनाओं तथा प्रसंगों का वर्णन देश के स्वतंत्रता संग्राम की प्रति गहरे लगाव और स्वयं गहरी देशभक्ति की भावना से किया है। लेखिका का अपनी जन्मभूमि से ही और अपनी पंजाबी संस्कृति से ही जब इतना गहरा लगाव है तो ज़ाहिर है अपने देश और देश के स्वतंत्रता संग्राम, विशेषत क्रांतिकारी आंदोलन के प्रति उनका गहरा लगाव स्वाभाविक ही है। जुल्म के खिलाफ हथियार उठाने के गुरु गोविन्द सिंह द्वारा दिए तार्किक औचित्य से लेखिका की हार्दिक सहमति है। इस अर्थ में लेखिका गहरे रूप से मानवतावादी व जनतांत्रिक विचारों से प्रतिबद्ध है, जो उनके अपने जीवन व्यवहार में भी अक्सर झलकता रहा है। वे सत्ता के हर प्रकार के जनतंत्र विरोधी कदमों का विरोध करती रही हैं। 'ज़िन्दगीनामा' की अन्तर्वस्तु में भी उन्होंने अपनी इन प्रखर जनतांत्रिक भावनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान की है।

6.3.4 पंजाबी चरित्रों के दुस्साहसिक कारनामों का आख्यान

पंजाब के ग्रामीण जीवन में दुस्साहसिक चरित्र भी अक्सर पाए जाते हैं। 'ज़िन्दगीनामा' के डेरा जट्टां गाँव व आसपास के गाँवों के भी ऐसे अनेक चरित्रों के दुस्साहसिक कार्यों के दिलचस्प चित्र खींचे गए हैं। ये कारनामें डकैतियों के रूप में भी हो सकते हैं, इश्क में कुछ कर गुज़रने में भी, कत्ल के रूप में भी किसी गरीब की मदद के रूप में भी। 'ज़िन्दगीनामा' में इन सभी प्रकार के दुस्साहसिक कृत्यों को आख्यान में बाँधा गया है, जैसे :

(i) शाह परिवार के ही ताराशाह द्वारा विधवा बरकती को भगाना व उसके तेली पिता महीपत के परिवार को कत्ल के आरोप में फँसाना।

(ii) तारेशाह द्वारा ही गाँव में शरीक भाइयों के बीच हत्या के षड्यंत्र को उज़ागर कर घायल लड़के को हस्पताल पहुँचाने का प्रयास।

(iii) लौंडे खाँ द्वारा पिता के कत्ल में शामिल व अपनी माँ के प्रेमी चाचा की हत्या। फौजियों द्वारा फौज से छुट्टी लेकर गाँव आकर किसी दुश्मन को कत्ल करने के अनेक किस्से चौपाल कथा या मज्लिस में चर्चा के विषय बने हैं।

फौजियों की बहादुरी के अनेकानेक किस्से गाँव के रिटायर्ड फौजियों की जुबान से लेखिका ने उपन्यास में बयान करवाए हैं। पंजाबी जन संस्कृति के जिन विशेष पक्षों को लेखिका ने 'ज़िन्दगीनामा' में कथा रूप देकर प्रस्तुत किया है, उनमें दुस्साहसिकता भी इस संस्कृति का एक महत्वपूर्ण पक्ष है, इस तथ्य को उन्होंने रेखांकित किया है।

6.3.5 शाहों की ज़िन्दगी का आख्यान

हालाँकि 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास व्यक्ति-चरित्र-केन्द्रित उपन्यास कम ही है, गाँव ही इसका केन्द्रीय चरित्र है, लेकिन उपन्यास में प्रस्तुत ढेरों चरित्रों में से यदि किन्हीं चरित्रों को उपन्यास में कथा रूप में प्रस्तुत किया गया है, तो वह शाह-परिवार ही है। शाह परिवार में भी बड़े शाह व शाहनी तथा राबयाँ व लाली कथा के मुख्य पात्र हैं।

डेरा जट्टां गाँव में शाहों के खानदान का दबदबा है। शाह खानदान में से ही बड्डे लाला व निक्की बेबे की कहानी साथ-साथ चलती है, बल्कि उपन्यास का आरंभ ही शरद पुण्या की रात से बड्डे लाला-निक्की बेबे के घर से होता है। बड्डे लाला के अनेक पुत्र हैं, और बड्डे लाला एक सौ दस वर्ष की उम्र भोगकर मृत्यु को प्राप्त होते हैं। निक्की बेबे की उम्र का जिक्र नहीं है, लेकिन वह भी सौ के आसपास तो रही ही होगी।

उपन्यास की मुख्य कथा शाह परिवार में सगे भाइयों-बड़े शाह-छोटे शाह-काशीशाह के घर पर केन्द्रित है, दोनों भाई संयुक्त परिवार के रूप में रहते हैं। बड़े शाह की एक पत्नी गौरवा गुजर चुकी हैं, जिसकी (अंबडयालवाली) छाया कभी-कभी शाहनी को परेशान करती है, क्योंकि बड़े शाह को अभी संतान-सुख नहीं मिला है, उसके मन में संतान सुख के लिए तीसरी शादी का अरमान भी है, लेकिन शाहनी सौत को झेलना नहीं चाहती व बच्चा गोद लेने का सुझाव देती है। कुछ समय बाद वह स्वयं गर्भवती हो जाती है और बाद में बेटे लाली को जन्म देती है।

छोटे शाह-काशीशाह अब तो साधु प्रवृत्ति के हो गए हैं व पत्नी बिंद्रादई का अंग नहीं छूते, लेकिन वे दो बेटों-गुरदास व केशों के पिता बन चुके हैं। वे व्यापार में भाई का साथ तो देते हैं, लेकिन उन्हें धन का लालच नहीं है व धर्म-सेवा आदि में उनकी लगन है।

दोनों शाहों की दो बहिनों-गुरदेव कौर और चंद कौर के लाली जन्म के जश्नों पर आने का ज़िक्र है, जो अपनी-अपनी ससुराल में प्रसन्न हैं।

शाह खानदान में ही तारेशाह के कुछ हद तक बदमाश होने व गुंडई करने की हरकतों का भी उपन्यास में चित्रण है। शाह परिवार के बड़ों में से चाची मेहरी का किस्सा भी दर्ज है, जिसके पति अब नहीं रहे और जिसके बच्चा भी हुआ। यही चाची मेहरी पहले लड्डिक्को के रूप में एक सिख परिवार में किसी दूसरे गाँव में ब्याही थी। विधवा होने के बाद शाह परिवार के बड़े को भा गई और उसने उससे बाकायदा मुकदमेंबाजी के बाद शादी की। चाची मेहरी बरसों बाद अपने पहले विवाह के छोटे देवर साहिब सिंह से मिलने जाती हैं।

शाह परिवार की कथा में शाहों द्वारा सौ रुपये लेकर इस गाँव में आने व साहूकारी द्वारा कर्ज़ के धंधे से गाँव और इलाके के प्राय: सभी किसानों को अपने शोषण की लपेट में लेने और उनकी अधिकांश ज़मीनों के मालिक बनने की प्रक्रिया भी बयान की गई है। इसके साथ ही अलिए की छोटी बेटी राबयां के बड़े शाह के इश्क में गिरफ्तार होने की संवेदनशील स्थिति भी उपन्यास में संकेत रूप में आई है।

शाह परिवार की कथा उपन्यास में डेरा जट्टां गाँव की कथा के प्रमुख अंग के रूप में ही विकसित हुई है। एक स्तर पर शाह परिवार को केन्द्र में रखकर पूरे गाँव की विस्तृत कथा का ताना-बाना उपन्यास में बुना गया है।

कुल मिलाकर 'ज़िन्दगीनामा' की अन्तर्वस्तु में अविभाजित पंजाब की सांझी लोक संस्कृति की विविधतापूर्ण रंग-बिरंगी झलकियाँ डेरा जट्टां गाँव की प्रतीक कथा व शाहों के परिवार की कथा के आयोजन से व्यक्त हुई है। उपन्यास में इस तरह की गहरी लोक भावना को जिस तरह अन्तर्वस्तु में समेटा गया है, वह अन्तर्वस्तु को भी सफल सुगठित रूप प्रदान करती है।

6.4 ज़िन्दगीनामा : कथाशिल्प

'ज़िन्दगीनामा' जैसे सांस्कृतिक उपन्यास की रचना किसी भी लेखक के लिए सृजन के स्तर पर चुनौतीपूर्ण लक्ष्य है। 'ज़िन्दगीनामा' जैसे विशाल कथा-पट वाले उपन्यास को पाठकीय रुचि के अनुकूल बनाने के लिए एक विशेष प्रकार के कथा-शिल्प की योजना लेखिका के सामने एक बड़ी चुनौती के रूप में रही है। भले ही उपन्यास की कथा में विवरण का अंश काफी अधिक है, किंतु शैली या शिल्प के स्तर पर केवल विवरणात्मक (Narrative) शैली अपनाना उपन्यासकार के लिए सुगम न था। यद्यपि उपन्यास में वर्णित कालखण्ड बहुत विशाल नहीं है, एक दशक से भी कम समय को उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है, किंतु इस एक दशक की पृष्ठभूमि सैकड़ों-हज़ारों-बरसों में व्याप्त है। इसमें ऐतिहासिक प्रसंग इतने अधिक हैं कि एक दशक का कालखण्ड सदियों की कहानी बन जाता है, इसलिए शिल्प के स्तर पर 'ज़िन्दगीनामा' में वर्णित ऐतिहासिक संदर्भ भी एक बड़ी चुनौती थे। अत: लेखिका ने उपन्यास का शिल्प बड़ी सजगता और कौशल से निर्मित किया है। इसके लिए लेखिका ने निम्नलिखित युक्तियों का सहारा लिया है:

(i) कथा को विवरण-क्रम के रूप में नहीं, दृश्यावली के क्रम में प्रस्तुत करना।

(ii) उपन्यास में कथा-वर्णन के लिए चौपाल-चर्चा या मजलिस को प्रमुख कथा-युक्ति के रूप में प्रयुक्त करना।

(iii) लोकशैली में इतिहास-विवरण अर्थात् मजलिस या चौपाल चर्चा में विभिन्न ऐतिहासिक फरमानों को लोक वार्तालाप शैली में विवरण देने की विधि प्रयुक्त करना

(iv) उपन्यास में लोकसंस्कृति के विशेष रंग को उघाड़ने के लिए लोकभाषा अर्थात् पंजाबी भाषा का शिल्प के स्तर पर अत्यधिक प्रयोग।

(v) कथा-विवरण या परिवेश चित्रण में चित्रात्मक शैली का प्रयोग।

6.4.1 विवरण-क्रम की अपेक्षा दृश्यावली-क्रम में प्रस्तुतीकरण

उपन्यास का आरंभ लेखिका ने गाँव में शरद पुण्या की रात की चित्रात्मक प्रस्तुति से किया है। पूरा एक दृश्य शरद पुण्या की रात के वर्णन में सजीव हो उठा है। बड्डे लाला पूरे गाँव के स्त्री-पुरुषों को इकट्ठा कर लम्बी कथा सुनाते हैं। इस कथा में श्रोता के रूप में गाँव के अधिकांश बच्चे और औरतें हैं। बड्डे लाला चांद, सूरज, सृष्टि आदि के जन्म की लम्बी कथा सुनाते हैं। बच्चों के प्रश्न-प्रतिप्रश्न के उत्तर से माहौल अत्यंत रोचक बन जाता है, जो अनूठा दृश्य प्रस्तुत करता है। इस एक दृश्य के बाद पूरा उपन्यास दृश्यों के एक क्रम के रूप में सँजोया गया है। उपन्यास में खण्ड या अध्यायों आदि का विभाजन नहीं है। करीब साढ़े तीन सौ पृष्ठ के बृहदाकार उपन्यास में दृश्यों की लड़ी प्रस्तुत हुई है। पूरी कथा करीब बासठ दृश्यों में प्रस्तुत की गई है। इन दृश्यों में गाँव में भोर होने से रात होने तक के दृश्य, मंदिर, गुरुद्वारे, मस्जिद के दृश्य, 'त्रिंजना', 'लोहड़ी', ईद, दशहरे, दीवाली आदि त्यौहारों के दृश्य, गाँव में डाके-डकैती, कत्ल-लड़ाइयों, फौज में भर्ती, थानेदार के दौरे आदि के दृश्य, जन्म और जन्म-संस्कार के जश्नों, विवाह और मृत्यु के संस्कारों के दृश्य, जीवन के हर साधारण से विशिष्ट पहलुओं के दृश्य उपन्यास में बडी चित्रमयता से प्रस्तुत किए गए हैं। देशभक्ति, देशभक्तों के किस्सों, फौजियों की बहादुरी के किस्सों, किसानों की खेती और उनके शोषण के किस्से पूरे उपन्यास में कुशलतापूर्वक विन्यस्त हैं। उपन्यास का फलक इतना विशाल है कि जीवन-व्यवहार के इन सभी पहलुओं को बड़ी सशक्त, मगर सहज भाषा-शैली में लेखिका ने आँखों के सामने घटने वाली या सिनेमा के पर्दे या मंच पर घट रही घटनाओं के सजीव दृश्यों के रूप में प्रस्तुत किया है। इस प्रकार इस उपन्यास में विवरण की अपेक्षा दृश्य और दृश्यावलियों की योजना कथा-प्रस्तुति की युक्ति के रूप में प्रयुक्त हुई है।

6.4.2 चौपाल-चर्चा या मजलिस

'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास में चौपाल-चर्चा का विशेष महत्व है। इसके माध्यम से जहाँ एक कथा के भीतर अनेक कथाएँ समेटी गई हैं वहीं बहुत सारी ऐतिहासिक व लोककथाएँ साथ-साथ भी बयान की गई हैं। इन कथाओं की प्रस्तुति के लिए पंजाब के गाँवों या प्रायः उत्तर भारत के गाँवों की यथार्थ जीवन शैली अर्थात् चौपाल या बैठक या पंजाब में 'खुंड' या 'सथ' चर्चा को कथा-शिल्प का विशिष्ट रूप दिया गया है। डेरा जट्टां गाँव में यह मजलिस शाहों की बैठक या बाहर खुले चबूतरे पर जुटती है। वहाँ गाँव के ज्यादा बातूनी लोग अपनी आदान-प्रदान की मानसिक भूख को शांत करने के लिए इकट्ठे होते हैं। इस चौपाल चर्चा में दुनिया-जहान की बातें, ज्ञान-चर्चा, कई बार फिजूल की बातें, कई अफवाहें, तमाम तरह की सूचनाओं का आदान-प्रदान होता है। शाह जी की बैठक में उपस्थित मौलादाद, कर्मइलाही, दीन मुहम्मद, चौधरी फतेह अली, कृपा राम, बख्तावर, हाजी जी, गुरुदत्त सिंह, नत्था सिंह, मौलवी इल्मदीन जब शुरू हो जाते हैं तो दीन-दुनिया, आकाश-पाताल इकट्ठा हो जाता है। यहाँ काबुल-कांधार से लेकर पेशावर स्यालकोट के साथ ही पूरा पंजाब अपनी जातीय विशेषताओं के साथ चर्चा में आ धमकता है। इस चौपाल के कुछ लोग केवल श्रोता होते हैं, कई लोग ज्ञानी का दर्जा रखते हैं व वक्ता होते हैं, कुछ लोग सूचनाओं का वास्तविक आदान-प्रदान करते हैं, कुछ लोग लतीफेबाजी करते हैं, कई झूठी अफवाहें भी फैलाते हैं।

'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास में प्रस्तुत चौपाल चर्चाओं में या मजलिसों में सूचना के ये सभी प्राचीन रूप चित्रित हुए हैं और इस चौपाल-चर्चा द्वारा उपन्यास की मुख्य कथा को भी आगे बढ़ाया गया है व कुछ गौण कथाएँ भी मुख्य कथा के साथ-साथ जोड़ी गई हैं। कथा वर्णन की इस प्राचीनतम लोक-शैली का लेखिका ने 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास में अत्यंत सृजनात्मक प्रयोग कर उपन्यास को रोचक व दिलचस्प बनाने में सफलता हासिल की है।

6.4.3 लोक-शैली में इतिहास विवरण

'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास यद्यपि ऐतिहासिक उपन्यास नहीं है, लेकिन उपन्यास लेखिका ने पंजाब की प्राचीन संस्कृति के अनेक ऐतिहास्कि प्रसंगों को, पंजाब के जन-जीवन की अनेक ऐतिहासिक उथल-पुथलों को उपन्यास की कथा में लोकशैली के इतिहास-विवरण द्वारा पिरो दिया है। लोकशैली में वर्णित समकालीन और प्राचीन पंजाब का इतिहास 'ज़िन्दगीनामा' की मुख्य कथा का हिस्सा नहीं है, लेकिन कथा की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि होने से ये ऐतिहासिक संदर्भ उपन्यास की आदर्श पृष्ठभूति का रूप ग्रहण कर लेते हैं। उपन्यास में महाराजा रणजीत सिंह का सन्दर्भ है, सोबती जाति की यूनानी पृष्ठभूति का जिक्र है, देश के क्रांतिकारी आंदोलन, 1857 और 1914 के गदर, गुरु गोविन्द सिंह और उनके संदेश, सिकन्दर महान के हमलों, पोरस की वीरता, गज़नी के हमलों आदि अनेक ऐतिहासिक प्रसंगों को चौपाल में बैठे गाँव के सयानों के मुँह से वर्णित करवाया गया है, इस वर्णन में यदि कहीं अतिशयोक्ति है तो लेखिका ने किसी दूसरे चरित्र द्वारा उसे संतुलित करवा दिया है और इस इतिहास को लगभग वास्तविक और सही रूप में ही प्रस्तुत किया है, न कि मनमाने ढंग से।

6.4.4 लोक-भाषा अर्थात् पंजाबी भाषा का प्रयोग

'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास की रचना कृष्णा सोबती ने हिन्दी भाषा में ही की है, लेकिन पंजाबी भाषा का लेखिका ने सजग रूप से शिल्प के स्तर पर अत्यधिक प्रयोग किया है। ऐसा करना परिवेशगत आंचलिक चेतना की प्रामाणिक अभिव्यक्ति के लिए लेखिका ने आवश्यक माना है। कथा-रचना में पजाबी भाषा के अधिक प्रयोग के कारण पंजाबियत जहाँ पूरी तरह मूर्त हुई है, वहीं पंजाबी भाषा-भाषियों के लिए यह उपन्यास अत्यधिक आकर्षक बन गया है। लेकिन गैर पंजाबी पाठकों के लिए काफी असम्प्रेषणीय भी बन गया है। पंजाबी से थोड़ा-बहुत परिचित पाठक भी जब इस उपन्यास को हिन्दी उपन्यास के रूप में पढ़ता है तो उसे भी परेशानी होती है। बावजूद इसके उपन्यास में पंजाबी भाषा को जिस तरह से रचा-बसा कर सहज रूप से लेखिका ने प्रयुक्त किया है, उससे उसके कथाशिल्प को शक्ति ही मिली है।

6.4.5 चित्रात्मक शैली

कृष्णा सोबती ने 'ज़िन्दगीनामा' में लोकजीवन के अनवरत प्रवाह को प्रस्तुत करने के लिए उपन्यास में चित्रात्मक शैली का शिल्प विकसित किया है। उपन्यास का पूरा कथा-प्रवाह, सजीव रूप से प्रस्तुत चित्रों के रूप में अभिव्यक्ति पाता है, चाहे मेलों-त्योहारों, जन्म-विवाह-मृत्यु के संस्कारों या जीवन व्यवहार के अन्य रूपों का वर्णन हो, सभी के विवरण में लेखिका द्वारा प्रयुक्त चित्रात्मक शैली ने उपन्यास के कथाशिल्प को और भी सौन्दर्यमूलक बनाने में सफलता प्राप्त की है।

कुल मिलाकर 'ज़िन्दगीनामा' जैसे उपन्यास की जटिल अन्तर्वस्तु की प्रस्तुति के लिए लेखिका ने बड़े ही सजग, सफल व सौन्दर्यमूलक कथाशिल्प का प्रयोग किया है, वह अपने-आप में एक उपलब्धि है। अन्तर्वस्तु की अनुरूपता में कथा-शिल्प के समुचित प्रयोग का यह एक सुन्दर उदाहरण माना जा सकता है।

6.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई का मुख्य विषय 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास की अन्तर्वस्तु और कथा-शिल्प की विशेषताओं का उद्‌घाटन रहा है।

इस इकाई में सर्वप्रथम किसी रचना की अन्तर्वस्तु और उसमें गृहीत विषय अर्थात् 'थीम' और 'सब्जेक्ट' के बीच समुचित अन्तर दिखाने का प्रयास किया गया है। इसी क्रम में अन्तर्वन्तु के

स्वरूप को भी हमने स्पष्ट करने का प्रयास किया है। अन्तर्वस्तु की अनुरूपता को ध्यान में रखकर 'ज़िन्दगीनामा' के कथा-शिल्प पर विचार. इस इकाई का पहला महत्वपूर्ण मुद्दा है, जिसे आपके सामने विस्तार से उपस्थित किया गया है।

प्रस्तुत इकाई का दूसरा महत्वपूर्ण बिन्दु 'ज़िन्दगीनामा' की अन्तर्वस्तु का विस्तृत परिचय और समुचित विवेचन-विश्लेषण रहा है। इसे पढ़ने के बाद आप 'ज़िन्दगीनामा' की अन्तर्वस्तु से समुचित रूप से परिचित होकर उसकी व्याख्या कर सकेंगे।

इस इकाई में हमने 'ज़िन्दगीनामा' के कथा-शिल्प की विभिन्न विशेषताओं का उद्घाटन करने का प्रयास किया है। इसके लिए लेखिका कृष्णा सोबती द्वारा अपनायी गयी कुछ कथा-युक्तियों की सार्थकता और कलात्मकता पर अपेक्षित प्रकाश डाला गया है। कथा-युक्ति या कथा-शिल्प का अन्तर्वस्तु की अनुरूपता में होना अत्यन्त आवश्यक है। इस दृष्टि से 'ज़िन्दगीनामा' का कथा-शिल्प उसकी अन्तर्वस्तु के पूर्णतया अनुकूल है। इकाई के अध्ययन के बाद आप इन सभी तथ्यों से परिचित होकर उपन्यास के अन्य पक्षों चरित्रांकन और जीवन-दृष्टि के अध्ययन की ओर सुगमता से अग्रसर हो सकेंगें।

6.6 अभ्यास प्रश्न

1. रचना में गृहीत विषय-तत्व (सब्जेक्ट मैटर) और अन्तर्वस्तु (थीम) के अन्तर को स्पष्ट कीजिए।

2. किसी उपन्यास के सन्दर्भ में अन्तर्वस्तु और कथाशिल्प का क्या अन्त:संबंध है ?

3. 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास की अन्तर्वस्तु और कथाशिल्प का क्या अंत:संबंध है ?

4. 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास की अन्तर्वस्तु के विशेष घटकों पर संक्षेप में विचार कीजिए।

5. 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास के कथाशिल्प में किन कथा-युक्तियों का सहारा लिया गया है?

6. 'ज़िन्दगीनामा' शिल्प के स्तर पर कहाँ तक सफल रचना है?

इकाई 7 'ज़िन्दगीनामा' : प्रमुख पात्र एवं चरित्र चित्रण

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 चरित्र-सृष्टि और जीवन-दृष्टि का महत्व

7.3 'ज़िन्दगीनामा' : में चरित्र-सृष्टि

7.4 'ज़िन्दगीनामा' : जीवन-दृष्टि

7.5 सारांश

7.6 अभ्यास प्रश्न

7.0 उद्देश्य

'हिन्दी उपन्यास - 2' के खण्ड दो के पाठयक्रम के अन्तर्गत यह सातवीं इकाई है। इससे पहले दो इकाइयों में आप ज़िन्दगीनामा उपन्यास की लेखिका कृष्णा सोबती के रचनात्मक व्यक्तित्व से परिचित होकर 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास की कथावस्तु से गुजर चुके हैं। अब इस इकाई में आप 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास के कुछ और जरूरी पहलुओं के अध्ययन की ओर प्रवृत्त होंगे।

किसी भी उपन्यास में, विशेषत: आज के उपन्यासों में कथावस्तु से भी अधिक लेखक और पाठक का ध्यान उपन्यास के चरित्रों पर केन्द्रित होता है, अत: उपन्यास में अपने चरित्रों की सृष्टि में लेखक भी खूब ही रमा होता है और पाठक भी औपन्यासिक चरित्रों की रूपरेखाएँ पहचानने की ओर अधिक रुचि रखता है।

उपन्यास में चरित्र-सृष्टि और कथा का संयोजन करते हुए जाने-अनजाने रूप से लेखक अपनी भीतरी जीवन-दृष्टि से संचालित होता है। यह जीवन-दृष्टि जीवनानुभवों से अनायास भी प्राप्त होती है और अध्ययन व अनुभवों के संयोग से सायास भी अर्जित की जाती है। जैसे भी हो, जीवन-दृष्टि उपन्यास को एक निश्चित दशा और दिशा अवश्य प्रदान करती है।

इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास में लेखिका द्वारा चित्रित प्रमुख व गौण पात्रों की पहचान कर सकेंगे;
- 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास के पात्रों के चरित्रिक गुण-दोषों की पहचान कर सकेंगे;
- 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास की लेखिका की जीवन-दृष्टि को रेखांकित कर सकेंगे;
- 'ज़िन्दगीनामा' में व्यक्त लेखकीय जीवन-दृष्टि का उपन्यास की संरचना पर पड़े प्रभावों का आकलन कर सकेंगे; और
- उपन्यास की संरचना की क्षमता-अक्षमता में जीवन-दृष्टि की भूमिका कर सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास की अन्तर्वस्तु और कथाशिल्प पर इकाई छह में विचार किया गया था। उपन्यास को उसके सभी पहलुओं से समझ कर ही उसकी गहराई की थाह पाई जा सकती है, इसलिए इस इकाई में आप उपन्यास-संरचना के दो और महत्वपूर्ण पहलुओं को ध्यान में

रखकर 'ज़िन्दगीनामा' में चरित्र-सृष्टि के साथ ही लेखिका की जीवन दृष्टि का भी परिचय प्राप्त करेंगे।

'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास के संदर्भ में चरित्र-सृष्टि का अध्ययन काफी दिलचस्प है, क्योंकि इस उपन्यास में पारंपरिक रूप में नायक-नायिका या अन्य पात्रों का सृजन हुआ ही नहीं है, वरन् सबसे पहले तो इस उपन्यास के प्रमुख पात्रों की पहचान ही अध्ययन का लक्ष्य बन जाता है । 'ज़िन्दगीनामा' एक महाकाव्यात्मक उपन्यास है और उपन्यास में चरित्रों की संख्या दो-चार-दस न होकर काफी अधिक है। दूसरे, उपन्यास के अधिकांश चरित्र व्यक्ति-वाचक कम और समूहवाचक या टाईप चरित्र अधिक हैं। उपन्यास के केन्द्रस्थल गाँव डेरा जट्टां है, जो अपने आप में ही एक केन्द्रीय चरित्र प्रतीत होने लगता है, फिर भी कुछ चरित्रों की सृष्टि पर लेखिका का ध्यान अधिक केन्द्रित हुआ है, जैसे शाह परिवार। शाह परिवार में भी बड़े शाह व उनकी पत्नी; बाद में उनका बेटा लाली व गाँव की लड़की राबयाँ आदि की अलग पहचान उभरती है। इस इकाई में उपन्यास के प्रमुख पात्रों को रेखांकित कर उनका अध्ययन किया जाएगा।

'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास को हिन्दी पाठक जगत में काफी लोकप्रियता प्राप्त हुई है, बावजूद इस बात के कि इसकी भाषा की पंजाबी रंगत ने कई पाठकों के लिए रसास्वादन में कुछ बाधा प्रस्तुत की है। सिर्फ 'ज़िन्दगीनामा' ही नहीं; वरन् कृष्णा सोबती के प्राय: सभी उपन्यासों को पाठकों में स्वीकृति प्राप्त हुई है और इस स्वीकृति के पीछे लेखिका की मानवीय जीवन-दृष्टि भी एक महत्वपूर्ण कारण है। अपनी प्राय: सभी रचनाओं में लेखिका ने जहाँ एक ओर अपने स्त्री चरित्रों को अतिरिक्त संवेदना से चित्रित किया है, वहाँ हर प्रकार के सामाजिक-सांस्कृतिक दमन का भी सशक्त प्रतिरोध किया है। इससे लेखिका की जीवन-दृष्टि एक प्रखर मानवतावादी प्रतिरोध करने वाली जीवन-दृष्टि का स्वरूप ग्रहण कर गई है। 'ज़िन्दगीनामा' के सन्दर्भ में इस प्रखर दृष्टि का और भी अधिक महत्व है, क्योंकि इस उपन्यास में राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम की क्रांतिकारी गूँज भी सुनाई देती है।

इस तथ्य को ध्यान में रखकर इस इकाई में लेखिका की चरित्र-सृष्टि की विधियों व लेखिका की जीवन-दृष्टि का उपन्यास के संदर्भ में विवेचन किया जाएगा।

7.2 चरित्र-सृष्टि और जीवन-दृष्टि का महत्व

औपन्यासिक संरचना के पारंपरिक विश्लेषण में कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, संवाद, भाषा शैली, देशकाल, वातावरण और उद्देश्य की व्याख्या की जाती रही है। ई. एम. फार्स्टर ने 'उपन्यास के पक्ष' के अन्तर्गत अन्तर्वस्तु, चरित्रांकन व परिवेश को उपन्यास के मूल पक्ष माने हैं। जार्ज लूकाच व राल्फ फॉक्स आदि उपन्यासचिंतकों ने उपन्यासवाद की विश्व-सृष्टि या जीवन-दृष्टि को भी उपन्यास-रचना के संदर्भ में अत्यंत महत्व दिया है। इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए आधुनिक काल में उपन्यास का विश्लेषण करते हुए मुख्यत: उपन्यास की कथावस्तु या अन्तर्वस्तु, चरित्रांकन, परिवेश-चित्रण व जीवन-दृष्टि पर चर्चा अवश्य की जाती है। कई बार यह चर्चा समेकित रूप से उपन्यास की समीक्षा में अन्तर्निहित रहती है और कई बार उपन्यास के शिल्प की विस्तृत व्याख्या करते हुए अलग-अलग पक्षों पर विस्तार से विचार किया जाता है।

चरित्र व चरित्रांकन उपन्यास का अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष है। यद्यपि कथा उपन्यास की आधारभूमि है, किंतु उपन्यास रचना के पहले कथाप्रधान दौर के बाद चरित्र प्रधान उपन्यास ही चर्चा के अधिक केन्द्र में रहे हैं। कई बार तो चरित्र को केन्द्र में रख कर ही उपन्यास रचा जाता है और चरित्र ही अपनी कथा को उपन्यास की कथा में ढालता है। बहुत से पाठक भी उपन्यास के चरित्रों से प्रभावित होकर उपन्यास पढ़ने की ओर प्रवृत्त होते हैं, यहाँ तक कि कई उपन्यासों के शीर्षक भी चरित्रों को 'फोकस' में रखते हैं जैसे कृष्णा सोबती के ही अन्य उपन्यास का शीर्षक है - 'मित्रो मरजानी', जो उपन्यास का मुख्य चरित्र है। अज्ञेय का

'शेखर : एक जीवनी' जैनेन्द्र कुमार के 'सुनीता', 'कल्याणी' आदि उपन्यास के चरित्र आधारित शीर्षकों के अन्य अनेक उदाहरण हैं। विश्व उपन्यास में टॉलस्टॉय का 'अन्ना केरेनिना' आदि भी चरित्र केन्द्रित उपन्यासों के प्रमाण हैं, जो उपन्यास में चरित्र और चरित्रांकन के अत्यधिक महत्व की ओर इंगित करते हैं। अत: उपन्यास के अध्ययन के लिए उपन्यास में प्रस्तुत चरित्रों का चरित्रांकन करना अध्ययन का प्रमुख हिस्सा है।

इसी प्रकार उपन्यास की तथा उपन्यासकार की विश्व-दृष्टि या जीवन-दृष्टि को उपन्यास के माध्यम से समझना और उसे विश्लेषित करना भी उपन्यास के वस्तु विश्लेषण का जरूरी अंग है। उपन्यास यथार्थ आधारित साहित्यिक विधा है, जिसकी सफलता/असफलता उसके यथार्थ चित्रण पर निर्भर करती है। जीवन यथार्थ इतना जटिल और संश्लिष्ट है कि उपन्यासों की जीवन-दृष्टि उस यथार्थ को समझने, ग्रहण करने व विधा के रूप में ढालने में उपन्यासकार की बहुत मदद करती है। जिस जीवन-दृष्टि में ही जटिलाओं को जानने या पकड़ने की क्षमता न हो, वह क्या तो जीवन को समझेगी और क्या उसे उपन्यास रूप में ढालेगी? लेकिन जीवनदृष्टि किताबों से पढ़-पढ़कर ही ग्रहण नहीं की जाती, उसके लिए जीवन का पर्यवेक्षण, उस पर चिंतन-मनन व साथ ही अध्ययन की मदद से जीवन के अन्तर्विरोधों को समझने की ज्ञान-दृष्टि भी यदि शामिल हो जाए, तब जाकर ऐसी गहरी विश्व-दृष्टि लेखक को हासिल होती है, जिससे वह जीवन के बहुविध, बहुस्तरीय जटिल, संश्लिष्ट व अन्तर्विरोधों से ग्रस्त यथार्थ को अपनी कला से उपन्यास रूप में ढालकर प्रस्तुत करता है। उपन्यास आधुनिक काल की ऐसी केन्द्रीय विधा है, जो जीवन के यथार्थ को अधिकाधिक संपूर्ण रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास करती है। इसने प्राचीन काल की महाकाव्य विधा का स्थान लिया है और जिसमें महाकाव्य के बहुत से गुण शामिल हैं, इसलिए ऐसी विधा में कलात्मक सृजन वही लेखक अधिक सफलता से कर पाता है, जिसने अपनी जीवनदृष्टि को दूरदर्शी व गहन बनाने में महारत हासिल कर ली हो। ज़ाहिर है कि उपन्यास की अपनी जीवन-दृष्टि भी उपन्यासकार की ही जीवन-दृष्टि होती है। लेकिन कई बार लेखक के जीवनानुभव इतने समृद्ध होते हैं और उसकी जीवन-दृष्टि संकीर्ण होती है, ऐसी स्थिति में कई बार रचना की दृष्टि लेखक की दृष्टि से भी आगे जाकर देख पाने में सफल सिद्ध होती है। कई बार विपरीत स्थिति भी उतनी ही सच है। किसी लेखक की जीवन-दृष्टि बहुत दूरदर्शी व तर्कसंगत होती है, किंतु उसके जीवनानुभव इतने दरिद्र होते हैं कि रचना में दृष्टि ही नज़र आती है, जीवन का समृद्ध संसार उससे गायब नज़र आता है। ज़ाहिर है समृद्ध जीवनानुभव वाली रचना ही पाठक को अधिक प्रभावित करेगी और समृद्ध जीवनानुभव संपन्न लेखक की जीवन-दृष्टि भी यदि बहुत दूर तक देख सकने वाली है तो प्रेमचंद, फणीश्वरनाथ रेणु और कृष्णा सोबती जैसे लेखक व 'गोदान', मैला आँचल' व 'ज़िन्दगीनामा' जैसी रचनाएँ पाठकों को उपलब्ध हो सकेंगी।

किसी साहित्यिक रचना में सर्वाधिक महत्व रचनाकार की जीवन-दृष्टि का होता है। यह दृष्टि ही अपने अनुरूप पात्रों या चरित्रों का चयन अथवा सृजन करती है। ये पात्र ही रचनाकार के आग्रह-अनुरोधों, रुख-रुझानों के वाहक होते हैं। इनके माध्यम से ही रचनाकार का आन्तरिक व्यक्तित्व किसी रचना में प्रतिबिम्बित होता है। लेकिन चरित्र केवल माध्यम होते हैं, रचना की मूलाधार रचनाकार की जीवन-सृष्टि हो जाती है। किसी रचना की महानता में सर्वाधिक योगदान रचनाकार की जीवन-दृष्टि का ही है। यह जीवन-दृष्टि ही किसी चरित्र या पात्र को महान और अमर बनाते हुए अन्तत: रचनाकार की महानता और अमरता का जयघोष करती है। 'गोदान' के होरी और 'रंगभूमि' के सूरदास की महानता और अमरता का मूलाधार प्रेमचंद की स्वस्थ, व्यापक, संश्लिष्ट और तलस्पर्शी जीवन-दृष्टि ही है। अत: 'ज़िन्दगीनामा' की चरित्र-सृष्टि और जीवन-दृष्टि के महत्व पर विचार करते हुए हमें उपर्युक्त वास्तविकता को ध्यान में रखना चाहिए। इस संदर्भ में यह भी देखने की जरूरत है कि क्या कृष्णा सोबती 'ज़िन्दगीनामा' में अपनी जीवन-दृष्टि के माध्यम से प्रेमचंद की तरह होरी या सूरदास, फणीश्वरनाथ रेणु की तरह बामनदास अथवा श्रीलाल शुक्ल की तरह लंगड़ जैसी चरित्र-सृष्टि

कर सकी हैं। क्या शाह-शाहनी होरी, सूरदास, बामनदास, लंगड़ की भाँति हमारे परिवेश के सामाजिक-सांस्कृतिक अन्तर्विरोधों को उद्घाटित कर सकें हैं? 'ज़िन्दगीनामा' के संदर्भ में हम यही कह सकते हैं कि कृष्णा सोबती ने अपनी जीवन-दृष्टि सीमा में अपने लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए कुशलतापूर्वक चरित्र-सृष्टि कर सकी है, जो पूरी तरह जीवन-दृष्टि की अनुकूलता में हैं।

इस प्रकार उपन्यास अध्ययन के क्रम में चरित्रांकन व जीवन-दृष्टि के विश्लेषण का महत्व निर्विवाद है।

7.3 'ज़िन्दगीनामा' में चरित्र-सृष्टि

जैसा पहले कहा गया है कि 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास में पहली समस्या तो चरित्रों के पहचान की है। उपन्यास में चरित्रों की भरमार है, किंतु सभी चरित्रों का विश्लेषण संभव नहीं है, फिर मुख्य चरित्रों की पहचान का सवाल यहाँ प्रमुखता से सामने आता है।

वास्तव में 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास में व्यक्तिगत चरित्रों का महत्व कम है और एक स्तर पर पूरा गाँव ही समेकित चरित्र प्रतीत होता है, ऐसा लगता है कि उपन्यास में चित्रित डेरा जट्टां गाँव जैसे 'ज़िन्दगीनामा' का एकमात्र चरित्र है, जिसके विभिन्न रूप उपन्यास के विभिन्न चरित्रों में नज़र आते हैं। यह भी कहा जा सकता है कि डेरा जट्टां गाँव रूपी 'ज़िन्दगीनामा' का केन्द्रीय चरित्र विभाजनपूर्व सांझी पंजाबी संस्कृति का प्रतीक चरित्र है। लेखिका का लक्ष्य उपन्यास में सांझी पंजाबी संस्कृति का अत्यंत जीवंत व सुंदर रूप प्रस्तुत करना रहा है, जिसे उन्होंने डेरा जट्टां गाँव के जीवंत चित्रण के रूप में किया है। जिस रूप में उन्होंने डेरा जट्टां गाँव को उपन्यास में प्रस्तुत किया है, वही प्रतीकात्मक स्तर पर उपन्यास का एक विराट चरित्र भी बन जाता है। कृष्ण के विराटरूप की तरह, डेरा जट्टां के विराट रूप में भी पंजाब की सांझी संस्कृति के रंग-बिरंगे चरित्र अपनी नृत्य-नाटिका करते नज़र आते हैं, जिनमें नायक-खलनायक अच्छे-बुरे के भेद भी मिट जाते हैं, वे एक संस्कृति के सजीव अंग बनकर प्रस्तुत होते हैं।

लेकिन डेरा जट्टां गांव के समेकित रूप में यदि सभी चरित्रों को मिलाकर पंजाबी संस्कृति की झलक निर्मित हुई है तो उसके अलग-अलग चरित्र भी अपनी कुछ न कुछ विशेषताएँ लिए हुए हैं। यह बात ज़रूर है कि अलग-अलग चरित्र भी व्यक्तिगत चरित्र कम हैं, समूह रूप के प्रतिनिधि या टाईप चरित्र अधिक हैं। डेरा जट्टां गाँव के या आसपास के जो भी चरित्र उपन्यास के रंगमंच पर आते हैं, वे किसान हों या साहूकार-व्यापारी, सैनिक हों या पुलिस के अधिकारी, आशिक हों या डकैत, सभी अपने-अपने वर्ग की सामूहिक विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस गाँव के माध्यम से उपन्यास में शाह (साहूकार-व्यापारी), किसान (जाट-जमींदार), सैनिक, पुलिस कर्मचारी, डकैत, आशिक व दलित आदि तमाम तरह के चरित्र प्रस्तुत हुए हैं। लेकिन उपन्यास के सन्दर्भ में विशेषता और प्रमुखता - दोनों ही दृष्टियों से निम्नलिखित पात्र ही अधिक ध्यान आकृष्ट करते हैं:

(i) बड़े शाह (ii) शाहनी (iii) छोटे शाह-काशी शाह (iv) छोटी शाहनी-बिंद्रादयी (v) चाची मेहरी (vi) लाली-शाह परिवार का बालक (vii) राबया-गाँव की युवा लड़की।

आपके सम्मुख इन्हीं चरित्रों पर कुछ विस्तार से चर्चा की जाएगी। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे चरित्र हैं, जो उस काल (1907-14) के सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जैसे ब्रिटिश औपनिवेशिक सत्ता के आतंक के प्रतीक थानेदार, जो किसी गाँव में डकैती या कत्ल आदि की घटना घटने पर आते हैं तो पूरे गाँव को अपने आंतक से त्रस्त करते हैं। लेकिन गाँव में ऐसे चरित्र भी हैं जो हर तरह की यातना झेलकर भी थानेदार के आतंक की धज्जियाँ उड़ा देते हैं। ऐसे चरित्र पंजाबी संस्कृति के विशिष्ट विद्रोही स्वरूप की झलक भी देते हैं, जो उपन्यास में प्रासांगिक रूप में गुरु गोविंद सिंह, लाला लाजपत राय, अजीत

सिंह (शहीद भगत सिंह के जलावतन चाचा) कवि लालचंद फलक (पगड़ी संभाल जट्टा) गदरी क्रांतिकारियों की बहादुरी और देशभक्ति के संकेत देते हैं। आशिक और डकैत भी अपनी विशिष्ट पहचान दिखाते हैं। लेकिन उपन्यास की केन्द्रीय कथा शाह परिवार के चरित्रों के इर्द-गिर्द ही घूमती रहती है, जिन पर कुछ चर्चा यहाँ की जा रही है।

शाह जी

शाही जी उम्र में भले ही बहुत युवा न हों, लेकिन उपन्यास के नायक वही कहे जा सकते हैं। उनकी उम्र का तो कुछ अनुमान उपन्यास की कथा से नहीं लगता, लेकिन उनकी पहली पत्नी गौरवा का देहांत हो चुका है और दूसरी पत्नी व मौजूदा शाहनी भी परिपक्व स्त्री प्रतीत होती हैं। शाह के छोटे भाई काशीनाथ के दो बेटे हो चुके हैं, अत: शाह जी घर के सबसे बड़े और परिपक्व व्यक्ति हैं। वे ही घर के मुखिया भी हैं। अभी संयुक्त परिवार की परंपरा का ही घर में पालन हो रहा है।

शाह जी के पुरखे सौ रुपया लेकर बाहर से इस गाँव में आए थे- व्यापार करने। व्यापार के साथ सूदखोरी करते हुए वे अब तक सैकड़ों बीघा ज़मीन के भी मालिक बन चुके हैं। शाह जी कोई बहुत अत्याचारी किस्म के शोषक प्रतीत नहीं होते। उनका अपने असामियों से व्यवहार भी नरम ही कहा जाएगा, लेकिन फिर भी आसामियों की ज़मीनें आसानी से उनकी झोली में पड़ती रहती हैं। प्रक्रिया बड़ी सीधी सी है। गाहे-बगाहे फसल मारी जाने पर शादी-विवाह, मुकदमेंबाजी आदि जैसी समस्याओं के आने पर किसान कर्ज के जाल में फँसने के लिए मजबूर हो जाता है। गाँव में शाह जैसा उदार सूदखोर हो तो ऐसे जाल में फँसने की संभावना और अधिक बढ़ जाती है। डेरा जट्टां ही नहीं, वरन् आस-पास के तमाम गाँवों के किसान शाह-महाजनों के इस जाल में फंसकर अपनी जमीनें गँवा बैठे हैं। और शाहों की हवेलियाँ बनती-बढ़ती रही हैं। डेरा जट्टा के शाह जी काम वैसा ही करते हैं, लेकिन थोड़ नरम भी हैं। पूरे गाँव को साल में दो-चार बार त्योहारों आदि के मौके पर कुछ खिला-पिला कर या उत्सव मनाकर खुश रखते हैं। यदि कोई युवा किसान विद्रोह पर उतारू हो जाए तो एक एकाध बागी का कर्ज़ा माफ कर उसकी ज़मीन उसे लौटा देते हैं ताकि बगावत की हवा ज्यादा न बहे और इस उदारता से विद्रोह शांत हो जाता है।

शाह जी व्यवहार में बहुत कुशल घ दुनियादार हैं। वे सबके दु:ख-सुख में शामिल होते हैं।धार्मिक क्रिया-कलापों में हिस्सा लेते रहते हैं। गाँव की चौपाल भी उनके यहाँ ही जुटती है। एक तरह से गाँव की सर्वाधिक प्रभावशाली हस्ती वही हैं। बाहर से कोई भी अधिकारी आए - सैनिक भर्ती करने या सिविल अधिकारी या फिर ज्यादातर थानेदार आदि - सबका ठिकाना शाह जी के यहाँ रहता है। वही सबकी मेहमान नवाजी करते हैं -सरकार कोई भी हो (उपन्यास में ब्रिटिश शासन का समय है) वे सरकार के खैरख्वाह हैं। थानेदार आदि उनके यहाँ आते हैं तो ज़ाहिर है कि पूरे गाँव क्या पूरे इलाके में उनका रोआब, उनकी धाक बनी रहती है।

शाह जी उम्र में कुछ बड़े भले ही लगें, हैं वे आशिक मिज़ाज। उनकी पहली पत्नी के संतान नहीं हुई, दूसरी के भी संतान नहीं हो रही थी तो शाह जी अपने लिए तीसरी शादी रचाने की इच्छा रखते हैं। (जो अंतत: पूरी भी होती है) शाहनी जब गर्भवती हो जाती है और बाद में लाली की माँ बनती है तो एक बार तो यह प्रसंग समाप्त हो जाता है, लेकिन अलिए की कमसिन बेटी राबयां के उनके प्रति आकर्षण में शाह जी भी बँध ही जाते हैं, बल्कि एक स्तर पर तो शाह जी के मन में राबयां के प्रति छिपा आकर्षण है, जो उसके गुणों की प्रशंसा के रूप में झलकता भी रहता है, लेकिन जैसे छोटा शाह (काशीशाह) राबयां के प्रति निरपेक्ष है, वैसे निरपेक्ष बड़े शाह जी नहीं हैं।

शाह जी को अपनी समृद्धि के पीछे किसानों के उन्हीं द्वारा किए जाते शोषण की स्पष्ट चेतना है, लेकिन इसके कारण उनके मन में कोई अपराधबोध नहीं है। उसे उचित ही मानते हैं, जो कुछ सदियों से होता आ रहा है, वे अपने को उसी की कड़ी के रूप में न्यायोचित ठहराते हैं।

घर-परिवार में शाह जी एक उदारचित पति, पिता, भाई आदि की भूमिका निभाते हैं। कुल मिलाकर शाह जी का व्यक्तित्व ऊपर से जितना सरल लगता है उतना सरल वह है नहीं। लेखिका ने शाह जी के रूप में अन्तर्विराधों से भरा एक जटिल चरित्र सृजित किया है और इस केन्द्रीय चरित्र के सृजन में जरूरी निरपेक्षता से काम लिया है। शाह जी का चरित्र अधिकांशत: तो उनके कार्य-कलापों के माध्यम से व्यंजित हुआ है, कुछ अन्य चरित्रों द्वारा उनके बारे में की गई चर्चाओं से व थोड़ा-बहुत लेखिका द्वारा दिए गए उनके जीवन-विवरण सामने आता है। लेकिन शाह जी का चरित्र सहज रूप से विकसित हुआ है, कहीं भी लेखिका उनके चरित्र सृजन में स्वयं को आरोपित करती प्रतीत नहीं होती। बावजूद इसके, डेरा जट्टां के कुछ व्यक्ति आपस में बात करते हुए शाह जी के शाहपन की पूरी कलई खोल देते हैं। चरित्र उपन्यास की भीतरी कथावस्तु से स्वत: स्फूर्त रूप से स्वरूप ग्रहण करता चलता है और लेखिका की कलम के हल्के से स्पर्श से शाह जी के व्यक्तित्व के सभी पहलू उघड़ आते हैं।

शाहनी

शाह जी उपन्यास के नायक प्रतीत होते हैं लेकिन शाहनी नायिका न लगकर एक महत्वपूर्ण प्रमुख पात्र के रूप में उभर कर सामने आती है। शाहनी में भारतीय स्त्री के पांरपरिक गुण भरपूर मात्रा में उपस्थित हैं। वह आदर्श पत्नी, आदर्श माँ, आदर्श स्त्री के सभी गुणों से युक्त चरित्र है। उसमें बुद्धिमत्ता भी है व भावानात्मकता भी, मोह-ममता भी है व करुणा भी। क्षुद्रता उसके चरित्र में कहीं भी नज़र नहीं आती, शाह जी की वह दूसरी पत्नी है, लेकिन इस बात की गाँठ उनके मन में कदापि नहीं है। वह शाह जी की पहली पत्नी गौरवा को अपनी अग्रज मानकर सम्मान के साथ ही याद करती है। कभी उसकी स्मृति की अवमानना नहीं करती। वह शाह जी को हृदय से प्यार करती है, इसलिए संतान के न होने के नाम पर किसी और स्त्री को सौतन रूप में घर में नहीं लाना चाहती लेकिन शाह जी की चाहत से वह आहत भी नहीं होती। एक बड़ी परिपक्व व सयानी स्त्री की तरह वह शाह जी की चाहनाओं को अनुकूलित करती है।

शाहनी माँ के रूप में अत्यंत संतुष्ट, प्रसन्न व गौरवमयी माँ हैं। उसने लाली जैसे पुत्र को जन्म देकर घर में अपनी प्रतिष्ठा और बढ़ा ली है। देवरानी बिंद्रादयी को वह छोटी बहिन ही मानती है, गाँव-घर के साथ उसका व्यवहार दयालुतापूर्ण है। दु:खों की मार खाए स्त्री-पुरुषों के प्रति करुणा रखती हुई वह सब की यथासंभव सहायता करती है, विशेषत: स्त्रियों की। रिश्ते में देवर व आपराधिक चरित्र तारेशाह अपनी भगाई स्त्री बटकली को उसके पास छोड़ जाता है, वह उसे संभालती है, वह राबयां को भी प्रश्रय देती है, जो उसकी सौतन बनने की दिशा में अग्रसर है। लाली का पालन-पोषण भी वह दयालु माँ के रूप में करती है। शाहनी वास्तव में शाह जी की ताकत है और घर को वह स्थिरता प्रदान करती है।

छोटे शाह : काशी शाह

छोटे शाह काशी शाह, बड़े शाह जी के छोटे भाई तथा व्यापार में उनके सहयोगी हैं। कई मामलों में वे शाह जी से आगे बढ़े हुए हैं। व्यापार का हिसाब-किताब रखने, शहर में मुकदमों आदि का ध्यान रखने में छोटे शाह की ज्यादा भूमिका है। छोटे शाह विवाहित हैं और दो पुत्रों के पिता भी बन चुके हैं। वे बिल्कुल शांत स्वभाव के प्राय: स्वयं को केन्द्र से परे रखने वाले और चुप रहने वाले व्यक्ति हैं। पिछले कुछ अर्से से उनका ध्यान अध्यात्म की ओर अधिक हो गया है तथा वे सांसारिक सुखों की ओर से भी विमुख हो गए हैं। अपनी पत्नी बिंद्रादयी के शरीर सुख का भी वे लगभग त्याग कर चुके हैं, जिसके कारण बिंद्रादयी जवानी में देहताप का

संताप झेलती है। वह धन, मोह-माया से निर्लिप्त होना चाहते हैं, लेकिन घर का, व्यापार का सारा कामकाज देखते रहते हैं। काशीशाह को यह एहसास है कि शाहों की धन-संपत्ति किसानों का शोषण करके बनी है तथा इसका अपराधबोध भी है। इस अपराधबोध को कम करने के लिए वे गाँववासियों का मुफ्त इलाज करते रहते हैं, उन्हें दवाइयाँ भी मुफ्त बाँटते हैं, बड़े शाह को दान-पुण्य के लिए भी वे प्रेरित करते रहते हैं। वे निश्छल, निःस्वार्थ और निष्काम भाव के साधु व्यक्ति हैं। वे जीवन से संतुष्ट हैं तथा अपने पूर्वजों द्वारा किसानों के शोषण का प्रायश्चित अध्यात्म साधना द्वारा कर स्वयं को इस अपराधबोध से मुक्त करना चाहते हैं। सब मिलाकर छोटे शाह मनुष्य की अपेक्षा देवता अधिक प्रतीत होते हैं।

छोटी शाहनी : बिंद्रादयी

बिंद्रादयी छोटे शाह काशीशाह की पत्नी व दो बेटों की माँ है। वह अभी युवा है व यौवन का भोग करना चाहती है, किंतु उसका पति काशीशाह शारीरिक सुखों व दुनियावी सुखों से विमुख हो चुका है। बिंद्रादयी अपनी जेठानी शाहनी से कभी-कभार मन की बात खोल लेती है, क्योंकि दोनों का संबंध बहनापे का अधिक है, देवरानी-जेठानी का कम। शाहनी को भी यह जानकर धक्का सा लगता है कि उसका देवर अभी से इतना आध्यात्मिक होने लगा है कि यौवन सुखों से मुँह मोड़ गया है। बिंद्रादयी अपने भतीजे लाली से खूब प्यार करती है और घर के प्रति पूरी जिम्मेदारी निभाती है। उसमें थोड़ी सी छाया 'मित्रो मरजानी' की मित्रो की है, लेकिन मित्रो वाचाल है, बिंद्रादयी शांत व गंभीर स्वभाव की है इसीलिए वह तन-मन से पति के व्यवहार से संतप्त होकर भी सिवाय शाहनी के, किसी से यह भेद नहीं खोलती। बिंद्रादयी में भी भारतीय स्त्री के स्वभाव की वही सब बातें कूट-कूट कर भरी हुई हैं, जिनमें परिवार का सम्मान, इज्जत सबसे पहली प्राथमिकता बन जाती है और अपने व्यक्तिगत सुख-दुःख गौण बात बन रह जाते हैं। बिंद्रादयी भी शाह परिवार की एक मजबूत कड़ी की तरह है।

चाची मेहरी

चाची मेहरी यानि लड़िक्को उपन्यास की दिलचस्प चरित्र है। उसका विवाह बर्जुगवाल के दीदार सिंह से हुआ था। उसका देवर साहिब सिंह, जो उस समय बच्चा ही था, लड़िक्को भाभी से बहुत ज्यादा हिला-मिला था। दीदार सिंह की अचानक मौत से मेहरी विधवा हुई तो शाह परिवार के गणपत शाह के मन को भा गई और वह उसे अगवा कर ले आया। मामला अदालत तक गया और मेहरी ने अपने तीन साल के बेवा होने और बालिग होने की बात कह कर गणपतशाह को अपना लिया। महरी शाहों के घर की बहू बनी, तब भी साहिब सिंह उससे अपना मोह न छुड़ा सका। गणपतशाह भी कुछ साल बाद चल बसा और निस्संतान चाची शाह परिवार में सयानी औरत के रूप में रहने लगी। लेकिन बरसों बाद कहीं मन में देवर साहिब सिंह का मोह जगा और शाहनी की मन्नत उतारने जाती हुई वह पुरानी ससुराल में रुक गई, जहाँ साहिब सिंह भी अधेड़ होकर बीमारी में पड़ा है और जो अभी भी भाभी लड़िक्को के दर्शन को तड़पता है। भाभी लड़िक्को अपने उसी रूप में आकर साहिब सिंह की एक दिन रुककर ऐसी सेवा सुश्रूषा करती है कि उसे स्वस्थ करके ही आगे बढ़ती है। चाची महरी किसी पारंपरिक मूल्य को जड़ मूल्य के रूप में स्वीकार नहीं करती। गाँव की कोई अन्य विधवा जब जवानी में काम पीड़ित हो किसी अन्य जवान से तन-मन जोड़ बैठती है, यहाँ तक कि गर्भवती भी हो जाती है तो चाची महरी उसे ऐसी अवस्था में सहारा देती है।

शाह परिवार में उसका घर की बुजुर्ग औरत के रूप में बड़ा सम्मान है और छोटी-बड़ी शाहनी उसकी सलाह मानती हैं।

लाली

उपन्यास के अंत तक शाह-शाहनी का बेटा लाली सात वर्ष का हो चला है व उसने स्कूल जाना शुरू कर दिया है, लेकिन उसकी बचपन की शरारतों व उसके खिलंदड़ी स्वभाव का

लेखिका ने अच्छा चित्रण किया है, विशेषत: राबयां का उससे लगाव का। उसके जन्म के समय से ही राबयां घर में उसकी देखभाल करती रही है और वह भी राबयां के बिना रह नहीं पाता। कभी राबयां को बहिन कहता है तो कभी राबयां से शादी करने की बाल मन की बातें करता है। लाली ऐसा चरित्र है, जिसे उपन्यास के दूसरे भाग में विकसित होना है। इस उपन्यास के इस भाग में उसके चरित्र के 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' संकेत ही मिलते हैं।

राबयां

राबयां भी उपन्यास का ऐसा चरित्र है, जिसका अधिक विकास उपन्यास के दूसरे भाग में होना है। राबयां गाँव के गरीब अलिए की बेटी है, लेकिन छोटी उम्र से ही शाह से जुड़ी है। उसके व्यक्तित्व में बचपन से ही बड़ी परिष्कृत अभिरुचियाँ विकसित हुई हैं। वह बहुत ही मधुर सूफ़ी गायन करती है, जिससे दोनों शाह भाई मुग्ध हो जाते हैं। दोनों शाहनियाँ भी उसकी अभिरुचियों से प्रभावित हैं। अपनी उम्र से वह कहीं अधिक परिवक्व है। वह जवानी की दहलीज़ पर पाँव ही रख रही है कि वह मन ही मन बड़े शाह को मन का स्वामी मान लेती है। इसका कुछ आभास परिवार में सभी को है, लेकिन उससे कोई उसे बुरा नहीं समझता। शाहनी में भी स्त्रीजन्य ईर्ष्या भले ही हो, किंतु उसके मन में राबयां के प्रति सौतिया डाह नही है। राबयां शाहनी का भी इतना अधिक सम्मान करती है और लाली से इतना प्यार करती है कि राबयां के मन का भाव जानकर भी वह उसे कुछ कह नहीं पाती। राबयां शाह को साक्षात् पाना नहीं चाहती, वह तो मन ही मन उसकी आराधना जैसे करती है। राबयां के रूप में भारतीय युवती के प्रेम के एक और स्वरूप की झलक लेखिका ने प्रकट की है।

राबयां एक अद्‌भुत चरित्र है, जिसका विस्तार 'ज़िन्दगीनामा' के दूसरे भाग में है, जिसका कुछ हिस्सा महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय की पत्रिका 'बहुवचन' (एक -1999) में छप भी चुका है, जिसमें राबयां के दु:खांत का कुछ अंकन भी हुआ है। निश्चय ही 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास के दोनों भागों को मिलाकर कोई विशिष्ट चरित्र उभरेगा तो वह राबयां ही होगी।

ज़िन्दगीनामा' उपन्यास के अनेक चरित्रों में से कुछ की ही यहाँ चर्चा की गई है। लेखिका का अपने चरित्रों की सृष्टि पर पूरा कलात्मक नियंत्रण है। इस नियंत्रण को हासिल करने में उनकी जीवन-दृष्टि का पूरा योगदान है, जिसकी आगे चर्चा होगी।

7.4 ज़िन्दगीनामा : जीवन-दृष्टि

यद्यपि 'ज़िन्दगीनामा' परिवेश प्रधान आंचलिक उपन्यास भी कहा जा सकता है तथापि इस उपन्यास के सृजन में लेखिका की विश्व-दृष्टि या जीवन-दृष्टि की बहुत बड़ी भूमिका है। उपन्यास के सृजन में सहज स्वाभाविकता व प्रवाहमयता के बावजूद लेखिका की दृष्टि सूक्ष्म रूप से उपन्यास की पूरी संचरना में व्याप्त है। उपन्यास के विशिष्ट रूप के सृजन में लेखिका की दृष्टि ही सक्रिय है।

'ज़िन्दगीनामा' में व्यक्त लेखिका की जीवन-दृष्टि को पारिभाषिक शब्दावली के कम शब्दों में व्याख्यायित करना तो संभव नहीं है। लेकिन उपन्यास में समेकित रूप से संयोजित व अनेक घटनाओं के उल्लेख व लेखिका के समर्पण तक में लेखिका की जीवन-दृष्टि के स्पष्ट संकेत देखे जा सकते हैं।

अपने सहज रूप में 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास में कृष्णा सोबती की मानवीय जीवन-दृष्टि आरंभ से अंत तक व्याप्त है। इस मानवीय दृष्टि में सांझी पंजाबी संस्कृति की विशिष्ट विश्व-दृष्टि भी अभिन्न रूप से शामिल है। उपन्यास की कोई भी घटना देखें या कोई भी चरित्र, लेखिका की

सहानुभूति अत्यंत, स्पष्ट रूप से उत्पीड़ितों के प्रति है,न कि उत्पीड़कों के प्रति। उपन्यास के प्रमुख चरित्र शाह परिवार से संबंधित हैं, लेकिन शाह परिवार द्वारा किसानों के शोषण को लेखिका ने अंकित किया है। थानेदार या सरकारी अधिकारियों के उत्पीड़क रवैये को लेखिका घृणा का भाव जगाकर ही चित्रित करती हैं।

सांझी पंजाबी संस्कृति से लेखिका का गहरा भावनात्मक लगाव है, इसलिए डेरा जट्टां गाँव को उन्होंने इस सांझी संस्कृति के प्रतीक रूप में चित्रित किया है। उनकी जीवन-दृष्टि व औपन्यासिक संरचना की दृष्टि अधिकांशत: इस संस्कृति के जीवंत चित्रण में केंद्रित है।

सांझी पंजाबी संस्कृति के निर्माण में करीब तीन सौ वर्ष पुराने सिख धर्म की भी काफी प्रभावी भूमिका है, जिसने लेखिका की जीवन-दृष्टि के निर्माण में भी सक्रिय भूमिका निभाई है। उपन्यास का समर्पण ही गुरु गोविंद सिंह के फारसी भाषा में लिखे खत की इन प्रसिद्ध पंक्तियों से हुआ है, जिनका अर्थ है - 'जब दूसरे सब रास्ते कारगर न हो सकें तो जुल्म के खिलाफ तलवार उठा लेना जायज है।' उपन्यास के केंद्रीय चरित्र शाह जी द्वारा इन्हीं शब्दों से उपन्यास का अंत भी होता है -

चूँ कार अज़ हमां हीलते दरगुज़श्त !
हलालस्त बुर्दन ब-शमशीर दस्त !!

ज़ाहिर है लेखिका की जीवन-दृष्टि के निर्माण में सिख धर्म के गुरुओं की वाणी की बड़ी भूमिका है सिख धर्म अपने मूल रूप में तमाम तरह की धार्मिक कुरीतियों के विरोध स्वरूप पैदा हुआ था और उदार मान्वतावादी चिंतन उसका मूल आधार रहा है। इसलिए पंजाब के गाँवों-कस्बों-शहरों में हिंदू, सिख व मुसलमान सभी लोग अत्यंत गहरे मेल-मिलाप के साथ रहते आए थे। विभाजन से पहले प्रत्येक हिंदू परिवार के एक बेटे को सिख धर्म में दीक्षित करने का रिवाज़ भी था। इसलिए अब भी अनेक ऐसे परिवार मिलते हैं, जो हिंदू व सिख दोनों धर्मों का समान रूप से पालने करते हैं। सिंध प्रांत के हिंदू तो 'गुरु ग्रंथ साहिब' को ही अपना धर्मग्रंथ भी मानते हैं।

लेखिका गुरुवाणी के प्रभावित होने से हिंदू-सिख-मुसलमान तीनों समुदायों में परस्पर सौहार्द व प्रेम को सांझी पंजाबी संस्कृति का प्राण मानती हैं। अंग्रेजों के आने से पहले इस सांझी पंजाबी संस्कृति में कहीं तनाव या कटुता थी भी नहीं। देश के स्वतंत्रता संग्राम में पंजाब के हिंदू-सिख-मुसलमान समान रूप से भागीदार थे। इन्हीं सब सकारात्मक पहलुओं को कृष्णा सोबती ने जिस प्रकार उपन्यास में सृजनात्मक रूप दिया है, वह उनकी इस मानवीय जीवन-दृष्टि से ही संभव बना है।

कृष्णा सोबती की जीवन-दृष्टि के इस उदार मानवीय पक्ष के कारण ही गाँव डेरा जट्टां के हिंदू-सिख-मुसलमान खिलाड़ी की तरह रहते और तमाम तरह के त्योहार ईद, दीवाली, वैशाखी आदि एक साथ और मिलजुल कर खुशी से मनाते हैं। यहाँ तक कि कई बार स्त्री-पुरुष संबंधों में धर्म आड़े नहीं आता। अलिए की धी (पुत्री) राबयां जो मुस्लिम परिवार से है, शाह जी को ही अपना आराध्य मान बैठी है। एक विधवा ब्राह्मणी पात्र एक मुसलमान को दिल दे बैठी है लेखिका की दृष्टि में यह सब मानवीय कार्य-व्यापार है, जिसमें धर्म का दखल नहीं होना चाहिए और वह इन संबंधों को सकारात्मक स्वीकृति से चित्रित करती हैं।

'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास यद्यपि प्रमुख तौर पर राष्ट्रीय आंदोलन का उपन्यास नहीं है, लेकिन प्रासंगिक रूप से जहाँ भी राष्ट्रीय आंदोलन या स्वतंत्रता संग्राम के सन्दर्भ आए हैं लेखिका की सहानुभूति राष्ट्रीय आंदोलन के साथ है। उपन्यास में चित्रित काल बीसवीं सदी का आरंभिक काल है, जिसमें राष्ट्रीय आंदोलन का व्यापक चित्रण भले ही न हो, लेकिन चाहे 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम का संदर्भ आए या 1905 के बंग-भंग का या फिर 1911 के बंगाल के

एकीकरण का भी, चाहे गांधी जी का ही संदर्भ आए, लेखिका की सहानुभूति स्वतंत्रता संग्राम के ही साथ नज़र आती है, न कि ब्रिटिश उपनिवेशवाद के साथ।

राष्ट्रीय आंदोलन में भी लेखिका की संवेदना क्रांतिकारी आंदोलन से अधिक जुड़ी हुई है, सुधारवादी आंदोलन से कम। गुरु गोविंद सिंह की पंक्तियों के चयन से भी लेखिका की क्रांतिकारियों से प्रतिबद्धता नज़र आती है और उपन्यास में परोक्ष रूप से वर्णित या चित्रित उस काल की राजनीतिक घटनाओं के संदर्भ में भी लेखिका का यही दृष्टिकोण नज़र आता है। 1907 में लाला लाजपत राय और शहीद भगत सिंह के चाचा अजीत सिंह के देश-निष्काषन, उस समय चले किसान आंदोलन और उस आंदोलन में पंजाबी कवि लाल चंद 'फलक' द्वारा रचित देशभक्ति के प्रसिद्ध गीत 'पगड़ी संभाल जट्टा' के जिक्र और कवि पर सरकार की सख्ती के वर्णन, 1909 में इग्लैंड में मदन लाल ढींगरा द्वारा कर्ज़न वायली की हत्या और ढींगरा को फांसी दिए जाने की घटना के उल्लेख और उपन्यास के अंत में उपन्यास के चरित्र गण्डा सिंह के इस कथन कि 'होगा अब यह कि गदरी और इन्क्लाबियों ने मिलकर सरकार का झाड़ा-मूत्र बंद कर देने हैं। भावें रोम्ब लिखवा लो शाह जी, हुकूमत का पट्टा देसी रियाया के हाथों में पहुँच कर रहेगा।' (ज़िन्दगीनामा, 1983 संस्करण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 361)

उपन्यास में आए देशभक्ति के किसी भी प्रसंग में लेखिका की सहानुभूति व समर्पण क्रांतिकारी आंदोलन व उसके योद्धाओं को मिला है, जिससे यह उपन्यास राष्ट्रीय आंदोलन के चित्रण के संदर्भ में भी महत्वपूर्ण रचना बन गया है।

लेखिका की जीवन-दृष्टि में उत्पीड़ितों के प्रति सहानुभूति व शोषकों-उत्पीड़कों के प्रति नफरत की भावना उपन्यास में आदि से अंत तक व्याप्त है। लेखिका गरीबों, किसानों, सैनिकों, कामगारों, बेरोजगार युवाओं का पक्ष लेती है और इनका उत्पीड़न करने वालों के प्रति प्रतिरोध का भाव जगाती है।

स्त्री चरित्रों के प्रति लेखिका की विशेष संवेदना है। वैसे तो सभी स्त्री-चरित्रों को लेखिका ने विशेष सहानुभूति से चित्रित किया है, किंतु शाहनी, बिंद्रादयी, चाची मेहरी, राबयां, विधवा ब्राह्मणी आदि चरित्रों के प्रति लेखिका की दृष्टि अधिक ममतालु है, जिनसे ये चरित्र पाठकों का ध्यान अधिक आकर्षित करते हैं। यहाँ तक कि 'निक्की बेबे' आदि का चरित्राकंन करते हुए भी लेखिका ने स्त्री चरित्रों को विशेष सहानुभूति प्रदान की है, यद्यपि उपन्यास की कथा के संदर्भ में सामाजिक स्तर पर पुरुष पात्रों का अधिक प्रभुत्व है, उनका दबदबा है।

कुल मिलाकर कृष्णा सोबती का 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास एक गहन मानवीय जीवन-दृष्टि संपन्न उपन्यास है, जिसमें लेखिका की विश्व-दृष्टि ने उपन्यास की संरचना को भी प्रभावित किया है। उपन्यास की बड़ी सफलता के पीछे लेखिका की गहरी मानवीय दृष्टि की भी महत्वपूर्ण भूमिका है।

7.5 सारांश

इस इकाई के प्रमुख कथ्य 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास के संदर्भ में रचनाकार की चरित्र-सृष्टि और जीवन-दृष्टि पर विचार किया गया है। इस प्रक्रिया में निम्नलिखित तथ्यों को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है :

- किसी रचनाकार के लिए चरित्र-सृष्टि और जीवन-दृष्टि के आपसी संबंध और महत्व पर विचार किया गया है। इस प्रक्रिया में यह भी उद्घाटित किया गया है कि चरित्र-सृष्टि का कार्य जीवन-दृष्टि के नियंत्रण में होता है, इसलिए जीवन-दृष्टि ही रचना की श्रेष्ठता का मूलाधार बनती है। इसे प्रेमचंद के 'गोदान', 'रंगभूमि' और

फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आँचल' के उदाहरण द्वारा हमने स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

- इस इकाई का दूसरा महत्वपूर्ण बिन्दु है, 'ज़िन्दगीनामा' की चरित्र-सृष्टि। इस उपन्यास में कृष्णा सोबती ने पात्रों के चरित्र निरूपण के लिए चरित्र-सृष्टि न करके, पंजाबी सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश के चित्रण के लिए चरित्र-सृष्टि की है। फलस्वरूप डेरा जट्टां गाँव ही प्रतीकात्मक चरित्र बन गया है, जिसके केन्द्र में शाह परिवार के लोग ही विशेष रूप से स्थान प्राप्त कर सके हैं। अत: परिवार विशेष और उससे जुड़े हुए चरित्रों पर ही यहाँ विचार किया गया है।

- लेखिका की जीवन-दृष्टि पर विचार करते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि कृष्णा सोबती ने अपनी दृष्टि के केन्द्र में पंजाब की सांझा संस्कृति, पारिवारिक-सामाजिक मानवीय संबंधों, आपसी प्रेम, पारस्परिक राग-विराग को ही अधिक रखा है। अत: उनकी उदार मानवीय दृष्टि की इस उपन्यास में अधिक पल्लवित हुई है।

- निष्कर्षत: कुल मिलाकर लेखिका ने अपनी इस महत्वपूर्ण रचना में अपनी सहज जीवन-दृष्टि से प्रभावी चरित्र सृजित किए हैं।

7.6 अभ्यास प्रश्न

1. 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास के चरित्र-चित्रण में लेखिका ने किन विधियों का प्रयोग किया है, सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

2. 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास के विभिन्न चरित्रों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

3. 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास के चरित्रांकन में प्रतीकात्मकता का महत्व स्पष्ट कीजिए।

4. शाह जी को क्या 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास का केन्द्रीय चरित्र कहा जा सकता है? चरित्रांकन द्वारा स्पष्ट कीजिए।

5. 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास के संदर्भ में कृष्णा सोबती की जीवन-दृष्टि पर प्रकाश डालिए।

6. 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास की विश्व-दृष्टि का स्वरूप उपन्यास के माध्यम से स्पष्ट कीजिए।

7. चरित्र-सृष्टि और जीवन-दृष्टि के संदर्भ में 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास का मूल्यांकन कीजिए।

इकाई 8 परिवेश और भाषा

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 परिवेश-चित्रण और भाषा-सृजन का महत्त्व

8.3 ज़िन्दगीनामा में परिवेश-चित्रण

8.4 ज़िन्दगीनामा : भाषा-सृजन

8.5 सारांश

8.6 अभ्यास प्रश्न

8.0 उद्देश्य

हिन्दी उपन्यास - 2 के खण्ड दो के पाठ्यक्रम के अन्तर्गत यह आठवीं व अंतिम इकाई है। इसके पहले की तीन इकाइयों में आप 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास के विभिन्न पक्षों से परिचित हो चुके हैं। अब इस अंतिम इकाई में आप उपन्यास के अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष परिवेश और भाषा का अध्ययन करेंगे।

परिवेश-चित्रण किसी भी रचना व रचनाकार के लिए एक बड़ी चुनौती होती है। कई रचनाओं का आधार ही परिवेश होता है। 'ज़िन्दगीनामा' में भी परिवेश एक तरह से केन्द्रीय पहलू है। इसलिए 'जिन्दगीनामा' को समझने के लिए उसके परिवेश को समझना अत्यावश्यक है। इस तथ्य को आप इस इकाई के माध्यम से समझ सकेंगे।

जैसे 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास का परिवेश विशिष्ट है, वैसे ही इस परिवेश को रचना में ढालने वाली भाषा का लेखिका ने सृजन किया है। 'ज़िदगीनामा' उपन्यास की भाषा-सृजनात्मकता के नये आयाम प्रस्तुत करती है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप:

- 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास में प्रस्तुत अद्‌भुत परिवेश के अनेक पहलुओं को रेखांकित कर सकेंगे;
- विभाजनपूर्व पंजाब की समेकित व सांझी लोक संस्कृति के स्वरूप का निदर्शन कर सकेंगे;
- विभाजनपूर्व पंजाब की अद्‌भुत-अनोखी झाँकियों की चर्चा कर सकेंगे;
- 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास की भाषा के विशिष्ट स्वरूप को समझ और व्याख्यायित कर सकेंगे; और
- परिवेश और भाषा के अन्त:संबंधों की पहचान कर सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

इस खंड की इकाई पाँच में 'ज़िन्दगीनामा' की रचनाकार कृष्णा सोबती के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की पहचान के बाद इकाई छह में उपन्यास की अन्तर्वस्तु और शिल्प पर चर्चा की गई

थी। इकाई सात में उपन्यास की चरित्र-सृष्टि व जीवन-दृष्टि को स्पष्ट करने प्रयास किया गया था। इन सब के साथ ही औपन्यासिक संरचना के दो और पहलू अध्ययन के लिए बहुत ज़रूरी हैं- **परिवेश और भाषा।** इसलिए 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास के अध्ययन पर केन्द्रित इस इकाई में संरचना के इन दो पहलुओं पर विशेष ध्यान दिया जाएगा।

यूँ तो परिवेश-चित्रण किसी भी रचना का एक विशेष पहलू है, जिसे समझे बिना रचना की तह तक नहीं पहुँचा जा सकता, लेकिन कुछ रचनाएँ तो होती ही परिवेश-केन्द्रित हैं। परिवेश ही कुछ रचनाओं का प्राणतत्व होता है। 'ज़िन्दगीनामा' एक ऐसी ही रचना है, जो अपने परिवेश में ही रची-बसी है। लेखिका का पूरा सृजन-कर्म ही परिवेश-चित्रण पर केन्द्रित है। इसलिए 'ज़िन्दगीनामा' को 'आंचलिक उपन्यास' भी कहा जाता है। आंचलिक रचनाएँ होती ही परिवेश केन्द्रित हैं, जिनमें किसी अंचल विशेष का पूरा परिवेश रूपायमान हो उठता है। 'ज़िन्दगीनामा' भी ऐसा ही उपन्यास है, जिसमें विभाजनपूर्व पंजाब के ग्रामीण परिदृश्य का सांस्कृतिक परिवेश अपने जीवंत रूप में पाठकों को लुभाता है, आकर्षित करता है। इस इकाई में 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास में हम लेखिका द्वारा अत्यधिक मनोरम रूप से चित्रित परिवेश को उद्घाटित करने का प्रयास करेंगे।

आंचलिक रचना की भाषा भी स्वयं रचनाकार के लिए एक सृजनात्मक चुनौती बन जाती है। चूँकि विशिष्ट अंचल में विशिष्ट भाषा का लोक-संस्कृति में प्रयोग होता है और जब तक ऐसी रचना में उस लोक प्रयुक्त भाषा की गंध और स्पर्श न हो, तब तक उस रचना में चित्रित परिवेश का भी प्रामाणिक चित्र नहीं उभरता। अत: परिवेश और भाषा दोनों एक दूसरे से अभिन्न रूप से जुड़े होते हैं और परवेश के अध्ययन के साथ ही रचना की भाषागत विशिष्टता का अध्ययन भी ज़रूरी हो जाता है।

उपर्युक्त तथ्य को ध्यान में रखकर इस इकाई में 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास में चित्रित परिवेश व भाषा-सृजन का विवेचन किया जाएगा।

8.2 परिवेश-चित्रण और भाषा-सृजन का महत्व

उपन्यास एक ऐसी साहित्यिक विधा है, जिसमें एक विशेष समाज व उसके तत्कालीन परिवेश को उजागर करने पर रचनाकार का ध्यान केन्द्रित होता है। उपन्यास चाहे ऐतिहासिक हो या सामाजिक, राजनीतिक हो या सांस्कृतिक, यहाँ तक कि मनोवैज्ञानिक या व्यक्तिवादी उपन्यास तक में लेखक एक विशेष परिवेश के चित्रण की उपेक्षा नहीं कर सकता। मनोवैज्ञानिक उपन्यास में बाह्य परिवेश के साथ-साथ चरित्रों के आंतरिक परिवेश या उनकी मनोभूमि के रहस्य को उद्घाटित करने का भी प्रयास किया जाता है। आंचलिक उपन्यास की तो पूरी अवधारणा ही परिवेश-चित्रण पर आधारित है। फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आँचल' या 'परती परिकथा' में चित्रित मिथिला अंचल हो या जगदीश चंद्र, बलवंत सिंह व कृष्णा सोबती द्वारा चित्रित पंजाबी जन-जीवन के विभिन्न पक्षों का चित्रण हो या फिर नागार्जुन व रांगेय राघव द्वारा चित्रित विशिष्ट परिवेश हों, आंचलिक उपन्यास की आधारभूमि परिवेश-चित्रण ही है।

'ज़िन्दगीनामा' को व्यापक रूप से आंचलिक उपन्यास भी कहा जा सकता है और सांस्कृतिक भी। दोनों ही रूपों में परिवेश-चित्रण का विशेष महत्व है। आंचलिक व सांस्कृतिक-दोनों प्रकार की रचनाओं में परिवेश के अत्यधिक व्यापक रूपों की प्रस्तुति रचनाकार के लिए एक चुनौती होती है और रचना की सफ़लता-असफलता का आधार इस चुनौती का सामना करने की क्षमता में होती है।

'ज़िन्दगीनामा' की लेखिका कृष्णा सोबती ने अपनी इस महाकाव्यात्मक कृति में इस चुनौती के समक्ष कहाँ तक सफलता प्राप्त की है, यह तो इकाई के अगले हिस्से में स्पष्ट किया जाएगा, लेकिन यहाँ इतना कहा जा सकता है कि परिवेश-चित्रण जितना अधिक जीवंत व विविध होगा, आंचलिक रचना उतनी ही रोचक, आकर्षक व सफल होगी।

आंचलिक या सांस्कृतिक रचना की भाषा का प्रयोग भी परिवेश-चित्रण से सीधे रूप से संबद्ध है। एक विशेष परिवेश, विशेष प्रकार की भाषा में अभिव्यक्ति ग्रहण करता है। भारत जैसे विशाल व बहुविध सांस्कृतिक परिवेश वाले देश में तो भाषा-प्रयोग ही अपने में एक दिलचस्प अध्ययन का क्षेत्र है। 'ज़िन्दगीनामा' जैसे विशेष अंचल व संस्कृति-केन्द्रित उपन्यास के लिए तो भाषा का प्रयोग रचनाकार के लिए एक सृजनात्मक चुनौती बन जाता है। विभाजनपूर्व पंजाब के ग्रामीण परिवेश की एक ऐसी जीवंत संस्कृति अस्तित्व में रही है, जो अब उस रूप में नहीं मिलती। ऐसी स्थिति में एक रचनाकार अपने जीवनानुभवों व स्मृति से वैसी संस्कृति व उस संस्कृति की पोषक भाषा की रचना द्वारा पुन:सृजन करता है। यह पुन:सृजन किस हद तक पाठकों को प्रभावित करता है, यह रचनाकार की सृजनात्मक क्षमता पर निर्भर है। कई रचनाकार पुन:सृजन इतना आकर्षक करते हैं कि सृजन का मूल व मौलिक रूप भी उसके सामने फीका लगने लगता है। अधिकांश पुन:सृजन की यह ताकत कला की ताकत है।

'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास में विभाजनपूर्व पंजाब के ग्रामीण जीवन के सांस्कृतिक परिदृश्य का पुन:सृजन कुछ इसी प्रकार हुआ है कि पुन:सृजन अपने मौलिक रूप से संभवत: अधिक सौन्दर्यपूर्ण व आकर्षक बन गया है, लेकिन क्या प्रत्येक रचनाकार की कला में ऐसी ताकत होती है? संभवतः नहीं। एक बड़े कलाकार या रचनाकार की पहचान ही कला की इस ताकत तथा उसके अधिग्रहण से होती है। विशेषतः उपन्यास में परिवेशगत चित्रण व भाषागत सृजन में इस ताकत की अभिव्यक्ति की परीक्षा होती है। इस इकाई के अगले भाग में कला की इस ताकत के पहलुओं पर आपका ध्यान केन्द्रित किया जाएगा।

8.3 'ज़िन्दगीनामा' में परिवेश-चित्रण

'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास की शुरुआत लेखिका की काव्यात्मक अभिव्यकित से होती है। सात-साढ़े सात पृष्ठों तक फैली इस काव्यात्मक अभिव्यक्ति में लेखिका ने काव्यात्मक बिंबों के सृजन द्वारा पंजाब के भौगोलिक, सामाजिक व सांस्कृतिक परिवेश को ऐसा भावात्मक रूप दिया है कि देखते ही बनता है। इन बिंबों में चनाब और जेहलम (नदियों) की धरती के 'माँ' बनने, 'मीठी सजरी धूप', 'ठंडी सुहानी हवाएँ', 'अल्हड़-अनोखे पानी', 'गन्दम की इलाही लाली', 'खुले डुले पंजाब की शीदें', 'भरी भरी गदराई देहें', 'घी रची मोटी वज़नी रोटियाँ', 'बैसाखी और लोहड़ी के लाख बाट बजते ढोल', 'गुल्ली डंडे और सौन्ची की बोरियाँ', 'सगुणों के बाग और फुलकारियाँ', 'खुशहाल धरती का खुशहाल लिश्क़ारा', 'भरे-पूरे पंजाब की धरती पर घिर आयीं' ज़हर की कांगें', 'पंज दरियाओं के पंजाब', 'ज़िंदा रुखों की छाँह', 'चिट्टी दूध शोख पंजाब की बेटियाँ' इत्यादि अनेक जीवंत बिंबों का ऐसा सृजन कृष्णा सोबती ने किया है कि पंजाब का पूरा परिवेश ही जैसे आँखों के सामने रूपायमान हो जाता है।

इस काव्यात्मक अभिव्यक्ति के बाद उपन्यास के गद्यात्मक भाग का आरंभ भी परिवेश के ही जीवंत चित्रण से होता है। यह चित्रण है - विभाजनपूर्व पंजाब के गाँव में 'शरद पुण्या की रात' का। पूरा गाँव तो जैसे लिरक रहा ही है, लेखिका ने इस चित्रण को अपनी बिंबात्मकता से और अधिक सजीव बना दिया है, जैसे 'चिट्टी दूध चाँदनी रात की मस्ती में हँसना-खेलना। फिर बड़े लाला के घर के परिवेश का चित्रण, जहाँ पंजीरी का प्रसाद पूरे गाँव को बाँटा जा रहा है। प्रसाद के बाद बड़े लाला का गाँव भर को क़था सुनाना। एक पूरा सांस्कृतिक परिवेश जैसे आँखों के सामने दृश्यमान होने लगता है।

पूरा उपन्यास आदि से अंत तक इसी प्रकार की बिंबात्मकता और चित्रमयता से भरा हुआ है। अपने शिल्प में भी जैसे लेखिका ने उपन्यास में दृश्यों की एक लड़ी का सृजन किया हो। उपन्यास में हर अल्प विराम के बाद एक नया दृश्य है। लेखिका ने पूरे उपन्यास में अध्याय विभाजन के रूप में पूर्ण विराम या अर्द्धविराम कहीं किया ही नहीं है।

लेखिका के परिवेश-चित्रण में एक सावधानी और सजगता मौजूद है, बावजूद इसके कि पूरा परिवेश एक सहज-स्वाभाविक रूप में चित्रित हुआ है। 'शरद पुण्या की रात' के चित्रण में हिंदू रीति का चित्रण है तो अगला ही दृश्य मुस्लिम परिवेश का आभास भी करा देता है - 'मसीत से अज़ान और मुर्गे की बांग के एक साथ' होने से भोर के होने के चित्रण द्वारा।

'ज़िन्दगीनामा' के डेरा जट्टां गाँव की रात यदि सुंदरता में सराबोर है तो उसकी प्रभात भी कम आकर्षक नहीं। भोर में मुँह अँधेरे ही गाँव जग जाता है और स्नानादि व आस्था मूलक कर्म में लग जाता है। गाँव में सुहावना समय है, लेकिन अंधी आस्था में 'रूहों-मृतात्माओं' के दर्शन भी हो जाते हैं। बड़ी शाहनी को 'साक्खयात आबडयाल वाली ब्याह का लाल सुन्दर गोटेवाला जोड़ा और नाक में सोने का लौंगड़ा' रूप में दिखाई देती है-बड़े शाह की स्वर्गीय पहली पत्नी। कृष्णा सोबती परिवेश चित्रण में इतनी बारीकबीनी से दत्तचित्त हो सृजन करती हैं कि मानव शरीर के अंग-अंग से लेकर बाह्य परिवेश के हर अंश भी उसमें समन्वित हो जाते हैं। 'ओलू में शाहनी के मल मल नहाने' का भी पूरा दृश्य और 'आबडयाल वाली का परधावाँ उतरने' को वे साथ-साथ चित्रित करती चलती हैं। बाह्य परिवेश-चित्रण में गुरुद्वारे में गुरवाणी गायन को भी वे परिवेश-चित्रण का अंग बनाकर प्रस्तुत करती हैं।

रात और प्रभात के चित्रण के बाद जीवन के समूचे कार्य-व्यापारों का चित्रण लेखिका करती हैं। लेखिका ने उपन्यास में पंजाबी जन-जीवन के, उसकी लोक-संस्कृति के हर पहलू को व्यवस्थित रूप से चित्रित करने की शिल्पविधि अपनाई है। और इस क्रम में लोहड़ी के पहले के पंजाबी संस्कृति के रोचक रूप 'त्रिंजन' का चित्रण प्रस्तुत होता है। 'त्रिंजन' में गांव की कुँवारी लड़कियाँ मिल-बैठकर चर्खा कातती हैं, हँसती-बोलती, गीत गाती हैं और एक समां सा बाँध देती हैं। इस चित्रण में औरतों की आपस की छेड़छाड़ भी शामिल है। यह कातना, नाचना-गाना, हँसना-खेलना, बिना खाए-पिए कैसे हो सकता है? सो गुड़ की पिन्नियाँ, सीलम के मरुंडे, शीरनी के थाल, दूध के छन्ने भी साथ ही रहते हैं। सर्दी में ही यह सब खाया-पिया जाता है। और आधी रात तक स्त्रियों का यह खुशी भरा त्योहार चलता रहता है।

लोहड़ी पंजाब में 13 जनवरी के आसपास, सर्दी के शिखर के अवसर पर मनाई जाती है, जब पूरा गाँव-मोहल्ला इकट्ठे बैठकर उपलों को जलाकर आग सेंकता है, नाचता-गाता है, खाता-पीता है और सर्दी को एक तरह से सामूहिक रूप से खूबसूरत विदाई देता है। लड़कियाँ यदि इस मौके पर त्रिंजना लगाती हैं तो लड़के, खासकर छोटे लड़के क्यों पीछे रहें? लोहड़ी से कुछ दिन पहले ही गा-बजाकर घर-घर से विशेषत: जिन घरों में लड़कों का पिछले एक वर्ष के अंदर जन्म हुआ है, उनसे ज़ोर से 'लोहड़ी' माँगी जाती है। कृष्णा सोबती ने उस परिवेश को 'ज़िन्दगीनामा' में जैसे साक्षात् दृश्यमान् कर दिया है -

"आयेगी भई आयेगी
इस घर लोहड़ी आयेगी
आने वाली लोहड़ी पर
शानो की माँ गोदी में
बच्चड़ा खिलायेगी
आ तेरा गीमड़ा जीये
शानो का वीटड़ा जीये।"

('ज़िन्दगीनामा', पृष्ठ 35)

वैसे लड़कों के जन्म के ये चाव पंजाबी संस्कृति के सामंती पक्ष को ही इंगित करते हैं, जो ज़मीनों-जायदादों के 'वारिस' लड़के के रूप में ही देखता है। लोहड़ी की रात विभाजनपूर्व पंजाब के गाँवों-कस्बों में ऐसा खुशियों व चावों से भरा सामूहिक उत्सव का रूप प्रस्तुत करती थी, जो आज की दीवाली से भी कहीं अधिक आकर्षक था। इस उत्सव में पूरा गाँव, बिना किसी धार्मिक भेद-भाव के शामिल होता था। इस पूरे उत्सव को 'ज़िन्दगीनामा' में कृष्णा

सोबती ने ऐसा सजीव बना कर प्रस्तुत किया है। कि उनके परिवेश-चित्रण के कौशल का लोहा मानना पड़ता है।

पुत्र-प्राप्ति की मन्नत मानना, इसके लिए पीर-फकीरों को पूजना आदि पहले भी आम बात थी और अब भी यह लोकरीति खतम नहीं हुई है। चाची मेहरी को साथ ले शाहनी संतान प्राप्ति की चाह लिए बाबा फरीद के दरबार में मन्नत मानने जाती है तो रास्ते में चाची मेहरी अपनी पहली ससुराल में रुकती है, जहाँ वह 'लड्डिक्को' कहलाती थी, जहाँ उसका देवर साहिब सिंह जैसे उसी की इंतज़ार में था। इस घर में दीदार सिंह से उसका ब्याह हुआ था, जिसकी मृत्यु के बाद वह गणपत शाह के इश्क में रंग कर चाची मेहरी बन गई थी। लेकिन इस प्रसंग में सामंती समाज में भी तमाम बंधनों के बावजूद स्त्री-पुरुष के इश्क होने व परवान चढ़ने को लेखिका ने बड़ा आकर्षक बना कर प्रस्तुत किया है। न सिर्फ बाह्य परिवेश-चित्रण में ही, वरन् उपन्यास के चरित्रों के मनोगत व आंतरिक चित्रण में भी लेखिका ने बड़ी दक्षता का परिचय दिया है। अपने सभी किरदारों-शाहजी, शाहनी, छोटे शाह-बिंद्रादयी, राबयाँ, लाली, चाची मेहरी आदि के व्यक्तित्वों को स्वरूप प्रदान करने वाले बाह्य पक्षों अर्थात् सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश को तो लेखिका ने पूरे कौशल के साथ चित्रित किया ही है।

सामाजिक परिवेश को चित्रित करते समय लेखिका सहज रूप में ही 'ज़िन्दगीनामा' में प्रस्तुत कालखण्ड, जो कि 1907-1915 के बीच का कालखण्ड है, का राजनीतिक संदर्भ भी चित्रित करती चलती हैं। लेखिका ने उपन्यास में कहीं भी किसी ईसवी सन् आदि का ज़िक्र नहीं किया है, किंतु उसके चरित्र जिस प्रकार गदरी इन्कलाबियों या मदन लाल ढींगरा की शहादत, बंग-भंग या बंगाल के पुन:एकीकरण आदि की चर्चा करते हैं, उससे उपन्यास में प्रस्तुत कालखण्ड का स्पष्ट आभास हो जाता है। 'ज़िन्दगीनामा' भाग एक (ज़िंदा रुख) में प्रस्तुत कालखण्ड 1907-1915 के बीच का है और इस कालखण्ड की औपनिवेशिक नीतियों या कि ब्रिटिश प्रशासनिक तंत्र का भी वे यथार्थ वर्णन करती चलती हैं। आज भी देश में ब्रिटेन द्वारा स्थापित औपनिवेशिक प्रशासन तंत्र का ही ढाँचा चल रहा है, जिसका मुख्य अंग है - पुलिस तंत्र। यह पुलिस तंत्र अत्यंत क्रूर, अमानवीय व भ्रष्ट ब्रिटिश काल से ही है, जिसने अपने इन 'गुणों' में 'आजाद' भारत में और भी 'तरक्की' की है। पुलिस तंत्र के इस स्वरूप को 'ज़िन्दगीनामा' में भी उघाड़ा गया है। इसे सबसे पहले सिपाही लाल खाँ के किरदार रूप में देखा जा सकता है, जो सरकारी अहलकार पैंडा खाँ के कत्ल की तफ्तीश के लिए गाँव आता है और पूरा गाँव थानेदार सलामत अली के सामने हाज़िर हो जाता है। पुलिस मार-पीट के सिवाय और कुछ तो जानती नहीं, पंजाबी ग्रामीण पुलिस की मार भी खाते हैं और पंजाबी मिरासी-कंजर-सांसी मार खाकर भी उसकी हँसी उड़ाते हैं। इस तरह पुलिस की क्रूर मार और पंजाबी स्वभाव का इस मार का हँस कर सामना करना - इस पूरे परिदृश्य को लेखिका ने बड़े जीवंत रूप से 'ज़िन्दगीनामा' में चित्रित किया है। पंजाब के गाँवों में से वैसे ही दो चार लोग ज़रूर किसी कत्ल जैसे अपराध में जेल में बंद रहते हैं और पीछे उनके परिवार कष्ट झेलते हैं, इस स्थिति के यथार्थ को भी लेखिका ने करम बीबी और उसके पोतरे बरखुरदार के जीवन के माध्यम से उघाड़ा है।

बड़ी शाहनी का गर्भवती होना उपन्यास का महत्वपूर्ण प्रसंग बन कर चित्रित हुआ है। सिर्फ गर्भवती होना ही पूरे गाँव में उत्सव मनाने का अवसर प्रदान कर देता है। पूरे गाँव को खिलाया-पिलाया जाता है। इसके बाद तो बड़ी शाहनी के लड़का पैदा होने तक और फिर उसके बाद भी शाहों के घर में और कुछ हद तक गाँव भर में उत्सवप्रियता का ही आलम बना रहता है।

इस उत्सवप्रियता का शिखर है - बच्चे लाली का जन्म। गाना-बजाना शाह जी की बहनों व दूसरे संबंधियों का आना जाना, पूरे गाँव को खिलाना-पिलाना, फिर विभिन्न रस्में - सुखनाहन - शाहनी का नहा धोकर - चौके चढ़ना, और इसी क्रम में राबयाँ का शाह-परिवार से जुड़ते चले जाना आदि एक ही सूत के विभिन्न मनके हैं।

लोहड़ी के बाद बैसाखी पंजाब के गाँवों का महत्वपूर्ण त्योहार है, जब किसानों की फसलें पक जाती हैं और उन्हें बेचकर खुशियाँ मनाने के मूड में होता है। जगह-जगह बैसाखी के मेले लगते हैं, डेरा जट्टा गाँव की बैसाखी का लेखिका ने 'ज़िन्दगीनामा' में बड़े मनोयोग से चित्रण किया है। इस चित्रण में केवल हँसना-खेलना या गाना-बजाना ही नहीं है, किसानों-मेहनतकशों के शाहों द्वारा शोषण को भी रेखांकित किया गया हैं 'दानों के ढेर लगे-खेत तो शाहों के ही न! अपने हिस्से तो मेहनताना - वाढी की कुछ भरियाँ ! ' किसानों के शाहों के ऋण-जाल में फँसे होने के आर्थिक दुष्चक्र को भी लेखिका ने अपने परिवेश-चित्रण का अंग बनाया है, जिससे परिवेश-चित्रण में सामाजिक यथार्थ का प्रामाणिक रूप भी उजागर हुआ है। किस प्रकार शाहों द्वारा दी गई सौ रुपये की मूल रकम ब्याज के जाल में फँस कर एक हजार रुपये तक पहुँच जाती है, बड़े शाह के लिए यह साधारण बात है, क्योंकि, 'साहूकारी पेशा है। किसी ने दिलजोही के लिए नहीं बनाया-चलाया' (पृ 84) इसी पेशे के चलते एक सौ एक रुपये लेकर शाहों के पुरखे इस गाँव में आकर बसे थे, लेकिन 'जो छुआ सोना बन गया। अब गाँवों के गाँव उनकी मिल्कियत बन गए हैं। आर्थिक शोषण शाहों का मूल कर्म है, इसे लेखिका ने उपन्यास के सांस्कृतिक सौन्दर्य में छिपाया नहीं है।

न्यायिक व्यवस्था अर्थात् कोटे-कचहरी भी पुलिस तंत्र की तरह ब्रिटिश उपनिवेशवादी व्यवस्था की देन है, जो अभी भी उसी रूप में बरकरार है। इस न्यायिक तंत्र में आम आदमी कितना पिसता है और कैसे शाह जैसे धनी लोग ही मुकदमें जीतते हैं, इसे अत्यंत कौशल के साथ उपन्यास में चित्रित किया गया है। इस प्रकार परिवेश को यथार्थ और जीवन्त बनाने के लिए कृष्णा सोबती ने संस्कृति के साथ ही भ्रष्ट न्यायिक तंत्र का भी प्रामाणिक चित्रण किया है।

गांवों के जीवन में कत्ल होना सनसनी ज़रूर फैलाता है, लेकिन ऐसी घटनाएँ पंजाब के ग्रामीण जीवन का सामान्य अंग रही हैं। शाहदाद के कत्ल, तारेशाह द्वारा बरकती को उठा लाने की घटना आदि ऐसे ही प्रसंग है, जिनमें गाँवों में अपराध के प्रति भी एक रोमांच भाव दृष्टिगोचर होता है। इन आपराधिक घटनाओं की बहादुरी के प्रति एक प्रशंसा का भाव भी लोगों में बना रहता है।

बैसाखी के बाद 'ज़िन्दगीनामा' में सावन के बरसात के मौसम का भी चित्रमय अंकन किया गया है। 'सावन की जल-बिंबियाँ यह जा और वह जा! फणकारे मारते पनीले मींह ऐसे घिर-घिर आए ज्यों गाज़ी मरदों के लश्कर। बादल गरजे-कड़कें कड़ाकों से मानो फ़ौज़ों की टुकड़ियाँ! बिजली लप्प-लप्प चमकें ज्यों तलवारें! चमा-चम्म! झमा-झम्म!' प्राकृतिक परिवेश के अभाव में सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश जीवंत नहीं हो सकता , इसे कृष्णा सोबती ने बखूबी समझा है।

पंजाब के ग्रामीण जीवन का एक महत्वपूर्ण पहलू रहा है - फौज में भर्ती का, फौज में लड़ते हुए शहीद होना या फिर फौज से रिटायर होकर गाँव में बसने का। फौज में भर्ती से लेकर, युद्धों में फौजियों की शूरवीरता, शहादतें या रिटायर फौजियों के अनगिनत किस्से गाँव के जीवन का अभिन्न अंग रहे हैं। 'ज़िन्दगीनामा' में भी जहाँदाद और गंडा सिह रिटायर होकर फौजी जीवन के किस्सों से गाँव भर का जी बहलाते रहते हैं। यहाँ 33 पंजाब और 40 की बटालियनों के अनगिनत किस्से हैं। इसके साथ ही फौजियों की आपसी दुश्मनियों की बातें भी हैं। 33 पंजाब के लबाणा जाति के फौजी थे तो रजमेंट 40 पंजाबी में सभी धर्म व जातियों के लोग थे - 'अपनी रजमेंट 40 पंजाबी। 40 पंजाबी मशहूर मुल्की पलटन है। कोई जात-ज़िरगा नहीं जो इसमें न हो। इसमें जट्ट, राजपूत, बुनेरवाल, स्वाती, गिलज़ई, दुर्रानी, बजौरी, भट्टानी, यहाँ तक कि इसमें गोरखे तक शामिल है।' ये सभी तथ्य उपन्यास में प्रसंगत: ही आए हैं।

डेरा जट्टा गाँव के जीवन में गाँववासियों का इकट्ठे बैठकर गप्पे लड़ाना एक बड़ा जीवंत दृश्य है। वैसे तो भारत में हर गाँव में सामूहिक गप-शप के लिए एक केन्द्रीय जगह रहती ही

है। इसी चौपाल चर्चा को 'ज़िन्दगीनामा' में 'मजलिस' भी कहा गया है। इस मजलिस का एक दिलचस्प विषय रहा है - पंजाब के विभिन्न क्षेत्रों के लोगों की चारित्रिक विशिष्टताओं के अंकन का 'मिटटी-पानी, कद-बुत, वजह-कतह और लहजे से यह पहचानना कि आदमी लहंदे का है या पोठोहार का या माझे का।' विभाजनपूर्व पंजाब की सात उपभाषाएँ थीं - लहंदी, पोठोहारी, मुल्तानी, झांगी, माझी, मलवई, दोआबी। इस समय भारतीय पंजाब में मलवई मुख्य उपभाषा है, माझी और दोआबी केन्द्र से हट गई हैं। जबकि पाकिस्तानी पंजाबी में माझी केन्द्रीय उपभाषा और लहंदी, पोठोहारी, मुल्तानी और झांगी अन्य उपभाषाएँ रही हैं। इन्हीं उपभाषाओं के केन्द्र विभिन्न शहर-कस्बे हैं, जिनके नाम से वहाँ के बाशिंदों की चारित्रिक विशेषताएँ भी जुड़ी हैं, जैसे 'स्यालकोट तो सेहरा हुआ पंजाब का', 'स्यालकोटिये चाल-ढाल में शौकीन - ज़हीन और गुफ्तगू में बारीक' (पृ. 131) स्यालकोट संबंधी बड़ा प्रसिद्ध लोकगीत है - 'तेरे मुखड़े ते काला काला तिल वे-वे मुंडिया स्यालकोटिया' (ओ स्यालकोट के लड़के, तेरे चहरे पर काला-काला तिल है)। लाहौर के बाद स्यालकोट पंजाब का प्रसिद्ध शहर रहा है, जो भारतीय सरहद में जम्मू व गुरदासपुर के बहुत ही नज़दीक है।

गुजरात विभाजनपूर्व पंजाब का महत्वपूर्ण ज़िला रहा है, जहाँ पर कृष्णा सोबती का जन्म हुआ था। वहाँ के लोगों के संबंध में 'ज़िन्दगीनामा' के पात्र कहते हैं - "गुजराती बंदे बड़े ऐबचीं और बदगुमान ! --- मिज़ाज से बातूनी और दूसरों के बखिए उधेडने में माहिर।" लाहौर के बारे में कहा है - "जो लाहौर नहीं गया, वह जन्म्या ही नहीं"। बिल्कुल इसी शीर्षक से पिछले वर्षों असगर वज़ाहत का नाटक खूब खेला गया, चर्चित हुआ व सराहा भी गया।

स्थानीय परिवेश के चित्रण की दृष्टि से चौपाल-चर्चा का विशेष महत्व होता है। शाह दरबार में लगने वाली मजलिस में नाई रमजान, चौधरी मौलादाद, मौलबी इल्मदीन, कृपाराम, कर्म इलाही, रमजान, पिण्डीदास, फत्ते खाँ, गण्डा सिंह आदि जैसे लोगों के बीच चलने वाली वार्ता में तमाम सारी गप्पों के साथ पंजाबी जीवन के महत्वपूर्ण पहलू भी उद्घाटित होते हैं। इस चर्चा में लाहौर, काबुल, स्यालकोट आदि जैसे कस्बों का निजीपन ही नहीं, पंजाब की विभिन्न जातियों का जातीय चरित्र भी उद्घाटित होता है। यह चौपाल ही है, जो डेरा जट्टां को पूरे पंजाब से जोड़ देता है। इस प्रकार 'ज़िन्दगीनामा' पंजाब के पूरे परिवेश का प्रामाणिक दस्तावेज बन जाता है।

चौपाल की इसी चर्चा के दौर में देश की राजनीति पर भी चर्चा होती है, हालाँकि पूरे गाँव में एकाध अखबार ही आता है, वह भी कई दिनों के बाद। सिर्फ बाहर से आने वाली चिट्ठियों या किसी मेहमान के गाँव में आकर जाने के बाद गाँव वालों को चर्चा के लिए खबरों का खज़ाना मिल जाता है। लाला लाजपत राय की वकालत की चर्चा भी डेरा जट्टां गाँव की चौपाल में होती है।

इसी चौपाल चर्चा के बहाने लेखिका ने पजाब की तमाम मिठाइयों को भी पाठकों के सामने उनकी पूरी रसमयता के साथ पेश कर दिया है। संदर्भ दीवाली चित्रण का है, विशेषत: लाली की पहली दीवाली का। इस अवसर पर मिठाइयों की सूची बनती है। हलूके के लड्डू, खांड मलेके मट्ठे, मक्खनबड़े, बालूशाहियाँ, अंदरस्से, शीरनी, कुलियाँ बताशियाँ, मखाने, कड़ाह प्रसाद, छैनामुर्गी, कलाकंद, कत्तलम्मे, बदाना आदि मिठाइयों की चर्चा होती है, किंतु दीवाली का वैसा चित्रण 'ज़िन्दगीनामा' में नहीं है, जैसा लोहड़ी का। संभवत: दीवाली शहरी त्योहार अधिक है और विभाजनपूर्व पंजाब के गाँवों में आतिशबाजी या पटाखे चलाने का ज्यादा रिवाज न रहा हो।

चौपाल चर्चा में पंजाब की गर्म राजनीति पर चर्चा बढ़ जाती है। छोटा काशीशाह क्योंकि अखबार पढ़ता है, उसी से सब खबरें पूछी जाती हैं। खबरों में 'पगड़ी संभाल जट्टा' गीत की गूँज, दंगे फसाद, बंगाल के दो टुकड़े होने (1905), लाजपत राय और अजीत सिंह को जलावतन करने (1907) आदि की चर्चा के साथ-साथ ब्रिटिश सरकार की जमकर आलोचना

भी डेरा जटटां गाँव के लोग करते हैं। 'जिन्दगीनामा' उपन्यास में लेखिका ने स्वतंत्रता संग्राम के संदर्भ में पंजाब में व्याप्त उपनिवेशवाद विरोधी भावनाओं को भी यथार्थ रूप से बड़ी कलात्मकता के साथ अंकित किया है।

शाहों के घर जन्मे लालीशाह के लिए उत्सव चलते ही रहते हैं। इसके लिए गाँव में लखनवाल वाली बुद्धा और हुस्ना को गाने के लिए बुलाया जाता है, ज़िससे सारे गाँव में उत्तेजना फैली है, इसी बहाने पंजाब की लोकगायन परंपराओं-टप्पे, पूर्ण भगत, सस्सी, पुन्नू, मिर्जा,-साहिबाँ, काफियाँ, हीर आदि की चर्चा भी हो जाती है। चौपाल चर्चा में औरतों की किस्मों की भी गिनती लेखिका ने किरदारों के माध्यम से करवा दी है।

उपन्यास में चौपाल चर्चा या मजलिस बहुत सी बातें कहने का माध्यम बनी हैं। इसमें पंजाब की इतिहास चर्चा भी शामिल है। लाहौर के जालिम सूबेदार मीर मन्नू, अब्दाली शाह दुर्रानी, सिख प्रतिरोध, गुरु गोविन्द सिंह की भूमिका आदि पर चर्चा होती रहती है।

उपन्यास में धर्म और जाति से ऊपर उठकर इश्क के अनेक किस्से हैं। विधवा ब्राह्मणी का मुसलमान से प्यार, तारेशाह का छोटी जाति की स्त्री से प्यार आदि अनेक किस्सों द्वारा लेखिका ने दिखाया है कि सामंती संस्कृति व्यक्तिगत भावनाओं को धर्म आदि दबावों द्वारा जितना चाहे दबा ले, इंसान की प्राकृतिक भावनाएँ समय पाकर अपनी अभिव्यक्ति प्राप्त करके ही रहती हैं।

उपन्यास में पंजाब के सामाजिक-राजनीतिक इतिहास में धर्म-सुधार आंदोलन के रूप में आर्य समाज व स्वामी दयानंद के प्रभाव को गाँव में आर्यसमाजी प्रचारक के माध्यम से अंकित किया है। यद्यपि आर्यसमाजी के प्रचार का ढंग ग्रामीण जीवन में मज़ाक का विषय अधिक बनता है, सुधार का कम। इससे पता चलता है कि सुधार के लिए भी खाली तर्क नहीं, सांस्कृतिक परिवेश को समझना भी ज़रूरी है। रेलगाड़ी शुरू होने व लोगों में आश्चर्य भाव पैदा होने का जिक्र भी उपन्यास में है। पंजाबी कैसे बीसवीं सदी के आरंभ में ही इंग्लैंड, कनाडा आदि देशों में जाकर बसना शुरू हुए, इसका पता भी डेरा जट्टां गाँव के परिवेश-चित्रण से ही लग जाता है।

उपन्यास के अंत तक आते-आते लाम लगने अर्थात् द्वितीय विश्व युद्ध शुरू होने (1914) का वर्णन भी है। इस युद्ध के दौरान गाँव से ज़बरदस्ती फौज की भर्ती का दृश्य डेरा जट्टां गाँव के माध्यम से लेखिका ने चित्रित किया है। फौज के प्रति पंजाबियों के आकर्षण को लेखिका ने युद्ध के समय एक लाख पंजाबी सैनिक फौज में होने व हर 28 फौजियों में से एक के पंजाबी होने के उल्लेख द्वारा व्यक्त किया है।

मिट्ठी के ब्याह की योजना द्वारा लेखिका ने शादी के उत्सव और रस्मों का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। बारात की सेवा, गाना-बजाना, खिलाना-पिलाना इस उत्सव का मुख्य आकर्षण हैं।

अभी युद्ध चल ही रहा है कि गदरी आंदोलन शुरू हो जाता है। उपन्यास में गदरी इन्क्लाबियों के कारनामों व गुजराती वकील (गांधी)-दोनों की यथोचित चर्चा हुई है।

उपन्यास का अंत लेखिका गदरी क्रांतिकारियों के प्रति सहानुभूति व समर्थन की भावना के साथ गुरु गोविन्द सिंह के इस संदेश द्वारा करती हैं कि "चूँ कार अज़ हमां हीलते दरगुज़श्त। हलालस्त बुर्दन ब-शमशीर दस्त!!''

'जब दूसरे सब रास्ते कारगर न हों सकें तो जुल्म के खिलाफ तरवार उठा लेना ज़ायज़ है!'

'ज़िन्दगीनामा' मूलत: विभाजनपूर्व पंजाब के जन-जीवन की लोक-संस्कृति पर आधारित उपन्यास है, जिसके सांस्कृतिक परिवेश को लेखिका ने अत्यंत कौशल के साथ जीवंत रूप में चित्रित किया है।

पंजाब के तीन त्योहारों-लौहड़ी, बैसाखी व दीवाली का तथा अन्य अनेक लोक उत्सवों का लेखिका ने मनोयोग से चित्रण किया है। होली का चित्र इसमें शामिल नहीं है, संभवत: विभाजनपूर्व पंजाब के ग्रामीण परिदृश्य में होली का विशेष महत्व न रहा हो। यह भी हो सकता है कि सिक्खों और मुसलमानों के बीच होली के प्रति अनुत्साह के कारण लेखिका ने स्वयं इसे छोड़ दिया हो।

लोक संस्कृति के साथ-साथ लेखिका ने तत्कालीन पंजाब के सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक परिवेश को भी बड़े यथार्थ व प्रामाणिक रूप से अंकित किया है। इससे यह उपन्यास 1907-1915 के कालखण्ड का ऐतिहासिक-सांस्कृतिक दस्तावेज भी बन गया है।

कुल मिलाकर कृष्णा सोबती द्वारा 'जिन्दगीनामा' उपन्यास में परिवेश-चित्रण का ऐसा सज़ीव रूप प्रस्तुत किया गया है, जो अन्य आंचलिक उपन्यासों के लिए एक प्रतिमान बन सकता है।

8.4 ज़िन्दगीनामा : भाषा-सृजन

'ज़िन्दगीनामा' एक विशिष्ट परिवेश को प्रस्तुत करने वाला उपन्यास है, इसलिए इसकी भाषा-शैली में भी परिवेशगत विशिष्टता होनी स्वाभाविक है। अंचल विशेष की संस्कृति को अभिव्यक्त करने वाली विशिष्ट सृजनात्मक भाषा का समावेश ऐसी रचना के लिए आवश्यक है। 'ज़िन्दगीनामा' में इसकी लेखिका कृष्णा सोबती ऐसी ही भाषा का सृजन करने में पूर्णतया सफल रही हैं। इस उपन्यास की भाषा अत्यधिक पंजाबी की रंगत के कारण गैर पंजाबी पाठकों के लिए गंभीर समस्या बन जाती है, बावजूद इसके लेखिका की भाषा-सृजन क्षमता को यह पूरी तरह उद्घाटित करती है।

किसी भी रचना में परिवेश-चित्रण और भाषा-सृजन के बीच अभिन्न संबंध की स्थिति रहती है। जितना यह संबंध प्रगाढ़ होता है, उतना ही रचना की कलात्मकता का स्तर ऊँचा होता है। 'ज़िन्दगीनामा' का परिवेश विभाजनपूर्व पंजाब के ग्रामीण जीवन पर केन्द्रित है, जाहिर है इस जीवन को प्रस्तुत करने वाली भाषा में सहजता व लोक तात्विकता का गुण होना चाहिए, जो 'ज़िन्दगीनामा' की भाषा में भरपूर है।

विभाजनपूर्व पंजाब के भाषायी रंग भी कम से कम सात थे। 'ज़िन्दगीनामा' में गुजरात ज़िले के गाँव डेरा जट्टाँ को केन्द्र में रखा गया है, तो इस क्षेत्र के भाषायी रंग को ही 'ज़िन्दगीनामा' में लेखिका द्वारा पुन:सृजित किया जाना था। लेकिन हिन्दी जैसी भिन्न भाषा में पंजाबी का लोकरंग सृजित करना, लेखिका के लिए एक बड़ी चुनौती थी, जिसे उसने स्वीकार किया है। लेखिका द्वारा सृजित भाषा का लोकरंग तो उपन्यास के गद्य रूप के आरंभ से ही पहले रचित कविता में ही प्रकट होने लगता है। लेखिका ने पंजाब की धरती के जो आकर्षक व खूबसूरत बिंब इस कविता में सृजित किए हैं, उसमें भाषा की बड़ी भूमिका है। पंजाबी लोकरंग को बड़ी ही सहज हिंदी में लेखिका ने- 'गन्दम की इलाही लाली', 'खुले डुले पंजाब की हीरें और उसकी खलंदड़ी सहेलियाँ', 'भरी-भरी गदराई वेंहें/मोटे-गाढ़े खद्दर-पट्ट में लिपटी/मेहनत महारानियाँ', 'गेहूँ की सुनहली फसलें', 'सगुणों के बाग और फुलकारियाँ-, 'खुशहाल धरती का खुशहाल लिश्कारा' आदि जैसे विशेषण बहुल बिम्बों के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

उपन्यास के गद्य भाग के आरंभ से ही लेखिका ने भाषा पक्ष की ओर से विशेष ध्यान केन्द्रित किया है। उपन्यास में विवरणात्मकता की बजाए बिंबात्मकता पर अधिक बल दिया गया है

और पूरा उपन्यास दृश्यों व बिंबों की एक लड़ी की तरह संगुम्फित हुआ है। दृश्यों व बिंबों की लड़ी के सृजन में भाषा द्वारा स्थानीय स्पर्श और रंगत को अत्यंत मार्मिक ढंग से उभारा गया है। इस लोकरंग को उभारने में पंजाबी भाषा का अत्यधिक गाढ़ा रंग हिन्दी भाषा के सौन्दर्यमूलक रूप को बढ़ाने के लिए प्रयुक्त किया गया है। गाँव को 'पिण्ड', चाँदनी को 'चान्ननी', वृक्ष को 'वृख', मनुष्यों को 'मनुक्खों' के रूप में पढ़ने पर हो सकता है कि पंजाबी से अनजान पाठकों को कुछ दिक्कत लगे, लेकिन हिन्दी की 'हिन्दुस्तानी' या उर्दूनुमा शैली से परिचित पाठकों को ऐसे शब्दों से ज्यादा दिक्कत महसूस नहीं होगी। दूसरे, क्योंकि उपन्यास के आरंभ से ही भाषा-सृजन का ऐसा समा लेखिका ने बाँधा है कि धीरे-धीरे पंजाबी से अभिज्ञ पाठक भी इसके रस में भीगने लगता है और संदर्भ से भी शब्दों के अर्थ ग्रहण करने लगता है।

कृष्णा सोबती के भाषा-सृजन में प्रवाहमयता व लोकरंगत में सराबोरता एक विशिष्ट गुण है, जो 'ज़िन्दगीनामा' को एक विशिष्ट रूप प्रदान करता है।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि लेखिका ने 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास में पंजाबी भाषा का अत्यधिक प्रयोग किया है, संभवत: रेणु के 'मैला आँचल' में प्रयुक्त मैथिली रंग से भी अधिक। यह भी सही है कि जो समस्या मैथिली भाषा से अपरिचित पाठकों को 'मैला आँचल' पढ़ने में आती है, लगभग वैसी ही समस्या 'ज़िन्दगीनामा' पढ़ने वाले पंजाबी से अपरिचित पाठकों को भी आती है, किंतु जिस भाषा का प्रयोग रेणु व कृष्णा सोबती ने अपनी-अपनी औपन्यासिक कृतियों में किया है, वह प्रयोग इन रचनाओं की आंतरिक कलात्मक माँग थी। ये दोनों रचनाएँ यदि हिन्दी के खड़ी बोली गद्य के साधारण पारंपरिक रूप में लिखी जातीं तो शायद इन्हें वह प्रतिष्ठा न मिलती, जो इन रचनाओं को इस भाषायी रंगत के कारण प्राप्त हुई है। दोनों ही रचनाएँ एक अंचल विशेष के ग्रामीण परिवेश के गहरे सांस्कृतिक परिवेश को अभिव्यक्त करने वाली रचनाएँ हैं। अंचल विशेष के इस सांस्कृतिक परिवेश को अभिव्यक्त करने वाली भाषा भी साधारण गद्य की भाषा नहीं हो सकती। उस भाषा में लोकरंगत की अभिव्यक्ति-क्षमता होनी अनिवार्य है। लोकरंगत की अभिव्यक्ति की इसी अनिवार्यता से 'ज़िन्दगीनामा' की भाषा ने यह रूप ग्रहण किया है।

यहाँ रेणु और कृष्णा सोबती के भाषा-प्रयोग पर विचार करते हुए 'मैला आंचल' और 'ज़िन्दगीनामा' के संदर्भ में एक तथ्य की ओर संकेत करना आवश्यक है। रेणु ने पात्रों के सम्वाद में ही मैथिली भाषा का प्रयोग किया है। जब वे अपनी ओर से कथा-सूत्र जोड़ते हैं या टिप्पणी करते हैं तो उनकी भाषा खड़ी बोली हिन्दी के सहज रूप में सामने आती है। लेकिन कृष्णा सोबती पर विशेष रूप से इस उपन्यास में, पंजाबी के प्रति इतना गहरा आग्रह दिखायी देता है कि स्वयं अपनी टिप्पणियों और संयोजन सूत्र-स्थापन के समय भी प्राय: पंजाबी भाषा का ही प्रयोग करती हैं। 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास का आरंभिक काव्य-भाग तो इसका प्रमाण है ही, अन्यत्र भी इसका स्पष्ट रूप से समावेश मिलता है। उदाहरणार्थ उपन्यास की आरंभिक पंक्तियाँ हैं -

> 'शरद पुण्या की रात। पिण्ड के कच्चे कोठे चम्मचम्म चमकने लगे। दमकने लगे। चान्ननी ने सजरी लिपाई से खेत-खिलहान रुख-वृख सब उजरा-उजला दिए। कूओं के मिट्ठड़े सुर झलमल-झलमल हियरों को हुलसाने लगे।'

इस तरह के तमाम सारे उद्धरण 'ज़िन्दगीनामा' से दिए जा सकते हैं। हिन्दी में उपन्यास लिखते समय इस प्रकार की भाषा नीति बहुत सार्थक नहीं है।

'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास में लोक संस्कृति के अनेक पक्षों का अंकन हुआ है, जैसे 'शरद पुण्या की रात', 'त्रिंजन', 'लोहड़ी', बैसाखी', 'जन्म विवाह व मृत्यु' की रस्में आदि। इन सब पक्षों के चित्रण में लोकगीतों, लोककथाओं, मुहावरों-लोकोक्तियों का अनूठा प्रवाह बहता है। ज़ाहिर

है कि इन सभी पक्षों का भाषायी रूप अंचल विशेष का स्थानीय रूप ही होगा। लेकिन लेखिका ने पंजाबी भाषा के इस लोकरंग का कहीं-कहीं बड़ी सृजनात्मकता से हिंन्दी में भी ढाला है, जैसे 'त्रिंजन' के समय का यह लोकगीत - 'रुई बिन पिंजन कैसा/चरखे बिन त्रिंजन कैसा! ' पंजाब में 'त्रिंजन' में गाँव की लड़कियाँ इकट्ठी होकर चर्खा कातती व गीत गाती हैं। 'त्रिंजन' में हिन्दू-सिख-मुसलमान समुदाय की सभी स्त्रियाँ समान रूप से हिस्सा लेती हैं।

'त्रिंजन' के साथ ही 'लोहड़ी' के गीत भी सांस्कृतिक सौन्दर्य से भरपूर हैं। 'लोहड़ी' पर जिन घरों में एक साल के अन्दर लड़कों का जन्म हुआ है, उनसे 'लोहड़ी' के रूप में गुड़ की मिठाई, उपले आदि माँगे जाते हैं। लड़के गलियों में, घरों के आगे 'लोहड़ी' के गीत गाते हैं।

आयेगी भई आयेगी
इस बार लोहड़ी आयेगी
आने वाली लोहड़ी पर
शानों की माँ गोदी में
बच्चड़ा खिलायेगी।

पंजाबी के इस लोकरंग को कृष्णा सोबती ने हिन्दी की अपेक्षाकृत सहज और प्राकृतिक रूप में ढाल कर प्रस्तुत कर दिया है। इस प्रकार के अनेक पंजाबी लोकगीतों को 'ज़िन्दगीनामा' में हिन्दी भाषा के जामे में कलात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है।

भाषायी लोकरंगत या स्थानीय स्पर्श के समुचित विनियोग से उपन्यास में परिवेश को जीवंत रूप में अभिव्यक्ति प्राप्त होती है। जहाँ कहीं कोर्ट-कचहरी या पुलिस-प्रशासन का मामला है, वहाँ लेखिका ने कचहरी की उर्दू शब्दावली का प्रयोग किया है।

लेकिन पंजाबी शब्दों का हिन्दी में सीधे प्रयोग कई बार पाठक के लिए रसास्वादन में बाधा तो बनता ही है। जैसे - 'चिट्टा या चिट्टी' (सफेद), 'सजरा' (ताज़ा), 'चंगा' (अच्छा), 'भरजाई' (भाभी), 'वड्डा' (बड़ा), 'पिण्ड' (गाँव), 'बेहड़े' (आँगन), 'झगो' (कमीजें), 'सौंह' (सौंगध), 'सोहणी' (सुंदर), 'हट्टी' (दुकान), 'छित्तर' (जूते), 'सूक्खम' (सूक्ष्म), 'गां' (गाँव), 'प्रतक्ख' (प्रत्यक्ष), 'पोह' (पौष या पूस), 'हास्सा' (हँसी) 'टोटे' (टुकड़े), 'पौड़ी' (सीढ़ी), 'अद्धा' (आधा), 'हत्थ' (हाथ), 'राक्खा' (रक्षक), 'तत्ता' (गर्भ), 'रौला' (शोर), 'चान्नना' (रोशनी), 'तड़के' (सबेरे), 'भिच्छ्या' (भिक्षा), 'साक्खयात' (साक्षात्), 'सट्ट' (चोट), 'जेकर' (अगर या यदि) इत्यादि अनेक ऐसे शब्द हैं जो पंजाबी भाषा के ठेठ रूप को अभिव्यक्त करते हैं और जो पंजाबी से अभिज्ञ पाठकों के लिए कुछ मुश्किल पैदा करते हैं। यदि कोई पाठक भाषा विज्ञान व संस्कृत का विद्वान जानकार है तो उसकी मुश्किल कम हो जाती है, क्योंकि पंजाबी की शब्द-रचना संस्कृत के काफी निकट है। एक स्तर पर 'ज़िन्दगीनामा' का भाषा-सृजन पाठकों को भाषा-सजग भी बनाता है व उसके भाषा-ज्ञान को बढ़ाने में उत्तेजक या प्रेरक तत्व भी बनता है।

कुल मिलाकर 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास का भाषा-सृजन रचना के परिवेशगत चित्रण के अनुकूल हुआ है। चूँकि उपन्यास में चित्रित परिवेश एक गहरे स्थानीय स्पर्श और रंगत के सांस्कृतिक रूप को अभिव्यक्त करने वाला है, इसलिए उसी के अनुरूप लोकरंगत से सराबोर भाषा का विशिष्ट स्वरूप लेखिका ने बड़े कलात्मक सौन्दर्य के साथ सृजित किया है। परिवेश-चित्रण और भाषा-सृजन-दोनों ही दृष्टियों से 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास की लेखिका को महत्वपूर्ण सफलता हासिल हुई है और इस सृजन ने उपन्यास के शिल्प को भी एक विशिष्ट रूप प्रदान किया है।

8.5 सारांश

'ज़िन्दगीनामा' से संबंधित प्रस्तुत इकाई में उपन्यास की कलात्मकता के दो विशिष्ट पक्षों 'परिवेश-चित्रण व भाषा-सृजन' पर विस्तार से विचार किया गया है।

इस इकाई में आपने देखा कि 'ज़िन्दगीनामा' मुख्यत: परिवेश प्रधान उपन्यास है और इस उपन्यास में विभाजनपूर्व पंजाब के ग्रामीण जीवन की सांझी व समेकित लोक संस्कृति का जीवंत चित्रण प्राय: बिंबों के माध्यम से हुआ है। पंजाब के गुजरात जिले के एक गाँव डेरा जट्टां को केन्द्र में रख कर लेखिका द्वारा पंजाबी संस्कृति के प्रातिनिधिक रूप को परिवेशगत चित्रण द्वारा अभिव्यक्त किया गया है।

इस परिवेशगत चित्रण में लोकजीवन की विविध झाँकियाँ - 'लोहड़ी', 'बैसाखी', 'त्रिंजन', 'शादी-ब्याह' व अन्य अनेक मेलों - त्योहारों के माध्यम से उकेरी गई हैं। परिवेश-चित्रण में व्यावसायिक जीवन-किसान, मजदूर सैनिक आदि के यथार्थ चित्र को भी उद्घाटिक करने का प्रयास किया गया है।

परिवेश को यथार्थ और जीवन्त रूप में प्रस्तुत करने के लिए लेखिका ने भाषा का जो सृजनात्मक उपयोग किया है, उसे भी इस इकाई में विस्तार से स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। सांस्कृतिक परिवेश को अत्यधिक सघन और सार्थक रूप से प्रस्तुत करने के लिए कृष्णा सोबती ने मुहावरों, लोकोक्तियों, लोकगीतों, लोककथाओं का अत्यन्त कौशल के साथ उपयोग किया है। मैला आँचल की तरह इस उपन्यास में भी भाषा-प्रयोग में आंचलिकता का पुट अत्यधिक होने से कुछ पाठकों के लिए भाव एवं अर्थ-ग्रहण संबंधी कठिनाइयों की ओर संकेत भी इस इकाई में किया गया है। इसके लिए रेणु और कृष्णा सोबती के भाषा प्रयोग संबंधी साम्य ओर वैषम्य पर विचार करते हुए 'ज़िन्दगीनामा' की क्षमता अक्षमता को भी यथोचित रूप से स्पष्ट किया गया है।

8.6 अभ्यास प्रश्न

1. 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास को क्या परिवेश प्रधान उपन्यास कहा जा सकता है? स्पष्ट कीजिए।
2. 'ज़िन्दगीनामा' में लेखिका ने परिवेश-चित्रण में किन-किन पक्षों को उद्घाटित किया है?
3. 'ज़िन्दगीनामा' के परिवेश-चित्रण में लोकरंग या स्थानीय स्पर्श की क्या भूमिका है ?
4. 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास का भाषा-सृजन क्या परिवेश-चित्रण के अनुकूल है ?
5. 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास के भाषा-सृजन की प्रमुख विशेषताओं को रेखांकित कीजिए।
6. परिवेश-चित्रण की दृष्टि से 'ज़िन्दगीनामा' का मूल्यांकन कीजिए।
7. भाषा-सृजन की दृष्टि से 'ज़िन्दगीनामा' के औचित्य-अनौचित्य को स्पष्ट कीजिए।

खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें

1. प्रतिनिधि हिन्दी उपन्यास : डॉ. चमनलाल, भाग-दो, हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़।

2. कथा प्रसंग : यथा प्रसंग : डॉ. निर्मला जैन

3. उपन्यास का पुनर्जन्म : परमानन्द श्रीवास्तव, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली-22

परिशिष्ट : कृष्णा सोबती और जिन्दगीनामा

जीवन परिचय

कृष्ण सोबती का जन्म पंजाब राज्य के गुजरांवाला जिला में 18 फरवरी 1925 को हुआ था। गुजरांवाला अब पाकिस्तान में है। लेखिका ने हिन्दुस्तान विभाजन के दर्द को अनुभव किया होगा। इसंकी बहुत सार्थक प्रस्तुति जिन्दगीनामा उपन्यास में मिलती है। अपने परिवेश से घनिष्ठ रूप में जुड़ने और फिर उस डार से बिछुड़ने की पीड़ा को वे इस उपन्यास में गहराई से दर्ज करती हैं। उन्होंने लाहौर, शिमला और दिल्ली में शिक्षा प्राप्त की आजकल वे दिल्ली में स्थायी रूप से रह रही हैं। अपने सृजनात्मक लेखन से हिन्दी साहित्य को समृद्ध कर रही हैं।

कृष्णा सोबती साहित्य अकादमी की महत्तर सदस्य हैं। उन्हें अनेक राष्ट्रीय पुरस्कार और अलंकरण प्राप्त हुए हैं। वस्तुत: कम लिखना और विशिष्ट लिखना उनके लेखकीय जीवन का संकल्प है। नारे से दूर रहकर मानवीय जीवन की संवेदनशीलता की आत्मीय अभिव्यक्ति उनके लेखन की विशेषता है।

साहित्यिक योगदान

कृष्णा सोबती ने अपनी लंबी साहित्यिक यात्रा में हर नई कृति में अपनी रचनात्मक क्षमता को प्रमाणित किया है। उनकी कृतियों में 'यारों के यार तिन पहाड़' 'मित्रो मरजानी' (1967) 'डार से बिछुड़ी' 'सूरजमुखी अँधेरे के'(1971) 'जिन्दगीनामा' (1979) 'दिलो दानिश' (1993) उपन्यास रचनाएँ हैं। 'बादलों के घेरे' (कहानी संग्रह) तथा 'ऐ लड़की' उनकी लंबी कहानी है। इसके अतिरिक्त 'हम हशमत' (1999) नाम से दो भाग में उनकी संस्मरण रचना प्रकाशित हो चुकी है।

अपने लेखन में कृष्णा सोबती ने जीवन के कई पक्षों को उजागर करने का प्रयत्न किया है। मित्रो मरजानी स्त्री पुरुष संबंधों के लेकर लिखी गई है। इस उपन्यास में स्त्री पुरुष के संबंध के बदलते समीकरण का गहराई से पड़ताल किया गया है। 'सूरज मुखी अँधेरे के' उपन्यास में एक ऐसी लड़की की कहानी है जिसका बचपन में बलात्कार हो गया है। उसमें नारीत्व के अपमान का दंश एक विचित्र प्रकार की मनोवृत्ति को जन्म देता है। उस पात्र की हीनता और अवसाद के भाव को लेखिका ने मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मता से आँकने का प्रयत्न किया है। नारी संवेदना की जटिल परत के नीचे उसके तन और मन की प्यास को उकेरा गया है।

'जिन्दगीनामा' उपन्यास कृष्णा सोबती की विशिष्ट कृति है। इस उपन्यास में कथानक का फैलाव है। विभाजन पूर्व पंजाब की सामासिक संस्कृति को घनिष्ठ सहानुभूति से चित्रित करना उपन्यास की विषय वस्तु है। इनमें कथ्यात्मक विधा के रूप में उपन्यास के लिए उन्होंने नया और मौलिक रूप प्रस्तत किया है। 'ज़िन्दगीनामा' में परिवेश की स्मृति से जीवनानुभव निकलकर उपन्यास क आकार का गठन करते हैं। 'दिलोदानिश' उपन्यास में लेखिका ने दिल्ली के एक ऐसे परिवार का वर्णन किया है जिस पर अभी सामंत समाज के जीवनमूल्य हावी हैं। खानदान, इज्जत और रस्मो रिवाज उपन्यास के पात्र कृपानारायण के जीवन की धुरी है। बिरादरी की तहजीब में वे अपने हृदय के प्रेम की उपेक्षा करते हैं। उनकी इस उपेक्षा से उपन्यास की पात्रा महकबानो के जीवन का रंग उदास और धूसर हो जाता है। मकहबानो जैसी औरत की जिन्दगी का यह विषाद है कि मर्द से प्रेम तो मिलता है, लेकिन वह सामाजिक मर्यादा नहीं मिलती है जिसकी उन्हें जरूरत है। उपन्यास में छुन्ना और महकबानो स्वेच्छा से वकील कृपानारायण की जायदाद को ठुकरा देती हैं। इसके पीछे उनमें कोई क्रांतिकारी सोच अथवा आंदोलन का भाव नहीं है। इसमें केवल स्त्री की अस्मिता और स्वाभिमान है। ऐ लड़की' कहानी का पाठ अत्यंत गुंथीला है। माँ के अतीत और वर्तमान के झूलते क्षणों को काव्यात्मक सूक्ष्मता में प्रस्तावित किया गया है।

'हम हशमत' कृष्णा सोबती का संस्मरण संग्रह है। लेखिका ने अपने आस पास के मित्र, पत्रकार और लेखक के व्यवहार को जिस रूप में अनुभव किया उसे उन्होंने उसी तरह अभिव्यक्त किया। वे अंतरंग बातचीत और तटस्थ दृष्टि के जरिए व्यक्ति का वास्तविकता के आधार पर मूल्यांकन करना चाहती हैं। स्मरणीय प्रसंग के एक सूत्र के सहारे लेखिका व्यक्ति के आंतरिक अंतर्विरोधों को स्पष्टता में चित्रित करती हैं। समाज और व्यक्ति की वैचारिक गुत्थियों को खोलना तथा व्यवस्था के बीच उसकी विवशता को समझना उनके संस्मरण की विशेषता है। कृष्णा सोबती के गद्य की भाषा में विलक्षण ताजगी है। इसमें जीवनानुभव और आवेग के मिश्रण से भाषा संप्रेषण में गहनता आ गई है। उसमें सघन ऐंद्रियता और मन की परतों को कुरेदने की क्षमता है।

कब लिखी गई

'ज़िन्दगीनामा' कृष्णा सोबती की प्रतिनिधि उपन्यास रचना 1979 में प्रकाशित हुई थी। इसे 1980 में साहित्य अकादमी से सम्मानित किया गया था। विभाजन पूर्व पंजाब के सांझी संस्कृति के रिश्ते परंपराएँ, मिथकों और विश्वासों के धागे से उपन्यास का टेक्सचर बुना गया है। उपन्यास में उस परिवेश के प्रति एक प्रकार का नोस्टाल्जिक अनुभव है।

अंतर्वस्तु

जिन्दगीनामा की अंतर्वस्तु में धरती की तरह का फैलाव है। पंजाब की आंचलिक जिन्दगी के बहाव को उपन्यास के कैमरे में कैद किया गया है। उपन्यास का आरंभ ही अपनी धरती से बिछुड़ने के दर्द के साथ होता है। यह दर्द पूरे परिवेश के प्रति है। इसी कारण उपन्यास में किसी एक परिवार और जीवन पर फोकस नहीं किया गया है। परिवार, गाँव और कस्बे उपन्यास के कथानक में समाए हुए हैं। इनकी समस्याएँ इनके दुख सुख से उपन्यास की अन्तर्वस्तु निर्मित हुई है। इसलिए इसमें एक ओर शरद की पुण्या लोहड़ी, नौरात्र, वैशाखी और ईद जैसे त्योहारों की उत्सवधर्मिता है तो दूसरी ओर पंजाब के बेजमीन किसानों के पीढ़ियों से चले आ रहे शोषण का करुण चित्र दिखाई पड़ता है।

उपन्यास में नारी पात्रों के आंतरिक मनोभाव को बहुत ही मुक्त रूप से चित्रित किया गया है। उनके जीवन का दर्द और रोमांस का कथात्मक वर्णन उपन्यास में मिलता है। राबयाँ और लक्खमी, फतेह और बरकती के लिए हीर-रांझा क़ा मर्मस्पर्शी गीत महज गाने के लिए नहीं है। यह उनके आत्मानुभव से जुड़ा हुआ आत्मीय प्रसंग है। गृहस्थ जीवन के अभाव और पीड़ा के कई हृदयस्पर्शी प्रसंग उपन्यास की अन्तर्वस्तु में कचोट पैदा करते हैं।

जिन्दगीनामा उपन्यास में घरेलू जिन्दगी के विश्वसनीय पहलू सामने आए हैं। घरेलू जिंदगी में महिलाओं का कितना बड़ा योगदान होता है यह अनुभव उपन्यास पढ़ने के बाद होता है। रसोई, चरखा कातना, बच्चों का लालन पालन आदि स्त्रियों के परिश्रम के नमूने हैं। उन्हीं के श्रम और उत्साह से उपन्यास में उत्सव का वातावरण तैयार होता है। श्रम करते हुए जीवन का आनंद उठाना उनका संदेश है। इस उपन्यास के घर के आंतरिक भाग में श्रम और प्रेम की रागात्मक अनुभूति का चित्र मिलता है। घर के बाहर पुरुषों की मजलिस में कस्बाई के जीवन की विधा स्मृतियों से परिवेश की तस्वीर स्पष्ट होती है। बातचीत के माध्यम से शाह परिवार की अमीरी और गाँव के अन्य परिवार की गरीबी के बीच एक रेखा स्पष्ट होती है। शाह परिवार अपनी सत्ता को पुलिस के साथ मिलकर बरकरार रखने का प्रयत्न करता है। शाहजी कहीं झुककर और कहीं अडिग होकर अपने अस्तित्व को बचाने में सक्षम हैं। मेहरअली शाह के अन्याय के विरुद्ध है। शाहजी मेहरअली के पिता फरमान अली को जीवियों मलकी वापस कर देने का प्रस्ताव रखते हैं। वास्तव में यह कार्य एक प्रकार से सेफ्टी वाल्व का काम करता है। अन्याय के विरुद्ध विद्रोह को रोकने में यह सिद्धांत कारगर साबित होता है।

उपन्यास की कथावस्तु में समकालीन राजनैतिक और सामाजिक घटनाओं के कुछ प्रसंग कथानक के बीच बीच में आए हैं। इसमें बंगाल के क्रांतिकारियों का वर्णन है। इस आधार पर उपन्यास की विषयवस्तु का रचनाकाल 1905-1915 तक का ठहरता है। इसके बाद के राजनैतिक घटनाक्रम को जान बूझकर छोड़ दिया गया।

महत्व

ज़िन्दगीनामा उपन्यास की प्रासंगिकता का सूत्र सांप्रदायिक सद्भाव से जुड़ता है। लेखिका ने उसी खोयी हुई संस्कृति को रचने का प्रयत्न किया है जिसे सैकड़ों वर्ष पहले सूफ़ियों ने रचा था। इसलिए बुल्लेशाह और वारिसशाह की पंक्तियों को उपन्यास में बार बार दोहराया गया है। उसमें हमारी सांझी संस्कृति की विरासत को सुरक्षित रखने का संदेश है। सांप्रदायिक तनाव की विषम परिस्थितियों के इस युग में इस प्रकार के संदेश का व्यापक महत्व है। कृष्णा सोबती ने विभाजन पूर्व पंजाब का चित्र प्रस्तुत करके इतिहास के उस दर्द को अधिक गहरा और तीखा बना दिया है, जिसके कारण देश का विभाजन हुआ। रस, राग और रंग में डूबे हुए पंजाब के समग्र जीवन की तस्वीर के सामने जब विभाजित पंजाब की टूटी छवि को देखते हैं तो सालती हुई पीड़ा की अनुभूति होती है। दूसरी ओर आधुनिक जीवन शैली के सामने जब उपन्यास की समग्रता को परखते हैं तब हमें पता चलता है कि लोकजीवन के सांस्कृतिक संपर्क सूत्रों और जीवन की सहजता से हम कितने दूर हो गए हैं? वस्तुत: धरती से जुड़ने के बाद ही सामान्य मनुष्य की सहजता के प्रति विश्वास पैदा होता है। जिन्दगीनामा में मानवीय प्रेम के आवेग को आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। वस्तुत: इसी में वह ताकत है जिसके सामने धर्म, संप्रदाय, जाति, ऊँच और नीच का बंधन टूट जाता है।

भाषा शैली

जिन्दगीनामा उपन्यास में कविता की सूक्ष्मता सघनता और काव्यात्मकता है। उपन्यास में यह प्रयोग फार्म के स्तर पर कृष्णा सोबती की विशिष्ट खोज है। इसमें लोक स्मृति का विशिष्ट रचनात्मक उपयोग किया गया है। इसलिए उपन्यास में एक ओर भारतीय आख्यान और पुराण का स्वाद मिलता है, तो दूसरी ओर लोकजीवन की समग्रता। उपन्यास में घटना का क्रमिक वर्णन और विवेचन नहीं है। स्मृति में बसे हुए लोकजीवन के एक-एक चित्र निकलकर कथानक का विन्यास बुनते हैं। लोकगीत किस्से और किंवदंतियाँ उपन्यास के जीवन में अदृश्य लय की तरह व्याप्त हैं। लेकिन इसके बावजूद उपन्यास अपने वर्ण्य काल के समकालीन समाज से अलग हटता हुआ दिखाई नहीं देता। भाषा से अलग जिन्दगीनामा की कथ्यात्मक शैली का विवेचन नहीं हो सकता। वस्तुत: पंजाबी भाषा के लहजे और टोन के द्वारा रचना में जीवन और परिवेश की विश्वसनीयता को रचा गया है। मुहावरे और लोकोक्ति से भाषा की मिठास को गाढ़ा बनाया गया है। इस प्रकार हम पाते हैं कि उपन्यास का कथ्य, भाषा और रूप तीनों एक बिंदु पर एकाकार हो गए हैं। इन्हें एक दूसरे से विच्छेद करके नहीं समझा जा सकता है। उपन्यास में गीत और कथा का ताना बाना एक साथ मिलता है। वास्तव में काल और कालातीत प्रसंग को जोड़ने के लिए इनका प्रयोग किया गया है। जीवन की यथार्थता के बीच भाव के ऐसे अनेक संदर्भ हैं, जो मानवीय आवेग को संपूर्णता में संप्रेषित करते हैं। ऐसे प्रसंग को कथा में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता है, इसलिए उपन्यास में कविता और लोकगीत का प्रयोग अनिवार्य हो गया।

उपन्यास कैसे पढ़ें

इस उपन्यास को पढ़ने और समझने का मूलभूत सूत्र इसी में है कि समग्रता के आधार पर उपन्यास का अध्ययन करें। कथ्य ने किस प्रकार से भाषा को परिवर्तित किया और फिर उपन्यास के संपूर्ण रूपगठन को प्रभावित किया, इसे समझने की आवश्यकता है। इस उपन्यास

को पढ़ने के लिए कथा, पात्र, घटना वातावरण और उद्देश्य आदि जैसे पारंपरिक ढाँचे से ऊपर उठने की आवश्यकता है। उपन्यास को पढ़ते समय लोकजीवन के प्रसंगों को ध्यान में रखें। अंततः उस पूरे परिवेश को समझने की चेष्टा करें जो उपन्यास का केंद्रीय तथ्य है। यह तथ्य हमें उपन्यास में किसी एक स्थान पर नहीं मिलता है। यह उपन्यास के शरीर की शिराओं में खून की तरह समाए हुए है। पात्रों की बातचीत में सामाजिक जीवन की विशिष्ट घटनाओं का संकेत है। समकालीन सामाजिक जीवन के परिप्रेक्ष्य में उपन्यास में चित्रित समकालीन जीवन की तुलना करने का प्रयत्न करें।

कठिन शब्दावली

भागीभरे	-	किस्मत वाले
गौहर	-	मोती
इलाही	-	ईश्वर
सब्ज	-	फल-फूल, हरा
रिज़क	-	जीविका
लिशकारा	-	चमक
पँजीरी	-	एक प्रकार का खाने का मिष्ठान
सदके	-	न्यौछावर
लौंगडा	-	लौंग
सयाले-सयाले	-	ठंडे-ठंडे
दिहाड़ा	-	दिन
डाडे	-	सस्त
सजरी माएँ	-	सजी हुई माताएँ
टब्बर	-	परिवार
कन्नों	-	कान से
लाचे	-	पुरुषों की प्रकार की लूंगी
फारिग	-	स्वतंत्र
इमदादियों	-	मदद करने वाले
बल्लौरी अखियाँ	-	बिल्ली जैसी आँखें
पौढ़ता	-	पौढ़ता
माँयहव्यो	-	एक प्रकार की गाली
सैनत	-	इशारा
वत्तर	-	बाजे का तार
खरामाँ-खरामाँ	-	धीरे-धीरे
न्योंदरा	-	निमंत्रण
वाढ़ी	-	कटाई
नौशा	-	दुल्हा
पलसेटियाँ	-	करवटें
बंहिशत	-	खौफ
रोहालीचाल	-	घोड़े की चाल
मींह	-	बारिश
लमतीर	-	लंबा व्यक्ति
माहतड़	-	गरीब
आलिमाना	-	विद्वानों का-सा
तहमद	-	लूंगी
इस्तिकबाल	-	स्वागत
दीदाबोसी	-	तांक-झांक

दिलजोइयाँ	-	प्रसन्न करना
बदगुमानी	-	असंतुष्ट
पोना	-	छोटा कपड़ा
परोहना	-	मेहमान
बेगैरती	-	निर्लज्जी
खुंबा	-	मशरूम
सिफ़्तें	-	गुणगान करना
आफरीं-आफरीं	-	प्रशंसनीय
डाची	-	ऊंटनी
दानिशमंदी	-	बुद्धिमानी
चेहमगोइयाँ	-	चिंगारीयां
ज़हमत	-	मुसीबत
वड़ेंवे	-	कपास का बीज
त्रिखा त्रिखा	-	तेज धार वाला
पब्बा	-	पंजा (पांव का)
हुड़क	-	तलब
बताइद	-	बता दिया
अख्लाक	-	शिष्टाचार
चोनमी ताकत	-	चुनी हुई ताकत
माहिया	-	प्रेमी
लाम	-	पंक्ति
विया	-	विवाह
फफ्फेकट्टन	-	बड़ा-चढ़ा कर बोलने वाला
बेइतियाती	-	जिस पर भरोसा न किया जा सके
उगराह	-	मजदूरी
वलीयुल्लाह	-	भगवान का प्रिय
इखाज	-	खर्च
फ़ैजयाब	-	लाभ उठाना

व्याख्या के लिए अंश

1. मत देखो
दौड़ चलो
छोड़ चलो
इस पानी को
इस धरती को
जिसने हर मौसम
हर बहार में
सूरमाओं की पनीरी उगाई थी
जिसने
हाड़-मांस के इंसानों में
मेहनत करने
और जिंदगी को
जी भर-भर प्यार करने की
ललक जगाई थी
लौ लगाई थी।
अलविदा

आबों के आब को
पंज दरियाओं के पंजाब को
जेहलम और चनाब को।
अलविदा
अपने पुरखों की याद को
जिनके खून और
दूध से बने बच्चे
अब फिर कभी इस धूल में
इस मिट्टी में
कभी नहीं खेलेंगे
कभी नहीं खेलेंगे
इन ज़िंदा रुखों की छाँह में
जहाँ दूर तक
जमे थे
खुबे थे जड़ों समेत
इनके छाँहदार कबीले।
बेरिया और टालियों तले
दुल्हनों की पालकियाँ
अब कभी नहीं उतरेंगी,
कभी नहीं ठिठकेंगी
दूल्हों की
साज़-बाजवाली घोड़ियाँ
गाँव की सीमाओं पर।
गोटा लगी
चूनरों की टोलों से
उठते-खिंचते
लाडलों की 'घोड़ियों' के
ममताले सुर।
फिर कभी नहीं पुकारेंगी
कच्चे कोठों से
चिट्टी दूध शोख
पंजाब की बेटियाँ।
टप्पों के बंद जोड़
अपने माहियों को
कौन जानेगा कौन समझेगा
अपने वतनों को छोड़ने
और उनसे मुँह मोड़ने के दर्दों को
पीड़ा को।
जेहलम और चनाब
बहते रहेंगे इसी धरती पर।
लहराते रहेंगे
खुली-डुली हवाओं के झोंके
इसी धरती पर
इसी तरह।
हर रुत-मौसम में
इसी तरह

बिलकुल इसी तरह।
सिर्फ
हम यहाँ नहीं होंगे।
नहीं होंगे,
फिर कभी नहीं होंगे,
नहीं।

2. कुदरते-खुदाबंदी का यकीन दिलाने के लिए मूसा ने बड़े-बड़े मोजज़े दिखाए। आसमानों को कैसा बुलंद और बाआब बनाया। सूरज के जरिए रात और दिन की तारीकी और रोशनी का इंतजाम किया। सतह जमीन को बिछाकर इस पर पहाड़ कायम किए। आसमान से पानी बरसाया और जमीन से सब्ज़ा उगाया। सतह ज़मीन की अगर एक वसीह फर्श से मिसाल दी जाए तो इस पर पहाड़ों को ऐसा समझा जाएगा कि गोया फर्श को अपनी जगह रखने के लिए मेखें गाड़ दी हों। आसमानों की हकीकत ख़्वा कुछ भी समझी जाए, मगर उनके वजूद और उनकी मजबूती में किसी को शक नहीं। आसमानों की हर-एक चीज अपनी मुकर्रा जगह के अंदर निहायत मज़बूती से कायम है।

3. कचहरियों के अहातों में जट्ट शाहूकारो के ठट्ट-के-ठट्ट ऐसे ताने-बाने बुनें की मुकद्दमों में कोई मार जाए। कोई थान से जाए। कोई सर जाए।

पीर-कौड़ी के खेल की तरह कभी अंदरी टोली मात दे डाले बाहरी को। कभी बाहरी दाँव में दे टँगड़ी।

इलाके के जट्ट शाहूकार सब रल-मिल करें मुकद्दमे और खट्टी कमाई करें वकील-अहलमद। गवाह भड़वे किराए के टट्टू !

कत्ल-डाका, उधारबंदी, असल-ब्याज और सूदखोरी में जिवियाँ हड़प्प। कर्ज लिया, भू गहने रखी। न टोंबु न कागद। हुई लिखत शाह के हाथ की तो जो जट्ट कहे सो झूठ, जो शाह कहे सो सच्च। पगड़ियों के जोर-जबर के ज़ोर बड़े-बड़े रौब-दाबवाले मुकद्दमे भुगत गए।

4. फ़रमान अली ने लस्सी का कटोरा ख़ाली कर नीचे रखा और डपटकर कहा, "पूत्तरा, वित्त में रह। काँटोंवाले झाड़ी-बूटी के बेर उगाने चला है क्या ! ओ भोलया, शाहों की मलकीयतें लाल बहियों में और हमारी अपने वजूदों में! शाह जितना हाथ फैलाए सो उसका। जट्ट जितना पसीना बहाए सो उसका।''

माँबीबी ने भी घुड़की दी-"मेहरअली, जट्ट पुत्तर होकर तेरी ऐसी हकूमती अदा! अभी तो ख़ैर-सल्ला मसीते दो-चार सपारे ही याद किए हैं। अरे, शाहों की मालकी चोरी-चकारी और डाकजेनी से नहीं जो उन पर गुस्से-गिले कर रहा है।'

मेहरअली ने घी-लगी दुप्पड़ के चार टुकड़े किए और निवाला मुँह में डालकर कहा,

"दूध-मलाई धनाढ शाहों की और छाछ-लस्सी हमारी! लानत हमारी मेहनतों पर!''

"बस ओए शोख़ीखोरे, चिड़ियों के दूध पर नज़र रखी तो हाथों से खाली तोते उड़ाएगा।''

5. शाह जी सिर हिलाते रहे और हँसते रहे-"भगत जी, तुम्हारे हाथों खुल रही हो किस्मत किसी की, तो बताओ मैं क्यों रोकूँ! तुम्हारा दिल दरिया है पर हिसाब-हिसों का कौन पुगाएगा! जट्ट मुजारों के औकड़ वेले कौन टपाएगा।''

"हम तो निमित्त हैं, करणहार-कर्त्ता तो ऊपरवाला है!''

"काशीराम, बंदों के सिरों पर एक नहीं दो की ज़ोरावरी है। एक मालकी ऊपरवाले रब्ब की और दूसरी हकूमत नीचेवाली सरकार की!''

"ऊपरवाला ही बड़ा है। उसकी नज़र रहे सीधी तो दुनिया का जर्रा-जर्रा पुख्ता। जो बढ़ जाए जुल्मत तो घड़ी-पल में बड़ी-से-बड़ी सल्तनते नेस्तनाबूद।''

"काशीराम, तुम निर्लेप फ़कीर हो। मैं दुनियादार। तुम्हारी दया-रहमवाली वृत्ति को क्यों बदलूँ! सौ-पचास पर लकीर मार भी दोगे तो उसके भंडारे में कमी न आएगी। फिर शास्त्र मर्यादा कहती है-दान से आता है, जाता नहीं।

काशीशाह गंभीर हो गए-"भ्राजी, दिन में एक बार सुक्खमनी का पाठ जरूर कर लिया करें। इस छन-भंगुर जगत में नाम ही कमाई है। माया दमड़े नहीं।''

शाह जी कहीं और विचरने लगे- " बड़े चाचा जी का कहना याद करता हूँ तो समझ-बूझ दिमाग की निथर जाती है। कहा करते थे-सिर्फ इकोतर सौ लेकर इस ग्राँ में आन बसे थे हमारे पुरखे। जो छुआ सोना बनता गया! अब दुनिया आख्यान करती है-लोगों का तेल नहीं जलता, शाहों का मूत्र जलता है।''

कहा "राबी से सावन सुन जाओ! गा री गा, वह दोहरा गा!
"सावन माह सुहावना जो धरती बूँद पई
अनहद बरसे मेघला जो मन की तृप्त गई
मल्हाराँ सोहन सारे सावन, दूती दूत लगे उठ जावन
नी धर खेलन कुड़ियाँ गावन, मैं घर रंग-रँगीले आवन।
मेरीयाँ आसाँ रब्ब पुजाइयाँ,
ताँ मैं उन संग अँखीया लाइयाँ
सँइया देन मुबारिक आइयाँ
शाह इनायत अंग लगाइयाँ।
भादो भावे सखी, जो पल होए मिलाप
जो घट देखूँ खोल के, घटि-घटि के विच आप।''
गाते-गाते राबयाँ का स्वर थर्राने लगा। आँखें भर आईं।

कक्कूखाँ बोले "कवायद तो नहीं, पर मेहनत तो जिवियों पर भी होती है न! असल तो वरदी है बंदे को सवायां कर देती है।''

"जट्ट को पहन पचर पोशाक क्या कहें। आख्यान है न-चिट्टा कपड़ा और कुक्कड़ खाना, उस जट्ट का नहीं ठिकाना।''

मौलादाद जी बोले "अपनी-अपनी कार और अपने-अपने साज-सिंगार! फ़सलों की रंगत-रूप हत्थ की मेहनत से, अल्लाह तआला की बरकत से! यह तो ठीक है, महीन कप्पड़ और मुर्ग-पुलाव से खेती की वाही-त्राही नहीं होती।''

शाह जी ने बात उठा ली- "मौलादाद जी, बड़ी सयानफ़ की बात की है आपने। मनुक्ख बच्चा बनकर धरती का ओढ़न न पकड़े तो धरती माँ क्यों दूध पिलाने लगी! अपने वेद-शास्त्र भी यही कहते हैं कि धरती माँ को आदर-प्यार से सींचा-सराहा न जाए तो माँ के थनों की तरह धरती के सुंब भी पूरी तरह नहीं खुलते। जो सुंब न खुलें तो दूध की धाराएँ तो आप ही रुक गईं।''

कृपाराम ने सिर हिलाया- "अपने शास्त्रों की भी क्या तुलना! ऐसे-ऐसे मोती-माणक भरे पड़े हैं-''

"कत्हा क़लाम माफ़ कृपाराम, बेशक पोथियाँ-किताबें बयान करती रहें, पर खूबी तो ख़ैरों से धरती की ही हुई न!''

9. दोस्तो-यारो, दिल्ली में अपनी-अपनी प्रीतें-मोहब्बतें धारकर माई हीर को सलाम करो। हीर और राँझा दोनों हमारी इस मुजलिस में शामिल हैं। लोक आख्यान डालते हैं कि जितनी बार इस अलबेले जोड़े के प्रीति-प्यार के दुनिया में गाए जाएँगे, उतनी बार हुस्न के महताब चमकेंगे आशिकों के दिलों में! माशूकों की आँखों में! जितनी बार हीर के दरदीले सुर हवा में लहराएँगे उतनी बार हीर सयालों की, राँझा तख़्त हज़ारे का, अपनी रूहों से इन मजलिसों में शामिल होंगे।

10. अड्डा पार कर काशीशाह बड़े भाई से बोले, "भ्राजी, कचहरियों की कानूनी और मुहर्रिरी झूठ-झँखाड़ ही समझो। वादी कुछ कहे, गवाह कुछ। हादसा कुछ, बयान कुछ। जुर्म किसका और सजा किसको। पुख़्ता चीज तो एक ही अदालत में-अदालत और अदालत की कुर्सी।''

शाह जी ने तीखी नज़र भाई पर डाली- "काशीराम, इस बात पर मैं तुम्हारे साथ मुत्तफिक नहीं। अँग्रेज की कचहरी में इंसाफ होता है। वकील पढ़े-लिखे। कानून लिखत में दर्ज। इंसाफ का घर है कचहरी-अदालत लट्ठुम्मनों का डेरा नहीं कि जिसके जो मन में आया बोल दिया या फैसला दे दिया।''

"आपके कहे मुताबिक तो मुकद्दमों की रुबकारी बिला रू-रियायत भुगत जाती है!''

"बिला-शक काशीराम! आज का फैसला मद्देनजर रखकर क्या कहा जा सकता है कि मुंसिफ जज ने फैसला सही नहीं दिया!''

काशीराम हँस दिए-"इस फ़ैसले का सेहरा तो आपके तजुरबे, मुस्तैदी और तारेशाह की बिछाई हुई बिसाते-शतरंज को है। जो चश्मदीद गवाह हमारी तरफ से पेश हुए उन्होंने मुकद्दमे का मुँह-माथा ही बदल दिया।''

काशीशाह ने एक भरपूर नजर बड़े भाई पर डाली-"रह-रह दिल में ख्याल उठता है ग़रीब महीपत की बेबसी और मुफलिसी का। भाई हमारे ने उनकी इज़्जत पर हाथ डाला। बेटी भगाई। बेटों को सजा दिलवाई और आप सुवक़्त फ़ारिग हो मुकद्दमा जीत घरों को चल पड़े।''

11. नजीबा किसी सोच में था-"शाह जी, एक बात कहता हूँ। भला यह कैसे सही हुआ कि ज़मानों पहले यह हुआ था, वह हुआ था! अब कोई चश्मदीद गवाह तो नहीं बैठा हुआ न! पता कैसे लगे यह सच्ची है, झूठी है या यह मिरास ने जोड़ी हुई है।''

"नजीबे, वाज़िब सवाल है। होता यह है कि छोटी-बड़ी हकूमतें-सरकार, अपने कारनामों-लड़ाइयों-फतेहयात्रियों को महफूज रखने के पूरे इंतजाम करती है। पूरा दफ़्तर रखती हैं। बाकी हमातड़-साथों के लिए यही काम उनकी मिरास कर लेती है। जिस खानदान का कारण ढंग-पज्ज हुआ, मिरास उनकी सात पीढ़ियों तक नाम दोहरा लेगी! सिलसिला चलता रहता है।''

कृपाराम वाले, "शाह जी, मिरास भी कोई एक तो नहीं न! खत्रियों के मिरासी शोहाला, ब्राह्मणों के मिरासी कमाछी, मीर मिरासी, राय मिरासी, सेवक कव्वाल। ब्लोचों के मिरासी अलग। शिया मिरासी अलग। अमीर हमजावाले लोरीं अलग।''

काशीराम बोले, "अपने मिरास की जड़ पीछे मुल्तान से है। तभी समय-समय पर नवाब अली मरदान का शज़रा ताज़ा करते रहते हैं।

12. जब नौशेरवाँ का आख़ीरी वक्त आया तब उसने अपने बेटे हुरमुज से कहा, 'बेटा, दिल से फ़कीरों-दरवेशों की हिफाज़त कर। अपने आराम की फिक्र न रख। कोई भी अक़्लमंद यह पसंद न करेगा कि चरवाहा पड़ा सोता हो और भेड़िया उसके ग़ोल में रहे। होशियारी से दरवेशों-मुहताजों का ख्याल रख। इसलिए की रियाया की बदौलत ही बादशाह ताजदार होता है। रियाया जड़ की तरह है और बादशाह दरख़्त की तरह और दरख़्त जड़ से ही मजबूत होता है। ऐ मेरे प्यारे बेटे, जहाँ तक बन सके, रियाया का दिल मत दुखाना और अगर तू ऐसा करेगा तो अपनी जड़ खोदेगा। बेटा, अगर तुझे नेक राह की जरूरत है तो तेरे सामने फ़कीरों-परहेज़गारों का रास्ता खुल पड़ा। जिसे यह खौफ़ है कि वह खुद तकलीफ़ न उठाए उसे भला दूसरों का नुकसान क्यों पसंद आएगा और अगर उसकी तबीयत में यह आदत नहीं है तो उसके मुल्क में अमन-चैन की बू भी नहीं है। अगर तू कानून-कायदे से मज़बूर है तो खुशी इख्तियार कर और अगर तन्हा है, पाक-साफ है तो अपना रास्ता ले। उस मुल्क में ख़ुशहाली की उम्मीद न रख जिसमें बादशाह-रियाया एक-दूसरे से नाराज हैं। ख़्वाब में मुल्क को आबाद वही देखता है जो लोगों के दिल गुलजार रखता है। जुल्म से खराब-बदनामी होती है। जुल्म के ज़रिए रियाया को तबाह करना ठीक नहीं। इसलिए कि वही हकूमत को पनाह देनेवाली है।''

व्याख्या के लिए निर्देश

'दोस्त .....शामिल होंगे।'

कृष्णा सोबती का रचनात्मक साहित्य आधुनिक लेखन के प्रति नया विश्वास पैदा करता है। उन्होंने साहित्य में लीक से हटकर अपनी पगडंडी की खुद तलाश की है। मानवीय स्वातंत्र्य और रूढ़ि का प्रतिरोध उनकी रचनात्मक संवेदना की मौलिक विशेषता है। 'जिन्दगीनामा' में लेखिका ने अपने जीवन से छूटे हुए परिवेश का रोमांटिक चित्रण किया है। यह लेखिका के अतीत के प्रति एक प्रकार का नॉस्टेलजिया पैदा करता है, जिसमें दर्द और पीड़ा रची बसी है।

प्रस्तुत उपन्यास में व्याख्यांश का संदर्भ शाह के यहाँ पुत्र के जन्म से संबंधित है। पुत्र के जन्मोत्सव पर मुजरा का कार्यक्रम होने वाला है। उसमें प्रसिद्ध नर्तकी हुस्ना और बुद्धा का नाच होने वाला है। गाँव के एक नवयुवक की बातचीत में हीर राँझा के प्रेम प्रसंग का जिक्र है।

नवयुवक हीर राँझा के प्रेम प्रसंग के बहाने अपने दिल की बात कहता है। लोक आख्यान में ये प्रेम के प्रतीक हैं। यह इसलिए संभव हो सका कि उनकी मोहब्बत उनके साथ समाप्त नहीं हुई। वह बार-बार नये रूप में अपना आकार और अर्थ लेती रही। वस्तुतः हीर राँझा का गीत यहाँ के लोक जीवन से जुड़ गया। इसलिए इस लोकगीत को जब गाया जाता है, तब गाने वाला उसमें अपना जीवन भी जीता है। इस गीत में किसी प्रकार की औपचारिकता नहीं है। जब नवयुवक और नवयुवती इस लोककथा के विषाद अनुभव करते हैं, तब हीर राँझा उनके दिलों में जी उठता है। यह प्रेम के समर्पण और लोकजीवन की तन्मयता में महसूस करने से संभव होता है। जायसी के शब्दों में कहें तो कह सकते हैं 'फूल मरै पे मरै न बासु'। फूल खिलते हैं और मुरझा जाते हैं, परंतु उनकी सुगंध शेष रह जाती है। वस्तुतः इस सुगंध में फूल के व्यक्तित्व का सारभूत रूप गठित होता है, जो कालातीत है।

लेखिका लोकजीवन के इसी कालातीत महत्ता को प्रत्यक्ष करना चाहती हैं। वस्तुतः लोक आख्यान में ही इतिहास के अतिक्रमण की क्षमता होती है, इसलिए हीर राँझा गीत का दरदीला सुर लहराने के साथ ही सयाले की हीर और तख्तहजारे का राँझा लोक मानस में जीवित हो जाते हैं। उसके सौन्दर्य का प्रकाश आशिक के दिल में फैल जाता है। वास्तव में प्रेम की यह मिथकीय अनुभूति हमें जीवन के उन क्षण में ले जाती है जहाँ चिरन्तनता और शाश्वतता एक बिंदु पर स्थित होते हैं। इसमें मृत्यु का भय नहीं प्रेम की अमरता मौजूद होती है।

विशेष

1. हीर राँझा के लोक आख्यान का संदर्भ है।
2. लोकगीत के कालातीत सार्थकता को प्रकाशित किया गया है।
3. उर्दू मिश्रित भाषा का सर्जनात्मक प्रयोग मिलता है।
4. शब्दों को तोड़कर नए शब्द बनाए गए हैं–दरदीले आदि इसके उदाहरण हैं।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन
मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

MAHI-117
प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास

खंड

3

सूरज का सातवाँ घोड़ा

इकाई 9
धर्मवीर भारती का कथा साहित्य और
'सूरज का सातवाँ घोड़ा' 147

इकाई 10
औपन्यासिक शिल्प : 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' 161

इकाई 11
सूरज का सातवाँ घोड़ा : चरित्र सृष्टि 175

इकाई 12
भारती की लेखकीय दृष्टि 189

परिशिष्ट 204

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रो. नित्यानंद तिवारी
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. निर्मला जैन
ए-20/17, कुतुब एन्क्लेव, फेज-1,
गुड़गाँव, हरियाणा

प्रो. मैनेजर पाण्डेय
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

प्रो. असगर वजाहत
जामिया मिलिया इस्लामिया
नयी दिल्ली

प्रो. गोपाल राय
सी-3, कावेरी,
इग्नू आवासीय परिसर,
मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

प्रो. सत्यप्रकाश मिश्र
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

प्रो. ललिताम्बा
इंदौर

संकाय सदस्य
प्रो. वी.रा. जगन्नाथन
डॉ. जवरीमल्ल पारख
डॉ. रीना रानी पालीवाल
डॉ. सत्यकाम
डॉ. राकेश वत्स
डॉ. शत्रुध्न कुमार
डॉ. विमल खांडेकर
सुश्री स्मिता चतुर्वेदी

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

पाठ लेखक	इकाई सं.	खंड संपादक
डॉ. हरिमोहन रीडर, हिन्दी विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय नयी दिल्ली	9, 10 11, 12	प्रो. लल्लन राय शिमला
श्री संज़ीव कुमार इं.गां.रा.मु.वि.वि.	परिशिष्ट	**पाठ्यक्रम संयोजक एवं संपादक** सुश्री स्मिता चतुर्वेदी हिन्दी विभाग इं.गां.रा.मु.वि.वि. नयी दिल्ली

सामग्री निर्माण सहयोग

मुद्रण
श्री कुलवंत सिंह
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)
मानविकी विद्यापीठ
इग्नू, नई दिल्ली

फरवरी 2004 (पुनर्मुद्रित)

© इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2002

ISBN-81-266-0633-9

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कृति का कोई भी अंश, मिमेयोग्राफ या किसी भी अन्य रूप में, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी अन्य व्यक्ति द्वारा पुनरुत्पादित नहीं किया जा सकता है।

खंड परिचय

एम.ए. (हिन्दी) के पाठ्यक्रम-15 का यह तीसरा खंड है। यह खंड धर्मवीर भारती के उपन्यास 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' पर आधारित है। इस खंड में आप 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' का अध्ययन एवं मूल्यांकन करेंगे। यह उपन्यास शिल्प के स्तर पर विशिष्ट इसलिए है क्योंकि इसमें लेखक ने कहानी और उपन्यास की तकनीक को मिला कर उपन्यास के शिल्प का गठन किया है। इस उपन्यास का मूल कथ्य, निम्न मध्यवर्गीय जीवन, उसकी विडंबनाओं, उनकी त्रासद जीवन जीने की विवशताओं और उनके खोखलेपन को उजागर करना है। इस उपन्यास पर आधारित प्रस्तुत खंड में चार इकाइयाँ हैं।

खंड की पहली इकाई, इकाई सं.-9 धर्मवीर भारती का कथा साहित्य और 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' है। धर्मवीर भारती सूक्ष्म अनुभवपरक धारा के कथाकार हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में व्यक्ति की मनोभावनाओं और अन्तर्द्वन्द्वों को उभारने का प्रयास किया है। इस इकाई में हमने सूक्ष्म अनुभवपरक धारा के कुछ उल्लेखनीय कथाकारों तथा उनकी कृतियों की चर्चा भी की है तथा उसमें भारती के महत्व का प्रतिपादन किया है। इसके साथ ही भारती की कहानियों एवं उपन्यासों की विषय-वस्तु का भी परिचय दिया गया है।

इकाई-10 में 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' के औपन्यासिक शिल्प पर विचार किया गया है। इसके अंतर्गत हमने प्रस्तुत उपन्यास की अन्तर्वस्तु, शिल्प और पात्र योजना पर विस्तार से चर्चा की है। यह उपन्यास किस्सागोई की शैली पर रचा गया है। उपन्यास की विशिष्ट शैली पर भी हमने इकाई में विचार किया है।

इकाई-11 'सूरज का सातवाँ घोड़ा : चरित्र सृष्टि' है। इस इकाई में हमने सबसे पहले चरित्र-चित्रण की प्रविधियों की चर्चा की है। इसके बाद भारती द्वारा प्रयुक्त चरित्र-चित्रण की प्रविधि पर विचार किया है। इस उपन्यास में स्त्री पात्रों का विशेष महत्व है। इस विषय पर इकाई में विस्तार से चर्चा की गई है।

खंड की अंतिम इकाई भारती की लेखकीय दृष्टि से संबद्ध है। उपन्यास में भारती की किस लेखकीय दृष्टि का परिचय मिलता है, इस पर विविध संदर्भों में विस्तार से विचार किया गया है।

खंड के अंत में हमने उपन्यास के कुछ अन्य विशिष्ट पहलुओं पर चर्चा की है। यह एक विशिष्ट शिल्प में रचा उपन्यास है, अतः इसके पढ़ने की प्रविधि भी अलग है। इस उपन्यास को पढ़ते समय जिन बातों का ध्यान रखा जाए, उन पर भी हमने 'परिशिष्ट' में विचार किया है। इसके साथ ही कुछ संदर्भ ग्रंथों की सूची भी दी गई है, जो उपन्यास के विशेष अध्ययन में आपकी सहायक होंगी। इन्हें आप किसी भी पुस्तकालय से प्राप्त कर सकते हैं। इन सबका अध्ययन करने से पहले यह आवश्यक है कि आप 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' उपन्यास का अध्ययन करें। तभी आप खंड में चर्चित विषयों को भली-भाँति समझ सकते हैं। प्रत्येक इकाई के अंत में अभ्यास के लिए दिए गए प्रश्नों के उत्तर भी लिखने का प्रयास करें। इकाई को आपने कितना समझा है, यह आप इन प्रश्नों के उत्तर से स्वयं जान सकेंगे। जहाँ कठिनाई हो वहाँ आप अपने परामर्शदाता (काउंसलर) की सहायता भी ले सकते हैं।

इकाई 9 धर्मवीर भारती का कथा साहित्य और 'सूरज का सातवाँ घोड़ा'

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 सूक्ष्म अनुभवपरक धारा के उपन्यास

9.3 धर्मवीर भारती का कथा साहित्य

9.3.1 कहानियाँ

9.3.2 उपन्यास

9.4 सारांश

9.5 अभ्यास प्रश्न

9.0 उद्देश्य

प्रस्तुत खंड हिंदी उपन्यास पाठ्यक्रम के अन्तर्गत भारती कृत 'सूरज का सातवाँ घोड़ा'' से संबंधित है। इस खंड की पहली इकाई में आप धर्मवीर भारती के कथा साहित्य के विभिन्न रूपों से परिचय प्राप्त करेंगे तथा उसके साथ उनके उपन्यास 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' के वैशिष्ट्य के गहन अध्ययन-विश्लेषण की दिशा में अग्रसर हो सकेंगे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमने प्रस्तुत इकाई में स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों की अनुभवपरक धारा का परिचय देते हुए उसके बीच धर्मवीर भारती के कहानी-उपन्यासकार रूप का परिचय दिया है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों की अनुभवपरक धारा और कथाकार भारती से परिचित हो सकेंगे;
- धर्मवीर भारती के कहानीकार रूप का परिचय प्राप्त कर सकेंगे;
- भारती के प्रथम उपन्यास 'गुनाहों के देवता' के वैशिष्ट्य को समझा सकेंगे;
- 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' के शैलगत अभिनव प्रयोग का विश्लेषण कर सकेंगे; और
- 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' के आशावादी निष्कर्ष की वास्तविकता को समझा सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

हिन्दी उपन्यास 13 के अन्तर्गत आपने अभी तक उपन्यास के सामान्य स्वरूप और उसके विकास की जानकारी प्राप्त कर ली होगी। इसी के साथ आपको हिन्दी उपन्यास साहित्य की विशिष्टता का परिचय भी मिल गया होगा। स्वाधीनता पूर्व उत्तर भारत के जनजीवन के सामाजिक यथार्थ से सम्बद्ध हिन्दी उपन्यास का अध्ययन भी आपने कर लिया होगा। अब पाठ्यक्रम 15 के अन्तर्गत आप प्रेमचंद परवर्ती उपन्यासकारों जैसे यशपाल, धर्मवीर भारती, कृष्णा सोबती और श्रीलाल शुक्ल के प्रमुख उपन्यासों का विशिष्ट अध्ययन कर रहे हैं। इनके माध्यम से आप स्वातंत्र्योत्तर भारत के निरंतर जटिल होते जीवन यथार्थ का अध्ययन

करेंगे। प्रस्तुत खंड हिन्दी के यशस्वी कवि-कथाकार धर्मवीर भारती के महत्त्वपूर्ण उपन्यास 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' पर केन्द्रित है। इस खंड की सबसे पहली इकाई कथाकार धर्मवीर भारती के साहित्यिक अवदान विशेषत: उनके विशिष्ट उपन्यास 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' के इर्द-गिर्द बुनी गई है। इस इकाई में हम आपको हिन्दी उपन्यासधारा के भावपरक उपन्यासों का भी परिचय देंगे, जिससे कथाकार धर्मवीर भारती भी जुड़ते हैं।

9.2 सूक्ष्म अनुभवपरक धारा के उपन्यास

यहाँ सर्वप्रथम यह बताना जरूरी है कि प्रेमचंद युगीन और प्रेमचंदोत्तर उपन्यासकारों की एक धारा ने जहाँ सामाजिक-ऐतिहासिक प्रवृत्तियों के उपन्यास लिखे वहीं जैनेंद्र, इलाचंद जोशी, अज्ञेय आदि ने एक दूसरी धारा का प्रवर्तन किया। इस धारा के उपन्यासकारों ने समाज की अपेक्षा व्यक्तिमन की सूक्ष्म समस्याओं को अपने उपन्यासों का केन्द्र बिंदु बनाया। ये कथाकार जीवन यथार्थ और उसके संघर्ष की अपेक्षा व्यक्ति की मन:स्थितियों और मनोभावनाओं की गहराइयों से डूबते-उतरते हुए प्रेम और नैतिकता के प्रश्नों से उलझते हैं। प्रेमचंद के समय में ही ऐसी प्रवृत्तियों की कहानियों के लेखन की शुरुआत छायावाद के प्रवर्त्तक कवि जयशंकर प्रसाद के द्वारा हो चुकी थी। धर्मवीर भारती ने भी अपने कहानी-उपन्यासों में इन्हीं मनोभावनाओं और अन्तर्द्वन्द्वों को उभारने का प्रयास किया है। हिन्दी साहित्य के कुछ इतिहासकारों ने इसे मनोवैज्ञानिक अथवा मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास कहा तो कुछ ने इसे सूक्ष्म अनुभवपरक धारा का उपन्यास माना। प्रश्न है कि अनेक प्रकार की उथल-पुथल से भरे राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम के समय की समस्याओं की अपेक्षा व्यक्तिमन की गहराइयों की ओर ले जाने वाली ये रोमानी प्रवृत्तियाँ कितनी हमारे सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों के बीच से उपज रही थीं तथा कितनी वे राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय अनुभवों-विचारधाराओं से प्रभावित हो एक प्रकार के अमूर्त्त साहित्य का सृजन कर रही थी। आइए, अब हम धर्मवीर भारती के समय में लिखे जा रहे इस अनुभवपरक कथासंसार का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करें।

जैनेन्द्र कुमार-प्रेमचंद के समय से ही अपना अलग रास्ता बनाने वाले कथाकार हैं: जैनेन्द्र कुमार। उसी समय के आसपास अन्तर्मन के संसार का चित्रण करने वाले कुछ अन्य कथाकार भी दिखाई देने लगते हैं। प्रेमचंद के बाद जो नई धारा हिन्दी में उभरती है उसमें स्वाधीनता आंदोलन और सामंती परिवेश के बीच की समस्याओं बाह्य घटनाओं, परिस्थितियों, संस्कारों में फँसे मनुष्य की विवशता दर्शाना कम तथा व्यक्तिमन, उसकी कुंठाओं की झलक दिखाना अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। ये रचनाकार प्रेम और नैतिकता के उलझे प्रश्नों को उघाड़कर अपने कर्त्तव्य की इति श्री समझने लगते हैं। 1929 में प्रकाशित अपने पहले उपन्यास 'परख' में जैनेन्द्र कुमार इसी प्रकार की भावभूमि लेकर उपस्थित होते हैं। 'परख' उपन्यास की भूमिका में स्वतंत्रता को 'एक कीमती चीज़' मानते हुए वे लिखते हुए हैं : 'वह उपन्यास किसी काम का नहीं, जो इतिहास की तरह घटनाओं का बखान कर जाता है।' यानी प्रेमचंद की औपन्यासिक दुनिया, उसकी घटना बहुलता, परिस्थितियों और उनमें बनते-बिगड़ते उस समय के वास्तविक मनुष्य के चित्रण को जैनेन्द्र बहुत महत्व का नहीं मानते। वे लिखते हैं कि ".....उपन्यास को वास्तविकता पर नहीं उससे ऊँचे पर होना होगा। उपन्यास वास्तविक होने के लिए नहीं है। यह वास्तविक होना नहीं चाहिए। वास्तविक होने की कोशिश करके वह अपने को निरर्थक ही कर सकता है।'' स्पष्ट है कि वास्तविक चित्रण में वे मानवीय अर्थवत्ता के दर्शन नहीं करते। उनके लिए महत्वपूर्ण है: 'स्वतंत्रता'। वे अपने उपन्यास को देश, घटना और इतिहास के शिकंजे से मुक्त कर एक नया अनुभव आलोक गढ़ते हैं। जहाँ घटनाओं की बजाय भावों के आसंग और उसी तरह के प्रसंगों पर अधिक बल होता है। बात साफ है कि जैनेन्द्र के कथा

संसार में जीवन-जगत के स्थूल प्रसंग तथा संघर्ष और द्वन्द्व कोई मायने नहीं रखते। बल्कि वे अपना अर्थ खोने लगते हैं। उनकी अर्थवत्ता के केन्द्र में जा जाता है: भाव संसार। ऐसे उपन्यासों की कथावस्तु भी भाववादी-देश कालातीतवादी हो जाती है। उपन्यासकार निर्द्वन्द्व होकर व्यक्तिमन की गहराइयों का अवगाहन और उसके चित्रण में रम जाता है। देशकाल से कटकर वह अपनी बहुत कुछ स्वायत्त दुनिया गढ़ लेता है। इस प्रकार चौथे-पाँचवे दशक में रचनाकारों की एक ऐसी पंक्ति प्रकाश में आती है जो बाहरी दुनिया से कटकर अन्तर्मन की कुहेलिकाओं को उजागर करना अपना लक्ष्य बना लेती है। इस धारा को जैनेन्द्रजी के साथ आगे बढ़ाने में इलाचंद्र जोशी, अज्ञेय तथा बाद में भारती, डॉ देवराज, प्रभाकर माचवे आदि रचनाकार अपना योगदान करते दिखाई देते हैं।

स्वाधीनता आंदोलन के दौर में राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक दृष्टि से निरंतर सचेत होते जा रहे भारतीय समाज के बीच नए उभरते संसार, अपेक्षाकृत मुक्त स्त्री-पुरुष संबंधों की गहरी छानबीन को जैनेन्द्र अपने उपन्यासों का विषय बनाते हैं। उनके प्राय: सभी उपन्यास समाज निरपेक्ष किंतु प्रेम केन्द्रित हैं और किसी-न-किसी रूप में नैतिक-अनैतिक के द्वन्द्व का सामना करते मानवीय करुणा को उभारते पाए जाते हैं। जैनेन्द्र कुमार के उपन्यास एक ओर यथार्थवादी उपन्यास धारा को चुनौती देते हैं तो दूसरी ओर रूढ़ नैतिकताओं वाले खोखले सामाजिक आदर्शों की खिल्ली उड़ाते हैं। इस तरह वे एक नए आदर्शवाद की स्थापना करते हैं। अक्सर उनके उपन्यासों में प्रेम का एक त्रिकोण विद्यमान होता है। उनके उपन्यासों की नायिका की मुख्य समस्या यह है कि उनका प्रेमी और पति एक व्यक्ति न होकर अलग-अलग दो व्यक्ति होते हैं। वे जिससे प्रेम करती हैं उससे विवाह नहीं हो पाता और जिससे विवाह होता है उससे प्रेम नहीं कर पातीं। ऐसी स्थिति में उनके पात्रों में अन्त: संघर्ष होना चाहिए था, पर जैनेन्द्र संघर्ष न कर के समन्वय का रास्ता अपनाते हैं। उस स्थिति को नियति मानकर मानसिक संतुलन बिगड़ने नहीं देते। चाहे परख', 'सुनीता' या 'त्यागपत्र' उपन्यास हों या परवर्ती उपन्यास 'सुखदा', 'विवर्त' और व्यतीत'। जैनेन्द्र के इन सभी उपन्यासों की नायिकाएँ अपने प्रेम के प्रति आश्वस्त नहीं हो पाती। सदियों से चली आती अपनी रूढ़ नैतिकताओं के जाल में जकड़ी अपने पति से उदासीन और प्रेमी के प्रति आकृष्ट होना चाहकर भी सामान्य नहीं हो पातीं। कोई चीज़ आड़े आ जाती है। इस प्रकार स्त्री-पुरुष संबंधों में प्रेम या यौन भावनाओं की कुंठाओं को लेकर अपने उपन्यासों का वस्तुसंसार निर्मित करते हैं जो प्राय: घर तथा स्त्री-पुरुष प्रेम तक ही सीमित रह जाता है। इससे आगे का संसार खोजना जैनेन्द्र के लिए अभीप्सित नहीं है। इसलिए इनके उपन्यास प्राय: आकार में छोटे होते हैं।

इलाचंद्र जोशी- इस शृंखला में दूसरे महत्वपूर्ण रचनाकार हैं श्री इलाचंद्र जोशी (1902-82)। अपने प्रारंभिक उपन्यासों में इन्होंने व्यक्तिमन की समस्याओं का चित्रण किया है। इनकी धारणा है कि व्यक्ति के जीवन में घटित छोटी-से-छोटी घटना के पीछे उसकी मानसिकता में चल रही उधेड़बुन होती है, जिसकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। 'जहाज के पंछी' उपन्यास में उन्होंने लिखा है : "इन्हीं छोटी-छोटी बातों पर गौर करते रहने से जीवन के बड़े महत्वपूर्ण किंतु उलझे हुए रहस्य सुलझते चल जाते हैं।" इनका पहला उपन्यास 'घृणामयी' लगभग जैनेन्द्र कुमार के 'परख' के साथ प्रकाशित हुआ पर उन्हें उपन्यासकार के रूप में प्रतिष्ठा मिली "संन्यासी" (1941) लिखने के बाद। प्रेत और छाया' (1944), 'मुक्तिपथ' (1952), 'जहाज का पंछी' (1956), 'सुबह के भूले' (1951), जिप्सी' (1952), भूत का भविष्य (1973) आदि। इनमें जोशी जी की उपन्यासकला में एक स्वस्थ मोड़ आता दिखाई देता है। यहाँ से वे मनोविज्ञान को सामाजिक उद्देश्य के लिए प्रयोग करना प्रारंभ करते हैं। 'जहाज का पंछी' उपन्यास के कथानायक के माध्यम से कथाकार ने उसे विविध परिस्थितियों में डालकर बाहरी सभ्य जीवन की बनावटी दुनिया को उजागर करने का प्रयत्न किया है। स्वातंत्र्योत्तर युग के आत्मकेन्द्रित होते चले जा रहे

स्वार्थान्ध व्यक्ति के ढोंग पर वे प्रहार करते हैं। साथ ही दिखाते हैं कि ऊपर से स्वस्थ और निश्चित दिखने वाला व्यक्ति भीतर से कितना व्यग्र और बेचैन है। वह प्रत्येक स्थिति से जुड़ना चाहता है पर उनसे अपना मानसिक संतुलन नहीं बिठा पाता। अंत में लेखक इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि "आज के समाज में ईमानदारी सबसे बड़ा शत्रु है, सत्य सबसे बड़ा पाप है, धर्म सबसे बड़ा अभाव और जीना सबसे बड़ा अभिशाप है।''पर यहाँ भी कथानक में औचित्य और संतुलन की कमी, घटना बहुलता और पात्रों की भरमार इतनी अधिक है कि पाठक पढ़ते-पढ़ते ऊबने लगता है। पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि जैनेन्द्र और इलाचंद्रजोशी ने परम्परा से हटते हुए हिन्दी उपन्यास को एक नई दिशा प्रदान की किंतु 'सभी संभावनाओं की वास्तविक पूर्णता कुछ समय बाद अज्ञेय के कृतित्व में मिली।'

अज्ञेय-अज्ञेय हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की धारा को एक नया मोड़ देते हैं। अज्ञेय के तीन उपन्यास प्रकाशित हुए हैं। 'शेखर एक जीवनी' (दो भाग) 'नदी के द्वीप' (1951) तथा 'अपने-अपने अजनबी' (1961) 'शेखर एक जीवनी' उनका सर्वाधिक प्रसिद्ध आत्मकथात्मक उपन्यास है। उसे उत्तम पुरुष में लिखा गया है। इसमें बालक शेखर से युवक शेखर की कथा का विकास है। शेखर अन्तर्मुखी, चिन्तनशील, जिज्ञासु बालक है। वह जन्म, मृत्यु, ईश्वर, युद्ध इत्यादि के बारे में प्रश्न करता है। इनके उसे समुचित उत्तर नहीं मिलते। अत: उसे अपनी अनेक जिज्ञासाओं और वृत्तियों को दबाना पड़ता है। वस्तुत: शेखर हिन्दी का ऐसा उपन्यास है जिसमें व्यक्ति के मानस की बड़ी गहराई और सूक्ष्मता के साथ जाँच पड़ताल की गई है। 'आत्मनेपद' में वे लिखते हैं: 'तो मेरी रुचि व्यक्ति में रही है और है। नदी के द्वीप व्यक्ति चरित्र का ही उपन्यास है घटना उसमें प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से काफी है पर घटना प्रधान उपन्यास वह नहीं है। शेखर की तरह वह परिस्थितियों में विकसित होते हुए एक व्यक्ति का चित्र और उस चित्र के निमित्त से उन परिस्थितियों की आलोचना भी नहीं है। वह व्यक्ति चरित्र का चरित्र के उद्घाटन का उपन्यास है। इस उपन्यास 'नदी के द्वीप' में दो प्रमुख पात्र हैं, नायक भुवन और रेखा। भुवन और उसका मित्र चंद्रमाधव दोनों प्रतिद्वन्द्वी हैं और रेखा को प्राप्त करना चाहते हैं। इस प्रतिद्वंद्विता में सफलता भुवन को मिलती है। किंतु भुवन अन्तत: गोरा के प्रति समर्पित होता है। इसे प्रेम संबधी सूक्ष्म संवेदनाओं का उपन्यास भी कहा जा सकता है। जैसे शिखर एक जीवनी' पर रोमां रोलां का प्रभाव बताया गया है। वैसे ही 'नदी के द्वीप पर' डी.एच. लॉरेन्स का।

उनका तीसरा उपन्यास 'अपने-अपने अजनबी' इन दोनों उपन्यासों से भिन्न धरातल पर रच गया दिखाई देता है। इसे कुछ विद्वानों ने अस्तित्ववादी चेतना का उपन्यास माना है। इस उपन्यास के केन्द्र में है: मृत्यु। रचनाकार ने इसकी खोज योके और सेल्मा दो पात्रों के माध्यम से की है, जो बर्फ की समाधि में फँसे हुए हैं। उनके बीच चिंतननुमा विवरण का एक लंबा सिलसिला चलता है। कथानक पर दर्शन हावी होने लगता है। इसे अज्ञेय का दार्शनिक ऊहापोह से भरा उपन्यास कहा जा सकता है। .दो पात्रों के बीच पसरा हुआ समय समूचे उपन्यास में छाया रहता है। यहाँ दोनों पात्रों की मानसिक स्थितियों का उतार-चढ़ाव भी सूक्ष्मता से अंकित हुआ है।

डॉ. देवराज-इसी क्रम में एक अन्य प्रमुख उपन्यासकार हैं: देवराज। डॉ. देवराज ने अपने उपन्यासों में शिक्षित बुद्धिजीवी समाज के जीवन की करुण वास्तविक स्थितियों का मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत किया है। उनके उपन्यासों में व्यक्तिचित्र तो हैं पर वे समाज की सापेक्षता में उपस्थित किए गए हैं। देवराज जी के चार प्रमुख उपन्यास हैं। 'पथ की खोज' (दो भाग-1951) आपका प्रथम उपन्यास है। उसके बाद 'बाहर-भीतर', 'रोड़े और पत्थर', 'अजय की डायरी', का प्रमुखता से नामोल्लेख किया जा सकता है। 'पथ की खोज' का कथ्य है कि शिक्षित समाज ने नए जीवन-मूल्यों को वैचारिक धरातल पर तो अपना

लिया है पर वे उसे आत्मसात् नहीं कर पाए हैं। वे अपने पुराने संस्कारों की जकड़बंदी से मुक्त नहीं हो पाए हैं। इस उपन्यास के केन्द्र में भी प्रणय संबंध ही हैं पर अज्ञेय के उपन्यासों के समान उनमें आभिजात्य या अलगाव दृष्टिगत नहीं होता। मध्यमवर्ग की बौद्धिकता, साधनहीनता और जीवन यथार्थ की समीपता इससे अधिक चित्रित है। कथानक में विवाह संस्था के विषय में प्रश्नचिह्न लगाया गया है। क्या स्त्री-पुरुष संबंधों का मूलाधार दैनिक संबंध ही है? दांपत्य जीवन का आधार क्या है? बुद्धिजीवी समाज की उन्मुक्तता के ऐसे अनेक प्रश्न 'पथ की खोज' उपन्यास में बड़ी ईमानदारी से उठाए गए हैं।

'बाहर-भीतर' (1954) उपन्यास देवर-भावी के परस्पर आकर्षण की कहानी कहता है। साथ ही, सामाजिक मर्यादाओं में जकड़े बाहर की जड़ता और भीतर के संघर्षपूर्ण चित्र उपन्यास में जगह-जगह अंकित हुए हैं। अन्ततः सामाजिक मर्यादाओं के आगे दोनों के टूट-बिखर जाने वाले 'भीतर' पर बाहर की विजय प्रतीकात्मक रूप से दिखाई गई है। 'रोड़े और पत्थर' (1958) में न विषयवस्तुगत और न ही शिल्प संरचनागत प्रयोग किया गया है। परन्तु मध्यवर्गीय जीवन में मकान बनाने की प्रक्रिया किस प्रकार एक समग्र अनुभूति के रूप में देखी जा सकती है, 'रोड़े और पत्थर' इसका अच्छा उदाहरण है।

डॉ देवराज का चौथा प्रमुख उपन्यास 'अजय की डायरी' है। यह मूल रूप से एक विश्वविद्यालय के अध्यापक की एक छात्रा के साथ असफल प्रेम की कहानी है, जो डायरीनुमा शैली-शिल्प में लिखी गई है। यह अनमेल विवाह की कहानी नहीं है बल्कि इसमें दिखाया गया है कि पति और पत्नी के जीवन आदर्श भिन्न है। पत्नी को पति की ऊँची शिक्षा, शोध से कोई वास्ता नहीं है। उसे चाहिए भौतिक सुखसुविधाएँ। नौकरी पेशा अजय उसे यह सब नहीं दे पाता। इस प्रकार देवराज यह दिखाने का प्रयास करते हैं कि आधुनिक शिक्षित समाज किस प्रकार अनेक कुंठाओं और भटकावों का शिकार हो रहा है अजय अपनी पत्नी से प्रेम नहीं करता तो हेम जिससे प्रेम नहीं करती उससे विवाह कर लेती है। स्पष्ट है कि डॉ. देवराज के सभी उपन्यास दर्शन और मनोविज्ञान के धरातल पर अधिक चलते हैं, व्यापक समाज से उनका अधिक सरोकार दिखाई नहीं देता।

श्री नरेश मेहता-नरेश मेहता के उपन्यास 'डूबते मस्तूल' (1954) में भी मनोवैज्ञानिक समस्या केन्द्र में है। रोमानी किस्म के इस उपन्यास की कहानी सीमाप्रांत से लेकर सुदूर लखनऊ (हौलैंड होते हुए) तक फैली हुई है। इसमें एक आधुनिका को जबरन पकड़कर ले जाया जाना तथा आठ पुरुषों की पत्नी या प्रणयिनी बना देना एक अजीब से अव्यस्थित कथाकृति को जन्म देता है। कहानी प्रवाहवादी पद्धति में लिखी गयी है। विषयवस्तु की दृष्टि से अव्यस्थित होते हुए भी उपन्यास 24 घंटे में संपन्न होकर एक नया प्रयोग बन जाता है। यहाँ लेखक मन की गहराइयों का यथार्थ चित्रण करने के स्थान पर शैली-शिल्प के व्यामोह में अधिक पड़ गया है। इसी कारण यह उपन्यास संभावनागर्भित होते हुए अधूरा रहा जाता है।

इसी प्रकार शैली-शिल्प की दृष्टि से कुछ अन्य प्रयोग भी हुए हैं। प्रभाकर माचवे का 'द्वाभा' (1955) उपन्यास कथा संगठन और शैली-शिल्प प्रयोग की दृष्टि से महत्वपूर्ण बन पड़ा है। नई शिक्षा और सामाजिक स्वतंत्रता के बावजूद भारतीय नारी की अवश स्थिति उपन्यास की केन्द्रीय समस्या है, जिसे 'द्वाभा' में उपन्यासकार ने एक नई दृष्टि से चित्रित करने का प्रयास किया है। इस उपन्यास की संरचना भी अलग किस्म की है, जिसमें स्कैच, डायरी, निबंध, कहानी यानी साहित्य के विभिन्न रूपों को लेखक ने एक साथ प्रयोग किया है। इसमें कथानक के अवमूल्यन तथा शिल्प के प्रति अतिरिक्त उत्साह की प्रवृत्ति अधिक दिखाई देती है। समग्रतः ये उपन्यास समूचे जन-जीवन की जटिलताओं की अपेक्षा व्यक्तिमन की जटिलताओं पर केन्द्रित रहे हैं। निश्चय ही ये उपन्यास नए अनुभव संसार का उद्घाटन करने वाले तथा उपन्यास-संरचना की दृष्टि से प्रयोगशील माने जा सकते हैं।

धर्मवीर भारती-मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार के रूप में भारती की प्रतिष्ठा उनके प्रथम उपन्यास 'गुनाहों के देवता' (1949) के कारण हुई। उन्होंने चन्दर और सुधा के सहज आकर्षण-विकर्षण के माध्यम से रोमांटिक प्रेम का चित्रण तो किया ही है, साथ ही यह निष्कर्ष भी निकाला है कि स्नेह और वासना, भावना और शरीर दो नहीं, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। शरीर भी उतना ही आवश्यक है जितना कि आत्मा की पुकार। नई पीढ़ी के पाठकों के बीच यह उपन्यास पर्याप्त लोकप्रिय हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद धर्मवीर भारती का दूसरा उपन्यास 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' (1952) प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास रचना शैली की दृष्टि से जितना महत्वपूर्ण बन पड़ा है, उतना विषय वस्तु के रूप में नहीं। हालांकि इसकी कथा निम्नमध्यवर्ग की स्त्रियों की संघर्ष गाथा रही है। परन्तु विद्वानों ने इसकी किस्सागोई के शिल्पप्रयोग की चर्चा अधिक की है। इन दोनों रचनाओं का विस्तृत विश्लेषण हम इकाई में आगे के बिन्दुओं में करेंगे।

9.3 धर्मवीर भारती का कथा साहित्य

धर्मवीर भारती मुख्यत: कवि के रूप में जाने जाते हैं। लेकिन उन्होंने वैचारिक चिन्तन के साथ ही कहानियाँ और उपन्यास भी समान कौशल के साथ लिखे हैं। आइए उनकी कहानियों एवं उपन्यासों पर चर्चा करते हैं:

9.3.1 कहानियाँ

उनकी रचनाओं का सबसे पहला प्रकाशित संग्रह कहानी-संग्रह ही है। नाम है – मुर्दों का गाँव' (1946) उनका दूसरा कहानी संग्रह सन् 1949 में प्रकाशित होता है। इसी वर्ष उनका एक अनूठा उपन्यास 'गुनाहों का देवता' प्रकाश में आता है। रचनात्मकता की दृष्टि से उनका यह सर्वाधिक उर्वर समय है। 1952 में उनका प्रसिद्ध प्रयोगात्मक उपन्यास 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' तथा 1955 में उनकी कहानियों का तीसरा संग्रह 'चांद और टूटे हुए लोग' प्रकाशित होते हैं। भारती ने कुल मिलाकर 36 कहानियाँ लिखी हैं। 1952-53 के बाद ये कथा-लेखन को छोड़ संपूर्णत: कविता के लिए समर्पित हो जाते हैं।

प्रारंभ में कहानी लिखते समय इनके आसपास का अनुभव संसार सजीव हो जाता है, जिसमें उनके गली-मुहल्ले के जीवन का पर्याप्त योगदान है। अपनी 'कथा यात्रा' के विषय में भारती ने बताया है: "वह लड़की–जिसे भले घर का लेकिन बहुत गरीब लड़का मन-ही-मन बड़ा सुकोमल, बड़ा इंद्रधनुषी प्यार करने लगा था और उस प्यार को कभी जबान पर नहीं लाता था, बिल्कुल नीम के चैती फूलों की तरह थी, ताजी क्वाँरी पवित्र, उजली लेकिन काफी कड़वी। और वह लड़का धरती पर रहकर आकाश के सपने देखने लगा था।" (साँस की कलम से) यह है उनके रोमानी सपने देखने और रोमांटिक प्रेम की शुरुआत। फिर लेखक के मानस पर जयशंकर प्रसाद जैसे रचनाकार का प्रभाव अपना रंग भर रहा था। वे लिखते हैं: "प्रसाद की भाषा का जादू उस समय सिर पर सवार था और आस्कर वाइल्ड थे उस समय उसके प्रिय लेखक। सो उस कहानी की भाषा क्या सिंगार-सजावट वाली थी और कल्पना कैसी झिलमिल सतरंगी थी।" यह भारती की प्रारंभिक कहानियों का वह रोमानी संसार है, जिसे वे स्वयं स्वीकार करते हैं। इन कहानियों में किशोर भावुकता, प्रकृति, प्रणय की विविध मन: स्थितियों को लेखक ने तरह-तरह से कहने का प्रयास किया है। इसका कुछ अनुमान इनकी प्रारंभिक कहानियों के शीर्षकों से लगाया जा सकता है। 'चाँद और टूटे लोग', 'आधार और प्रेरणा', 'स्वर्ग और पृथ्वी', 'कवि और जिन्दगी', 'युद्ध, मृत्यु और कविता', 'स्वप्न श्री और श्रीरेखा', 'नारी और निर्वाण', 'तारा और किरण', 'पूजा' आदि में लोकोत्तर जीवन की झलक अधिक है। यहाँ वातावरण यथार्थ होते हुए भी स्थितियों और पात्रों की परिणतियों पर उनके रोमानी संस्कारों की छाप स्पष्ट दिखाई दे

जाती है। भले ही, इनमें नारी-पुरुष का वही चिरंतन संघर्ष, मानव हृदय की वे ही दुर्बलताएँ, वे ही समस्याएँ, वे ही कुरीतियाँ क्यों न चित्रित की गई हों। सब कुछ तत्कालीन यथार्थ से दूर एक दूसरे ही संसार का निर्माण करता है। निर्मल वर्मा के शब्दों में कहें तो इन कहानियों के मूल में होता है: "भीगती मसों का रोमांस, पवित्र निष्कलंक किस्म की आदर्शवादिता, आध्यत्मिक अन्तर्लोक का सुगंधित वायुमंडल, जिसमें प्रवेश करने से पहले पैरों से कीचड़ से सने जूते उतारने पड़ते हैं।'' यहाँ उन्मुक्त आकाश की स्वतंत्र छाया है; चाँदनी की लहरें हैं, कल्पना है जिसके प्रेम ने मनुष्य को नया जीवन दिया है। समता और स्वतंत्रता से युक्त दुनिया प्रदान की है। मानो यह देश-काल के बोध से परे एक नए लोक की रचना है। यहाँ नारी-पुरुष के शाश्वत प्रेम की कहानी कही गई है। पर बार-बार लेखक इस लोक की ओर लौटता है। स्वतंत्रता और समता की कामना अपने रचना संसार में प्रकट करता है। यह सब उसे अपने समय से जोड़ता है।

भारती की सर्वाधिक चर्चित कहानियाँ सन् साठ के बाद प्रकाशित हुई हैं। उन्हें 'बंद गली का आखिरी मकान' (1969) में संकलित किया गया है। ये कहानियाँ हैं: 'गुल की बन्नो', सावित्री नं. दो', 'यह मेरे लिए नहीं' और 'बंद गली का आखिरी मकान'। इन कहानियों का वस्तु संसार और संरचना शिल्प पूर्ववर्ती कहानियों से थोड़ा भिन्न प्रतीत होता है। विश्वास नहीं होता, यह गुल की बन्नो और बंदगली का आखिरी मकान के लेखक हैं। और तभी झटका-सा लगता है। हमारे सामने सहसा एक कोई ऐसी कहानी आ जाती है, जिससे अकाल की विभीषिका या अस्पताल में आखिरी साँस गिनते हुए, पीड़ा, भूख और बीमारी में कुलबुलाते हुए मानव कंकालों के सामने लेखक की रोमांटिक छवि के मनोरम चित्र एकाएक खंडित हो जाते हैं।'' (निर्मल वर्मा) दरअसल ये कहानियाँ साठ और सत्तर के दशक के उस दौर की कहानियाँ हैं जहाँ हिन्दी कहानी स्थितियों और पात्रों की कृत्रिमता से मुक्त हो रही थी तथा हर प्रकार की वर्जनाओं और सामाजिक रूढ़ियों का निषेध करके जीवन की सहज-स्वस्थ प्रवृत्ति पर ध्यान केन्द्रित कर रही थी। भारती की इन कहानियों में इसकी झलक विद्यमान है। ये कहानियाँ अपने परिवेशगत यथार्थ को बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से नहीं देखती या अंकित करती हैं, वरन् इन कहानियों के पात्र गुलकी, दीनू, सावित्री, मुंशीजी तथा शेष सभी पात्र जीवन के बहाव में पड़कर अपने-अपने अभावों-पीड़ाओं की कहानी कहते पाए जाते हैं। केवल कहानी कहना भारती का उद्देश्य नहीं, उन्होंने तत्कालीन निम्नवर्गीय भारतीय नारी जीवन के बाह्य और आन्तरिक यथार्थ के सूक्ष्म चित्र अपनी परवर्ती कहानियों में उद्घाटित किए हैं। ये भारतीय समाज व्यवस्था और उसकी यथा तथ्य हलचल के सूचक हैं। कहीं-कहीं युवा प्रेम प्रसंगों में, उनके संघर्षों में, पीड़ा के अनुभवों में अतिरंजना आ जाती है। भारती की भावुक रोमानी दृष्टि और संस्कार कृत्रिमता को जन्म देने लगते हैं, जिससे जीवन्तता के बावजूद कहानी का प्रभाव हलका पड़ने लगता है। उदाहरणार्थ- 'यह मेरे लिए नहीं' का दीनू और उसकी माँ का संघर्ष, उसमें दीनू का जीतकर भी हार जाना अथवा उसकी चाची के परिवार का सौहार्द जाड़े की धूप और हरसिंगार की गंध-सा अपर्णा का संसर्ग एक विषाद के वातावरण की सृष्टि करता है तथा कहानी को मर्मस्पर्शी तो बनाता है पर उसके प्रभाव के घनत्व को खंडित कर जाता है। सही है कि इनका वस्तु संसार व्यापक है। इनमें अंकित पात्रों की मानसिकता के विविध चित्र कहानी के समूचे परिवेश को जीवंत और आकर्षक भी बनाते हैं तथा कहानी को विश्वसनीयता प्रदान करते है, पर वही समूचे साँचे में विद्यमान किशोर भावुकता के चलते कहानी अपनी तार्किक परिणति पर नहीं पहुँचती और कमजोर हो जाती है।

9.3.2 उपन्यास

धर्मवीर भारती ने मनोवैज्ञानिक किस्म के दो अनुभवपरक उपन्यास लिखे हैं: 'गुनाहों का देवता' (1949) और 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' (1952) दोनों उपन्यास अपनी प्रकृति में एक दूसरे से भिन्न हैं। आइये भारती के दोनों उपन्यासों पर चर्चा करें।

गुनाहों के देवता-भारती के पहले उपन्यास 'गुनाहों का देवता' के बारे में प्राय: विद्वानों का मत रहा है कि यह एक भावनात्मकता, भावुकता और उच्छ्वास से युक्त उपन्यास है। उसमें रोमानी प्रेम की कहानी कही गई है। कुछ विद्वान इस मत से सहमति नहीं रखते। जैसे डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार 'न इसमें भावनाओं की उड़ान है, न मनोविज्ञान का आग्रह है और न यथार्थ की नग्नता। फिर भी उसमें सब कुछ है और सब कुछ के अतिरिक्त कुछ और भी जिसकी हम विवेचना नहीं कर पाते। और जो हमें बरबस आकर्षित करने में समर्थ है।'' वस्तुनिष्ठ दृष्टि से देखा जाए तो भारती जी के इस उपन्यास में प्रेम को एक समग्र मानवीय व्यवहार के रूप में चित्रित किया गया है जो युवक-युवतियों के बीच का त्याग भावना से प्रेरित और वासना रहित प्रेम है। उपन्यास में चंदर सुधा को अपनी समस्त पवित्रता से प्रेम करता है, वासना उसके लिए गर्हित है और इस प्रकार वे दोनों रोमानी प्रेम के प्रवाह में बहते रहते हैं। एक दूसरे से प्रेम में होड़ करते हुए; ऊपर उठते हुए। फिर, सुधा का विवाह होता है। चंदर खुशी-खुशी इस कार्य को संपन्न कराने में मदद करता है--यह सोचकर कि प्रेम तो इन सबसे ऊँची वस्तु है। परन्तु सुधा अपने चंदर से उखड़कर दूसरी जगह जीवित नहीं रह पाती। चंदर सोचता है कि सुधा पति के घर जाकर उसे भूल गई। वह उसे पत्र नहीं लिखता और ईसाई युवती पम्मी के आकर्षण में फँसकर वासनात्मक प्रेम (गुनाह!) में डूब जाता है। यहीं से प्रेम की यंत्रणा का प्रारंभ होता है। पम्मी चंदर को प्रेम के रहस्य को समझाती है: "शरीर की प्यास भी उतनी ही पवित्र और स्वाभाविक है जितनी आत्मा की पूजा। आत्मा की पूजा और शरीर की प्यास दोनों अभिन्न हैं। आत्मा अभिव्यक्ति शरीर से है शरीर का संस्कार, शरीर का संतुलन आत्मा से है। जो आत्मा शरीर को अलग-अलग कर देता है वही मन के भयंकर तूफानों में उलझकर चूर-चूर हो जाता है।'' पम्मी चंदर की सोच को संतुलन प्रदान करती है। अन्यथा चंदर का प्रेम स्वर्गस्थ दैविक प्रेम बना हुआ था। किंतु तब तक सुधा उसे छोड़ दूर जा चुकी होती है।

'गुनाहों का देवता' मध्यवर्गीय प्रेम की कहानी है। इसके विषय में लेखक का मंतव्य स्पष्ट है "मेरी निगाह में तो समाज की वर्तमान मान्यताएँ और व्यवस्था एक बहुत बड़ा गुनाह है क्योंकि वह आधुनिक तरुण के स्वस्थ विकास की हत्या कर डालता है और नतीजा यह होता है कि हमारे राष्ट्र के युवक कभी अपने वैयक्तिक अन्तर्विकारों और उलझनों से उबरकर एक स्वस्थ-सामाजिक धरातल पर नहीं आ पाते....मैं ऐसी नैतिकता के खिलाफ विद्रोह करता हूँ। लेकिन उपन्यास के सम्पूर्ण पटल पर कोई विद्रोह नहीं मिलता। यह एक साधारण मध्यवित्त परिवार के युवायुवतियों के निष्पाप प्रेम की कहानी बनकर रह जाता है। जहाँ वासनात्मक उच्छृंखलता तो दूर ऐसा सोचना भी पाप सिद्ध होता है। इसलिए इस उपन्यास के कथानक में अधिकांशत: भावनात्मक आलोड़न-बिलोड़न अधिक आया है और सुधा के विवाहोपरांत अपने पति के घर चले जाने के बाद प्रतिक्रिया स्वरूप चंदर का पम्मी के प्रेम में डूब जाना पाठक को अच्छा नहीं लगता। कथाकार ने ऐसे वातावरण में अपने पात्रों का निर्माण किया है और घोषणा की है कि ये पात्र 'एक ओर समाज के शिकंजे से लड़ रहे हैं तो दूसरी ओर अपने मन की कमजोरी से।' उपन्यास को पढ़ने के बाद लगता है कि ये पात्र समाज के शिकंजे से लड़ कम रहे हैं अपने अन्तर्द्वन्द्व के शिकंजे में फँसे हुए अधिक दिखाई देते हैं। इसलिए यह उपन्यास समाज से लड़ने के बजाय व्यक्तिकेन्द्रित-भावुक मन की कहानी अधिक बन गया है। जिसमें चंदर एक काल्पनिक और स्वर्गिक नैतिकता के झोंके में सुधा के जीवन से खेलता है और उपन्यास सुधा और चंदर के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व, शरीर और आत्मा के संघर्ष से आगे बढ़कर जीवन के ठोस धरातल का स्पर्श नहीं कर पाता। हालाँकि यहाँ भी 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' के समान उपन्यास में समाज और अर्थशास्त्र के महत्व की चर्चा हुई है। जैसे: "अर्थशास्त्र वह पत्थर है जिस पर समाज के सारे भवन का बोझ है।'' पर यहाँ वह अर्थशास्त्र को उतना महत्व नहीं देता। समाज में उसके महत्व की चर्चा नहीं करता। बल्कि कथाकार कहता है कि "जिन्दगी सिर्फ आर्थिक

पहलू तक सीमित नहीं और वह यह भी समझता था कि जीवन को सुधारने के लिए सिर्फ आर्थिक ढाँचा बदल देने भर की जरूरत नहीं है। उससे आगे भी बहुत सी चीजें हैं जिनसे मिलकर जिन्दगी चलती है।'' इसलिए उपन्यास में कहा गया है कि इन सबके लिए आदमी का सुधार करना होगा। व्यक्ति का सुधार करना होगा। किंतु उपन्यास की कथा में जीवन को सुधारने या आदमी को बदलने वाली किसी घटना का उल्लेख नहीं किया गया है। न बाद में कहीं अर्थशास्त्र ही दिखाई देता है। यहाँ तक कि युगीन सामाजिक-राजनैतिक परिवेश में हो रही उथल-पुथल का संकेत तक नहीं मिलता। देश का विभाजन और शरणार्थियों जैसी बड़ी घटनाएँ भी एकाध स्थल पर प्रसंगवश आ गई हैं। दरअसल, उक्त उपन्यास के केन्द्र में समाज या सामाजिक समस्याएँ हैं ही नहीं। केन्द्र में है व्यक्ति। चंदर और सुधा, उनका त्याग और उनका वासना रहित प्रेम–यही इस पूरे उपन्यास पर हावी है। देखा जाए तो, चंदर और सुधा, उनके जीवन की त्रासदी, सुधा के जीवन की समाप्ति इन सबके लिए चंदर और सुधा स्वयं जिम्मेदार हैं। लेकिन राजेन्द्र यादव के अनुसार इसका जिम्मेदार सिर्फ चंदर है। वे लिखते हैं 'गुनाहों का देवता' ''व्यक्तिवादी उपन्यास है, क्योंकि उसमें व्यक्ति का चित्रण है, उसकी मन:स्थितियों का वर्णन है उसकी भावनाओं के विकास-ह्रास का आकलन है और वह व्यक्ति है चंद्रकुमार कपूर।'' अत: अर्थ, अर्थशास्त्र, सुधार आदि 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' की तरह इसमें भी आरोपित हैं।

यह सही है कि 'गुनाहों का देवता' उपन्यास का कथानक चंदर और सुधा के भावुकता पूर्ण प्रेम के इर्द-गिर्द ही घूमता है। लेखक उनके मानसिक अन्तर्द्वन्द्व, नारी और आत्मा के संघर्ष को ही अपने इस उपन्यास की कहानी में विन्यस्त करता है। चंदर और सुधा का प्रेम ऐसा आलौकिक दिखता है कि देवता भी शरमा जाएँ। भावनाओं का जाल इस तरह फैलाया जाता है कि कहानी ठोस वास्तविक धरातल पर लौट ही नहीं पाती। पहले चंदर अपने निष्पाप प्रेम की उमंग में सुधा का विवाह किसी दूसरे से करा देता है फिर उसे भूलने के लिए पम्मी के वासनात्मक प्रेम में डूब जाता है। यहाँ भारती अज्ञेय की तरह वासना और प्रेम को दो अलग हिस्सों में बाँटकर देखते हैं। किंतु कथानायक चंदर शीघ्र ही सुधा के दु:खद अंत के बाद ही साधारण वास्तविक दुनिया में लौट आता है। सुधा अपने अन्तर्द्वन्द्व में अपेक्षाकृत स्पष्ट है। पर उसकी कमजोरी यह है कि अपनी भावनाओं को उजागर नहीं कर पाती। उपन्यास में एक स्थल पर अपनी इस उलझन को व्यक्त करते हुए चंदर से कहती है: "पापा कहते हैं ब्याह करो, पम्मी कहती है मत करो, गेसू कहती है तुम प्यार करती हो और तुम.....तुम भी कुछ भी नहीं कहते। तुम मुझे इस नरक में बरसों से सुलगते देख रहे हो और बजाय इसके कि तुम कुछ कहो, तुमने खुद इस भट्टी में ढकेल दिया।'' डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी इस चरित्र के अन्तर्विरोधों, उनके प्रेम के स्वरूप की चर्चा करते हुए स्वयं अन्तर्विरोधों के शिकार हो जाते हैं। वे कहते हैं: "यह प्रेम ऐसा सरल, शुद्ध और नि:स्वार्थ है कि उसमें सेक्स की झलक भी नहीं दिखाई देती और दिखाई भी कैसे दे क्योंकि सैक्स तो वहीं उभरता है जहाँ कि पुरुष और स्त्री सामाजिक विषमता के फलस्वरूप मिल न पाते हों। किन्तु फिर भी अपने कोरे आदर्शवाद के कारण चंदर अपने जीवन दर्शन में असफल रहता है।'' प्रश्न है कि क्या सामाजिक विषमता के बिना स्त्री-पुरुष में प्रेम नहीं हो सकता या इसका सारा दोष चंदर के कोरे आदर्शवाद का है कि वह अपनी भावनाओं को समझ नहीं पाया अथवा सुधा के पिता के उपकारों के बोझ के कारण अपने प्रेम की अभिव्यक्ति नहीं कर पाया। अन्यथा ऐसा क्यों होता है कि वह सुधा के विवाह के बाद पम्मी के प्रेम में आकंठ डूब जाता है? दरअसल सुधा के चले जाने के बाद उसके कोरे आदर्शवाद को धक्का लगता है तथा उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप वह यह कदम उठाता है। यह उसका स्वाभाविक कदम नहीं है। वह गेसू के सहारे इस दलदल से बाहर निकल आता है और अपनी गलती का अहसास भी करने लगता है। चंदर सोचने लगता है कि प्रेम और वासना एक सिक्के के दो पहलू हैं। यहाँ कथनीय है कि कथाकार भारती प्रेम के विषय में चाहे जो भी विचार व्यक्त करें वह ठोस वास्तविक प्रेम की बजाय भावोच्छ्वास वाले प्रेम में अधिक

रमते रहे हैं, यही कारण है कि चंदर में भावुकता और त्याग के बल पर देवता बनने की चाह अधिक रही है; वास्तविक मनुष्य बनने की नहीं। कारण, मनुष्य बनने में द्वन्द्व और संघर्ष के साथ-साथ साहस की आवश्यकता होती है, जिसे चंदर उपन्यास के अंत में समझ और जान पाता है। भावोच्छ्वास वाला यह प्रेम 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' में भी प्राय: प्रकट हुआ है।

'गुनाहों का देवता' में सर्वाधिक शक्तिशाली पात्र सुधा और चंदर ही हैं। इसमें चंदर का चरित्र अधिक उभरा हुआ है। हालांकि द्वन्द्व ग्रस्तता की रेखाएँ सुधा में भी कम नहीं उभरी हैं। फिर भी त्याग और निष्पाप प्रेम को दर्शाते हुए चंदर सुधा के जीवन से खेलता है। वह अपने प्रेम को अपने से अलग करके भी फलते-फूलते देखना चाहता है। परन्तु वह अपने इस परीक्षण में असफल रहता है और उसका बहुत बड़ा मूल्य चुकाता है। उसका यह भोगना कुछ भी नहीं है क्योंकि सुधा को तो जीवन का मूल्य चुकाना पड़ता है। वह एक जगह से उखड़कर दूसरी जगह बस नहीं पाती। फिर भी वह इसमें स्त्री का ही दोष देखता है। कहता है: "औरत बड़ी बातें करेगी, आत्मा, पुनर्जन्म, परलोक का मिलन; लेकिन उसकी सिद्धि सिर्फ शरीर में है।" स्पष्ट ही चंदर के व्यक्तित्व में एक सिरे पर प्यार का एक स्वरूप है तो दूसरे सिरे पर उसके विपरीत एकदम दूसरा। वह अन्तर्मुखी, घनघोर व्यक्तिवादी और अहंकारी चरित्र है जिसे एकदम अव्यावहारिक भी कहा जा सकता है। सुधा चंदर का ही अंश है। उपन्यास में कहा भी गया है। चंदर सूर्य है जिसमें सुधा की चाँदनी चमक रही है। उसके व्यक्तित्व की छाया लेकर वह सशक्त हो जाती है तो उस से दूर होकर उसकी चाँदनी छाया में बदल जाती है। वह रूग्ण हो जाती है और क्रमश: खत्म हो जाती है। उसके खत्म होने में चंदर का-उसके प्रेम के परीक्षण का ही हाथ है। वह अपने प्रेम के माध्यम से सुधा के जीवन से खेलता है। उसे नहीं पता था कि सुधा का प्यार, विश्वास ही उसकी आत्मा थी, जिसके बिना वह शरीर मात्र रह जाएगा। यह परीक्षण और असफलता चंदर के व्यक्तित्व का सर्वाधिक कमजोर अंश है।

चंदर और सुधा के बाद गेसू, बिनती, पम्मी और डॉ. शुक्ल के चरित्रों के विकास पर कथाकार का ध्यान गया है। इनमें सर्वाधिक सजीव और विश्वसनीय चरित्र गेसू और बिनती के हैं। "गेसू शायर होते हुए भी इस दुनिया की थी और सुधा शायर न होते हुए भी कल्पना लोक की थी।" और यही अंतर बिनती और सुधा में दिखाया गया है। "बिनती व्यावहारिक, कितनी यथार्थ, कितनी संयत और सुधा कितनी आदर्श, कितनी कल्पनामयी, कितनी सूक्ष्म, कितनी ऊँची, कितनी सुकुमार और पवित्र।" इन दोनों कथनों में दोनों चरित्रों की रेखाएँ स्पष्टत: प्रकट हो गई हैं। नारी पात्रों में पम्मी को सबसे अलग दिखाया गया है। वह ऐसा चरित्र है जो साफ बातें करता है। शुद्ध तर्क के धरातल से। वह व्यवहार कुशल पात्र के रूप में चित्रित है जो चंदर को शरीर के आकर्षण का महत्व समझाती है। पर यह कहना कि वह चंदर को वासना में उलझाकर रखना चाहती है–अनुचित है। वह चंदर के लिए सिगरेट पीना छोड़ती है। कविता में रुचि लेने लगती है। वह मानवमन की अच्छी जानकार है। पम्मी चंदर के स्पर्श से जान जाती है कि चंदर में अब आवेग की आग बुझ गई है। वह चंदर को कभी पा नहीं सकेगी। वह इसके लिए आगे प्रयास जारी नहीं रखती। फिर भी पम्मी को धूर्त्त या दुष्ट चरित्र नहीं कहा जा सकता। अन्यथा वह चंदर को यह सलाह नहीं देती "किसी अच्छी-सी सीधी सादी हिंदू लड़की से अपना विवाह कर लेना। किसी बहुत बौद्धिक लड़की जो तुम्हें प्यार करने का दम भरती हो, उसके फँदे में न फँसना कपूर! मैं उम्र और अनुभव दोनों में तुमसे बड़ी हूँ।" किंतु चंदर न अपने को जान सका और न वक्त पर साहस दिखाकर सुधा के जीवन को बचा सका। वह एक ऐसा मध्यवर्गीय चरित्र है जो अपनी कमजोरी के कारण जीवन में किसी निर्णय पर नहीं पहुँच पाता।

वातावरण-निर्माण एवं वर्णन शैली-शिल्प की दृष्टि से 'गुनाहों का देवता' उपन्यास लेखक की प्रारंभिक रचना होते हुए भी अप्रतिम है। संभवत: उसका एक कारण उसकी अभिव्यंजना प्रधान भाषा है। लेखक जब किसी चीज का वर्णन करने लगता है तो वह उसे जीवंत बना देता है। चंदर-सुधा, गेसू-सुधा के प्रारंभिक वार्तालाप, जहाँ इनका रूठना-झगड़ना दिखाया गया है, वहाँ भारती की कला अपने उत्कर्ष पर पहुँची दिखाई देती है। उपन्यास 'स्वप्नमयी मधुर कविता' बन जाता है। सुधा के विवाह का वर्णन मार्मिक बन पड़ा है– "लेकिन यह जिन्दगी भी, जहाँ प्यार हार जाता है, मुस्कानें हार जाती हैं, आँसू हार जाते हैं.....तश्तरी, प्याले, कुल्हड़, पत्तलें, कालीनें, दरियाँ और बाजे जीत जाते हैं.....और जहाँ दो आँसुओं में डूबते हुए व्यक्तियों की पुकार शहनाइयों की आवाज में डूब जाता है।" स्पष्ट है कि उक्त उपन्यास की रसमयता उसकी भाषा-शैली के कारण है। ये ऐसे वर्णन हैं जो उपन्यास को मर्मस्पर्शी बना देते हैं। जगह-जगह नाटकीयता का विधान किया गया है। इस उपन्यास की शैली पर छायावाद का प्रभाव देखा जा सकता है। "उसकी हँसी में दूधिया बचपन छलक उठता है।" या "सुधा बाँस की टहनी की तरह लचक कर बोलती है।"आदि इसके उदाहरण हैं। ये उपन्यास को कवित्वपूर्ण और मधुर बनाते हैं।

भारती को फूलों से विशेष प्रेम रहा है। उदाहरण के लिए देखें: "सुधा भी बड़ी प्यारी। बड़ी खूबसूरत। खासतौर से उसकी पलकें तो अपराजिता के फूलों को मात करती थीं। और थी इतनी गुदकारी कि कहीं पर दबा दो तो फूल खिल जाएं। मूंगिया होठों पर न जाने कैसा अछूता गुलाब मुसकराता था और बाहें तो जैसे बेले की पँखुरियों की बनी हों।" ऐसा नहीं है कि सारे उपन्यास में एक ही प्रकार की भाषा-शैली अपनाई गई है, वह भावानुरूप बदल भी जाती है। कुछ स्थल गद्यकाव्य जैसे बन गए हैं, तो कहीं शैली छलकती हुई सी दिखाई देती है। मोटे रूप में देखें तो उक्त उपन्यास में भाषा के दो मुख्य रूप मिलते हैं। एक यथार्थ की मार से बनी कठोर और निर्मम भाषा; तो दूसरी ओर, प्रणय के रंगों से सराबोर उन्मादक भाषा। कथाकार ने प्रकृति के विभिन्न रूपों को मनुष्य और उसके भावों से जोड़कर अनन्य चित्र प्रस्तुत किए हैं।

इस प्रकार जीवन की कोमलता, अनुभूतियाँ और संवेदनाएँ इस उपन्यास में साकार हो उठी हैं; जिसमें भावनात्मकता का उफान है तो रोमानी कल्पनाओं से उपन्यास सतह से ऊपर उठ जाता है। यही पक्ष उपन्यास को सतही रोमानी प्रेम कहानी से आगे ले जाता है; जो न रूढ़िगत प्रेमगाथा कहता है न विद्रोहात्मक, किन्तु वह त्रासद अनुभव अवश्य बन जाता है।

सूरज का सातवाँ घोड़ा-'सूरज का सातवाँ घोड़ा' (1952) भारती का 'गुनाहों का देवता' के बाद दूसरा उपन्यास है। इसके विषय में उपन्यासकार ने 'निवेदन' में लिखा है कि "दोनों कृतियों में कालयुग का अंतर पड़ने के अलावा उन बिंदुओं में भी अंतर आ गया है जिन पर होकर मैंने समस्या का विश्लेषण किया है।" आइए, सबसे पहले उन बिंदुओं की ही पड़ताल की जाए जिन्हें लेकर लेखक ने 'समस्या का विश्लेषण' किया है। दरअसल, 'गुनाहों का देवता' उपन्यास एक भावुक प्रेम कहानी है, जिसमें समाज और उसकी समस्याएँ उतनी मुखरित नहीं हुई हैं जबकि 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' में निम्नमध्यवर्गीय जनजीवन की धड़कन साफ सुनाई देती है। फिर, मार्क्सवाद की छौंक उस उपन्यास में नहीं थी। इस उपन्यास के कथाविधान में सामाजिक परम्परा और आर्थिक व्यवस्था के बीच जो जीवन जिया जा रहा है, उसकी समस्याओं को लेखक ने अपने सृजन के केन्द्र में रखा है। इस सिलसिले में वह अपने समाज के संदर्भ में मार्क्सवादी चिंतकों की भूमिका से भी सहमति नहीं रखता। भारती 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' उपन्यास के 'निवेदन' में इसका उल्लेख करते हैं: "पिछले तीन चार वर्षों में मार्क्सवाद के अध्ययन से मुझे जितनी शांति, जितना बल और जितनी आशा मिली है, हिंदी की मार्क्सवादी समीक्षा और चिंतन से उतनी ही निराशा और असंतोष।"उक्त कथन की आरंभिक स्थापना भारती के इस उपन्यास में कहीं

पुष्ट नहीं होती। माणिक मुल्ला से लेकर तांगेवाले के सम्बंध में टीपी गई भारती की टिप्पणियाँ मार्क्सवाद का मखौल ही लगती हैं, इसे 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' में लेखकीय दृष्टि पर विचार करते हुए विशेष रूप से स्पष्ट किया जाएगा। संभवत: इसीलिए उसकी कथा सृष्टि में मार्क्सवाद की तर्कसंगति की अपेक्षा रोमानी भावबोध अधिक उभरता दिखाई देता है। आइए, सबसे पहले इस उपन्यास की कथा पर दृष्टि डालें।

इस उपन्यास में माणिक मुल्ला आपबीती के रूप में निम्नमध्यवर्गीय परिवारों की कहानी अपने नौजवान साथियों को सुनाता है। ये निम्न मध्यवर्गीय जीवन जी रहे परिवारों के हृदय-द्रावक किस्से हैं, जो पाठक को झिंझोड़ते हैं। इन छोटी-छोटी कहानियों को 'माणिक मुल्ला' कथा चक्र के अन्तर्गत निष्कर्षवादी कथाओं के रूप में कहा गया लघु उपन्यास कहा जा सकता है।

इस उपन्यास में जमुना, लिली और सत्ती के जीवन से जुड़ी कहानियाँ वर्णित हैं, जिन्हें माणिक मुल्ला ने सातवीं दोपहर की कहानी में सूरज के मिथक के साथ जोड़ दिया है। इन सभी कहानियों में या इस उपन्यास में साधारण युवक-युवतियों के आकांक्षित प्रेम की कहानी कही गई है, जिसे वे अंत तक प्राप्त नहीं कर पाते। इन प्रेम कहानियों के माध्यम से कथाकार ने निम्नमध्यवर्गीय जनजीवन की त्रासद स्थितियों, उनके घुटन भरे जीवन उसमें जैसे-तैसे जिन्दा रहने की विवशता के अनेक चित्र खींचे हैं। इसका कारण लेखक की दृष्टि में वे सामाजिक-आर्थिक स्थितियाँ हैं जिनके बीच जीवन जिया जा रहा है। माणिक मुल्ला के साक्ष्य से कथाकार कहता है कि "जब मैं प्रेम पर आर्थिक प्रभाव की बात करता हूँ तो मेरा मतलब यह रहता है कि वास्तव में आर्थिक ढाँचा हमारे मन पर इतना अजब प्रभाव डालता है कि मन की सारी भावनाएँ उससे स्वाधीन नहीं हो पातीं और हम जैसे लोग जो न उच्चवर्ग के हैं, न निम्नवर्ग के, जिनके यहाँ रूढ़ियाँ, परम्पराएँ, मर्यादाएँ भी ऐसी पुरानी और विषाक्त हैं कि कुल मिलाकर हम सबों पर ऐसा प्रभाव पड़ता है कि हम यंत्र मात्र रह जाते हैं। हमारे अंदर उदार और ऊँचे सपने खत्म हो जाते हैं और एक अजब-सी जड़ मूर्च्छना हम पर छा जाती है। दरअसल, होता यह है कि जब हम परिस्थितियों के बहाव में बहते चले जाते हैं तथा उसके विरुद्ध खड़े होने का साहस नहीं जुटा पाते तो उस व्यवस्था का पुर्जा बनकर उसी को अपनी नियति मान लेते हैं।" कथाकार को साधारण व्यक्ति के इस व्यवस्था के यंत्र बन जाने का अहसास ही नहीं, बेचैनी भी है लेकिन वह कथानक में चरितार्थ होती नहीं दीखती बल्कि विचार के धरातल पर आकर ही समाप्त हो जाती है। विरोध या विद्रोह का साहस किसी में नहीं मिलता। जिसमें इसका जरा-सा अंश भी आ गया है, वह घटना या पात्र उपन्यास में महत्वपूर्ण बन गया है। इस दृष्टि से सत्ती का प्रसंग द्रष्टव्य है। सत्ती का माणिक के प्रति प्रेम सामाजिक-आर्थिक परिवेश के अनुशासन को नहीं मानता। हालाँकि मध्यवर्गीय व्यक्ति माणिक इस प्रेम के लिए भी चारों ओर हानि-लाभ की गणना करता है। अंतत: सत्ती को धोखा दे देता है। यानी निम्नवर्गीय सत्ती प्रेम के लिए आर्थिक अनुशासन को महत्वपूर्ण नहीं मानती, मध्यवर्गीय माणिक मानता है। फिर भी विचार के धरातल पर अपने पूर्व वक्तव्य का संशोधन करते हुए वह आगे कहता है: "यह सच है कि प्रेम आर्थिक स्थितियों से अनुशासित होता है, लेकिन मैंने जोश में कह दिया था कि प्रेम आर्थिक निर्भरता का ही दूसरा नाम है यह केवल आंशिक सत्य है। इसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता कि प्यार.....आत्मा की गहराइयों में सोये हुए सौन्दर्य के संगीत को जगा देता है, हममें अजब सी पवित्रता, नैतिक निष्ठा और प्रकाश भर देता है आदि-आदि। लेकिन.....हम सब परंपराओं, सामाजिक परिस्थितियों, झूठे बंधनों में इस तरह कसे हुए हैं कि उसे सामाजिक स्तर पर ग्रहण नहीं कर पाते उसके लिए संघर्ष नहीं कर पाते और बाद में अपनी कायरता और विवशताओं पर सुनहरा पानी फेर कर उसे चमकाने की कोशिश करते रहते हैं।.....और जो भी भावना हमारे सामाजिक जीवन की खाद नहीं बन पाती, जिन्दगी उसे झाड़-झंखाड़ की तरह उखाड़

फँकती है।'' 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' के कथानक में इन्हीं मानवीय संबंधों के विरोधी रूपों और तनावों को उसकी कथा में बुनने का प्रयास किया गया है। इन कहानियों के माध्यम से साधारण जन-जीवन की जर्जर रूढ़िबद्धता, उनके मानसिक विधान की सीमा से पैदा होने वाले कष्टों का विविध आयामी चित्रण-इस उपन्यास को नई अर्थवत्ता प्रदान करता है। साथ ही स्वप्न, यथार्थ और मिथक का उपन्यास के कथानक में इस प्रकार का संतुलन बनाया गया है कि हिन्दी उपन्यासों में यह एक प्रयोगधर्मी उपन्यास बन गया है।

इस उपन्यास में पात्रों की गतिशीलता से कथानक का निर्माण होता है। पहली कहानी की नायिका जमुना रो-धोकर माता-पिता को अपने से नीचे गोत वाले लड़के तन्ना से विवाह के लिए मना लेती है। किन्तु दोनों परिवारों के जातिगत अहंकार उनके जीवन को नष्ट कर देते हैं तथा जमुना को एक तिहाजू वृद्ध जमींदार से विवाह करने के लिए विवश होना पड़ता है। उपन्यास की दूसरी कहानी की नायिका लिली नई शिक्षा के आलोक से स्वतंत्र व्यक्तित्व धारण करने वाली रोमानी सपनों से युक्त है। उसके सपने जीवन में साकार नहीं हो पाते। वह टूट जाती है तथा अपने पति तन्ना को उसके भाग्य पर छोड़कर अपनी माँ के पास वापिस लौट आती है। तीसरी मेहनत-मशक्कत करने वाली सत्ती का अनोखा चित्र रखा गया है। जो न लिली के समान पढ़ी-लिखी है और न अनपढ़ दमित मन वाली जमुना के समान है। वह वर्जनामुक्त सहज-स्वस्थ ममतामयी युवती है। हमदर्दी चाहती है और हमदर्दी देती है। वह स्वाधीन और साहसी लड़की है, "जो मध्यवर्ग की मर्यादाओं के शीशे के पीछे सजी हुई गुड़िया की तरह बेजान और खोखली न थी।'' "वह ऐसी लड़की है जो सृजन और श्रम में सामाजिक जीवन में उचित भाग लेती हो, अपना उचित देय देती है।'' इस प्रकार कथाकार ने समाज में विद्यमान अनेक प्रकार के नारी चरित्रों की सृष्टि की है। किन्तु पैतृक व्यवस्था, जाति-पाँति के बंधन, सामाजिक रूढ़ियों और वर्ण-वर्ग के आधार पर सभी नारी चरित्र किसी न किसी प्रकार के शोषण की शिकार बनती हैं। सत्ती के चरित्रगत विकास से प्रतीत होता था कि वह एक नए प्रकार के विद्रोही चरित्र का स्वरूप ग्रहण करेगी किंतु मध्यवर्ग की स्वार्थपरता तथा पुरुषों के वर्चस्व वाले समाज के सामने वह भी हार जाती है और जीवन भर भीख माँगकर नारकीय जीवन जीने के लिए विवश होती है।

लेखक किसी एक पात्र से अपना पूरा तादात्म्य नहीं दिखाता। वह किसी पात्र में अपनी कोई झलक दिखा देता है, किसी में कोई। जैसे प्रकाश नामक पात्र में उसका चिंतक रूप उभरता है तो माणिक मुल्ला में उनका सर्जक रूप। पर किसी एक पात्र में उसका समग्र प्रतिनिधित्व नहीं मिलता। माणिक की पहचान इसी में है कि वह नितनवीन किस्से सुना सकता है, सबको बाँधे रह सकता है या सिद्धांत छाँट सकता है। वह जमुना, लिली और सत्ती से प्रेम करता है पर उसके परिणामों को सोचकर संकुचित हो जाता है। हाथ खींच लेता है। "फलस्वरूप उनके विचारों में अन्तर्विरोध, ढोंग, खयाली बहकावे और मिथ्या दर्शन दिखलाई देते हैं।''

इन सब पात्रों की विशेषताएँ इनके कामों से उभरती हैं। पर इस उपन्यास में ऐसा कुछ नहीं है जो पहले नहीं कहा गया। बस, कहने का ढंग या शिल्प प्रयोग तथा उसकी अभिनवता पर विशेष बल है।

सूरज का सातवाँ घोड़ा' के कथाशिल्प को इस प्रकार सँजोया गया है कि वह सपाट प्रेम कहानी न होकर उसके माध्यम से निम्न मध्यमवर्गीय जीवन की सच्ची तस्वीर बन जाता है। शिल्प कुछ इस प्रकार रखा गया है कि उपन्यास में आई भिन्न-भिन्न कहानियाँ एक कहानी लगें और कथाकार इन कहानियों के माध्यम से निम्न मध्यवर्ग के जीवन के विभिन्न पहलुओं को उजागर कर सके। दरअसल, कथाकार का लक्ष्य है: निम्न मध्यवर्ग के समूचे जीवनरूपों का परिचय देना। इसे उसने सूरज और उसके रथ में जुते सात घोड़ों की

दयनीय हालत के माध्यम से एक सूत्र में बाँध दिया है। संभवत: कथाकार यह सोचता है कि इस वर्ग का जीवन इसी प्रकार चलना है। पर इसका यह अर्थ नहीं की जीवन में आशा की कोई किरण नहीं। कथाकार का मानना है: "सूर्य के रथ को आगे बढ़ना ही है। हुआ यह है कि हमारे वर्ग विगलित, अनैतिक, भ्रष्ट और अँधेरे जीवन की गलियों में चलने से सूर्य का रथ काफी टूट-फूट गया है और बेचारे घोड़ों की तो यह हालत है कि किसी की दुम कट गई है तो किसी का पैर उखड़ गया है, तो कोई सूखकर ठठरी हो गया है, तो किसी के खुर घायल हो गए हैं। अब बचा है सिर्फ एक घोड़ा जिसके पंख अब भी साबित हैं, जो सीना ताने गरदन उठाए चल रहा है। वह घोड़ा है भविष्य का घोड़ा, तन्ना, जमुना और सत्ती के नन्हें निष्पाप बच्चों का घोड़ा, जिनकी जिन्दगी हमारी जिन्दगी से ज्यादा अमन-चैन की होगी ज्यादा पवित्रता की होगी, उसमें ज्यादा प्रभाव होगा, ज्यादा अमृत होगा।.....यद्यपि बाकी छह घोड़े दुर्बल, रक्तहीन और विकलांग हैं पर सातवाँ घोड़ा तेजस्वी और शौर्यवान है और अपना ध्यान और अपनी आस्था उसी पर रखनी होगी।'' क्या यह कोरा आशावाद है? क्या उक्त उपन्यास के शिल्प-विधान से यह आशा-आस्था का स्वर तर्कसंगत रूप से उभरता है? वस्तुत: यह आस्था और विश्वास उपन्यास की अन्तर्वस्तु या उसकी संरचना से कहीं भी व्यक्त या संकेतित नहीं हुआ है। अत: सातवें घोड़े के रूप में इसे नितान्त आरोपित माना जा सकता है।

9.4 सारांश

इस इकाई में हमने स्पष्ट रूप से देखा है कि धर्मवीर भारती हिन्दी के अनुभवपरक धारा के उपन्यासकारों की एक अभिन्न कड़ी हैं। उनके समूचे कथा साहित्य में एक तरफ गलदश्रु पूर्ण भावुकता और रोमानी प्रवृत्ति, तो दूसरी ओर इन्हीं से आच्छादित जीवन की विसंगतियों, विडम्बनाओं और करुण मानव स्थितियों के चित्र भी हैं। यह सही है कि सामाजिक रूढ़ियों, विधि निषेधों पर चोट करने वाले व्यक्ति स्वातंत्र्य की भावना भारती के साहित्य के केन्द्र में रही है, लेकिन इस स्वातंत्र्य की प्रकृति और दिशा प्राय: आच्छन्न ही दिखाई देती है। 'गुनाहों का देवता' के चन्दर और सुधा तथा 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' के माणिक मुल्ला और सत्ती में कहीं भी इस स्वातंत्र्य की दिशा का संकेत नहीं हो पाया है। सर्वत्र अन्तिम परिणति विफलता, हताशा और त्रासदी के रूप में ही सामने आती है। अपनी कहानियों से लेकर दोनों उपन्यासों में भारती जी का ध्यान कथन-शिल्प पर अपेक्षाकृत अधिक रहा है, जो विषय और अन्तर्वस्तु की सघनता को प्राय: क्षतिग्रस्त ही करता है। जहाँ तक 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' का प्रश्न है, इसकी चर्चा का केन्द्र शिल्प संबंधी वैशिष्ट्य ही रहा है, इस तथ्य को इस इकाई में विशेष रूप से रेखांकित किया गया है।

9.5 अभ्यास प्रश्न

1. सूक्ष्म अनुभवपरक धारा के उपन्यासकारों की परम्परा में धर्मवीर भारती के वैशिष्ट्य का उद्घाटन कीजिए।
2. 'प्रेम सम्बधों में कोरा आदर्शवाद प्राय: असफल जीवन-दर्शन का परिचायक बनता है।' चंदर-सुधा और माणिक मुल्ला-सत्ती जैसे युगल पात्रों के संदर्भ में इस कथन का परीक्षण कीजिए।
3. 'भारती के दोनों उपन्यासों के पात्र सामाजिक विधि-निषेध से संघर्ष की बजाए अपने अन्तर्द्वन्द्व के शिकंजे में फँसे हुए हैं।' इस कथन की वास्तविकता पर प्रकाश डालिए।

इकाई 10 औपन्यासिक शिल्प : 'सूरज का सातवाँ घोड़ा'

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' की अन्तर्वस्तु एवं शिल्प संबंधी पृष्ठभूमि

10.3 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' का वस्तु-संगठन

10.4 पात्र योजना और उसका यथोचित निर्वाह

10.5 भाषिक शिल्प

10.6 सारांश

10.7 अभ्यास प्रश्न

10.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का मूल प्रतिपाद्य 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' उपन्यास के औपन्यासिक शिल्प की विशेषताओं का उद्घाटन है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- तत्कालीन साहित्यिक सामाजिक परिदृश्य में किन अपेक्षाओं के दबाव से एक नये औपन्यासिक शिल्प की अपेक्षा महसूस की गयी, इसे जान सकेंगे;
- विभिन्न कहानियों का संग्रह होने के कारण प्रस्तुत उपन्यास के वस्तु संगठन की स्थिति पर चर्चा कर सकेंगे;
- कथा में निरंतरता बनाए रखने के लिए पात्र-योजना और औपन्यासिक गठन में उनके यथोचित निर्वाह की स्थिति का परिचय दे सकेंगे;
- उपन्यास के भाषिक शिल्प की विशेषताओं का उद्घाटन कर सकेंगे; और
- उपर्युक्त बिन्दुओं के विवेचन-विश्लेषण से 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' के औपन्यासिक शिल्प की सफलता-असफलता का विश्लेषण कर सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

'सूरज का सातवाँ घोड़ा' - औपन्यासिक शिल्प संबंधी इस इकाई में उपन्यास के शैलीशिल्प को केन्द्र में रखकर 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' के उपन्यास-शिल्प का विवेचन किया जाएगा। साथ ही यह दिखाने का प्रयास होगा कि धर्मवीर भारती ने अपने इस उपन्यास में वस्तु और रूपगठन संबंधी समस्याओं को किस प्रकार हल किया है। यहाँ यह भी देखना आवश्यक है कि इस उपन्यास को शैली शिल्प की दृष्टि से हिन्दी उपन्यास-परम्परा में नया प्रयोग क्यों माना गया है। आख्यानशैली, चरित्र विन्यास और मोटे रूप में उपन्यास का पूरा ढाँचा यानी शिल्पतंत्र और गठन-युगीन वास्तविकताओं की अनिवार्य उपज है या लेखक की मौलिक परिकल्पना। उपन्यासकार ने भाव, विचार और संवेदनाओं को शैली-शिल्प के साथ जोड़कर एक नया रूप प्रदान किया है या यह नयापन सिर्फ बाहरी है।

'सूरज का सातवाँ घोड़ा' में उपन्यास का डिज़ाइन और तकनीक नि:संदेह एकदम आकर्षित करती हैं, किंतु पूरा पढ़ जाने पर यह उपन्यास शैलीशिल्प की इस चकाचौंध को थोडा तोड़ता भी है। कारण, यह उपन्यास युगजीवन की वास्तविकताओं से एकदम अछूता नहीं है। किंतु प्रश्न यह उठता है कि क्या वे वस्तु विन्यास और शैली-शिल्प की संगति में हैं या उपन्यासकार शैली-शिल्प की नवीनता में ही रमा रह जाता है। सामान्यत: जब साहित्य में शैली-शिल्प चमत्कार प्रधान होने लगता है तब वस्तु-विन्यास की गहनता क्षीण हो जाती है; अनुभव पक्ष निर्जीव और निष्प्राण होने लगता है। इन सभी दृष्टियों से 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' को देखना-परखना उपन्यास को समझने के लिए उपयोगी होगा। साथ ही, हमें यह भी देखना होगा कि पहले भावना प्रधान रोमानी उपन्यास 'गुनाहों का देवता' (1949) के तीन वर्ष बाद लिखा जाने वाला यह उपन्यास उससे किस प्रकार भिन्न है। हालाँकि इसमें कोई संदेह नहीं कि 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' में भारती की सृजनात्मक प्रतिभा का संस्पर्श विद्यमान है। भारती के प्रस्तुत उपन्यास की भूमिका में अज्ञेय ने ठीक ही लिखा है कि उनकी इस छोटी-सी अलग कृति पर उनकी स्पष्ट छाप दिखाई देती है।

10.2 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' की अन्तर्वस्तु एवं शिल्प संबंधी पृष्ठभूमि

भारती के साहित्य में रोमानी भावुकता और जीवन की वास्तविकताओं का द्वन्द्व प्रारंभ से ही विद्यमान रहा है। इसकी पृष्ठभूमि में प्रगतिवादी साहित्यांदोलन और प्रयोगवादी काव्य प्रवृत्तियों का संघर्ष, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर चल रहे समाजवादी आंदोलन तथा उसके साहित्य पर पड़ने वाले विविध आयामी प्रभावों को देखा जा सकता है। चाहे उनकी कविता – 'कनुप्रिया' हो अथवा उनका काव्यनाटक 'अंधायुग'। उनके समूचे साहित्य में भावुकता और युगीन जीवन की टकराहट युगपत धारा के रूप में विद्यमान रहे हैं। उन्हें बंगाली कथा साहित्य और छायावादी कविता से साहित्य संस्कार मिले हैं तो उस समय के युगजीवन का विचार 'मार्क्सवाद' भी उन्हें आकृष्ट करता है। कलात्मक कौशल की चिंता भी उन्हें उद्वेलित करती है तो जीवन के सरोकारों से भी वे जुड़ना चाहते हैं। किसी एक जगह बँधना या कलात्मक प्रवृत्ति को छोड़ देना – दोनों ही उन्हें अभीष्ट नहीं। यदि सावधानी से उनके साहित्य का अध्ययन करें तो उनके साहित्य में कल्पना संसार की मोहकता, रूमानी भाव बोध और जीवन की वास्तविक स्थितियों का द्वन्द्व जगह-जगह दिखाई देता है। वे अपने आलोचनात्मक लेखन (प्रगतिवाद: एक समीक्षा) अथवा अपने इस उपन्यास में मार्क्स के विचारों की चर्चा करते हैं लेकिन एकदम हल्के ढंग से लगभग मजाक के तौर पर। प्रतिबद्ध रचनाकार वे नहीं बनना चाहते। वस्तुनिष्ठ दृष्टि से देखें तो उनकी मानसिकता का तानाबाना रूमानीपन के अधिक अनुकूल है। इसी से उनके उपन्यास 'गुनाहों का देवता' में भावुकता का गहरा उच्छ्वास है। उस पर 'किशोर वयीन रोमानीपन' का आरोप भी लगा है। जीवन की वास्तविक मुठभेड़ से उभरा हुआ ढाँचा उसमें अल्पतम है। भारती इस आरोप से परिचित भी हैं। इसीलिए उन्होंने अपने इस नए उपन्यास में अपने सरोकारों को ठेठ जमीनी यथार्थ से उठाते हुए उसे एक नया रंगरूप प्रदान किया है। साथ ही उसमें शैली-शिल्प की नवीनता से विलक्षणता भी पैदा की है।

भारती के साहित्यिक संस्कार के पश्चात् अब तत्कालीन साहित्यिक-सांस्कृतिक परिदृश्य की जानकारी लेना भी आवश्यक है, जिसके बीच भारती ने इस उपन्यास का सृजन किया है। कथासाहित्य में प्रेमचंद अपने उपन्यास कहानियों के द्वारा आधुनिक भावबोध को उभार चुके थे तो उनकी अपेक्षा जैनेन्द्र प्रत्ययवादी, अमूर्त्त संसार को अपने उपन्यास-कहानियों का विषय बना रहे थे। अज्ञेय ने भी इसी रास्ते पर आगे बढ़कर अपना उपन्यास 'शेखर - एक जीवनी' लिखा था। किंतु प्रेमचंद के बाद अधिकांश कथा लेखकों में प्रेमचंद की परम्परा

यानी जीवन के ठोस प्रसंग उनके साहित्य में अधिक महत्वपूर्ण स्थान पाने लगे थे। यह एक ऐतिहासिक दौर था। हिन्दी साहित्य को एक नवीन जीवन दृष्टि और एक नई ऊर्जा प्राप्त हो रही थी। ऐसे में सूक्ष्म आत्मवादी दृष्टि भावुकता, रूप एवं कला को प्रमुखता देने की अपेक्षा जीवन की सामयिक समस्याओं पर दृष्टि अधिक केन्द्रित की जाने लगी थी। भारती की रोमानी मानसिकता इसके अनुकूल पड़ती थी। अत: वे मानने लगे कि सामयिक जीवन की समस्याएँ कला के नियमों के तहत आएँ तो ही श्रेयस्कर हैं। प्रगतिवादी साहित्य – जहाँ वस्तु अपना रूप स्वयं तय करती है – इन्हें प्रगतिवादी-निर्मिति अधिक लगी। इस प्रकार के साहित्य में 'कलात्मक तत्वों का अभाव' नामक निबंध में भारती ने लिखा "अधिकांश प्रगतिवादी साहित्य (भारत में) न तो प्रगतिवादी होता है और न साहित्य ही। एक प्रगतिवादी साहित्यिक यह भूल जाता है कि वह राजनीति का पैंफलेट नहीं लिख रहा है वह साहित्य लिख रहा है जिसका मूल्य स्थायी है, जिसकी पैठ अधिक गहरी है, और जिसके लिए एक कलात्मक चतुराई की आवश्यकता होती है।" इस पृष्ठभूमि से स्पष्ट है रोमानी भाव बोध वाले धर्मवीर भारती को अपने नए उपन्यास में जीवन के ठोस प्रसंगों से युक्त विषय को उठाना था। विषयवस्तु भले ही उनके मनोनुकूल नहीं थी। पर उन्होंने निम्न मध्य वर्ग के जीवन की सच्चाई को अपने उपन्यास का विषय बनाया। जीवन की समस्याओं से जुड़ा साहित्य और कलात्मक साहित्य के बीच संतुलन पैदा करने का प्रयास किया। इन परिस्थितियों में इस उपन्यास के वस्तुविधान में जीवन की वास्तविक अनुभूति का कितना योग हुआ, कितना रोमानीपन का, शैली-शिल्प विधान में भी कितना किन तत्वों का योगदान रहा इन सब का अध्ययन हम इस इकाई में आगे करेंगे। लेकिन यहाँ इस वास्तविकता को स्वीकारना होगा कि प्रगतिवाद की प्रतिक्रिया स्वरूप तथा कथित नयी कविता और नये साहित्य में पनपने वाला कलावादी रूपाग्रह की स्पष्ट छाप 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' पर है। इससे निम्न मध्य वर्गीय विषय वस्तु की समुचित अभिव्यक्ति एक सीमा तक क्षतिग्रस्त हुई है।

10.3 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' का वस्तु-संगठन

इस उपन्यास में सर्वप्रथम उसकी आख्यान कला पर यानी किस्सागोई की शैली पर दृष्टि जाती है। किस्सागोई शैली-शिल्प कुछ इस प्रकार गढ़ा गया है कि उक्त उपन्यास का कथानायक माणिक ,मुल्ला अपनी गली-नुक्कड़ के नौजवान साथियों को अपने जीवन से जुड़ी प्रेम कहानियाँ सुनाता है। सभी संगी-साथी श्रोता पूरा कथा रस लेते हुए उन्हें पुराने किस्सों की तरह सुनते हैं और हिस्सेदारी करते हैं। कहानी से कहानी का सिलसिला निकलता चलता है। सात दोपहरियों के दौरान ये कहानियाँ सुनाई जाती हैं किंतु ये 'एक कहानी में अनेक कहानियाँ नहीं, अनेक कहानियों में एक कहानी है।' इस कहानी को कहने वाला माणिक मुल्ला उपन्यास में आद्यंत विद्यमान रहता है। बल्कि मजलिस उसी के यहाँ जुटती है। वह इस प्रकार कहानी का जाल फैलाता है कि सभी श्रोता मंत्र-मुग्ध होकर कहानी सुनते हैं। यहाँ यह केवल संयोग नहीं है कि ये सभी कहानियाँ प्रेम कहानियाँ हैं, जिनका संबंध भारती की मानसिक संरचना से है। फिर प्रत्येक कहानी में उत्सुकता का तत्व विद्यमान है। 'अनध्याय' नामक परिच्छेद की योजना टीका-टिप्पणी की गुंजाइश के लिए की गयी है। कथाक्रम को आगे बढ़ाने का कार्य भी इसके माध्यम से सम्पन्न किया गया है। कह सकते हैं कि यह परम्परा से चली आ रही किस्सागोई का शिल्पविधान है जो काफी पुराना होते हुए भी नया रूप पा गया है। प्रश्न है कि उपन्यासकार भारती ने इस शैली को 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' के लिए क्यों चुना ? उपन्यास पर अज्ञेय के द्वारा लिखी गई भूमिका के अनुसार संभवत: इसलिए "कि आपको भारती की बात के प्रति एक खुलापन पैदा हो जाए।" जबकि भारती अपने 'निवेदन' में अपने उक्त उपन्यास के शैली-शिल्प पर स्पष्टीकरण देते हुए लिखते हैं: "कथा शैली भी कुछ अनोखे ढंग की है, जो है तो वास्तव में पुरानी ही पर इतनी पुरानी कि आज के पाठक को कुछ नई या अपरिचित-सी लग

सकती है। बहुत छोटे-से चौखटे में काफी लंबा घटनाक्रम और काफी विस्तृत क्षेत्र का चित्रण करने की विवशता के कारण यह ढंग अपनाना पड़ा है।'' स्पष्ट है कि भूमिका लेखक अज्ञेय और उपन्यासकार भारती ने इस कथाशिल्प को अपनाने के दो भिन्न कारण गिनाए हैं। अज्ञेय का तर्क अधिक युक्तिसंगत लगता है कि उक्त उपन्यास में भारती अपनी बात कहने के लिए उपन्यास का एक अनौपचारिक ढाँचा सृजित करते हैं। किन्तु यह नया अथवा अनौपचारिक ढाँचा है क्या ? भारती अपने उपन्यास के 'उपोद्घात' यानी प्रस्तावना स्वरूप दी गई परिचयात्मक टिप्पणी में बताते हैं कि "इसमें कहानियों की नस्ल में सबसे सफल प्रेम कहानियाँ लाई गई हैं। दूसरे, यह प्रयास किया गया है कि उनसे कुछ न कुछ निष्कर्ष अवश्य निकले।'' स्पष्ट ही यहाँ सीमित विषयवस्तु वाली प्रेम कहानियाँ और उससे जुड़े जीवन जगत संबंधी प्रसंगों को लाना उपन्यासकार का अभीष्ट है। दूसरे, शैली-शिल्प में कुछ खुलेपन, कुछ खिलेपन या अपने खिलंदड़ेपन का प्रमाण देता हुआ उपन्यासकार अपने कथाशिल्प की बानगी प्रस्तुत करता है। वह कहता है: "कुछ पात्र लो और एक निष्कर्ष पहले से सोच लो, जैसे .....यानी जो भी निष्कर्ष निकालना हो, फिर अपने पात्रों पर इतना अधिकार रखो, इतना शासन रखो कि वे अपने आप प्रेम के चक्र में उलझ जाएँ और अंत में उसी निष्कर्ष पर पहुँचें जो तुमने पहले से तय कर रखा है।'' यानी यहाँ जीवन की घटना के अनेक पहलुओं को दिखाना या उसके संदर्भ में चरित्र को उद्घाटित करना लेखक का उद्देश्य नहीं है। वह एक फार्मूला बताता है और उसी के अनुरूप कहानी कहता है। कहानी का ढाँचा भी भरापूरा न होकर कुछ संकेत-सूत्रों के माध्यम से उसे आगे बढ़ाया गया है। निश्चय ही यहाँ उपन्यास की आख्यान-कला के साथ-साथ एक नए प्रकार का शैली-शिल्प सँजोया गया है। उपन्यास में कुछ कहानियाँ हैं। आइए उनकी विषय-वस्तु पर चर्चा करते हैं। पहली कहानी का शीर्षक दिया गया है : 'नमक की अदायगी अर्थात् जमुना का नमक माणिक मुल्ला ने कैसे अदा किया।' इसमें एक निम्न मध्य वर्ग की युवा होती स्त्री के मनोभावों की कहानी कही गई है। इसके बाद 'अनध्याय' शीर्षक से श्रोताओं की उस कहानी पर की गई टीका-टिप्पणी दी गई है। लगभग यही क्रम सातों दोपहर की कहानियों में दोहराया जाता है। किंतु जैसा कहा गया कि सभी कहानियाँ एकसूत्र में बँधी हुई हैं। अंतिम कहानी में माणिक मुल्ला एक मिथक के सहारे उपन्यास को एक सूत्र में जोड़ देते हैं। वर्तमान से विक्षुब्ध, भविष्य की आशा-आकांक्षा का एक रूपक बाँध देते हैं। उपन्यास की इन कहानियों में कथाकार मानवजीवन की गहराइयों में उतरकर उस जीवन के अधिकतम सच को उसमें उतारकर उस जीवन के अधिकतम सच को उजागर कर देता है।

समग्ररूप में देखें तो 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' उपन्यास की विषयवस्तु है : निम्न मध्यवर्गीय प्रेम के सहारे उनके जीवन की सच्चाई का चित्रण करना। उसमें भी नारी जीवन की पीड़ा के विविधायामी रूपों के चित्र प्रस्तुत करना। आर्थिक विषमता, सामाजिक ऊँच-नीच, जाति-पाँति का भेदभाव और दलित-वंचित नारी के प्रति सहानुभूतिपूर्वक सोच-विचार करना। इस उपन्यास का कथ्य और भावभूमि भारती के पूर्ववर्ती उपन्यास से इस दृष्टि में आगे बढ़े हुए हैं कि उसमें युगीन जीवन की प्रतिध्वनियाँ अपनी पूरी जटिलताओं के साथ उजागर हुई हैं। उपन्यासकार यहाँ कहानियों में केवल घटनाओं का सिलसिला नहीं जोड़ता, वरन् जिंदगी, समाज, मानवमूल्य आदि के उन पहलुओं को उद्घाटित करता है, जिनमें जीवन की विडंबना छिपी होती है। चाहे जात-बिरादरी का प्रसंग हो या आर्थिक दृष्टि से ऊँच-नीच होने का प्रसंग, ये जीवन के ऐसे उलझे घात-प्रतिघात हैं कि अक्सर जीवन का आधार इन पर टिका होता है। उदाहरण स्वरूप जमुना-तन्ना के प्रेम में जात-बिरादरी आड़े आ जाती है। जमुना का तन्ना से इसलिए विवाह नहीं हो पाता क्योंकि जमुना की माँ के अनुसार जमुना के परिवार का गोत्र तन्ना से ऊँचा होता है। चाहे अंत में उसे अपनी लड़की को बूढ़े तिहाजू वर से ही क्यों न ब्याहना पड़े। उसका पश्चाताप उसे नहीं है। जमुना में वह तड़प है।

पर वह विवश है। लेकिन अंतत: वह भी संपत्ति पाकर अपने जीवन से समझौता कर लेती है और अनैतिक एवं विकृत जीवन जीने लगती है। दूसरी ओर माणिक और सत्ती का आकर्षण और प्रेम इतनी कमजोर नींव पर टिका हुआ है कि शिक्षित युवक माणिक, 'अपने भाई के यह समझाने पर उससे मुँह मोड़ लेते हैं कि इन छोटे लोगों को मुँह लगाने से कोई फायदा नहीं। ये सब बहुत गंदे और कमीने किस्म के होते हैं। माणिक के खानदान का इतना नाम है। "माणिक अपने भइया के स्नेह पर बहुत रोये और उन्होंने वायदा किया कि अब वे इन लोगों से नहीं मिलेंगे।" इससे माणिक का सत्ती से प्रेम ही नहीं टूट जाता वरन् वे सत्ती से विश्वासघात भी करते हैं और उसे धोखा देकर मौत की ओर धकेल देते हैं। वह नारकीय जीवन जीने के लिए विवश होती है। मध्यवर्गीय जीवन का ढोंग और स्वार्थपरता कैसे व्यक्ति को अमानवीय बनाता है, ऐसे कुछ मार्मिक प्रसंगों की सृष्टि कथावस्तु में जीवन के अन्तर्विरोधों को दर्शाकर कथाकार ने की है। भले ही यहाँ विषयवस्तु में गहराई, विविधता और विस्तार न आ पाया हो परंतु जीवन की कारुणिक स्थितियों को उजागर करने में कथाकार सक्षम रहा है। साथ ही, चाहे गंली-मोहल्लों का जड़ और स्थिर जीवन हो, चाहे बेकारी और गरीबी का भार हो या जनता की बेहाली के दृश्य हों – उस समय की जहालत भरी जिंदगी के दृश्य उभारने में कथाकार सफ़ल रहा है। विचित्र बात यह है कि यहाँ लेखक की दृष्टि बेचैनी से युक्त न होकर चुहल भरी और हास्य-व्यंग्य से युक्त दिखाई देती है जो पूरे उपन्यास को अवयस्क बनाती है। फिर ह्रासोन्मुख और गतिशील शक्तियों के बीच का द्वन्द्व अत्यंत शिथिल दिखाई देता है। लगता है कि उपन्यासकार समाज और जीवन के ठोस प्रसंगों की ओर संकेत भर कर देता है। कुछ मनोरंजक और कुछ त्रासद प्रसंगों का चित्र प्रस्तुत करके अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ लेता है। इससे उपन्यास का आधा-अधूरा ढाँचा ही उभरता है। इतना अवश्य है कि उपन्यासकार अपने कथ्य को अधिक से अधिक संप्रेषणीय बनाने के लिए अंतिम कहानी में ऐसे मिथक का प्रयोग करता है जिससे एकाएक सभी कहानियाँ जुड़ जाती हैं और कथ्य में एक सघनता तथा एकान्विति आ जाती है।

रचनाकार मिथक का प्रयोग क्यों करता है? संभवत: इसलिए कि इसके माध्यम से लेखक मानव जीवन के चिरंतन प्रश्नों और सामाजिक जीवन की वास्तविकताओं को कलात्मक रूप से नैरन्तर्य प्रदान कर सके। 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' में लेखक ने गली-मोहल्लों के यथार्थ जीवन को एक पूर्व निर्धारित चित्र के रूप में देखा है। उनके आर्थिक संघर्षों, ज्यों-त्यों ज़िन्दगी बिताते निम्न मध्यवर्ग की दारुण स्थितियों का वर्णन उसने किया है। वास्तव में, सूरज के सातों घोड़ों और रथ के माध्यम से वह पूरी कथा को प्रतीकात्मक रूप देता है जिसमें गति, संघर्ष और बेचैनी के चिह्न विद्यमान हैं। साथ ही, उससे ऊभ-चूभ होते लोग हैं। हमेशा से ऐसा ही होता चला आ रहा है। लेखक के अनुसार सूरज इसका साक्षी है। उसके रथ के पहिए ऐसा ऊबड़-खाबड़ रास्ता तय करते-करते टूट-फूट गए हैं। सूरज के सात घोड़ों में से छह दयनीय स्थिति में पहुँच गए हैं। किंतु समय कभी रुकता नहीं। उपन्यासकार की मान्यता है: "सूर्य के रथ को आगे बढ़ना ही है। हुआ यह कि हमारे वर्ग विगलित अनैतिक भ्रष्ट और अँधेरे जीवन की गलियों में चलने से सूर्य का रथ काफी टूट-फूट गया है और बेचारे घोड़ों की तो यह हालत है कि किसी की दुम कट गई है, किस का पैर उखड़ गया है तो कोई सूखकर ठठरी हो गया है, तो किसी के खुर घायल हो गए हैं, अब बचा है सिर्फ एक घोड़ा जिसके पंख अब भी साबित हैं, जो सीना ताने, गर्दन उठाए चल रहा है। वह घोड़ा है भविष्य का घोड़ा; तन्ना, जमुना और सत्ती के नन्हें निष्पाप बच्चों का घोड़ा। जिनकी जिन्दगी हमारी जिंदगी से ज्यादा अमन-चैन की होगी, जिसमें ज्यादा प्रकाश होगा, ज्यादा अमृत होगा। वही सातवाँ घोड़ा हमारी पलकों में भविष्य के सपने और वर्तमान के नवीन आकलन भेजता है ताकि हम वह रास्ता बना सकें जिन पर होकर भविष्य का घोड़ा आएगा। इतिहास के वे नए पन्ने लिख सकें जिन पर अवश्मेध का

दिग्विजयी घोड़ा दौड़ेगा।'' यहाँ मिथक की तर्क संगति तो बैठा दी गई है किंतु प्रश्न है कि यह अप्रतिहत आस्था किस आधार पर व्यक्त की जा रही है ? उपन्यास में कौन-सी नई शक्तियों का उदय होते दिखाया जा रहा है कि सातवाँ घोड़ा उपर्युक्त सब अधूरे कार्यों को पूरा कर सकेगा? सिर्फ इतना कहना कि "बाकी छह घोड़े दुर्बल रक्तहीन और विकलांग हैं पर सातवाँ घोड़ा तेजस्वी और शौर्यवान है और हमें अपना ध्यान और अपनी आस्था उसी पर रखनी चाहिए।'' क्या यह निरा आशावाद नहीं है, ऊपर से थोपा हुआ। 'यह जीवन के प्रति अडिग आस्था' (अज्ञेय) तो है किंतु जीवन में परिवर्तन लाने के लिए स्थितियों को बदलने के प्रयास करने पड़ते हैं। यह कह देना अपर्याप्त है कि "कोई ऐसी चीज है जिसने हमें हमेशा अँधेरा चीर कर आगे बढ़ने, समाज व्यवस्था को बदलने और मानवता के सहज मूल्यों को पुनः स्थापित करने की ताकत और प्रेरणा दी है। चाहे उसे आत्मा कह लो, चाहे कुछ और। और विश्वास, साहस, सत्य के प्रति निष्ठा उस प्रकाशवाही आत्मा को उसी तरह आगे ले चलते हैं जैसे सात घोड़े सूर्य को आगे बढ़ा ले चलते हैं।'' पर वह शक्ति कौन-सी है जो समाज को बदलने की प्रेरणा देगी? क्या मानवमूल्य बिना कुछ किए धरे पुनः स्थापित हो सकेंगे? यह सिर्फ अमूर्त्त चिंतन और थोथा आशावाद है। यह स्वर उपन्यास के मूल ढाँचे से उभर कर नहीं आता। घटना-प्रसंगों की तार्किक परिणति इससे नहीं बैठती। यह सात दोपहरियों को सुनाई जाने वाली कहानियों का निष्कर्ष भर है। इससे मिथ को कलात्मक कौशल से जोड़ भर दिया गया है, जो हितोपदेश अधिक प्रतीत होता है।

कथा-कहानी में निष्कर्ष देना कोई नई चीज नहीं है। पंचतंत्र आदि में उपदेश या निष्कर्ष एक कहानी से दूसरी कहानी में या दूसरी कहानी से तीसरी कहानी में से निकलते चले जाते हैं। क्या 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' उपन्यास में सभी कहानियाँ उसी रूप में निष्कर्षवादी कही जा सकती हैं? यानी यह आशा करना कि इन कहानियों को पढ़ने के बाद पाठक किसी न किसी निष्कर्ष पर सहज ही पहुँच सकेगा, कितना उचित है। यदि ऐसा होता तो प्रत्येक कहानी के बाद श्रोता माणिक मुल्ला से उस कहानी का निष्कर्ष क्यों पूछते? दरअसल कथाकार अपने इस उपन्यास में आई कहानियों को अन्य कहानियों से भिन्न कथारूप दिखाने के लिए इस प्रकार का शिल्प अपनाता है तथा उसे धर्मचक्र कथा पद्धति नाम भी दे देता है। दूसरे यह भी बताना चाहता है कि ये कहानियाँ आधुनिक किस्म की अस्पष्ट अंत वाली कहानियों की श्रेणी में नहीं हैं जहाँ निष्कर्ष देना कथाकार का काम नहीं होता। किंतु यह प्रश्न बना रहता है कि क्या कथाकार भारती द्वारा प्रस्तुत इन कहानियों के निष्कर्ष उपन्यास की घटनाओं की संगति में हैं या उससे सहज निःसृत हैं। अथवा यह सब उसके शिल्प का हिस्सा है, जहाँ आशा और आस्था का संतुलन बैठा दिया गया है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' में उपन्यास का शैली-शिल्प विधान सर्वप्रथम आकर्षण का केन्द्र बनता है। कथानक उसके बाद आता है। पहले पहल वह भी घटनाओं का सिलसिला भर लगता है, किंतु क्या इस उपन्यास की कहानियाँ घटनाओं का सिलसिला मात्र लगती हैं, या उसमें परंपरागत जीवन और नई चेतना के द्वन्द्व की अनुगूँज भी मिलती है। प्रस्तुत उपन्यास की पहली कहानी जमुना और माणिक के वार्तालाप से प्रारंभ होती है। इसमें जमुना और तन्ना के प्रेम तथा उसके विवाह के टूटने की दास्तान है। क्या टूटे दिल की दास्तान कहना इस कहानी का उद्देश्य है? या इसके पीछे दिये उन कारणों की ओर संकेत करना भी – जिसके कारण जमुना और तन्ना का विवाह नहीं हो सका? क्या उपन्यासकार के द्वारा दिया गया यह निष्कर्ष मान लिया जाए कि "हर घर में एक गाय होनी चाहिए जिससे राष्ट्र का पशुधन भी बढ़े, संतानों का स्वास्थ्य भी बने। पड़ोसियों का भी उपकार हो और भारत में फिर से दूध-घी की नदियाँ बहें।'' यह हास्य व्यंग्यपूर्ण निष्कर्ष न केवल कहानी की गंभीरता और उसकी भास्वरता को तोड़ते हैं वरन् उपन्यास के मूलस्वर को इतना नीचे ले आते हैं कि उसका मज़ाक उड़ाते प्रतीत होने

लगते हैं। इस संबंध में नेमिचंद्र जैन ने ठीक ही लिखा है: "भारती के कलाकार व्यक्तित्व में कहीं कोई अन्तर्विरोध है जो सारे चमत्कार और तीखेपन के बावजूद प्रभाव की एकाग्रता को तोड़ता है। यह अन्तर्विरोध शायद माणिक मुल्ला के व्यक्तित्व में ही है। जमुना और लीला की कथाओं में माणिक के व्यक्तित्व में एक प्रकार की तटस्थता रहती है, जैसे वह स्वयं उन स्थितियों में अवश लाचार घिरा हो, उसका अपना कोई निर्णय उनकी अनिवार्य परिणति को बदलने में असमर्थ हो, पर सत्ती के प्रसंग में माणिक की अपनी कायरता, स्वार्थपरता और क्षुद्रता सामने आ जाती है। पहले दो प्रसंगों में व्यंजित उसके व्यक्तित्व की निस्संग तेजोमयता नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है और अंतत: उसमें तथा तन्ना, महेसर दलाल या चमन ठाकुर में कोई मूलभूत अंतर नहीं बचता। इस कारण प्रभाव की एकाग्रता और तीव्रता दोनों खंडित हो जाती हैं।'' दरअसल कथाकार उक्त उपन्यास की कहानियों में समाज की ह्रासशील शक्तियों का परिचय तो देता है किंतु गतिशील शक्तियों के संघर्ष के संकेत प्रमुखता से नहीं उभारता। इसीलिए उपन्यास के अंत में निष्कर्ष स्वरूप लाया गया आशावाद उपन्यास के कथानक से उभरने की बजाय बाहरी आरोप अधिक लगने लगता है वह उपन्यास का सहज अंग नहीं बन पाता। इससे उपन्यास का पूरा शिल्पतंत्र क्षतिग्रस्त होता है।

'सूरज का सातवाँ घोड़ा' उपन्यास का मूल कथ्य है: निम्न मध्यवर्गीय जीवन, उसकी विडंबनाएँ, उनकी त्रासदजीवन जीने की विवशताएँ तथा उनका खोखलापन। निम्न मध्यवर्ग के पुरुष पात्र भी दयनीय स्थितियों के शिकार हैं पर वे नारी की अपेक्षा अधिक स्वतंत्र हैं। मूल्यहीन स्वतंत्रता ने उन्हें अधिक विकृत और अमानवीय बना दिया है। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय सब कुछ विश्वयुद्ध में झोंका जा रहा था। युवक बेरोजगार थे। अधिकांश में अशिक्षा और अंधविश्वास के कारण हास्यास्पद स्थितियों का व्यापार फल-फूल रहा था। "उसी समय मोहल्ले में धर्म की लहर चल पड़ी और तमाम औरतें जिनकी लड़कियाँ अनब्याही रह गई थीं, जिनके पति हाथ से बेहाथ हुए जा रहे थे, जिनके लड़के लड़ाई में चले गए थे, जिनके जेवर बिक गए थे, जिन पर कर्ज हो गया था, सभी ने भगवान की शरण ली और कीर्तन शुरू हो गए और कंठियाँ ली जाने लगीं।'' जिन लोगों ने जोड़-तोड़ करके पैसा कमा लिया था, वे समाज में मूल्यहीनता तथा विकृतियाँ फैला रहे थे। समाज, परिवार गली-मोहल्लों में फैली यह अराजक स्थिति का बयान ही 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' की अन्तर्वस्तु है। यहाँ यह कथनीय है कि व्यक्तिगत प्रेम कहानियों के बावजूद इस उपन्यास का कथानक समाज निरपेक्ष नहीं है, बल्कि गली-मोहल्ले का भरापूरा समाज यहाँ उपस्थित है। वह किसी कारीगरी या कौशल से निर्मित नहीं है। वह वस्तुगत स्थितियों और सामाजिक वास्तविकता के अन्तर्विरोधों के बीच से पैदा होता है। इसलिए उसमें जीवन और समाज में विद्यमान आधारभूत द्वन्द्वात्मक व्यवहार के जगह-जगह पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं। उसे निरा व्यक्तिवादी उपन्यास नहीं कहा जा सकता। उक्त उपन्यास की तीनों पात्र – जमुना, लिली और सत्ती की कहानियों में जीवन की वे अन्तर्विरोधी स्थितियाँ आ गई हैं जिनके बीच नारकीय जीवन जिया जा रहा है।

निश्चय ही, इस उपन्यास के कथानक में उपर्युक्त परिस्थितियों से पैदा बेचैनी और संघर्ष के बीज छिपे हैं। प्रत्येक कहानी परिस्थितियों के बीच से पैदा होती है तथा जीवन के उन पहलुओं को उघाड़ती चली जाती है जिनके लिए वाकई बेचैन होने की जरूरत है। जमुना और तन्ना प्रेम करते हैं। किंतु परिस्थिति कुछ इस तरह बनती है कि जमुना के माता-पिता पर्याप्त दहेज नहीं जुटा पाते। साथ ही, अपने झूठे अहंकार के चलते माँ अपनी बेटी का भविष्य खराब कर देती है। अन्तत: बेटी का विवाह तिहाजू वृद्ध जमींदार से करना पड़ता है। जमुना भी अचानक संपत्ति-समृद्धि पाकर स्थितियों से समझौता कर लेती है। यह अनमेल विवाह किसी न किसी प्रकार से तीनों मुख्य कहानियों में दिखाई देता है। चाहे

जमुना का विवाह हो, चाहे तन्ना का, दोनों का मनचाहा विवाह परिस्थितियों की विपरीतता के चलते नहीं हो पाता। ध्यातव्य है कि इन परिस्थितियों की रचना मुनष्य स्वयं कर रहा है। जमुना का विवाह वृद्ध जमींदार से होता है तो तन्ना का विवाह अधिक पढ़ी-लिखी, पैसे वाली, सुंदरता पर गर्व करने वाली लिली से कर दिया जाता है, जो उसे उसके दब्बू स्वभाव के चलते उसे छोड़कर चली जाती है। माणिक का सत्ती को ऐन समय पर धोखा देकर नारकीय जीवन जीने के लिए विवश कर देना भी कुछ ऐसा ही है। ये केवल जीवन के दु:खद प्रसंग भर नहीं हैं। ये जर्जर होते जा रहे रूढ़ समाज की वे परिणतियाँ हैं, जिन पर इनके जीवन निर्भर हैं। इनके व्यक्तित्व में अपनी कोई हलचल नहीं है। घटनाओं की यह अनिवार्यता, परिस्थिति-निर्भरता इन कहानियों को वास्तविक और लेखक की दृष्टि इन्हें आधुनिक बनाती है। इनके यहाँ भी प्रेमचंद के कथा विधान के समान कहानी घटना के सिलसिले में नहीं है बल्कि जीवन के उन अन्तर्विरोधी परिपार्श्वों में है जहाँ मनुष्य जीवन की कथा का निर्माण होता है। जमुना और तन्ना का अपने समाज, परिवार और रूढ़ियों से विद्रोह करना तो दूर वे उससे असहमति जताने की स्थिति में भी नहीं पाए जाते हैं। सत्ती में वह सामर्थ्य दिखाई गई थी किंतु सामंती और मध्यवर्गीय पुरुष वर्चस्व वाले समाज ने उसका शोषण किया। उसे जिस नारकीय जीवन में धकेला गया, उससे उसका जीवन ही नष्ट हो गया। उसके पश्चात् उस घटना से आंदोलित हो माणिक जिस प्रकार से प्रायश्चित करता है वह और भी गहन चिन्तन मनन की दरकार पैदा करने की अपेक्षा हास्यास्पद और सतही अधिक बना दिया जाता है। संभवत: व्यंग्य में।

'सूरज का सातवाँ घोड़ा' में कथाकार धर्मवीर भारती ठोस जीवन की समस्याओं से साक्षात्कार करते हुए सभी समस्याओं को सामाजिक-आर्थिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित करते हुए, उसकी लपेट में फँसे हुए आदमी की स्थिति का तो चित्रण करते हैं, किंतु वे उसे घटनाओं-दृश्यों में अधिक देर तक विन्यस्त नहीं कर पाते। यह शिल्प का आग्रह है या कुछ और कि उपन्यासकार व्यक्ति और समाज की संस्थाओं के द्वन्द्वात्मक संबंधों को अपने अनुभव का स्रोत तो अवश्य बनाता है पर अनुभव बहुत देर तक टिकता नहीं, वह क्षीण हो जाता है और विचार प्रबल हो जाते हैं। पात्र समाज और परिवार की संस्थाओं से विद्रोह की कामना तो बहुत करते हैं पर वह उपदेशात्मक स्वर ग्रहण कर उपन्यास के प्रभाव को खंडित कर देते हैं। चरित्रों में द्वन्द्व और दबाव तो मिलता है किंतु वह कुछ कर गुजरने के लिए नहीं होता। संभवत: यह किस्सा गोई के शिल्प को बरकरार रखने के कारण है कि वे गहन-गंभीरता से बचने का प्रयास करते हैं। नहीं तो क्या कारण है कि कथाकार जैसे ही किसी गंभीर समस्या को घटना में विन्यस्त करने लगता है कि तुरन्त उसे हलकी-फुलकी टीका-टिप्पणी में उड़ा देता है।

यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि वह स्थितियों के विचार-विश्लेषण में कहीं नहीं चूकता। सिद्धांत प्रतिपादन उसका प्रिय काम है। एक प्रसंग में माणिक कहता है कि एक व्यक्ति की ईमानदारी इसी में है कि वह एक व्यवस्था द्वारा लादी गई सारी नैतिक विकृतियों को भी अस्वीकार करे और उनके द्वारा आरोपित सारी झूठी मर्यादाओं को भी। लेकिन हम यह विद्रोह नहीं कर पाते। अत: नतीजा यह होता है कि जमुना की तरह हर परिस्थति से समझौता करते जाते हैं। लेकिन इन्हीं विचारों को घटनाओं में लाकर चरित्रों के माध्यम से कार्य में परिणत करना अपेक्षाकृत अधिक धैर्य की माँग करता है। उदाहरण के लिए जमुना के अनमेल विवाह के प्रसंग में परिस्थितियों और घटनाओं की स्पष्टता होते हुए भी उपन्यासकार उसे अन्य पात्रों के मन में प्रवेश करके और गहराई से नहीं उभारता। इसलिए वह दु:खद घटना कथानक में महत्त्वपूर्ण प्रसंग के रूप में चित्रित नहीं हो पाती और एक चलताऊ सामान्य घटना बनकर रह जाती है। इसीलिए जमुना के वैधव्य का संकेत करके कथाकार आगे बढ़ जाता है। अनुभूति के स्तर पर भारती भले ही इन

घटनाओं से आंदोलित होते हों किंतु अभिव्यक्ति तक आते-आते वह किस्से-कहानी के विधान में संकेत मात्र बनकर रह जाती हैं। कथाकार का सारा ध्यान जमुना-रामधन प्रसंग पर केन्द्रित हो जाता है। लेखक उस कथा को कहने में रस लेने लगता है। दरअसल गहराई तब आती है जब घटना के विभिन्न पहलुओं को जीवन और समाज के परिप्रेक्ष्य में देखकर उस दुखद प्रसंग को उठाया जाए। लेखक उन्हें चित्रित भी करता है। चाहे तन्ना की घटना हो या सत्ती की, ये मात्र घटना नहीं बनी रह जातीं बल्कि ये परिस्थितियों का दबाव झेलते हुए आशा-निराशा, आकांक्षा-स्वप्न, भावों-विचारों के जटिल संस्थान बन जाती हैं। दिक्कत तब होती है जब उपन्यासकार अपने उपन्यास शिल्प के अनुरोध से इन कहानियों को तोड़कर फैला देता है अथवा बीच-बीच में इन समस्याओं के विषय में अपने मंतव्य प्रकट करने लगता है तो इन कहानियों का प्रभाव खंडित होने लग जाता है। उदाहरण के लिए प्रेम के विषय में लेखक माणिक के माध्यम से यह कहता है: "लेकिन हम सब परम्पराओं, सामाजिक परिस्थितियों, झूठे बंधनों में इस तरह कसे हुए हैं कि उसे सामाजिक स्तर पर ग्रहण नहीं कर पाते, उसके लिए संघर्ष नहीं कर पाते और बाद में अपनी कायरता और विवशताओं पर सुनहरा पानी फेर कर उसे चमकाने की कोशिश करते रहते हैं।" उक्त कथन विचार के धरातल पर उचित है। लेकिन इस तरह के विचार हम उपन्यास में घटना द्वारा घटित होते नहीं देख पाते। ऐसे विचारों का आधिक्य अनुभव की क्षीणता को दर्शाता है तो साथ ही कथाकार पर वर्णनात्मकता के हावी होने को भी। यह वर्णन और अनुभव का द्वन्द्व उपन्यास की प्रत्येक कहानी में विद्यमान है। क्या इसे गहन-गंभीर संवेदना के ऊपर वर्णन की लोकप्रिय शैली-शिल्प की विजय के रूप में देखा जा सकता है?

इसका एक कारण शायद यह भी कहा जा सके कि यह सीमित अनुभव-संसार का उपन्यास है। इसी से इस रचना को विस्तृत फलक पर न ले जाकर उपन्यासकार छोटे-छोटे अनुभव खंडों में बाँटकर कथा का विन्यास करता है। या यह भी कि छोटे अनुभव खंडों में कहानी कहना उसके आख्यान शैली अपनाने की विवशता है। इसीलिए वह किसी कहानी को विस्तार नहीं देता। जैसे जमुना और माणिक के कथा प्रसंग में जमुना के युवती जनोचित प्रेमभावना को किशोर माणिक महसूस करता है। वह उससे बचना भी चाहता है और उसके समीप भी जाना चाहता है। जमुना का उससे तन्ना की बातें करना, उससे अतिरिक्त स्नेह जताना, अपने निजी दुःख-सुख की कहानी कहना एक संश्लिष्ट स्थिति का निर्माण करता है किंतु इसे संक्षेप में लाकर कथाकार एक कहानी का रूप देकर समाप्त कर देता है। शेष मित्रों के बीच किस्सागोई की कला के तहत एक औत्सुक्य विधान रचा जाता है फिर दूसरी दोपहर में इसी कहानी का दूसरा आयाम यानी जमुना का तन्ना के परिवार से अनेकानेक रूढ़िगत एवं सामजिक-आर्थिक कारणों के चलते नाता तोड़ना, अन्ततः उसका एक तिहाजू वृद्ध जमींदार से विवाह करना तथा इससे आगे पुत्र-प्राप्ति के लिए धर्म-कर्म, टोने-टोटके, तांगेवाले रामधन की कथा आदि अपेक्षाकृत अधिक विस्तार पा जाते हैं। इस विस्तार के पीछे कथारस तो है ही, किस्सागोई का शिल्प भी इसमें सहायक होता है जिसमें धर्म-कर्म कांड के साथ-साथ तांगेवाले रामधन की तिकड़म और जमुना की विवशता का द्वन्द्व भी उभरता है। जमुना का अपने भाग्य से समझौता कर लेना पाठक में बेचैनी उतनी नहीं, जितनी उसके प्रति सहानुभूति जगाता है। ऐसा क्यों हुआ? क्या मात्र कथारस तथा आख्यान शैली के आग्रह के कारण? इस संबंध में कुछ स्पष्ट रूप से नहीं कहा जा सकता। इतना ही कहा जा सकता है कि उपन्यास की यह कथा प्रभावित तो करती है पर कहीं गहरे में उद्वेलित नहीं कर पाती। इसी प्रकार लिली को तन्ना के रूप में उपयुक्त वर का न मिल पाना, तन्ना का घर-परिवार के लिए तिल-तिलकर अपने को मिटा देना और अन्ततः अपने जीवन को होम कर देना, फिर उसके जीवन का दुःखद अंत एक रोमांचक कहानी तो बनती है, जिसमें विषाद की गहरी छाया घिरती है पर संघर्ष के चिह्न यहाँ भी विद्यमान नहीं हैं।

बेचैनी, संघर्ष और गति से भरपूर कहानी सत्ती के जीवन में मिलती है जहाँ मध्यवर्गीय स्वार्थ परता, ओछापन और नारी का अभिशप्त जीवन जीने के लिए विवश होना-घटना, चरित्र और कार्य सभी दृष्टियों से औपन्यासिक विधान के अनुरूप है। पर नवीन उपन्यास-शिल्प के चलते उपन्यास की अन्य कहानियों के साथ जुड़कर वह विचार मंथन तो भले ही पैदा करे किंतु मर्मस्पर्शी प्रभाव नहीं छोड़ पाती। अनुभव, विचार और शिल्प परस्पर अनुस्यूत नहीं हो पाते। इनके बीच आई यह दरार उपन्यास के प्रभाव को तोड़ देती है। यद्यपि कुछ चरित्र, कुछ व्यक्तित्व जीवन्त बन पड़े हैं, पर क्या वे उपन्यास के प्रभाव को घनत्व प्रदान कर पाए हैं? आइए, इस पर आगे के बिन्दु में विचार करें।

10.4 पात्र योजना और उसका यथोचित निर्वाह

औपन्यासिक शिल्प की एक प्रमुख अपेक्षा है, विषय वस्तु के अनुरूप पात्रों की रचना और उनका यथोचित निर्वाह। इस दृष्टि से देखा जाए तो 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' के अधिकाश पात्र अपने समाज, घर-परिवार और परिवेश में क्रिया-प्रतिक्रिया करते स्थितियों से बनते, टूटते, टकराते अपना स्वरूप ग्रहण करते हैं। इसमें संदेह नहीं कि इस उपन्यास में नारी चरित्र ही प्रमुख बन पड़े हैं। उनके चरित्र की रूपरेखाएँ अपेक्षाकृत स्पष्ट गहरी एवं गतिशील हैं। वे जीवन की वास्तविकताओं के अधिक समीप हैं। यदि इन चरित्रों का थोड़ा गहराई से अध्ययन करें तो पता चलता है कि उक्त उपन्यास के स्त्री-चरित्र ही सजीव और जीवंत बने पड़े हैं। तीनों प्रमुख नारी चरित्र अविवाहित युवतियाँ हैं और वे अपने वांछित प्रेम को नहीं पा सकी हैं। आर्थिक संघर्ष झेलना इनकी नियति है। इसलिए कष्ट या दुःख इनके जीवन का स्थायी भाव है। उपन्यासकार ने स्वयं रवीन्द्रनाथ टैगोर के हवाले से इन नारी चरित्रों के विषय में कहा है "मेरे मन के अंदर जो बसा है यह कोई विरहिणी नारी है और वही विरहिणी नारी अपनी कथा कहा करती है--बार-बार तरह-तरह से।'' लेखक के वैचारिक प्रतिनिधि पात्र प्रकाश ने इसे लेखक का हिन्दी के अन्य कहानीकारों की तरह नारी के प्रति 'ऑबसेशन' बताया है। एक अन्य दृष्टि से इन चरित्रों से देखने से स्पष्ट होता है कि उपन्यास का पहला पात्र जमुना है। जो गंगा के समान भरे पूरे जीवन वाली नहीं है। वह कहीं भरी तो कहीं सूखी पारंपरिक रूप में प्रवाहमान है। यह उसका प्रतीकात्मक नाम भी हो सकता है। उसे भावुक और व्यावहारिक दोनों रूपों में दिखाया गया है। उसका परिवार पिछड़ा हुआ दकियानूस किस्म का है। वह कम पढ़ी-लिखी साधारण भारतीय स्त्री के रूप में चित्रित है, जो अन्ततः अपने भाग्य पर संतोष कर वैधव्य जीवन जीने को विवश है। टोने-टोटके, साधु-संतों तथा रामधन की सहायता से उसे पुत्र प्राप्त होता है। इस संबंध में उपन्यासकार ने लिखा है: "प्यारे मित्रो! हमेशा याद रखो कि नारी पहले माँ होती है तब और कुछ। इसका जन्म ही इसलिए होता है कि वह माँ बने सृष्टि का क्रम आगे बढ़ावे। यही उसकी महानता है। तुमने देखा कि जमुना के मन में पहले अपने बच्चों का ख्याल आया।'' वह गाढ़े वक्त में अपने माता-पिता की सहायता करने की बजाय अपनी भावी संतति के लिए अपने रूपये-पैसे समेट कर मायके से अपने घर चली जाती है।

दूसरा नारी-चरित्र लिली का है जिसका वास्तविक नाम लीला है। वह पिता विहीन संपन्न माँ की इकलौती संतान है और शिक्षाप्राप्त है। इसलिए उसके व्यक्तित्व में नई शिक्षा का प्रभाव है। वह नई शिक्षा, नई सभ्यता के प्रभाव स्वरूप लाली से लिली हो जाती है। वह तेजतर्रार व्यावहारिक न होकर भावुक स्वभाव वाली लड़की के रूप में चित्रित की गई है। भावुकता के विषय में लेखक का मत है: "जो लोग भावुक होते हैं और सिर्फ रोते हैं वे रो-धोकर रह जाते हैं।'' माणिक के सामने उसका अवसाद भरा व्यक्तित्व भावुकता की ही सृष्टि अधिक करता है। वह माणिक से कहती है: "ऐसा न कहो, मेरे जीवन में, मेरे

व्यक्तित्व में जो कुछ है, तुम्हारा ही तो दिया हुआ है।'' पर लिली ने यह शब्दों से नहीं कहा, निगाहों से कह दिया। कहा जा सकता है कि यह चरित्र वास्तविक नहीं, काल्पनिक अधिक लगता है।

तीसरा चरित्र सत्ती का है। सत्ती सत्य का भदेस स्त्रीलिंग है। जैसे यह नाम जमीनी यथार्थ से जुड़ा है, वैसा ही-उसका चरित्र भी गढ़ा गया है। जमीनी वास्तविकताओं से संबंध रखने वाला। बिना माँ-बाप की लड़की सत्ती को कोई औपचारिक शिक्षा नहीं मिली है। किंतु वह नारी सुलभ सभी गुणों से युक्त है। स्नेह-प्रेम के संबंध बनाना तथा दि' ' ' देना और पाना चाहती है। परिश्रम और संघर्ष उसमें कूट-कूट कर भरा है। इसी से उसका स्वतंत्र और संघर्षशील व्यक्तित्व उभरता है। परन्तु पुरुष वर्चस्व वाले समाज में उसकी रक्षा नहीं हो पाती। माणिक मुल्ला भी उसे धोखा दे देते हैं। हालाँकि वे उसके व्यक्तित्व से प्रभावित थे। संभवत: इसलिए कि "श्रम ने सत्ती के बदन में एक ऐसा गठन, चेहरे पर एक ऐसा तेज, बातों में एक ऐसा अदम्य आत्मविश्वास पैदा कर दिया था कि जब उसे माणिक मुल्ला ने देखा तो उसके मन में लिली का अभाव बहुत हद तक भर गया और सत्ती के व्यक्तित्व से मंत्रमुग्ध हो गए।'' किंतु परिस्थिति कुछ ऐसी बनी कि वह चारों ओर से अकेली तथा काम लोलुप व्यक्तियों से घिर जाती है। उसका संरक्षक-चाचा ही उसे लील जाना चाहता है। उसे तन्ना के पिता महेसरदयाल के हाथ बेचकर पैसा ले लेता है। चारों ओर से निराश सत्ती आशा की किरण के लिए जीवित रहती है। पर वह भी उसे नहीं मिल पाती। अभी हमने इन पात्रों पर संक्षेप में ही विचार किया है। अगली इकाई में हम 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' की पात्र-योजना पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

कथाकार धर्मवीर भारती पर कवि भारती की संवेदनशीलता का प्रभाव जगह-जगह उभरता दिखाई देता है। निम्न मध्यवर्ग की जीवनव्यापी सच्चाई को लेखक ने थोड़े में ही अभिव्यक्ति प्रदान कर दी है। अधिकांश में पात्रों की मनोगत भावनाओं के दृश्य जितने प्रभावशाली ढंग से अंकित हुए हैं उतने परिस्थितियों के घात-प्रतिघात से जूझते व्यक्तियों के टूटने-बिखरने के दृश्य नहीं। इसीलिए इस उपन्यास में नारी चरित्रों के मनोलोक को प्रकट करने में लेखक को विशेष सफलता मिली है। जमुना का तन्ना से विवाह न हो पाने की विवशता, जमुना के विभिन्न अवसरों पर मन की घुमड़न के चित्र, माँ के पैसे माँगने पर जमुना का मनोविज्ञान इसके प्रमाण हैं। जमुना की तन्ना के प्रति प्रेम की बेचैनी उसके अनमेल विवाह, समृद्धि और संतोष के बावजूद पूरी कथा में बनी रहती है।

रोमानी प्रेम के अनुभव को उपन्यासकार ने लिली के प्रसंग में बड़ी गहराई और प्रभावशाली रूप से अंकित किया है। लिली के प्रेम प्रसंग को माणिक के वार्तालाप के साथ पूरे प्राकृतिक परिवेश में सांकेतिक ढंग से उभारा जाना उपन्यासकार के कवि-व्यक्तित्व को सामने लाता है। उपन्यासकार लिली के प्रेम की बेचैन मन:स्थिति को प्रकृति के साथ मिलाकर जिस तरह प्रतीकात्मक रूप देता है, वह रचनाकार की अनोखी सृष्टि है। किंतु यह उस चरित्र की संघर्षशील प्रवृत्ति से पलायन की भी सूचक है जो उसे जीवन की वास्तविकता से परे धकेलकर कल्पना लोक की वस्तु अधिक बना देती है।

तन्ना का अपने पिता का सामना न कर पाना, जमुना का तन्ना के विवाह के अवसर पर यह पूछना कि भाभी क्या मुझ से सुंदर है अथवा सत्ती का माणिक के प्रति प्रेमभाव, माणिक का उसके संघर्षमय जीवन में रुचि लेना, उसकी सहायता करना, सत्ती का अपनी सुरक्षा के लिए बात-बात में "काली बेट वाला चाकू'' निकाल लेना आदि विशेषताओं को उभारते हैं, जो पाठक के मन में सहज ही घर कर लेती हैं। किंतु पुरुष पात्रों का लंपटपन, कायरता और ओछापन विशेषत: महेसर, तन्ना तथा माणिक में परिस्थितिगत उतना नहीं है जितना उनकी चरित्रगत स्थिरता को दर्शाता है। दरअसल, घटनाओं और परिस्थितियों से उद्भूत

क्रिया-प्रतिक्रिया के मार्मिक दृश्य उपस्थित करने की अपेक्षा कथाकार ने पात्रों के भावनात्मक संसार को उभारने में अधिक रुचि ली है। इसीलिए वह नारी पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं को जितनी संवेदनशीलता से उभार पाया है, जीवनगत कठोरता को नहीं। माणिक शिक्षित है, वह सत्ती के प्रेम को पाना चाहता है पर उसके लिए वह कोई मूल्य नहीं चुकाना चाहता। मध्यवर्गीय पात्रों की यह पलायन वादिता सत्ती-माणिक प्रेम-प्रसंग में सफलतापूर्वक उभर कर सामने आ जाती है। स्पष्ट है कि जीवन की समस्याओं में घिरते-लड़ते दिखाने या उसका बड़ा स्वरूप करने में कथाकार का मन उतना नहीं रम पाया है। जीवनगत वास्तविकताओं के विविध रूप उसे एक सीमा तक ही लुभाते हैं, उसके बाद वह भावनामय संसार खड़ा करने और दृश्य-बिंब सजाने में मनोयोग से लग जाता है।

10.5 भाषिक शिल्प

भाषा एवं अभिव्यक्ति-विधान की दृष्टि से 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' महत्त्वपूण कृति इसलिए है कि उसमें भावानुकूल अन्तर्वस्तु के अनुरूप रूपगठन और भाषा शिल्प का विन्यास हुआ है। उसमें जहाँ किस्सागोई की शैली चलती है, भाषा वर्णन प्रधान हो जाता है। जब उपन्यासकार बाह्य यथार्थपरक विवरण देता है तो उसकी भाषा अभिधाप्रधान बोलती बतियाती धारा प्रवाह रूप धारण कर लेती है। उदाहरण के लिए जमुना का यह वर्णन : "समय बीतते कितनी देर लगती है। कहानियाँ पढ़ते-पढ़ते और सिनेमा के गीत याद करते-करते जमुना बीस बरस की हो गई और माणिक पंद्रह बरस के, और भगवान की माया देखो कि जमुना का ब्याह ही कहीं तय नहीं हुआ।" सरसता उनकी भाषा का विशेष गुण है। वे स्थितियों की विपरीतता को दिखाने के लिए दो भिन्न चित्र प्रस्तुत कर अभिव्यक्ति में चित्रात्मकता ला देते हैं : "असल में जमुना के पति तिहाजू यानी पुख्ता दीवार, पर उनमें और जमुना में उतना ही अंतर था जितना पलस्तर उखड़ी हुई पुरानी दीवार और लिपे-पुते तुलसी के चौंतरे में।" गली-मोहल्ले की भाषा की व्यंजकता जगह-जगह इनकी भाषा में भी देखी जा सकती है जिससे स्थिति का अन्तर्बाह्य यथार्थ ज्यों-का-त्यों उपस्थित हो जाता है। बुआ की भाषा इसका प्रमाण है : "इन कम्बख्तों को मेरा खाना-पीना, उठना-बैठना, पहनना-ओढ़ना अच्छा नहीं लगता। पानी पी-पीकर कोसते रहते हैं। आखिर कौन तकलीफ है इन्हें। बड़े-बड़े नवाब के लड़के ऐसे नहीं रहते जैसे तन्ना बाबू बुल्ला बना के, पाटी पाट के छैलचिकनियों की तरह घूमते हैं।" यह भाषा मनोभाव व्यंजक तो है ही, जीवन की बहुस्तरीयता को भी उद्घाटित करती है। कहीं-कहीं यथार्थ को अधिक वस्तुनिष्ठ रूप में चित्रित करने के लिए स्थानीय भाषा शैली का प्रयोग कथाकार ने किया है। ठेठ ग्रामीण जीवन में रची-बसी महिलाओं की बोली बानी में वहाँ के मुहावरे, लोकोक्तियाँ भाषा को धारदार तो बनाते ही हैं, सहज भाषा की शक्तिमत्ता और सामर्थ्य की सूचना भी देते हैं। जमुना की माँ से रामो बीबी का कथन इसका उदाहरण प्रस्तुत करता है : "हरे राम-राम! बिटिया की बाढ़ तो देखो जैसन नाम तैसन करनी। भादों की जमुना अस फाटी पड़त है।"

दूसरी ओर जब कथाकार प्रेम के रोमानी दृश्यों की परिकल्पना करता है तो भाषा अधिक से अधिक भावाभिव्यंजक और काव्यात्मक हो जाती है। बल्कि कहें कि भाषा का यह रूप ही कथाकार की संवेदना के अधिक अनुकूल पड़ता है। कहीं-कहीं वह इन्द्रधनुषी छटा और अलंकृत स्वरूप धारण कर लेती है। उसे कलात्मक गद्य का नमूना कह सकते हैं। उदाहरणार्थ : "उसकी रूखी अलकें खारे आँसू से धुले गालों को छूकर सिहर उठती थीं। चंपे की कलियों सी उसकी लंबी पतली कलात्मक उँगलियाँ, सिसकियों से काँप-काँप उठने वाला उसका सोन जुही-सावन, उसके गुलाब की सूखी पँखुरियों से होंठ और कमरे का उदास वातावरण; पता नहीं कौन-सा वह दर्द था जिसकी उदास उँगलियाँ रह-रहकर उसके व्यक्तित्व के मृणालतंतुओं के संगीत को झकझोर रही थीं।" लिली से संबंधित कहानी में

कथाकार मनोवैज्ञानिक यथार्थ को बखूबी चित्रित करता है। लिली को वांछित प्रेम-माणिक-के न मिल पाने पर देवदास फिल्म देखकर आने के बाद का यह दृश्य बिंबात्मक-प्रतीकात्मक अधिक बन गया है : "मेज के नीचे सिनेमा के दो आधे फटे हुए टिकट आँधी की वजह से तमाम कमरे में घायल तितलियों के जोड़े की तरह इधर-उधर उड़कर दीवारों से टकरा रहे थे।" यहाँ यह आख्यान की भाषा शैली न रहकर अनुभूति की काव्यात्मक भाषा अधिक बन जाती है। किंतु ऐसे अभिव्यक्ति के कलात्मक कौशल जीवन में निहित त्याग के प्रतिरूप न होकर स्वतंत्र अस्तित्व धारण कर लेते हैं।

इस उपन्यास में भाषा का तीसरा स्तर तर्कसंगत विवेचन को सामने लाने वाला अपेक्षाकृत नीरस स्वरूप है। प्रेम के रहस्य का स्वरूप विवेचन हो या मार्क्सवाद के सिद्धांतों पर वाद-विवाद, भारती जी की भाषा थोड़ी रूखी और कृत्रिमता के समीप पहुँचने लगती है। "जमुना निम्न मध्यवर्ग की भयानक समस्या है। आर्थिक नींव खोखली है। उसकी वजह से विवाह, परिवार, प्रेम, सभी की नींवें हिल गई हैं। अनैतिकता छायी हुई है।" ऐसे वाद-विवाद उपन्यास में एकाधिक स्थलों पर आए हैं जो समग्र उपन्यास की बोलचाल वाली भाषा से अलग प्रकार के स्वाद की भाषा का रूप ग्रहण करते हैं। इसी प्रकार दर्शन परक भाषा का विधान भी उक्त उपन्यास में हुआ है। हालाँकि ऐसे स्थल कम हैं जहाँ दार्शनिक-प्रवचन हों, लेकिन जितने भी अंश हैं वहाँ भाषा अपेक्षाकृत नीरस है। प्रेम के स्वरूप का निरूपण करते हुए माणिक का यह वक्तव्य इसका अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है : "अगर हम दोनों जीवन में एक-दूसरे के निकट आए भी तो इसलिए कि हमारी अधूरी आत्माएँ एक-दूसरे को पूर्ण बनाएँ, एक-दूसरे को बल दें, प्रकाश दें, प्रेरणा दें और दुनिया की कोई भी ताकत कभी हमारी इस पवित्रता को छीन नहीं सकती। अन्य अधिकांश स्थलों में उनकी भाषा अभिव्यंजना पूर्ण है। समग्ररूप से देखें तो श्री नेमिचंद्र जैन के भाषा संबंधी इस आकलन से सहमत होना पड़ेगा कि 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' की कुछ प्रभावशालिता उसकी भाषा की बड़ी सहज धार के कारण है। नि:संदेह उस पर भी रूमानी और रंगीन प्रभाव मौजूद हैं, पर बीच-बीच में वह अत्यंत संयत, अनलंकृत और तीखी हो जाती है। उसमें बोलचाल का प्रभाव भी किसी बनावट के बिना आता है जो उसे उपन्यास की विशिष्ट भाववस्तु के बहुत उपयुक्त बना देता है।"

10.6 सारांश

"सूरज का सातवाँ घोड़ा" आख्यान परम्परा के शिल्प में किस्सागोई के पुराने स्वरूप को ऐसे कौशल के साथ उठाता है कि ये कहानियाँ सूरज के सात घोड़ों और रथ के मिथक के साथ निम्न मध्यवर्ग के जीवन की सच्चाई का चित्रण करती हैं। अंत में आशा का संदेश देतीं एक नए प्रकार के उपन्यास का स्वरूप ग्रहण कर लेती हैं। उपन्यास की तीनों मुख्य कहानियाँ – प्रेम कहानियाँ हैं। जो ऊपर से दिखने पर भिन्न-भिन्न लोगों और उनके जीवन-संसार की कथाएँ लगती हैं। किंतु अन्ततः उनका आभ्यंतरिक सूत्र एक ही है। निम्न मध्यवर्ग, उसका परंपरा से बँधा जीवन और समाज, उनके जीवन की विडम्बनाएँ, उसके बीच रहते-सहते स्त्री-पुरुष थोड़ी बहुत भिन्नता के बावजूद एक-सा व्यवहार करते हैं। उपन्यास के वस्तु विधान में किसी को भी उसका वांछित प्रेम नहीं मिल पाता। लेखक मानता है कि इसका मूल कारण आर्थिक विषमता है। किंतु क्या जहाँ आर्थिक विषमताएँ होती हैं वहाँ युवक-युवतियाँ प्रेम नहीं करते? या सामान्य रूप में यह माना जाए कि उनका जीवन जर्जर और दयनीय होता है? तात्पर्य यह कि आर्थिक विषमताओं के साथ-साथ कुछ युगीन सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश गत दबाव और अन्य कारण भी होते हैं जिनके चलते मनुष्य का पूरा जीवन व्यवहार विकृत हो जाता है। इसे ही इस उपन्यास में दिखाने का प्रयास किया गया है।

इस उपन्यास के चरित्रों में इन्हीं कारणों से कहीं कायरता, दब्बूपन आ गया है तो कहीं लंपटता। मनुष्य इन्हीं परिस्थितियों के बीच फँसा दयनीय दशा में पशुवत जीवन जीने के लिए विवश है। किंतु इस सामग्री को उपन्यासकार भारती ने इस प्रकार का रूपगठन दिया है कि यह उपन्यास हिन्दी उपन्यासों में नया प्रयोग बन जाता है। इसमें जीवन की बड़ी घटनाओं को तो नहीं पर जिन घटनाओं को लिया गया है वे इस शैली-शिल्प और रूपविधान में विशिष्ट स्वरूप ग्रहण कर लेती हैं। भाषा-शिल्प भी जीवन की बदलती वास्तविकता के अनुरूप विविधतापूर्ण और अभिव्यंजनापरक हो जाती है। अधिकांश में बोलचाल की भाषा समग्र उपन्यास को नई धार देती है तथा इसे रोंचक और प्रभावशाली बनाती है।

10.7 अभ्यास प्रश्न

1. "सूरज का सातवाँ घोड़ा'' अपने औपन्यासिक शिल्प के कारण पाठकों आलोचकों के आकर्षण का विशेष केन्द्र बना है।'' इस कथन के औचित्य-अनौचित्य पर प्रकाश डालिए।
2. "वस्तु-संगठन और निष्कर्षात्मक अंत की दृष्टि से "सूरज का सातवाँ घोड़ा'' की प्रभावान्विति क्षतिग्रस्त हुई है।'' इस मान्यता के संबंध में अपनी सहमति-असहमति को सोदाहरण प्रस्तुत कीजिए।
3. "सूरज का सातवाँ घोड़ा'' के भाषिक शिल्प की विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।

इकाई 11 सूरज का सातवाँ घोड़ा : चरित्र-सृष्टि

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 चरित्र-चित्रण की प्रविधियाँ

11.3 स्त्री-पुरुष संबंध और "सूरज का सातवाँ घोड़ा"

- 11.3.1 पारंपरिक और नवीन संबंध
- 11.3.2 समाज में पुरुष प्रधानता
- 11.3.3 पुरुष और स्त्री के प्रति असमान दृष्टि
- 11.3.4 मानसिक जटिलता

11.4 माणिक मुल्ला और कथानक

11.5 नारी चरित्र-सृष्टि

- 11.5.1 जमुना
- 11.5.2 लिली
- 11.5.3 सत्ती

11.6 नारी चरित्रों का विद्रोह

11.7 सारांश

11.8 अभ्यास प्रश्न

11.0 उद्देश्य

"सूरज का सातवाँ घोड़ा" उपन्यास की चरित्र-सृष्टि संबंधी इस इकाई में प्रस्तुत उपन्यास की घटनाओं और पात्रों के अंत:संबंधों, क्रिया-प्रतिक्रियाओं, चरित्रांकन-संबंधी स्थितियों-समस्याओं का अध्ययन किया जाएगा। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- उपन्यास में लेखक द्वारा प्रस्तुत चरित्र-चित्रण की प्रविधि की चर्चा कर सकेंगे;
- उपन्यास में स्त्री-पुरुष के संबंधों के अंकन का विश्लेषण कर सकेंगे;
- विभिन्न नारी चरित्रों की विशिष्टताओं का विवेचन कर सकेंगे;
- घटनाओं और पात्रों के अंत:संबंधों का परिचय दे सकेंगे; और
- उपन्यास के पात्रों की परिकल्पना के माध्यम से कथाकार धर्मवीर भारती की चरित्र-चित्रण संबंधी सृजनशीलता को समझा सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व औपन्यासिक शिल्प के अन्तर्गत दसवीं इकाई में आपने "सूरज का सातवाँ घोड़ा" की पात्र रचना और कथा के बीच पात्रों के यथोचित निर्वाह का अध्ययन कर लिया है। इस इकाई में हम उपन्यास के पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं पर चर्चा करेंगे।

पात्र अथवा चरित्र किसी भी कथाकृति के अन्यतम तत्व होते हैं। चरित्रों के अध्ययन से ही कहानी-उपन्यास की कथा का विकास होता है। कथानक में गतिशीलता आती है। कुछ विद्वानों के अनुसार कथा साहित्य का मूलाधार चरित्र ही होते हैं। उनकी मान्यता है कि कथा की घटनाएँ प्राय: पात्रों के स्वभाव और प्रकृति से ही प्रसूत होती हैं। यहाँ तक कि देशकाल की योजना भी चरित्रों की स्वाभाविकता और वास्तविकता के माध्यम से ही सम्पन्न होती है। कथोपकथन भी घटनाओं से अधिक चरित्र को ही व्यंजित और प्रकाशित करता है तथा कथा के उद्देश्य की योजना भी चरित्रों के ही माध्यम से होती है। एक तरह से उपन्यास के सभी महत्वपूर्ण तत्व किसी न किसी रूप में पात्रों से जुड़े होते हैं। इन्हें ध्यान में रखकर ही उपन्यासकार उन परिस्थितियों-घटनाओं का निर्माण करता है, जिनके बीच वे चरित्र अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कार्य करते हैं। किंतु क्या चरित्र कार्यों के कर्त्ता मात्र होते हैं या प्रत्यक्ष-परोक्ष स्थितियों-दबावों तथा उनसे बनने वाले मनोभावों के संघात होते हैं। इसलिए आइए, सर्वप्रथम हम यह जान लें कि पात्र या चरित्र होते क्या हैं? चरित्र-चित्रण करने की विधियाँ क्या हैं? इसके बाद "सूरज का सातवाँ घोड़ा" की चरित्र-सृष्टि का विवेचन-विश्लेषण करना अधिक उपयुक्त होगा।

11.2 चरित्र-चित्रण की प्रविधियाँ

प्रत्येक कथाकार अपनी कथाकृति में पात्रों का विन्यास और उनका चरित्र-चित्रण अपनी सृजन संबंधी अपेक्षा के अनुरूप करता है। इसमें उसकी रुचि, योग्यता और कृति के उद्देश्य का भी योगदान रहता है। कथाकार के मन में चेतन या अवचेतन रूप में विद्यमान वह विशिष्ट ढंग या युक्तियाँ क्या हैं? इसका उल्लेख भी विद्वानों ने किया है। "सब मिलाकर पात्रों का चरित्र-चित्रण तीन प्रकार से हो सकता है – पात्रों के कार्यों के द्वारा, उनकी बातचीत के द्वारा तथा लेखक की निजी टिप्पणी और व्याख्या द्वारा। पहले दो को नाटकीय या अप्रत्यक्ष चरित्र-चित्रण कहते हैं और तीसरे को विश्लेषणात्मक या प्रत्यक्ष चरित्र-चित्रण।" (हिन्दी साहित्य कोश, भाग-1) अधिकांश कथाकृति में तीनों विधियों को अपनाते हुए पात्रों का चरित्र चित्रित किया जा सकता है। कुछ कथाकार स्वयं को पात्रों की मन:स्थिति में रखकर उसके व्यक्तित्व में प्रवेश कर जाते हैं। ऐसे में विभिन्न परिस्थितियों, घात-प्रतिघातों के बीच उसका रूप परिवर्तित होता चला जाता है। इस प्रविधि में कथाकार अपनी संपूर्ण चेतना और संवेदना का स्थानांतरण क्रमश: अपने सभी पात्रों में कर देता है, जिससे वे सभी जीवंत और व्यक्तित्व संपन्न हो जाते हैं। पर इसमें एक खतरा यह बना रहता है कि यदि लेखक अन्तर्मुखी और दार्शनिक प्रवृत्ति का हुआ तो उसके पात्र भी कहीं अंतर्मुखी और सामाजिकता से कटे हुए न हो जाएँ। यह एकांगीपन होगा। कहने का अर्थ यह कि उपन्यास के पात्र इतने वास्तविक हों कि वे हमें अपने समीप चलते-फिरते प्रतीत हों। उनमें अपना युग बोध झलकता हो। वे किसी पराए देश-काल के न लगें। इस दृष्टि से देखें तो "सूरज का सातवाँ घोड़ा" के पात्र तत्कालीन कस्बे, गली-मोहल्ले के जीवंत पात्र प्रतीत होते हैं जिनका चरित्र-चित्रण भारती जी ने प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष दोनों विधियों से किया है।

11.3 स्त्री-पुरुष संबंध और "सूरज का सातवाँ घोड़ा"

भारती से पहले के हिन्दी के प्रमुख उपन्यासकारों में मुंशी प्रेमचंद का नाम सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। उन्होंने अपने समय की आवश्यकता के अनुरूप अपने पात्रों में आदर्शों और युगीन-मूल्यों को दिखाने का प्रयास किया है। वे अपने पात्रों को देवता के रूप में परिकल्पित नहीं करते। किंतु उन्हें मानवता का श्रेष्ठ उदाहरण अवश्य बनाना चाहते हैं। वे अपने त्याग, बलिदान, सेवा, सदनुराग और कर्त्तव्य परायणता आदि के द्वारा जो मार्ग दिखाते हैं, उससे साधारण मनुष्य का मार्गदर्शन होता है। उनकी स्वीकारोक्ति है, "मैंने अपने

प्रत्येक उपन्यास में एक आदर्श पात्र रखा है। उसमें मानवीय भावनाएँ और गुण भी हैं लेकिन है वह आदर्श ही।'' उनका यह आदर्शवाद अंत तक वैसा नहीं बना रहता। उनका कथा-विन्यास यथार्थोन्मुखी हो जाता है। वे परिस्थितियों की चपेट में फँसे व्यक्ति की विवशता या उसे पशुवत आचरण करते हुए भी दिखाते हैं। इस प्रवृत्ति के कारण आज के दलित विमर्श वाले उनकी आलोचना करते हैं। इस दिशा में आगे बढ़ते हुए जैनेन्द्र या इलाचंद्र जोशी अपने उपन्यासों में तत्कालीन सामाजिक संक्रांति तथा उससे आते मानसिक बदलाव के आलोक में अपने पात्रों का निर्माण करते हैं। इसमें भी तत्कालीन सामाजिक-पारिवारिक परिवेश में घुट रही नारी उनके कथासाहित्य के केन्द्र में विद्यमान मिलती है।

राजेन्द्र यादव के अनुसार स्वातंत्र्य पूर्व कथा साहित्य में दो प्रकार के नारी पात्र दिखाई पड़ते हैं : "रूढ़ियों को ही अपना प्रारब्ध मानकर खुशी-खुशी उनके आगे सिर टेक कर मर जाने वाली नारी या बँधी-बँधायी लीकों को चूर-चूर करती, मुँह चिढ़ाती नारी। पहले प्रकार की नारी ने जगह-जगह बँधी लीकों से विद्रोह भी किए हैं, लेकिन आगे कोई रास्ता न पाकर वह प्राय: ही आत्मसमर्पण करने को बाध्य हुई है। उसका मूल स्वर है त्यागपत्र अर्थात् रेज़िगनेशन यानी डूबने के लिए निष्क्रिय, निश्चेष्ट आत्मसमर्पण।'' किंतु स्वतंत्रता के बाद समाज का ढाँचा तेजी से बदला; स्त्री-पुरुष का मानस भी इससे अछूता नहीं रहा। किंतु अपने में ही लीन रहने वाले कथाकार इन बदलावों को पूरी तरह आत्मसात नहीं कर पाए या कि उन सारी सामाजिक-राजनैतिक स्थितियों को अपने कथानक में धारण नहीं कर पाए। पुरुष के सामने नारी की भी कोई प्रगतिशील भूमिका हो सकती है। यह उनकी सोच का हिस्सा नहीं बन पाया। यह सही है कि तत्कालीन नारी में स्वयं झिझक थी। स्त्री-पुरुष के लंबे अपरिचय से उत्पन्न झिझक और प्रतिक्रियाएँ विद्यमान थीं। फिर भी बदलाव के चिह्न दिखाई दे रहे थे। हास्य-व्यंग्य मिश्रित अपने खिलंदड़े अंदाज में भारती इन चिह्नों को रेखांकित भले ही न करते हों उसके संकेत अवश्य देते हैं।

वैसे भी भारती का 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' स्वतंत्रता के तुरंत बाद के दिनों में लिखा गया उपन्यास है। इस समय तक स्वाधीनता की चेतना का प्रचार-प्रसार बढ़ने लगा था। स्त्री-शिक्षा के कारण परिवार के पुराने ढाँचे में भी दरार पड़ने लगी थी। इसके फलस्वरूप सारी परंपराओं और आदर्शों को स्वीकार करते हुए भी स्त्री में समाज-स्वीकृत चौखटों से बाहर निकल आने की आकांक्षा, छटपटाहट के चिह्न उभरने लगे थे। स्त्री अपने योग्य या इससे आगे बढ़कर अपनी इच्छाओं-आकांक्षाओं के अनुरूप जीवन-साथी के चयन का अधिकार चाहने लगी थी। भले ही यह उस समय संभव नहीं था। पर यह छटपटाहट मानवीय संबंधों के कुछ नए आयामों का विश्लेषण करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम अवश्य था।

11.3.1 पारंपरिक और नवीन संबंध

'सूरज का सातवाँ घोड़ा' उपन्यास में पारंपरिक और नए दोनों प्रकार के स्त्री-पुरुष संबंध घुले-मिले मिलते हैं। सबसे पहले समाज-स्वीकृत पति-पत्नी के संबंधों को देखते हैं। इस दृष्टि से प्रस्तुत उपन्यास में पुरानी सामाजिक रूढ़ियों में बँधे जमुना के अंधविश्वासी माता-पिता तथा माणिक के भाई-भाभी दिखाई देते हैं। ये मध्यवर्ग के लोग हैं। जमुना के पिता बैंक में क्लर्क हैं। वे अपनी जाति में जमुना का विवाह करना चाहते हैं। जमुना अपने जाति-गोत्र के लेकिन थोड़ी निम्न स्थिति के एक पड़ोसी लड़के तन्ना से प्रेम करती है। उससे विवाह करना चाहती है। यानी परम्परागत संबंधों में थोड़ी सेंध। पर जमुना की माँ इससे सहमत है। तन्ना उनसे थोड़े नीचे गोत्र का लड़का है, जिसे वह घर जमाई बना सकती है। लड़के के पिता महेसर दलाल इसे अपना अपमान समझते हैं। उनके अहम् को ठेस लगती है। विवाह टूट जाता है। जमुना का अन्यत्र विवाह न हो पाने के कारणों में दहेज, अशिक्षा, भावुकता आदि महत्वपूर्ण कारण बनते हैं।

दूसरी ओर, माणिक के भाई-भाभी भी पारम्परिक स्त्री-पुरुष संबंध-निर्वाह करने वाले दंपत्ति हैं। उपन्यास में इनकी थोड़ी-सी ही भूमिका है। जितनी भी है उसके अनुसार ये सामाजिक रूढ़ियों, अंधविश्वासों के पारंपरिक ढाँचे में बँधे सीमित सोच वाले पति-पत्नी ही अधिक प्रतीत होते हैं। माणिक-सत्ती के प्रेम-प्रसंग में भाभी का अपेक्षाकृत अधिक उल्लेख आता है। मोहल्ले की बड़ी बूढ़ियाँ उनकी प्रेम कहानी को नमक-मिर्च लगाकर भाभी को बताती हैं और ताकीद करती हैं कि माणिक का जल्दी ही अन्यत्र विवाह कर देना चाहिए। पारम्परिक सोच वाली भाभी थोड़ा अपनी तरफ से जोड़कर अपने पति यानी माणिक के भाई को सारा किस्सा सुनाती है – घटना पर बिना विचार किए। "भैया ने दूसरे दिन माणिक को बुलाकर समझाया कि उन्हें माणिक पर पूरा भरोसा है, लेकिन माणिक अब बच्चे नहीं हैं, उन्हें दुनिया को देखकर चलना चाहिए। इन छोटे लोगों को मुँह लगाने से कोई फायदा नहीं।" आगे भी भैया-भाभी माणिक को इंटर के बाद पढ़ाने के हक में नहीं हैं। वे चाहते हैं कि माणिक नौकरी करें। माणिक आगे पढ़ना चाहते हैं। भैया-भाभी की सहायता न मिलने से निराश माणिक सत्ती से ही सहारा प्राप्त करते हैं। पर वह सत्ती से किस मुँह से सहायता माँगे? आखिर उनका सत्ती से क्या संबंध है? क्या वे उससे प्रेम करते हैं? क्या वे उसे पत्नी के रूप में स्वीकार करने में समर्थ हैं। दरअसल माणिक-सत्ती प्रेम-प्रसंग से एक नए उभरते स्त्री-पुरुष संबंध की झलक दिखाई देती है। पर इस संबंध को स्वीकारने के लिए जिस साहस की आवश्यकता है – वह माणिक में अनुपस्थित है। बल्कि माणिक की स्थिति के विपरीत सत्ती मजदूरी करके या किसी भी प्रकार का कार्य करके माणिक को सहयोग देने के लिए तत्पर है। पर माणिक अपनी मध्यवर्गीय कमजोरियों के कारण उसके साथ न्याय नहीं कर पाते। माणिक की कायरता और ढुलमुलपन के कारण एक नया संभावनाशील स्त्री-पुरुष संबंध खंड-खंड होकर बिखर जाता है।

सत्ती-माणिक संबंधों के अतिरिक्त उपन्यास में आए शेष सभी स्त्री-पुरुष पात्र पारंपरिक रूप में चित्रित हैं। जमुना और उसके वृद्ध जमींदार पति का प्रसंग एक प्रकार से 'टाइप' की श्रेणी में आता है। यहाँ पति अपनी युवती नव-विवाहिता पत्नी का मुँह जोहता रहता है। वह बुढ़ापे के कारण उसकी आशा-आकांक्षाएँ तो पूरी नहीं कर पाता। परन्तु उसके लिए सारे भौतिक सुख के साजो सामान जुटा अवश्य देता है। जमुना सामान्य समझौता परस्त स्त्री के समान उसकी धन-दौलत को सहेज-बटोर कर रख लेती है--अपनी भावी संतान के लिए। यहाँ तक कि गाढ़े वक्त पर अपने माता-पिता की सहायता करना भी उचित नहीं समझती। स्त्री के संतान-प्रेम के विषय में उपन्यासकार टिप्पणी करता है : "प्यारे मित्रो! हमेशा याद रखो कि नारी पहले माँ होती है तब और कुछ। इसका जन्म ही इसलिए होता है कि वह माँ बने।" जमींदारी के वारिस की चिंता जमींदार साहब को भी है। वे पुत्र-प्राप्ति के लिए अनेक धार्मिक अनुष्ठान करते-करवाते हैं। लंबे कर्मकाण्ड के बाद उन्हें पुत्र प्राप्त होता है। भले ही वे इस सुख को देखने के लिए जिन्दा नहीं रह पाते। रामधन का प्रसंग सामंती परिवेश में स्त्री की और भी दयनीय दशा को दर्शाने वाला है। इसी प्रकार का एक अन्य कारुणिक प्रसंग लिली और तन्ना है। यह भी बेमेल स्त्री-पुरुष संबंध का परिचायक है। इस संबंध का अंत बहुत ही त्रासद दिखाया गया है। शिक्षित लिली जिससे भावात्मक जुड़ाव महसूस नहीं करती – उसके प्रति आत्मसमर्पण कैसा? यह तनाव लिली के चरित्र में प्रारंभ से ही विद्यमान था जिसका परिणति तन्ना को अपने हाल पर छोड़ देने में दिखाई देती है।

11.3.2 समाज में पुरुष प्रधानता

दरअसल सामंती समाज स्त्री-शिक्षा या उसकी आत्मनिर्भरता को स्वीकार नहीं करता। वह पुरुष वर्चस्व वाला समाज रहा है। सामंती व्यवस्था वाले परिवार में पुरुष वर्चस्व ऊपर से नीचे तक विद्यमान रहता है। जमुना-तन्ना प्रसंग में जमुना की माँ के द्वारा तन्ना को घर

जमाई रख लेने की बात से आहत तन्ना का पिता महेसर अपने अपमान का बदला अपने बेटे तन्ना से लेता है। वह उसे डाँटता-फटकारता ही नहीं - इतना मारता है कि उसके मुँह से खून आने लगता है। महेसर उसे अपनी जोर-जबरदस्ती से बेजुबान बना देता है। सामंती व्यवस्था के अथवा अपने पिता के इस आतंक के चलते तन्ना कुछ नहीं कर पाता। बल्कि अपने नैतिक दायरे में रहकर अपने पिता की सेवा करना अपना धर्म समझता है। इसी मानसिकता के कारण तन्ना जमुना की अपने प्रति **ममता और प्रेम** महसूस करते हुए भी उसके घर की ओर मुँह नहीं करता। शायद इसलिए भी कि वह अपने पिता की क्रूरता जानता है। जमुना भी महेसर दलाल को पहचानती है। वह कहती है : "असल में तन्ना बुरा नहीं है पर महेसर बहुत कमीना आदमी है, पर जब से तन्ना की माँ मर गई तब से तन्ना बहुत दुःखी रहता है।'' स्पष्ट है कि माँ की मृत्यु तथा पिता के इस व्यवहार ने तन्ना के व्यक्तित्व को दबा-कुचल दिया है। उसमें निरीहता, दब्बूपन और कायरता प्रवेश कर गई है। इससे उसका जीवन नरक बन गया है। इस सामंती व्यवस्था में जिसके पास पैसा है – वह सर्वशक्तिसंपन्न है। सामंतवाद के क्रोड से विकसित होने वाली भारतीय पूँजीवादी व्यवस्था सामंती दुर्गुणों को ही बढ़ावा देती है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के तुरंत बाद ही संक्रांतिकाल की अव्यवस्था के चलते व्यक्ति अपने सुख-सुविधा-स्वार्थ के अनुसार क्रूर होकर दूसरों का शोषण करता है। महेसर अपनी पत्नी की मौत के बाद दूसरा विवाह रचाना चाहता है। हालाँकि वह यह कहकर एक आड़ लेना चाहता है कि "कोई दबी-ढँकी कन्या मिल जाए तो बच्चों का पालन-पोषण हो जाए, वरना अब उसे क्या बुढ़ापे में कोई औरत का शौक चढ़ा है।'' यह व्यक्ति का दोहरापन पूँजीवाद की विशेषता है। उपन्यास में महेसर दलाल का चरित्र इन सभी दुर्गुणों से युक्त है। पैसे वाली लिली से अपने बेटे तन्ना का विवाह तय कराकर महेसर अपने घर लाई गई औरत – 'बुआ' को जिस तरह घर से निकालता है, उस पर उपन्यासकार की टिप्पणी है कि "महेसर दयाल ठहरे इज्जतदार आदमी, उसे अपने बेटे-बेटियों का ब्याह निबटाना है इसलिए यह ढोल (बुआ) कब तक अपने गले में बाँधेंगे।'' अंत में हुआ यह कि "बुआ जैसे हँसते-इठलाते हुए आई थी वैसे ही रोते-कलपते अपनी गठरी-मुठरी बाँध कर चली गई।'' स्पष्ट है कि सामंती और पूँजीवादी दोनों व्यवस्थाओं में पुरुष की अपनी इच्छापूर्ति सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इसी के चलते महेसर दयाल तीसरी स्त्री को बेवकूफ बनाकर अपने चंगुल में फँसा लेता है। वह बेटी के बराबर की लड़की सत्ती से ब्याह रचाना चाहता है। सत्ती का चाचा चमन ठाकुर पाँच सौ रूपये पर उसे महेसर के हाथों बेच देता है। सत्ती के चाकू दिखाने पर वह घिघियाने लगता है। वह अशिक्षित सत्ती को बताता है : अब तो कानूनी कार्यवाही हो गई है। फिर महेसर उसे सुख से रखेगा आदि। यह पुरुष का शातिर दिमाग है कि वह प्रत्येक स्थिति के अनुरूप अपने लिए तर्क गढ़ लेता है।

11.3.3 पुरुष और स्त्री के प्रति असमान दृष्टि

स्पष्ट है कि पुरुष प्रधान व्यवस्था में पुरुष-स्त्री समान नहीं हो सकते। स्वतंत्रता, समानता आदि अधिकार जनतांत्रिक व्यवस्था में बिना शिक्षित हुए नहीं पाए जा सकते। उन्हें प्राप्त करना सामान्य व्यक्ति के लिए लगभग असंभव है। भारती ने अपने इस उपन्यास में जिस पिछड़े निम्न मध्यवर्गीय समाज का चित्रण प्रस्तुत किया है वहाँ अशिक्षा, रूढ़ि, अंधविश्वास, इतने समय से चलते चले आ रहे हैं कि वहाँ स्त्री-पुरुष समानता की बात सोची ही नहीं जा सकती। जमुना के परिवार के पास तन्ना के पिता को दहेज देने के लिए कुछ नहीं था। इसी से "तन्ना से उसकी शादी नहीं हो पाई। उसके बाप दहेज नहीं जुटा पाए, शिक्षा और मन बहलाव के नाम पर उसे मिली 'मीठी कहानियाँ', 'सच्ची कहानियाँ', 'रसभरी कहानियाँ' तो बेचारी और कर ही क्या सकती थी।'' इसलिए वह हर स्थिति में आत्मसमर्पण के लिए विवश थी। उसे दुहाजू-तिहाजू वर ही मिलना था। आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर हुए बिना वह समानता के स्तर तक नहीं पहुँच सकती। पुरुष, यदि उसके पास

धन-बल है, तो वह स्वतंत्र और निर्बन्ध है। फिर महेसर का उदाहरण लें। पत्नी की मृत्यु के बाद वह "बुआ" को रख लेने से ही संतुष्ट नहीं होता। वह अपने दायित्वों को तन्ना पर डालकर स्वयं इधर-उधर मुँह मारने के लिए स्वतंत्र हो जाता है। सत्ती उसके लिए कहती है "वह बूढ़ा पोपला महेसरा मुझ से ब्याह करने को कह रहा है।" पर माणिक मुल्ला इस पर अपनी कोई प्रतिक्रिया नहीं देते। मूकदर्शक बने रहते हैं। मानो उनका इससे कोई सरोकार ही न हो। यह मध्यवर्गीय ढुलमुल चरित्र है। वह चाहकर भी बाहरी दबावों के कारण अपने मन का नहीं कर पाता।

उपन्यास के अन्य पुरुष पात्र भी महेसर दयाल से बहुत भिन्न नहीं हैं। पेंशनयाफ्ता चमन ठाकुर भी भोग विलासिता का जीवन जीता है। स्त्री उसके लिए भोग्या है। यहाँ तक कि माणिक के शिक्षित भाई भी सत्ती को चमन ठाकुर और महेसर दलाल के चुंगल से बचाने के स्थान पर उन्हीं के हवाले कर देना चाहते हैं। इस प्रकार अशिक्षा, अंधविश्वास, रूढ़ियों से घिरे निम्न मध्यवर्ग में स्त्री-पुरुष समानता की बात कोई अर्थ नहीं रखती। यहाँ पुरुष वर्चस्व ही मुख्य है।

11.3.4 मानसिक जटिलता

उपन्यास के अधिकांश निम्न मध्यवर्गीय चरित्र अपने जीवनयापन की कठिनाइयों से घिरे अपनी आशा-आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए विषम परिस्थितियों से जूझने वाले पात्र हैं। इनमें सर्वाधिक जटिल चरित्र जमुना और तन्ना का है। जमुना को उपन्यास में अनपढ़, दमित मन वाली पात्र के रूप में चित्रित किया गया है। उसमें स्त्री-सुलभ सजने-सँवरने के संस्कार हैं, प्यार-मोहब्बत करने की इच्छा तथा तन्ना के लिए ममता भी विद्यमान है। (भले ही ये संस्कार उसे सिनेमा की पुस्तकें पढ़ने-गाने से मिले हों) उसके मन में शादी-ब्याह की आकांक्षा है, भावी संतान की इच्छा और एक भरे-पूरे घर-संसार की चाह है। तन्ना के रूप में जीवन-साथी के उसके हाथ से निकल जाने पर उसकी उदास मानसिकता जमुना-माणिक के प्रारंभिक प्रसंग में बखूबी उभरी है। इससे यह स्पष्ट हुआ है कि निम्न मध्यवर्ग की अशिक्षित लड़की के लिए अपनी उम्र के इस पड़ाव पर सिर्फ सुयोग्य वर की प्रतीक्षा करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। इसीलिए जैसे ही जमुना का विवाह भले ही तिहाजू वर से - तय होता है, उसका जीवन चल पड़ता है। इस अवसर पर कथाकार की प्रतिक्रिया है : "जमुना ने उसे (तिहाजू वर को) देखा तो बहुत रोई, जेवन-चढ़ा तो बहुत खुश हुई, चलने लगी तो यह आलम था कि आँखों से आँसू नहीं थमते थे और हृदय में उमगें नहीं थमती थीं।" आगे पुत्र प्राप्त होते-होते वृद्ध जमींदार स्वर्ग सिधार जाते हैं। धनधन्यवती जमुना पुत्र के सहारे वैधव्य काटने की व्यवस्था कर लेती है। ऐसे में उसका मानसिक विधान विद्रोहिणी का न होकर एक समझौतापरक स्त्री का ही हो सकता था। इसे लेखक ने जमुना के चरित्र में पर्याप्त कौशल से उभारा है। इसी प्रकार तन्ना का चरित्र भी थोड़ा जटिल-दुरूह बन पड़ता है। तन्ना जमुना से प्रेम करते हैं। पर वे इसे कह नहीं पाते। जमुना उन्हें किसी न किसी बहाने अपने यहाँ बुला लेती, खाना खिलाती, घंटों बैठ दुःख-सुख की बात करती है। "होते-होते यह हो गया कि तन्ना के लिए कोई था तो जमुना थी और जमुना को चौबीसों घंटा अगर किसी की चिंता थी तो तन्ना की। अब इसी को आप प्रेम कह लें या कुछ और।" इस घनिष्ठता में बाधक तत्व बाहरी है – परिवार (पिता), सामाजिक कर्तव्य (बहनों की शादी) और नैतिकता (पिता की सेवा)। नैतिकता का तो आलम यह है कि पिता की मार के बाद तन्ना जमुना के घर की ओर मुँह भी नहीं करते। हालाँकि उसके घर की ओर देखकर उसके आँसू छलक आते हैं और लगता है जैसे गले में कोई चीज फँस रही हो, सीने में कोई सूजा चला रहा हो। तन्ना के ये गुण ही उसके अवगुण बन जाते हैं और अंततः उसका जीवन ले लेते है। जमुना से अलग हो जाने के बाद वे एफ.ए. में फेल हो जाते हैं। और उन्हें आर.एम.एस. में नौकरी करनी

पड़ती है। महेसर जो कमाते हैं वह अपनी ऐय्याशी पर उड़ा देते हैं। बहन की शादी तन्ना को करनी पड़ती है। उस पर उनकी निजी बेढब जिन्दगी। "पत्नी ज्यादा पढ़ी थी, ज्यादा धनी घर की थी, ज्यादा रूपवती थी, हमेशा ताने दिया करती थी।" तन्ना सब कुछ सुनकर मन ही मन कुढ़ते थे। किसी से कह नहीं सकते थे। दफ्तर में भी सब उनका मज़ाक उड़ाते थे। उपन्यासकार ने उनकी नैतिकता और ईमानदारी को व्यंग्य द्वारा संकेतित किया है। इन सबके चलते उनकी जिन्दगी नरक हो जाती है। आवश्यकता से अधिक ईमानदारी मारक होती है–संभवत: इसी अर्थ में उपन्यासकार ने उनकी ईमानदारी पर बार-बार व्यंग्य किया है। उनकी अनेक स्तरीय मानसिक जटिलता का पता उनकी रेल दुर्घटना में टाँग कट जाने पर अस्पताल में जमुना, बेटे और पिता का स्मरण करने पर मिलता है। वे अपने नजदीकी किसी को भी नहीं भूल पाते। परन्तु प्रश्न उठता है कि क्या इसे उनके चरित्र की उदात्तता कहा जाए या मूर्खता या कायरपन? कथाकार भारती की इस पर टिप्पणी है: "लेकिन जो इस नैतिक विकृति से अपने को अलग रखकर भी इस तमाम व्यवस्था (परिवार, समाज और नैतिकता) के विरुद्ध नहीं लड़ते, उनकी मर्यादाशीलता सिर्फ परिष्कृत कायरता होती है। संस्कारों का अंधानुसरण। और ऐसे लोग भले ही आदमी कहलाए जाते हैं, उनकी तारीफ भी होती है पर उनकी जिन्दगी बेहद करुण और भयानक हो जाती है और सबसे बड़ा दुख यह है कि वे भी अपने जीवन का यह पहलू नहीं समझते और बैल की तरह चक्कर लगाते चले जाते हैं।" यहाँ भारती ने एक प्रकार से तन्ना के रूप में ईमानदारी, नैतिकता, मर्यादा आदि का विरोध किया है। वे तन्ना के प्रति अपेक्षित सहानुभूति का परिचय नहीं दे सके हैं। ऐसा बर्ताव उन्होंने अंधायुग में युयुत्सु के साथ किया है। वस्तुत: इस प्रकार के चरित्र अब कस्बाई जीवन में भी स्वल्प होते चले जा रहे हैं।

11.4 माणिक मुल्ला और कथानक

आइए, अब देखें कि 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' के कथानक से माणिक मुल्ला का क्या संबंध है? माणिक उक्त उपन्यास के सूत्रधार हैं। वे मोहल्ले के किशोर-नौजवानों को प्रेमविषयक कुछ किस्से-कहानियाँ सुनाते हैं। प्रत्येक कहानी उनकी आपबीती है। जमुना की कथा के वे मूकदर्शक हैं। बल्कि कहा जाए कि जमुना का विवाह पूर्व मानसिक उद्वेलन उन्हीं के माध्यम से पाठकों के समक्ष उद्घाटित होता है।

यहाँ यह कथनीय है कि कथानक घटनाओं की शृँखला मात्र नहीं होता वरन् घटनाओं में निहित पहलुओं के क्रम संगठन में उसका साक्षात्कार किया जा सकता है। माणिक जमुना के जीवन के उन पहलुओं का उद्घाटन करते हैं, जिससे वह 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' उपन्यास की महत्वपूर्ण कहानी बन जाती है। उदाहरण के लिए अशिक्षित जमुना में यौवन सुलभ अकांक्षाओं का होना, जीवन की ठेठ वास्तविकताओं से सामना होने पर उनका टूटकर चूर-चूर हो जाना, तन्ना को नीचे गोत का मानकर उसकी माँ का उसे घर जमाई बनाने का प्रस्ताव करना, तन्ना के पिता का इसे लड़के वालों का अपमान समझ तन्ना को मार-मार कर अधमरा कर देना आदि ऐसी दास्तानें हैं जो उस जीवन की आन्तरिकताओं को पाठक से रू-ब-रू कराती हैं। ये निम्न मध्यवर्गीय जीवन के कटु सत्य हैं जिन्हें सुनाते-सुनाते माणिक स्वयं उदास हो जाते हैं।

लिली की कहानी के तो माणिक सहभोक्ता हैं। एक समय प्रतीत होने लगता है कि माणिक लिली से प्रेम करते हैं किंतु दूसरे ही क्षण वह प्रेम भी रहस्य के पर्दे में गुम हो जाता है। लिली किसी अन्य से अपने विवाह पक्का होने की बात बता कर अपने मन की व्यथा-कथा माणिक के सामने उद्घाटित करती है। किंतु माणिक, भारती के पूर्ववर्ती उपन्यास 'गुनाहों का देवता' के नायक के समान भावोच्छ्वास का सहारा लेने लगते हैं और कहते हैं: "हम

दोनों जीवन में एक-दूसरे के निकट आए भी तो इसलिए कि हमारी अधूरी आत्माएँ एक-दूसरे को पूर्ण बनाएँ, एक-दूसरे को बल दें, प्रकाश दें, प्रेरणा दें।'' यह पवित्रता, प्रकाश, प्रेरणा भावोच्छ्वास नहीं तो और क्या है? यानी भारती के उक्त उपन्यास का प्रमुख पात्र माणिक भावुक प्रेमी मात्र है या एक बहुत शातिर व्यक्ति; जो प्रत्येक नायिका से अपने आत्मीय संबंध बनाता है किंतु उसमें इतना साहस नहीं कि वह उनमें से किसी को सामाजिक स्तर पर स्वीकार कर सके। सत्ती की कहानी में माणिक सत्ती के व्यक्तित्व पर मंत्रमुग्ध हैं। उपन्यासकार के अनुसार वह जमुना से भी अलग है और लिली से भी। कारण, वह बिलकुल दूसरी धातु की बनी थी। "वह उन्हें धरती पर सहज मानवीय भावना से जीने की प्रेरणा देती थी। वह कुछ ऐसी भावनाएँ जगाती थी, जो ऐसी ही कोई मित्र संगिनी जगा सकती थी जो स्वाधीन हो, जो साहसी हो, जो मध्यवर्ग की मर्यादाओं के शीशे के पीछे सजी हुई गुड़िया की तरह बेजान और खोखली न हो।'' पर उसके साथ भी माणिक मुल्ला ने क्या किया। जिस सत्ती ने माणिक की पढ़ाई के लिए (भैया-भाभी के इन्कार करने के बाद) अपनी अँगूठी माणिक के हाथ में रख दी और कहा की इससे वह फीस जमा करा दे। उन्हीं माणिक ने भैया-भाभी के सहयोग से चमन और महेसर दलाल के हवाले कर उसे धोखा दिया। वैसे भारती की चरित्र-सृष्टि की दृष्टि से देखें तो माणिक का कोई लगाव महेसर दलाल और चमन से नहीं था। ऐसा उसने सत्ती को धोखा देने के लिए भी नहीं किया। इसके पीछे अपने भाई-भाभी के प्रति लगाव ही मुख्य कारण था। वस्तुत: माणिक उपन्यास का एक ऐसा पात्र है, जिसके माध्यम से लेखक ने समूचे निम्न मध्य वर्ग के चरित्र को संकेतित किया है।

शिक्षित माणिक के रूप में एक ऐसा सामान्य जन से कटा मध्यवर्गीय दोगला व्यक्ति जन्म ले रहा था जो एक ओर परम्परा और परिवार की संरक्षणशीलता से अपने को बाँधे हुए था तो दूसरी ओर उसमें अपने परिवेश के प्रति भावप्रवणता के स्थान पर क्रूर तटस्थता और ढुलमुल चरित्र का परिचय दे रहा था। इसलिए वह किसी एक निर्णय पर नहीं रह पाता। वह भैया-भाभी के प्रति अपनी निष्ठा बनाए रखकर सत्ती से भी अपनी पढ़ाई का लाभ लेना चाहता है। इस पर उपन्यासकार की टिप्पणी है: "भैया का कहना भी उन्हें ठीक लगता था कि माणिक का और इन लोगों का क्या मुकाबिला, दोनों की सोसायटी अलग, मर्यादा अलग, पर माणिक मुल्ला सत्ती से कुछ कह नहीं पाते क्योंकि उन्हें पढ़ाई भी जारी रखनी थी।'' इस प्रकार माणिक मुल्ला आधुनिक शिक्षा प्राप्त करके विवेकवान बनते हैं किंतु उसी मात्रा में उनके व्यक्तित्व में स्वकेन्द्रिकता आ जाती है। वे अपने से आगे नहीं सोच पाते। शेष उनके लिए कहानी है, जीवन नहीं। उन्हें रोमानियत की जगह जीवन की संघर्ष करने वाली सत्ती आकर्षित तो करती है किंतु वे स्वयं जीवन में संघर्ष करने का समय आने पर पीछे हट जाते हैं। बल्कि स्वार्थांध हो अपना संतुलन खो कर सत्ती को नरक में ढकेल देते हैं। इसे उनके चरित्र की सीमा भी कहा जा सकता है।

'सूरज का सातवाँ घोड़ा' के अन्य पुरुष पात्र पतनशील सामंती संस्कृति में पले-बढ़े अशिक्षित निम्न मध्यवर्गीय चरित्र हैं। महेसर दलाल हों या चमन ठाकुर, ये भ्रष्ट तरीके से पैसा कमाते हैं, उनकी वृत्तियाँ भी उसी प्रकार विकृत हो जाती हैं। सीमित दायरे में सिमटे ये पात्र शुद्ध विलासी, स्त्री को भोग्या समझने वाले रूढ़ि चरित्र हैं। दूसरे प्रकार के पात्र जो थोड़े-बहुत शिक्षित भी हो गए हैं, उनका ढाँचा लगभग वैसा ही है। उनमें भी मनुष्यता या विवेक की जागृति के स्थान पर निम्नस्तरीय, क्रूरता और खोखलापन ही अधिक है। चाहे माणिक के नौकरी पेशा बड़े भाई हों या बैंक में नौकरी करने वाले जमुना के पिता। शिक्षा और आधुनिक परिवेश की चेतना उनके व्यक्तित्व में कोई अंतर पैदा नहीं करती है। इसी कारण वे समाज के रूढ़-जर्जर ढाँचे को तोड़ने की बजाय यथावत् बनाए रखने में मदद करते हैं। नवीन जीवन की हलचल उनमें नहीं है। वे अपने पीड़ाग्रस्त वर्तमान से त्रस्त, नियति के पाश में बँधे, संकुचित जीवन जीने के लिए अभिशप्त हैं।

11.5 नारी चरित्र-सृष्टि

पचास के दशक तक के हिन्दी उपन्यासों को देखें तो उनमें नारी का स्वरूप बहुत-कुछ पुरानी परिवार-व्यवस्था के अनुरूप ही दिखाई देता है। कथाकार पुराने स्त्री-पुरूष संबंधों के ढर्रे में ढली पराधीन नारी के साथ-साथ कुछ अंशों में आधुनिक शिक्षा सम्पन्न नारी तथा उससे उसके मानसिक ढाँचे में आते द्वन्द्व, तनाव और बदलाव तथा बेचैनी के तत्व उभारते हैं। इस प्रकार की नारी रूढ़ियों को ही अपना प्रारब्ध मानकर उसके सामने समर्पण कर देने वाली है। तो दूसरी जड़ विश्वासों, रूढ़ियों को ध्वस्त करती नारी है। 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' उपन्यास में दूसरे प्रकार की नारी का कुछ-कुछ स्वरूप लिली में या बाद में सत्ती के रूप में उभारा गया है। किंतु इन दोनों का ही अंत कारुणिक है। प्रश्न उठता है कि इन्हीं के चरित्र उक्त उपन्यास में सर्वाधिक संघर्षशील दिखाए गए हैं। इन्हीं से कथानक में गतिशीलता आती है पर इन्हें ही यंत्रणा झेलनी पड़ती है। वस्तुतः इसे धर्मवीर भारती की आधुनिकतावादी दृष्टि का परिचायक माना जा सकता है। उनके महत्वपूर्ण काव्य-नाटक 'अंधा युग' में भी उनकी यही दृष्टि प्रतिफलित हुई है। वहाँ भी सत्य का पक्ष लेने वाले युयुत्सु और बुराई का पक्ष लेने वाले अश्वत्थामा की एक ही परिणति होती है–संत्रास-भोग। वर्तमान युग में मनुष्य अच्छा करे या बुरा-वह समान रूप से दुःख भोगने के लिए अभिशप्त है। आधुनिकतावाद की इस मान्यता को 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' उपन्यास के माध्यम से भारती ने अपने इस जीवन दर्शन को ही अभिव्यक्त किया है। ऐसा क्यों होता है? चाहे सत्ती हो या जमुना अथवा लिली। इनमें से किसी का भी जीवन सुखी नहीं बन पाता है। क्यों? आइए, इन चरित्रों को थोड़ा विस्तार से जानने का प्रयास करें।

11.5.1 जमुना

सबसे पहले जमुना का चरित्र लें। वह उपन्यास की पहली कहानी की नायिका है। वह तन्ना से प्रेम करती है। जमुना की तन्ना से विवाह की बात चलने के बाद उसका स्कूल छुड़वा दिया जाता है। क्यों? कारण स्पष्ट है। अब वह बड़ी हो रही है। उसमें शारीरिक आकर्षण, आशा-आकांक्षाओं का संचार हो रहा है। अतः उसे अनुशासित करने के लिए शायद यह कदम उठाया गया हो। स्कूल छूट जाने के बाद वह दो काम करती दिखाई देती है। एक, प्रेम कहानियों की पत्रिकाएँ पढ़ना, दूसरे सिनेमा के गानों की पुस्तकें मँगवाकर गाने याद करना। इन दोनों कामों की पूर्ति माणिक के जिम्मे थी। इसका खुलासा करते हुए कथाकार लिखता है: "जमुना के दो काम माणिक मुल्ला के सुपुर्द थे, इलाहाबाद से निकलने वाली जितने सस्ते किस्म की प्रेम कहानियों की पत्रिकाएँ होती थीं, वे जमुना उन्हीं से मँगवाती थी और शहर के किसी भी सिनेमाघर में अगर नई तस्वीर आई तो उसके गानों की किताब भी माणिक को खरीद लानी पड़ती थी।" जमुना के ये काम उसके मानसिक क्षितिज के द्योतक हैं। रूढ़िग्रस्त परिवार के बीच उसमें नई-चेतना के बीज नहीं पनप पाते। अतः ऐसे में वह परंपरा का निर्वाह करना ही अपना धर्म समझने लगती है। तन्ना से अपने विवाह की बात टूटने के बाद तिहाजू वर से अपने विवाह की बात सुनकर वह रोती-धोती है। किंतु कोई विद्रोही कदम उठाना उसके चरित्र के अनुकूल नहीं है। वह प्रत्येक परिस्थिति से समझौता करना, स्वयं को उसी के अनुकूल ढाल लेना ही स्त्री धर्म का मानक समझती है। इसीलिए उपन्यास में जमुना को निम्न मध्यवर्ग की भयानक समस्या बताया गया है। कारण, उसकी आर्थिक नींव खोखली है। उसी की वजह से विवाह, परिवार, प्रेम सभी की नींवे हिल गई हैं अनैतिकता छाई हुई है। किंतु जमुना उसी रूढ़ सामाजिक ढाँचे के पंक में जीवन जीने के लिए विवश है। यह उसके जीवन की विडम्बना को द्योतित करता है। उसका अभिशप्त जीवन अनकिए अपराधों की सजा भुगतने का ज्वलंत उदाहरण बन जाता है।

यहाँ कथनीय है कि निम्न मध्यवर्ग की अधिकांश लड़कियाँ आज भी इसी तरह त्रासद जीवन जीने के लिए अभिशप्त हैं–जमुना के समान। इसी कारण, वे न शिक्षा ग्रहण कर पाती हैं और न ही अपने पैरों पर खड़ी होकर अपनी स्थिति को सुधारने की दिशा में कोई ठोस काम कर पाती हैं। ऐसे में जमुना विवाह से पूर्व 'रसभरी' कहानियाँ न पढ़े तो क्या करे। पिता के दहेज न जुटा पाने के कारण वह अनमेल विवाह कर विकृत जीवन जीने के लिए विवश होती है। भले ही उसके जीवन-यापन पर व्यंग्य कर कहा गया है: "उस अभागन के जीवन के सारे संघर्ष और पीड़ा की परिणति मातृत्व से प्लावित, शांत, निष्कंप, दीपशिक्षा के समान प्रकाशमान, पवित्र, निष्कलंक, वैधव्य में हुई।" उसके संपूर्ण जीवन की त्रासदी इस एक कथन से साकार हो गयी है। उसके पास इस तरह के जीवन जीने के लिए अलावा और कोई विकल्प नहीं है।

11.5.2 लिली

उपन्यास की दूसरी कथा आधुनिक शिक्षा से अनुप्राणित, धनी माँ की बेटी लिली की है। उसके व्यक्तित्व में भावोच्छ्वास युक्त आकुलता-व्याकुलता के दर्शन होते हैं। महेसर दलाल तन्ना की शिक्षा को बढ़ा-चढ़ा कर बताता है और लिली से उसका विवाह पक्का करा देता है। लिली की माँ अकेली होने के कारण ज्यादा छान-बीन नहीं कर पाती। लिली स्वाधीन नारी बनना चाहती है और वह ऐसे लड़के से विवाह नहीं करना चाहती, जिसे जानती-बूझती नहीं या जो उसके मनोनुकूल या योग्य न हो। वह अपने विवाह की बात सुनकर अनमनी हो जाती है। माणिक से वह अपनत्व रखती है। पर उससे अपने संबंध को ठोस रूप में सोच नहीं पाती। यह सही है कि माणिक की उपस्थिति से उल्लास का अनुभव करती है। दोनों आमने-सामने होने पर अपनी भावनाएँ भी व्यक्त करते हैं परन्तु उनके बीच कोई ठोस संबंध उभरता नहीं। वे एक दूसरे का आकर्षण महसूस करते हुए भी उसे सीधे-सीधे कह पाने का साहस नहीं जुटा पाते। तन्ना से उसके विवाह की बात तय हो जाने पर खिन्न लिली माणिक से कहती है: "माणिक, क्या होगा, बताओ? अभी तो एक दिन तुम नहीं आते हो तो न खाना अच्छा लगता है, न पढ़ना फिर महीनों-महीनों तुम्हें नहीं देख पाएँगे। सच, वैसे चाहे जितना हँसते रहो, बोलते रहो पर जहाँ इस बात का ध्यान आया कि मन को जैसे पाला मार जाता है।" स्पष्ट है कि माणिक इस संबंध को किशोर रोमानी आकर्षण भाव से अधिक किसी रूप में नहीं देखते। इसीलिए वे अपने इस संबंध को कोई ठोस रूपाकार नहीं देना चाहते। इसकी बौद्धिक व्याख्या मात्र करते हैं। लिली के व्यक्तित्व में भी ठोस यथार्थ दृष्टि का अभाव दिखाई देता है।

दरअसल लिली के माध्यम से कथाकार ने ऐसे वातावरण की सृष्टि की है, जिसके बीच उसका चरित्र स्वाधीन नारी का रूप धारण करने के स्थान पर लिरिकल अधिक हो जाता है। बल्कि कहें कि लिली का चरित्र अपेक्षाकृत आत्मलीन अधिक बन जाता है, जिसे बाहरी दुनिया से अधिक लेना-देना नहीं है। विवाह की बात सुनकर वह रो-धो कर स्वस्थ हो जाती है। लेखक कहता है: "पिछले दिन शाम को उसके जीवन में जो जलजला शुरू हुआ था वह दूसरे दिन शाम को शान्त हो गया।" वह स्वाधीन नारी बनना तो चाहती है, पर उसके लिए अपनी योग्यता अथवा क्षमता प्रमाणित नहीं करती। जीवन में बाहर निकलकर संघर्ष करना उसके व्यक्तित्व में नहीं है। यही उसके जीवन की विडम्बना है। यही कारण है कि उसका चरित्र संकुचित बना रह जाता है।

11.5.3 सत्ती

'सूरज का सातवाँ घोड़ा' उपन्यास में सत्ती का चरित्र अन्यतम बन पड़ा है। माणिक, जमुना और लिली की अपेक्षा उसके साथ अधिक उत्साह का अनुभव करते हैं। माणिक का सत्ती

के बारे में कथन भी है: "लिली के बाद सत्ती का आकर्षण मेरे लिए शुभ नहीं हुआ और न उसके ही लिए। लेकिन वह बिलकुल दूसरी धातु की थी, जमुना से भी अलग और लिली से भी अलग''। पर क्या यह सिर्फ 'आकर्षण' भर था? या माणिक उसमें उसके आगे बढ़कर मित्र या संगिनी के गुण ढूँढ रहे थे? फिर माणिक उसे स्वीकार क्यों नहीं कर सके? क्या उसमें कोई और अभाव था। आइए, इसके विषय में माणिक का अनुभव देखें: "इस मेहनत करने वाली स्वाधीन लड़की के व्यक्तित्व में कुछ ऐसा था जो न पढ़ी-लिखी भावुक लिली में था और न अनपढ़ दमित मनवाली जमुना में था। इसमें सहज-स्वस्थ ममता थी जो हमदर्दी चाहती थी, हमदर्दी देती थी। जिसकी मित्रता का अर्थ था एक दूसरे के दुःख-सुख, श्रम और उल्लास में हाथ बँटाना। उसमें कहीं से कोई गाँठ, कोई उलझन, कोई भय, कोई दमन, कोई कमजोरी नहीं थी, कोई बंधन नहीं था। उसका मन खुली धूप की तरह स्वच्छ था।.....उसमें जो कुछ था वह माणिक मुल्ला को आकाश के सपनों में विहार करने की प्रेरणा नहीं देता था, न उन्हें विकृतियों की अंधेरी खाइयों में गिराता था। वह उन्हें धरती पर सहज मानवीय भावना से जीने की प्रेरणा देती थी। वह कुछ ऐसी भावनाएँ जगाती थी जो ऐसी ही कोई मित्र-संगिनी जगा सकती थी जो स्वाधीन हो, साहसी हो, जो मध्यवर्ग की मर्यादाओं के शीशों के पीछे सजी हुई गुड़िया की तरह बेजान और खोखली न हो।'' यह लंबा उद्धरण देने का अभिप्राय यही है कि इतने गुणों के बावजूद माणिक उसे क्यों नहीं अपना सके? यहाँ निश्चय ही उनका मध्यवर्गीय स्वार्थ और ओछापन आड़े आ गया। जिसने उस निपट अकेली, आत्मनिर्भर लड़की का भावनात्मक शोषण किया और जीवन नारकीय बना दिया। वे अपने भाई की इन दलीलों में आ गए कि 'माणिक का और इन लोगों का क्या मुकाबला, दोनों की सोसायटी अलग, मर्यादा अलग।' पर यदि ऐसी कमजोरी थी तो सत्ती को भ्रम में क्यों रखा? क्यों सत्ती के पास निरंतर जाते रहे? उसमें विश्वास के भाव पैदा करते रहे कि गाढ़े वक्त के लिए कोई उसका सहायक है जो उसको निराश नहीं करेगा। इसलिए चमन ठाकुर और मसेहर दलाल के चंगुल से छूटकर यह संकल्प लेकर चली थी कि वह अपना भविष्य स्वयं बनाएगी? उपन्यास में सत्ती माणिक के पैरों गिर कर कहती है, "किसी तरह चमन ठाकुर से छूटकर आई हूँ। अब डूब मरूँगी, पर वहाँ नहीं लौटूँगी।'' किंतु अपनी सीमित सोच और मध्यवर्गीय संस्कारों के चलते माणिक उसे सहायता प्रदान करने के स्थान पर धोखा दे देते हैं। आततायियों से रक्षा करने की बजाए उन्हीं से पकड़वा देते हैं। जबकि सत्ती का चरित्र इनके बिल्कुल विपरीत था। वह विपदाओं से घिरी रहने के बावजूद माणिक की जी-जान से सहायता करने के लिए तत्पर रहती थी। उनके अच्छे-बुरे वक्त में सहारा देती थी।

दरअसल, माणिक प्रारम्भ से ही ढुल-मुलपन से युक्त कायर और डरपोक व्यक्तित्व के व्यक्ति रहे हैं। ऊपर से मध्यवर्गीय स्वार्थवृत्ति। जो समाज से, बिना कुछ करे-धरे–सब कुछ पाना तो चाहता है पर प्रतिदान स्वरूप कुछ करना नहीं चाहता। यही कारण है कि माणिक मुल्ला ने सत्ती को कष्टों में घिरे देख कभी एक शब्द सांत्वना का भी नहीं कहा। जबकि वह माणिक को ही अपना सर्वाधिक नजदीकी समझती रही। वह मानती है कि "माणिक के अलावा और कोई नहीं है जिससे वह अपना दुःख कह सके।.....उसे लगता है कि कम से कम एक आदमी ऐसा है जिसके आगे उसकी आत्मा निष्पाप और अकलुष है।'' पर उसके साथ माणिक ने क्या किया, उसे नारकीय जीवन बिताने के लिए उन्हीं नरपिशाचों के बीच फेंक दिया। क्या इसे पचास के दशक में भारती की मध्यवर्गीय चरित्र की अचूक पहचान माना जा सकता है ?

11.6 नारी चरित्रों का विद्रोह

'सूरज का सातवाँ घोड़ा' उपन्यास के नारी पात्र प्रायः अपने परिवेश, अपने समाज को अपने अनुकूल नहीं पाते। वे उससे टकराकर नया रास्ता या कोई अन्य विकल्प भी नहीं

ढूंढ़ पाते। किंतु उन सभी में उन परंपराओं-रूढ़ियों के प्रति बेचैनी है, जिससे वे मुक्त होना चाहते हैं। उनकी यह बेचैनी या कसमसाहट ही उनके विद्रोह के चिह्न हैं जो कमोबेश उपन्यास के प्रत्येक नारी चरित्र में मिलते हैं। जमुना का सारा जीवन स्वयं को समाज की अनुकूलता में ढालने में लग जाता है। हालाँकि वह समाज द्वारा अस्वीकृत व्यक्तिगत प्रेम से अपने जीवन की शुरुआत करती है। तन्ना से मेल-मुलाकात तथा उससे ममता आदि का बढ़ना इसी के अन्तर्गत आता है। सीधे-सीधे शब्दों में कहें तो वह तन्ना से प्रेम करती है, उससे विवाह करना चाहती है। वह बात दूसरी है कि सामाजिक-सांस्कृतिक मर्यादाएँ और रूढ़ियाँ उसे ऐसा करने की इजाजत नहीं देतीं। फिर इसे स्वीकार कर लेने पर भी उसका मन इसे स्वीकृत नहीं कर पाता। अंत तक उसका मन तन्ना में लगा रहता है। वह तन्ना के विवाह के अवसर पर उससे पूछती है कि क्या भाभी उससे अधिक सुंदर है–यह उसके मन की बेचैनी को ही द्योतित करता है। आगे संतान की चाह भी समाज स्वीकृति के ही दायरे में आता है। किंतु वह इसकी पूर्ति करने के लिए सामाजिक और वैयक्तिक नैतिकता से बँधी रूढ़ियों-परंपराओं से दबे-छिपे विद्रोह करती है। पर इतना सब कुछ हो जाने पर भी वह तन्ना को कभी भूल नहीं पाती। रेल में तन्ना से संक्षिप्त सी भेंट इसका उदाहरण है। लिली भी समाज से खुले रूप से विद्रोह करने की स्थिति में अपने को नहीं पाती। उसमें इच्छाओं-आशा-अकांक्षाओं की बहुलता है। फिर, आधुनिक शिक्षा का प्रकाश उसे नए ढंग से सोचने को प्रेरित करता है। सामाजिक बदलाव से उसमें विक्षोभ के बीज पैदा होते हैं। परन्तु उसका परिवेश उसे मनोनुकूल कार्य नहीं करने देता। वह व्यक्तिगत भावोच्छ्वास तक ही सीमित रह जाती है। उसका जिससे विवाह होता है, उसका प्रत्यक्ष रूप से विरोध वह नहीं कर पाती। समाज में सुरक्षित रहने के लिए यह जरूरी है कि लड़की का विवाह हो। इसलिए वह विवाह करती है। किंतु अनमेल विवाह–यानी लड़का उसकी रुचि और योग्यता के अनुरूप नहीं था–इसलिए वह बाद में उसे छोड़ आती है। इस प्रकार विवाह के रूप में समाज स्वीकृति भी हो जाती है और मनोनुकूल न होने पर उसे छोड़कर चली आने में विद्रोह की अभिव्यक्ति भी हो जाती है। यह बात अलग है कि इसके लिए उसे और उसके बच्चे को जीवन भर कष्ट और असंतोष क्यों न सहना पड़ा हो।

उक्त उपन्यास का तीसरा नारी चरित्र सत्ती का है। प्रारंभ में उसमें कोई अर्न्तद्वन्द्व दिखाई नहीं देता। उसकी सहजवृत्ति उसे बता देती है कि माणिक की 'आत्मा निष्पाप और अकलुष' है। वह माणिक से सारे सुख-दु:ख बाँटना चाहती है। वह समाज की परवाह न करके उसके लिए कुछ भी कर गुजरने के लिए तैयार रहती है। वह अपने और माणिक के संबंध को लेकर यह नहीं सोचती कि इस विषय में समाज क्या कहेगा? वह सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ सह अस्तित्व के संबंधों का निर्माण करना चाहती है। यदि उससे कोई तीन-पाँच करना भी चाहता है, तो वह उसे अपना चंडीस्वरूप दिखा चुप करा देती है। उसे निडर और स्वाधीन लड़की कहा जा सकता है, जिसमें विद्रोही आत्मा निवास करती है। किंतु पुरुष-प्रधान समाज अपने छल-बल-कल से उसे तोड़ देता है। जिस माणिक पर उसे विश्वास था–वही उसे ऐसे समय में धोखा दे जाता है जब उसके भविष्य का फैसला होना था। अन्तत: उसे अंधकार के गर्त्त में धकेल दिया जाता है। दरअसल, ये सभी नारी चरित्र अपनी-अपनी स्थितियों, परिस्थितियों के प्रति जागरूक हैं और अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार प्रतिक्रिया करते हैं। वे स्वयं को और अपने परिवेश को पहचानते हैं। इसलिए वे अपनी सीमा में रहकर ही अपने परिवेश और संस्कारों से विद्रोह करते हैं। उनके जीवन की बेचैनी उन्हें ऐसा करने के लिए विवश करती है। वे इसमें कितना सफल होती हैं, कितना असफल–यह एक दूसरा प्रश्न है।

11.7 सारांश

'सूरज का सातवाँ घोड़ा' उपन्यास में निम्न मध्यवर्गीय जीवन की रूढ़ियों, अंधविश्वासों, परम्पराओं में जकड़े स्त्री-पुरुषों का चित्रण हुआ है। इनके माध्यम से कस्बाई जीवन के ऐसे अछूते दृश्य उपन्यास में प्रस्तुत किए गए हैं–जो उपन्यास को अविस्मरणीय बनाते हैं। स्वतंत्रता के तुरंत बाद के गली-मोहल्ले, वहाँ का हलचलविहीन, बँधा हुआ जनजीवन, उनमें स्त्रियों की भूमिका, पुरुषों का निकम्मापन बड़ी मुखरता से उभरा है। पतनशील सामंती प्रवृत्ति को बढ़ाने में मददगार पुरुष वर्ग के प्रतीक हैं: चमन ठाकुर और महेसर दलाल। इन्हें अपने घर-परिवार, पास-पड़ोस या समाज-संस्कृति किसी से सरोकार नहीं है। इनका किसी के प्रति कोई उत्तदायित्व नहीं है। ये विकृत होते समाज को अपने कुकृत्यों से कैसे और अधिक गंदा और घृणित बनाते हैं, उससे उसके जीवन का खोखलापन प्रदर्शित होता है। कथनीय है कि जो भी परिवारीजन इनके दायित्वों को अपने ऊपर लेने का प्रयास करता है, उसकी स्थिति महेसर दलाल के बेटे तन्ना जैसी मर्मान्तक होती है। वह जान ही नहीं पाता कि उसका भी कोई अपना जीवन है। तन्ना के समान वह कभी भी अपना व्यक्तिगत जीवन ठीक से नहीं जी पाता। कथाकार धर्मवीर भारती ने तन्ना को घरेलू दायित्वों को निभाते, स्वयं को होम करते दिखाया है। उन्होंने बार-बार उसकी ईमानदारी पर व्यंग्य किया है।

उपन्यास की कथा के मुख्य सूत्रधार माणिक मुल्ला उपन्यास के मुख्य पात्र भी हैं, जो आधुनिक शिक्षा प्राप्त मध्यवर्गीय चतुराई से युक्त व्यक्ति हैं। वह इस उपन्यास की कहानियों की नायिकाओं से किसी न किसी प्रकार से संबद्ध हैं। लिली से उनका अप्रत्यक्ष तथा सत्ती का उनसे प्रत्यक्ष प्रेम दिखाई देता है। किंतु उनका संबंध कहीं भी ठोस स्वरूप ग्रहण नहीं करता। दरअसल, वे ऐसे मध्यवर्गीय चरित्र हैं जो परंपरा, परिवार आदि से प्राप्त संरक्षणशीलता से लाभ उठाना चाहते हैं तथा प्रत्येक संबंध भविष्य की लाभ-हानि के आधार पर तय करते हैं। इसीलिए वे कहानी की नायिकाओं से प्रेम संबंध रखते हुए भी निर्णायक घड़ी में उनसे तटस्थ तथा व्यक्तिगत ढुलमुलपने के चलते उनसे उदासीन हो जाते हैं।

उक्त उपन्यास के नारी-चरित्र अपेक्षाकृत अधिक सजग और अपने परिवेश के प्रति अधिक संवेदनशील हैं। अधिकांश में इन्हें गतिशील चरित्र कहा जा सकता है। इन्हीं से उक्त उपन्यास का कथानक स्वरूप ग्रहण करता है। कस्बाई मानसिकता के स्त्री-पुरुष, उनके जीवन की विडम्बना और खोखलापन इस उपन्यास का कथ्य बनते हैं। स्त्री-पुरुषों में से स्त्रियों के जीवन की बेचैनी, दयनीयता और त्रासदी की अनुगूँजें पूरे उपन्यास में छाई रहती हैं। यह संभवत: इसलिए है कि इस जीवन से टकराने का साहस भी पुरुषों की अपेक्षा उनमें ही अधिक है। इसके परिणाम भी उन्हें ही भुगतने पड़ते हैं। किंतु अपने संघर्ष में उन्हें कोई दिशा या परिप्रेक्ष्य नहीं मिलता। अत: उनका संघर्ष अराजक होकर रह जाता है। इसे निर्वीर्य आक्रोश की संज्ञा दी जा सकती है।

इस प्रकार तत्कालीन परिवेश में विद्यमान निम्न मध्यवर्गीय जीवन की विडम्बना, करुणा, झूठा अहं, स्वार्थीपन, दिखावा आदि संश्लिष्टता के साथ इस उपन्यास में विन्यस्त हैं। उपन्यास की भिन्न-भिन्न कहानियों, उनके पात्रों के माध्यम से मध्यवर्गीय जीवन के विविध पहलू भी उद्घाटित होते हैं। ये उस समय की ठोस वास्तविकताएँ हैं। अत: इस उपन्यास को उस समय के गली-मोहल्लों के जीवन का महत्वपूर्ण दस्तावेज भी कहा जा सकता है, जो वहाँ के लोगों के विरोधाभासी चरित्रों में जीवन्त हो उठा है।

11.8 अभ्यास प्रश्न

1. 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' की चरित्र-सृष्टि के पीछे निहित लेखकीय दृष्टि का उद्‌घाटन कीजिए।
2. माणिक मुल्ला के माध्यम से भारती ने निम्न मध्यवर्ग की प्रकृति के किन पहलुओं का उद्‌घाटन किया है? विवेचन कीजिए।
3. एक विद्रोहिणी नारी के रूप में सत्ती के चरित्र की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
4. "जमुना, लिली और सत्ती जैसे नारी चरित्रों के माध्यम से भारती ने अपनी नारी विषयक एक निश्चित दृष्टि का उद्‌घाटन किया है।'' इस कथन की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

इकाई 12 भारती की लेखकीय दृष्टि

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 जीवन-दृष्टि (समाज और व्यक्ति के प्रति)

- 12.2.1 जिजीविषाएँ
- 12.2.2 समस्याएँ
- 12.2.3 मान्यताएँ
- 12.2.4 जटिलताएँ
- 12.2.5 नयी मर्यादाशीलता

12.3 अन्य रचनाओं में व्यक्त लेखकीय दृष्टि

12.4 किशोर सुलभ रोमानी (भावुक) दृष्टि की सीमाएँ एवं संभावनाएँ

12.5 विचार और रचना का समायोजन

12.6 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' उपन्यास की अंत:प्रेरणा

12.7 वर्णन प्रधानता और अनुभवपरकता के सामंजस्य में नवीनता

12.8 नए शैली-शिल्प का प्रयोग

12.9 सारांश

12.10 अभ्यास प्रश्न

खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें

12.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' उपन्यास पर आधारित खंड की अंतिम इकाई है। इस इकाई में हमने भारती की रचनाओं, विशेषत: उनके उपन्यास 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' में उनकी लेखकीय दृष्टि पर चर्चा की है। प्रत्येक रचनाकार परिवर्तित युगबोध, परिस्थितियों, वस्तुओं, लोगों की मनोभावनाओं को अपनी दृष्टि से अपनी रचनाओं में प्रस्तुत करता है। यह उसकी विश्वदृष्टि ही है जो उसकी रचनाओं में से झलकती है। रचनाकार उन्हीं के अनुसार घटनाओं, समस्याओं, पात्रों, जिजीविषाओं का अपनी रचनाओं में विन्यास करता है। 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' में भी भारती की प्रतिभा के संस्पर्श से नए शैली-शिल्प का यह उपन्यास प्रस्तुत हो सका है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' के संदर्भ में भारती का लेखकीय दृष्टि की व्याख्या कर सकेंगे;
- अन्य रचनाओं में व्यक्त उनकी लेखकीय दृष्टि का परिचय दे सकेंगे;
- प्रस्तुत उपन्यास की अंत:प्रेरणा से परिचित हो सकेंगे; और
- उपन्यास में नवीन शैली शिल्प के प्रयोग के संदर्भ में लेखक की दृष्टि की चर्चा कर सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

'सूरज का सातवाँ घोड़ा' उपन्यास अनुभूति का ताज़ापन और रूपगठन की दृष्टि से नवीनता लेकर आया। यह भी कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता के आसपास तत्कालीन भारतीय समाज में ऐसी कुछ सामाजिक-सांस्कृतिक-राजनीतिक परिस्थितियाँ पैदा हो गई थीं कि उपन्यास का पारंपरिक ढाँचा अपर्याप्त महसूस होने लगा था। सन् 1930 से 1940 के बीच की सभी संस्थाएँ - देश की राजनीति, समाज आदि संघर्ष - टकरावयुक्त हो समूचे युगजीवन को उथल-पुथल से भर रहे थे। भारतीय मनुष्य के सामने एक ओर अपने देश की दुर्दशा तो दूसरी ओर उसे दूर करने की बेचैनी बढ़ती जा रही थी। ऐसे में बाह्य घटनाओं की बजाय आत्म संघर्ष और तनाव के चिन्ह उसके साहित्य में उभरने लगे थे। इस दृष्टि से जैनेन्द्र और अज्ञेय का साहित्य-लेखन महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा था। आधुनिक जीवन की विडंबनाओं के कारण जीवन अनेकानेक अन्तर्विरोधों या विरोधी धारणाओं का पुंज बनता जा रहा था। तदनंतर विश्व राजनीति में शीतयुद्ध और हिन्दी साहित्य में 'परिमल वादियों' तथा प्रगतिशीलों का द्वन्द्व या उनके बीच वाद-विवाद से हिन्दी में एक नई चेतना जन्म ले रही थी। भारती जैसे युवालेखक इन सबके साझीदार बने। इसी कारण भारती का यह दूसरा उपन्यास रोमानी भावभूमि से उतर कर जीवन के साक्षात् दु:ख दर्द के साथ ही साहित्यिक मुठभेड़ों का साक्षात्कार भी करता है। यह नहीं कि रोमानियत को इन्होंने त्याग दिया बल्कि अपने समय की मूल समस्या इनके उपन्यास के केन्द्र में आने लगी। प्रश्न है कि इन सब संश्लिष्टताओं को धारण करने वाला इनका यह उपन्यास क्या स्वरूप ग्रहण करता है ? ये प्रश्न भी कहीं न कहीं कथाकार भारती की लेखकीय दृष्टि से संबंध रखते हैं। इस इकाई में हम भारती की जीवनदृष्टि, से अपनी चर्चा का प्रारम्भ करेंगे।

12.2 जीवन दृष्टि (समाज और व्यक्ति के प्रति)

भारती छायावादी संस्कारों से प्रभावित होकर भी अपने समय के सरोकारों से संपन्न रचनाकार हैं। इसीलिए उनके साहित्य में जहाँ-तहाँ जीवन के संघर्ष और द्वन्द्व, टूटने-बिखरते लोगों की छवि उभरती दिखाई देती है। विघटित होता समाज उनकी रचनाओं में बार-बार आता है। उनकी रचनाओं में रोमानीपन भी है तो जीवन की संश्लिष्ट वास्तविकताएँ भी हैं। दरअसल, उनके रचना-संस्कार ऐसे समय में स्वरूप ग्रहण करते हैं जब देश में असहयोग आंदोलन अपने चरम पर था। समाज में नई चेतना, जागृति की लहर अपने उत्कर्ष पर थी। लेखकों में उनके प्रिय लेखक थे शरत, टैगोर, जयशंकर प्रसाद, प्रेमचंद, यशपाल, जैनेन्द्र, अज्ञेय आदि। छायावाद के तुरंत बाद आने वाले कवि भगवती चरण वर्मा, बच्चन आदि के भी संस्कार इन्हें प्रभावित कर रहे थे। इसलिए इनके प्रारंभिक साहित्य में किशोर सुलभ भावुकता, यौवन का अल्हड़पन, वासना का ज्वार तथा उसे नैतिक और अनिवार्य अनुभव घोषित करने का उत्साह दिखाई पड़ता है। साथ ही, कल्पना की बजाय ठोस जीवन, उसके दु:ख-दर्द - भारती को मार्क्सवादी विचारों की ओर ले जाते हैं। इसका गहन अध्ययन उन्हें प्रभावित करता है। इनके रोमानी संस्कार उससे टकराते हैं। इनकी विद्रोही प्रवृत्ति उन्हें मार्क्सवादी अनुशासन में बँधने नहीं देती। प्रारंभिक कविता कहानियों में ये भले ही जयशंकर प्रसाद के समीप हों किंतु मार्क्सवादी विचार इन्हें अपने अनुकूल ला रहे थे। तभी इन्हें प्रगतिशील लेखक संघ, इलाहाबाद इकाई का सचिव चुना गया था। शोषण और रूढ़ियों से ग्रस्त अपने आस-पास का संसार इन्हें बेचैन कर रहा था। इन जैसे रोमानी लेखकों का तारतम्य न प्रगतिवाद से पूरा जुड़ता था न छायावाद से। वे अकर्मण्य निठल्ले जीवन की उदासी या रोमानी वातावरण से बाहर निकलकर ठोस जीवन

के धरातल पर आना चाहते थे। कल्पना के स्थान पर सामाजिक-ऐतिहासिक संदर्भ के भीतर फँसे मनुष्य के दु:ख दर्द को अपने साहित्य में दिखाना चाहते थे। प्रगतिशील चेतना से निर्मित इनका विवेक इन्हें एक ओर खींचता था तो रोमानी चेतना दूसरी ओर। कल्पना की उड़ान इन्हें मनोलोक में रमने का निमंत्रण देती थी तो युगजीवन में व्याप्त समस्याएँ इन्हें प्रतिबद्ध संसार की ओर ले जाती थीं। इस प्रकार बचपन की कट्टर आर्यसमाजी बौद्धिकता, जन्म-वंश-परंपरा, परिवेश, घर-परिवार से मिले संस्कारों और मध्यवर्गीय जीवन के संघर्षों से अर्जित विवेक तथा सपनों के बीच का द्वन्द्व इन्हें काफी दूर तक आलोड़ित-विलोड़ित करता रहा। ऐसे में कभी उनका काव्यसंस्कार हावी हो जाता तो कभी इतिहास-विनिर्मित विवेक। अधिकांश में ये अपने संस्कारों की जकड़बंदी से संघर्ष करते रहे। अपने आपको बराबर विकसित करते हुए भी वे कभी इस द्वन्द्व से छुटकारा नहीं पा सके। आधुनिक चिन्ताओं के बीच खड़े होकर भी वे जिन भावुक लगावों की सृष्टि करते हैं उससे इनके उस रोमानी मन का पता चलता है जो किसी भी प्रकार के बाहरी बंधनों को नहीं मानता। वह मानवीयता का समान प्रसार चाहता है। इसी से वह निम्न मध्यवर्गीय जीवन और सामंती समाज की जकड़न को अपने हास्य-व्यंग्य से तोड़ने का प्रयास करते हैं। यही इनका आधुनिक बोध है। इसके प्रमाण इनके उपन्यास 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' के वस्तु विधान में जगह-जगह मिलते हैं।

व्यक्ति केन्द्रित हो जाना या किसी पात्र का आत्मलीन हो चित्रण करना भारती का प्रयोजन नहीं रहा है। इसीलिए इन्होंने व्यक्ति केन्द्रित और समाज केन्द्रित दृष्टि की अपेक्षा मानव गरिमा और समाज केन्द्रित मान-मूल्यों को अपनी रचनाओं में स्थान दिया है। मानवीय मूल्यों के विघटन के दौर में मानव गरिमा की चिंता इनके लिए केन्द्रीय महत्व का मुद्दा रहा है। इस गरिमा को उन्होंने व्यक्ति-स्वातंत्र्य से भी जोड़ कर देखा है। इनके यहाँ आए व्यक्ति-स्वातंत्र्य को समाजवाद का पक्षधर नहीं माना जा सकता। इनके लिए समाज का भी उतना ही महत्त्व है जितना व्यक्ति का। कहा जा सकता है कि वे उन अज्ञेयवादियों से भिन्न हैं, जो केवल 'व्यक्ति अनुभूत-सत्य' तक अपने को सीमित रखते हैं। प्रश्न किया जा सकता है कि क्या यह यथेष्ट नहीं कि साहित्यकार अपने अनुभूत भाव को व्यक्त कर दे ? दरअसल, बिना किसी स्पष्ट जीवन दृष्टि या विचार के अनुभूति को उस परिप्रेक्ष्य का आयाम नहीं मिल पाता जो उसे प्रासंगिक और महत्वपूर्ण बनाता है इसके अभाव में भाव या अनुभूतियाँ महत्व की होते हुए भी कोई घनीभूत प्रभाव नहीं छोड़ पातीं। इसलिए विरोधी स्थितियों के बीच से निर्मित दृष्टि महत्वपूर्ण कही गई है। जैनेन्द्र जैसे रचनाकार तक मानते हैं कि उपन्यास में 'यदि उसके पीछे दृष्टि या विचार न हो तो रचना में बहुत कुछ भावनात्मकता होकर भी अर्थ की उतनी गरिमा नहीं हो सकती'। भले ही जैनेन्द्रजी के यहाँ सामाजिक दृष्टि महत्वपूर्ण न रही हो किंतु व्यक्ति के अन्तर्द्वन्द्व उनके कथा-संसार को प्रभावशाली बनाते रहे हैं। ध्यान देने की बात यह है कि आज के जीवन की प्रकृति ही ऐसी है कि द्वन्द्व और तनाव उसमें आए बिना नहीं रहते तो आधुनिक साहित्य उससे अछूता कैसे रह सकता है ? कल्पना या स्वप्न दृष्टि इससे छूट जाती हो ऐसा नहीं है। दोनों तत्व इसमें सक्रिय रहते हैं। कभी चमत्कारपूर्ण संकेत महत्वपूर्ण हो जाते हैं तो कभी बौद्धिक प्रखरता। कभी स्वप्निल संज्ञान तो कभी दृष्टि माँजने की प्रबल इच्छा। भारती के संपूर्ण लेखन में इस प्रकार की द्वन्द्वात्मकता विद्यमान मिलती है। यह उन्हें समर्थ और प्राणवान रचनाकार बनाती है। वैसे भी किसी एक मतवाद में बँधना भारती को प्रिय नहीं रहा है। उनकी मान्यता है कि 'मनुष्य इन चिंतन संप्रदायों और मतवादों से बड़ा है, उसकी जीवन प्रक्रिया इतनी गहन, बहुमुखी और वैभवशाली है कि वह किसी भी एक मतवाद द्वारा पूर्ण रूप से नहीं बाँधी जा सकती'।

यहाँ यह स्मरणीय है कि 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' की रचना के समय के आगे-पीछे का

पाँच-सात वर्षों का समय इलाहाबाद की साहित्यिक गतिविधियों के लिए उथल-पुथल का काल रहा है। इसमें 'प्रतीक' और 'विवेचना' गोष्ठियों की भूमिका मुख्यत: प्रगतिवाद विरोधी ही रही हैं। प्रगतिवाद विरोध में भारती लगातार परिमलियों के साथ रहे हैं। यहाँ तक कि 'प्रगतिवाद : एक समीक्षा' जैसी पुस्तक के भी वे प्रगतिशील आन्दोलन के विरुद्ध ही खड़े दिखाई देते हैं - 'हिन्दुस्तान की कुछ ऐसी बदकिस्मती रही कि यहाँ प्रगतिवाद का प्रवेश तब हुआ जब विदेशों में उसका दिवाला निकल चुका था'। 'हिन्दी में प्रगतिवादी आन्दोलन का सूत्रपात बड़े प्रहसनात्मक ढंग से हुआ'। इस तरह के वाक्य भारती की प्रगतिवाद विरोधी चेतना को स्पष्ट करते हैं।

'सूरज का सातवाँ घोड़ा' में भी प्रेम और आर्थिक संबंधों, वर्ग संघर्ष, वर्गीय आर्थिक-सामाजिक संरचना आदि को लेकर की गई हल्की-फुल्की टिप्पणियाँ मार्क्सवाद और समाजवाद का मखौल ही उड़ाती हैं। जमुना के प्रेम के सम्बन्ध में प्रकाश के प्रश्न पर उपन्यासकार की व्याख्या 'आर्थिक संबंध' और 'वर्ग संघर्ष' का मजाक उड़ाती है। आगे चलकर जमुना और उसके पति वृद्ध जमींदार, घोड़े की नाल और रामधन ताँगेवाले की कथा की मार्क्सवादी व्याख्या वे इस प्रकार करते हैं, 'जमुना मानवता का प्रतीक है, मध्य वर्ग (माणिक मुल्ला) तथा सामंत वर्ग (जमींदार) उसका उद्धार करने में असफल रहे, अंत में श्रमिक वर्ग (रामधन) ने उसको नयी दिशा सुझाई।' धर्मवीर भारती मार्क्सवाद के गहन अध्ययन और उसमें असीम आस्था की चाहे जितनी बात करें (उपन्यास का निवेदन पृष्ठ) इस व्याख्या को निष्कर्षवादी उदाहरण के रूप में देना मार्क्सवाद विरोधी दृष्टि का परिचायक है। वस्तुत: प्रस्तुत उपन्यास में मार्क्सवाद, प्रगतिवाद, वर्ग संघर्ष, सामाजिक अन्तर्विरोध आर्थिक सम्बन्ध आदि का नियोजन तत्कालीन साहित्यिक परिवेश में प्रगतिशील आन्दोलन के विरुद्ध एक सुनियोजित अभियान को संकेतित करता है। ये सारे सन्दर्भ उपन्यास का अभिन्न अंग भी नहीं बन पाते। तत्कालीन राजनीतिक शीतयुद्ध की स्पष्ट छाया इस उपन्यास में यत्र-तत्र संकेतित हुई है। इस द्वंद्व में भारती समाजवाद और प्रगतिशीलों के विरुद्ध ही अधिक खड़े दिखाई देते हैं चाहे दावा वे कुछ भी करें। उनकी मूल दृष्टि व्यक्ति स्वातंत्र्य और भाववादी ही अधिक रही है।

12.2.1 जिजीविषाएँ

अन्य उपन्यासकारों के समान भारती भी मानते हैं कि उपन्यास में समग्र जीवन का प्रत्यंकन होता है। उसमें बाह्य जीवन संबंधों और सामाजिक आचरणों के साथ-साथ वैयक्तिक जीवन का ऐसा स्वरूप उपस्थित होता है कि उपन्यास सजीव बन जाता है। निश्चय ही, इसमें पात्रों का 'सारा वैयक्तिक अस्तित्व, सामाजिक जीवन और सांस्कृतिक विकास अन्तर्गंथित' होता है। इन्हीं के बीच कभी वह लड़ता-मरता दिखाई देता है तो कभी समन्वय करता। प्रतिकूल परिस्थितियाँ उसे उदास या कुछ देर के लिए रोक भले ही लें किंतु वह उनसे शीघ्र ही उबर भावी जीवन की ओर उन्मुख हो जाता है। भारती के अनुसार इसका कारण है कि 'मनुष्य में जीवन धारण करने की सामर्थ्य है। समस्त प्रतिरोधों के बावजूद वह जीवित रहना चाहता है, परम्परा और परिस्थिति की पृष्ठभूमि में उसकी वह अदम्य जिजीविषा सक्रिय रूप में प्रतिफलित होती है।'

'सूरज का सातवाँ घोड़ा' के सभी पात्रों में यह जीवट, यह जीवन संघर्ष यह जिजीविषा अपनी संपूर्ण शक्तिमत्ता के साथ उपस्थित है। चाहे सत्ती का संघर्ष हो या तन्ना का। चाहे लिली की अन्तर्वेदना हो चाहे जमुना की। सब अपनी-अपनी स्थितियों में अपना रास्ता खोजते दिखाई देते हैं। ये जीवन जीने की अदम्य लालसा से युक्त पात्र हैं। चाहे कितनी ही विरोधी या अमानवीय स्थितियों का सामना क्यों न करना पड़े। ये अपने परिवेश से लड़ते हुए ऐसे रास्ते निकालने का प्रयास करते दिखते हैं जिससे कि यह अनमोल जीवन

यथा संभव अनुकूल बनाकर जिया जा सके। भले ही ये अपने इस उद्यम में पूर्ण सफल न हो पाते हों, परन्तु अपने विवेक, अपनी क्षमता के अनुसार अपनी पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों से अपने-अपने स्तर पर टकराकर जीवन जीने योग्य बना लिया गया है। उदाहरण के लिए बिना माँ-बाप की बेटी सत्ती अपने परिश्रम से न केवल अपना बल्कि अपने संरक्षक चमन ठाकुर के जीवन यापन का प्रबंध करती है। अपने आसपास स्वस्थ संबंधों का निर्माण करती है। समाज की लंपट लोलुप निगाहों से बचने में कुछ देर के लिए सफल भी होती है। पर मेड़ ही खेत को खाने लगे-विश्वासपात्र ही उससे दगाबाजी और कमीनापन कर जाए तो वह अपनी इस अभिशप्त नियति को घृणा के साथ झेलने के लिए विवश हो जाती है। जमुना की परिस्थितियाँ और उसका व्यक्तित्व सत्ती से भिन्न प्रकार का है। वह मध्य और निम्नमध्यवर्गीय परिवार की सामाजिक रूढ़ियों, अंधविश्वासों और अशिक्षा से उपजे दुष्परिणामों का शिकार बनती है। सत्य, नैतिकता, आदर्श से घिरे तन्ना से प्रेम करती है। पर अपने कमज़ोर और ढुलमुल व्यक्तित्व के कारण वह कुछ कर नहीं पाता। जमुना का विवाह अपने परिवार की झूठी शान, मर्यादा और खोखले अहं के चलते तन्ना से नहीं हो पाता। फिर भी वह हार नहीं मानती। तन्ना के प्रति उसकी चाह में कमी नहीं आती। भले ही उसके प्रेम और ममता का गला घोंट दिया गया हो, उसका दुहाजू-तिहाजू वृद्ध नर से विवाह हो गया हो। वह थोड़ी देर के लिए उदास होकर पुनः जीवन से समझौता कर लेती है तथा जीवन के उस क्षण को जी लेने के लिए विवशता के साथ समर्पित हो जाती है। मानो वही उसका वास्तविक जीवन हो। यह सब उसकी जीवन के प्रति अदम्य लालसा को ही द्योतित करता है।

इससे स्पष्ट है कि भारती के अधिकांश पात्रों की जिजीविषा में उनकी विवशता भी किसी-न-किसी रूप में उजागर हुई है। यह विवशता आधुनिकतावादी जीवन-बोध की परिचायक है, जो कभी-कभी आत्मघाती रूप भी धारण कर लेती है। तन्ना, जमुना ही नहीं, इसे सत्ती जैसे सशक्त चरित्र की अंतिम परिणति में भी देखा जा सकता है। ये अपने जीवन में सदाचारी पात्र दिखाई देते हैं लेकिन सभी दुख भोगने के लिए अभिशप्त हैं। इसे 'अंधा युग' जैसे काव्य नाटक में भी देखा जा सकता है। गलियारे के दोनों प्रहरी और युयुत्सु जैसे मर्यादावादी पात्र भी अश्वत्थामा जैसे नरपशु की यंत्रणा ही भोगते हैं। यहाँ भारती की यह दृष्टि काम कर रही है कि तुम अच्छा करो या बुरा दुख तुम्हारी नियति है। अभिशाप और दुख को मानवीय नियति मान लेना आधुनिकतावादी भावबोध का परिचायक है, जो दुख को मानवीय स्थिति न मानकर उसकी नियति स्वीकार करता है। इस उपन्यास के अन्त में तन्ना, जमुना और सत्ती के नन्हें निष्पाप बच्चों के उज्ज्वल भविष्य का विश्वास ऊपर से ओढ़ा हुआ है, जो न उपन्यास अंग बन पाता है और न लेखक की दृष्टि का ही। यह अन्तर्विरोध भारती के व्यक्तित्व का अन्तर्विरोध बन गया है।

निश्चय ही, भारती के ये पात्र उनकी बौद्धिकता या वैचारिकता से निकले हुए न होकर जीवन की जटिल वास्तविकताओं से निकले हुए हैं। इन्हें कथाकार ने अपनी संपूर्ण भावप्रवणता के साथ रचा सिरजा है। संभवत: भारती के कथा साहित्य में ऐसे पात्रों को देखकर ही निर्मल वर्मा ने कहा है: 'निम्नवर्गीय भारतीय स्त्री की जीवंत भरी कर्मठता और सहनशीलता एक तरफ और दारुण परिस्थितियों के मारक प्रहार दूसरी तरफ, भारती की तीक्ष्ण, सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि से उसका कोई काला-उजला पक्ष छिपा नहीं रहा था।' इस उपन्यास में जो मध्यवर्गीय चरित्र आए हैं वे आत्मकेन्द्रित और बाँझ चरित्र हैं। चाहे माणिक हो चाहे लिली। लेखक ने उनके रोमांस को चित्रित किया है। मानो जीवन में उन्हें यही दिखता हो या उनके लिए जीवन यहीं तक सीमित हो गया हो।

12.2.2 समस्याएँ

'सूरज का सातवाँ घोड़ा' में व्यक्त भारती की दृष्टि की पहचान के लिए उपन्यास की प्रमुख समस्या का निरीक्षण आवश्यक है। दरअसल 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' उपन्यास की मुख्य समस्या है - निम्नमध्यवर्ग एवं मध्यवर्ग के जीवन की विडम्बनाओं, उनकी रूढ़ियों, अंधविश्वासों, नैतिक मान्यताओं को उद्घाटित करना, उनके जीवन मूल्यों के साक्षात् चित्र उपस्थित करना। जमुना और सत्ती के माध्यम से भारती ने निम्न मध्यवर्गीय जीवन के खोखलेपन, उनकी विसंगतियों एवं उनके विरोधाभासों को पूरी सच्चाई से दर्शाया है। इन्होंने पूर्वनिर्धारित आदर्शवादी-यथार्थवादी साँचों में ढालकर अपने वस्तु विन्यास को कृत्रिम बनाने का बहुत कम प्रयास किया है। वे जीवन की विषम परिस्थितियों के बीच फँसे व्यक्तियों के द्वन्द्व को अनेक घटनाओं, दृश्यों के माध्यम से चित्रित करते हैं। मध्यवर्गीय व्यक्तियों की रूढ़िग्रस्तता किस प्रकार उन्हें कोई भी क्रांतिकारी कदम नहीं उठाने देती, यह माणिक-सत्ती प्रकरण तथा माणिक के भाई-भाभी की घटनाओं के माध्यम से कथाकार ने बड़ी कुशलता से प्रस्तुत किया है। उक्त उपन्यास के केन्द्र में निम्नमध्यवर्ग की जड़ता और मध्यवर्ग की स्वार्थपरता घुल मिलकर उपस्थित हुए हैं। इन सबके पीछे है: आर्थिक विषमताएँ। उपन्यास में कहा भी गया है - "जमुना निम्नमध्यवर्ग की भयानक समस्या है। आर्थिक नींवें हिल गई हैं। अनैतिकता छाई हुई है। पर सब उस ओर से आँखें मूँदे हैं।" लेकिन ऐसी बात तन्ना, सत्ती और माणिक मुल्ला के बारे में नहीं कही जा सकती, फिर भी वे समान नियति को प्राप्त करते हैं।

कहना होगा कि आज भी निम्नमध्यवर्ग की समस्याओं पर पूरा ध्यान नहीं दिया गया है। गरीबी, अशिक्षा आदि जितनी समस्याएँ उपन्यास में दिखाई गई हैं, वह आज और भी भयानक रूप में हमारे सामने उपस्थित हैं। दूसरे यह समाज सामन्ती मनोवृत्तियों, उसकी विकृतियों, क्रूरताओं से घिरा हुआ है। जमुना तन्ना प्रकरण इसका उदाहरण है। महेसर दलाल का आचरण सामंती विकृतियों के अनुरूप है जो अपने परिवार की शिक्षा पर ध्यान देने की अपेक्षा अपनी विलासिता के सामान जुटाने, सत्ती को अपनी वासना-पूर्ति का साधन बनाने तथा अपने से कमज़ोर लोगों के साथ पशुवत् व्यवहार करने में प्रकट होता है। माणिक के भाई माणिक का ध्यान सत्ती से हटाने के लिए उसे समझाते हैं कि 'ये कमीने और गन्दे किस्म' के लोग होते हैं। जिसे मध्यवर्गीय मानसिकता वाले माणिक भी सहज भाव से स्वीकार कर लेते हैं। वे भी मानने लगते हैं कि 'माणिक का इन लोगों से क्या मुकाबला, दोनों की सोसाइटी अलग, मर्यादा अलग, पर माणिक मुल्ला सत्ती से कुछ कह भी नहीं पाते थे क्योंकि उन्हें पढ़ाई भी जारी रखनी थी।' यह मध्यवर्ग चरित्र की कमजोरी की पराकाष्ठा है। माणिक सत्ती के प्रति सहानुभूति रखते हुए भी एकाएक उसे मौत के मुँह में धकेल देते हैं। यह ढोंगी, धोखा देने वाला मध्यवर्गीय चरित्र सत्ती जैसे फौलादी व्यक्तित्व को भी नरक की आग में झोंक देता है। माणिक के व्यक्तित्व का यह अंश मध्यवर्ग की एक नई समस्या का द्योतक है जो बाह्य नहीं अपने आंतरिक अवरोधों के कारण अपने प्रेम को प्राप्त नहीं कर पाता। फलस्वरूप सारे पात्र अपनी प्राणवत्ता के बावजूद कठपुतली बन जाते हैं।

12.2.3 मान्यताएँ

उपन्यास के चरित्रों के आख्यान में उपन्यासकार की कुछ रोचक मान्यताएँ प्रकाश में आती हैं। उदाहरण के लिए उनकी एक मान्यता यह है कि मध्यवर्ग के बीच प्राय: बातचीत के दो प्रमुख विषय होते हैं: राजनीति और प्रेम। साहित्यिक-सांस्कृतिक चर्चाओं में सबसे लोकप्रिय विषय प्रेम है। 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' उपन्यास में माणिक ने प्रेम कहानियाँ ही कही हैं।

उनका मत है कि 'कहानियों की तमाम नस्लों में प्रेम कहानियाँ सबसे सफल साबित होती हैं, अत: कहानियों में रोमांस का अंश जरूर होना चाहिए'। हो सकता है कि यह उन्होंने अपने रोमानी दृष्टिकोण के कारण कहा हो। किंतु भारती अपने कथा साहित्य में व्यक्तिगत जीवन के साथ सामाजिक जीवन के छोटे-बड़े सभी पहलुओं को देखने दिखाने का प्रयास करते हैं लेकिन इसमें उनकी अप्रोच व्यक्तिवादी-रोमानी ही अधिक होती है। अपनी संवेदना पूर्ण अन्तर्दृष्टि से वे अपने उपन्यास-कहानियों में अनेक संघर्षशील मार्मिक प्रसंगों का विन्यास करते हैं। प्रस्तुत उपन्यास की 'भूमिका' में इसी तथ्य की पुष्टि करते हुए अज्ञेय ने कहा है: 'वह एक पूरे समाज का चित्र और आलोचन है और जैसे उस समाज की अनंत शक्तियाँ परस्पर संबद्ध, परस्पर आश्रित और परस्पर संभूत हैं, वैसे ही उनकी कहानियाँ भी।' एक तरह से कहा जा सकता है कि भारती ने इस उपन्यास में एक गतिशील समाज का आलोचनात्मक चित्र प्रस्तुत किया है। बावजूद इसके कि यह चित्र व्यक्तिवादी दृष्टि से ही प्रस्तुत किया गया है।

भारती की दूसरी मान्यता भी प्रेम से ही संबंधित है। यह प्रेम अब आदर्शवादी नहीं रह गया है। अनेकानेक दबावों के कारण अब यह मूर्त्त और मांसल तथा जीवन-जगत की भाँति बहुत जटिल और सश्लिष्ट हो गया है। इसीलिए प्रेम की प्राप्ति में अनेक सामाजिक-आर्थिक कठिनाइयाँ आती हैं। उक्त उपन्यास में इसे व्यक्त करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है: 'जब मैं प्रेम पर आर्थिक प्रभाव की बात करता हूँ तो मेरा मतलब यह रहता है कि वास्तव में आर्थिक ढाँचा हमारे मन पर इतना अजब-सा प्रभाव डालता है कि मन की सारी भावनाएँ उससे स्वाधीन नहीं हो पातीं और हम जैसे लोग जो न उच्च वर्ग के हैं, न निम्नवर्ग के, जिनके यहाँ रूढ़ियाँ, परम्पराएँ, मर्यादाएँ भी ऐसी पुरानी और विषाक्त हैं कि कुल मिलाकर हम सबों पर ऐसा प्रभाव पड़ता है कि हम यंत्रमात्र रह जाते हैं। हमारे अंदर उदार और ऊँचे सपने खत्म हो जाते हैं और अजब-सी जड़ मूर्च्छना हम पर छा जाती है। क्यों छा जाती है?' प्रश्न है कि 'हमारे अंदर उदार और ऊँचे सपने' खत्म क्यों हो जाते हैं ? पर हम पर 'जड़मूर्च्छना' क्यों छा जाती है ? क्या इसके संकेत उपन्यास में मिलते हैं ? कथाकार ने उक्त उपन्यास के कलेवर में इसके संकेत सूत्र बहुत कम दिए हैं। अधिकांशत: उपन्यासकार ने निम्नमध्यवर्ग के जीवन के चित्र देने में ही अधिक समय लगाया है। दूसरे, यह कि उसे सैद्धांतिक चर्चा, बहस-मुबाहसे में अधिक आनंद आता है। इसीलिए इस उपन्यास के पात्र या तो कहानियाँ सुनते हैं या सिद्धांत चर्चाएँ करते हैं। मुख्य पात्रों का ढाँचा अवश्य खड़ा किया जाता है जिसमें वे जीवंत और मूर्त्त हो उठते हैं। किंतु उनसे पूर्व निर्धारित वही बातें कहलवाई गई हैं तथा उपन्यास में इसी प्रकार का घटना विधान किया गया है। कहीं-कहीं उनकी मान्यताएँ घटनाओं और पात्रों के स्वाभाविक विधान से निकलने की बजाय थोपी हुई भी लगने लगती हैं। अत: रचना के माध्यम से उनकी दृष्टि का संधान कठिन बन जाता है।

12.2.4 जटिलताएँ

यदि मान्यताओं के आधार पर जीवन का ढाँचा खड़ा किया जाता है तो मनुष्य स्वभाव की जटिलताएँ आरोपित अधिक होंगी। 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' उपन्यास में मान्यताओं के उल्लेख बहुत से कृत्रिम अवसर निकाल कर किये गये हैं, किंतु भारती ने कथा संरचना तदनुसार नहीं रखी है, बल्कि कथा में ये मान्यताएँ कहीं अन्तर्भूत हो गई हैं तो कहीं आरोपित भी रह गई हैं। दरअसल सामाजिक-आर्थिक परिवेश और व्यक्ति की स्वयं की आकांक्षा के बीच तालमेल न होने के कारण तनाव और द्वन्द्व की जटिल स्थितयाँ पैदा हो जाती हैं। घुटते हुए ऐसे चरित्र दयनीय बन जाते हैं। तन्ना का चरित्र इसका अप्रतिम उदाहरण है। इस प्रकार वे भावुकता से भरे रोमांस से आगे जाते हैं और जीवन की

जटिलताओं का चित्रण करते हैं। इसी से उपन्यास में प्रौढ़ता आती है। भारती अपने 'उपन्यास और आत्मान्वेषण' नामक एक लेख में लिखते हैं: 'मनुष्य को जब तक हम उसकी अन्तर्निहित सामर्थ्य, उसके जटिल परिवेश, उसकी जीवन प्रक्रिया के विविध आयामों के साथ हिन्दी उपन्यास में प्रतिष्ठित नहीं करते, उसके आत्मान्वेषण को पूर्ण प्रसार और उसकी आत्मोपलब्धि को पूरी गहराई तक उतरकर चित्रित नहीं करते तब तक हमारा उपन्यास प्रौढ़ नहीं हो सकता।' कहना होगा कि भारती ने अपने इस उपन्यास में समाज में फैले निम्नमध्यवर्गीय दरिद्र्य को उसकी गहराई में जाकर पकड़ा है। इसी कारण उनका यह उपन्यास पहले उपन्यास की अपेक्षा प्रौढ़ उपन्यास बन गया है।

दूसरे सामंती समाज तथा मध्यवर्गीय समाज की विकृतियाँ एक-दूसरे से मिलकर ऐसी विसंगत स्थितियों का निर्माण करते हैं कि चमन ठाकुर, महेसर दलाल तथा माणिक-सत्ती के जीवन को नष्ट कर देते हैं। इस पर माणिक के चरित्र की जटिलता सत्ती प्रकरण में एक नया स्वरूप ग्रहण करती है। माणिक सत्ती की मौत का स्वयं को जिम्मेदार मानकर लगभग पागलों की स्थिति में पहुँच जाते हैं। कथाकार के शब्दों में 'उनके मन की धीरे-धीरे यह हालत हो गई कि उन्हें मुहल्ला छोड़कर ऐसी जगह अच्छी लगने लगी जैसे दूर कहीं पर सुनसान पीपल तले की छाँह, भयानक उजाड़ कब्रगाह, पुराने मरघट टीले और खड्ड आदि। उन्हें चाँदनी में कफन दिखाई देने लगे और धूप में प्रेयसी की चिता की ज्वालाएँ।' किन्तु यह प्रभाव कितना ऊपरी और बनावटी था कि सत्ती को भिखारी रूप में देखकर उनके मन की सारी ग्लानि जाती रही और कुछ दिनों बाद कविता-कहानी छोड़ा तन्ना की जगह नौकरी कर वे सुख से रहने लगे। यहाँ लेखक मध्यवर्गीय चरित्र की अनेकानेक पर्तों को उघाड़कर उसकी मनोवृत्ति की जटिलताओं को दिखा देता है।

12.2.5 नई मर्यादाशीलता

भारती सामाजिक विधि-निषेधों, मर्यादाओं के साथ व्यक्तिगत जीवनानुभूतियों के संतुलन के पक्षधर रहे हैं। वे चाहते हैं कि मनुष्य विवेक संपन्न बने। यह उनके कथा साहित्यमे परिलक्षित होता है। वे विडंबनापूर्ण विसंगतियों के साथ-साथ आडंबर के सख्त विरोधी हैं। वे उस पर निरंतर व्यंग्य बाणों का प्रहार करते हैं। चाहे महेसर का प्रसंग हो (एक औरत को घर ले आने के संदर्भ में) या तन्ना की अतिरिक्त ईमानदारी का। तन्ना की कारुणिक कथा कहते हुए भारती उपन्यास में लिखते हैं: 'वे ईमानदार आदमी थे, अत: उन्होंने कभी उधर (जमुना के घर की ओर का) रुख भी न किया। हालाँकि उधर देखते ही उनकी आँखों में आँसू झलक आते थे और लगता था जैसे गले में कोई चीज फैल रही हो, सीने में कोई सूजा चल रहा हो।' इससे भी अधिक दयनीय स्थिति उनकी यह रही कि वे अपने पिता की पसंद वाली, अधिक धनवान, शिक्षित, रूपवती लड़की से विवाह करने को विवश हो जाते हैं। वह उन्हें बीमारी की स्थिति में अकेला छोड़कर अपने मायके चली जाती है। भारती इस सारे प्रकरण में तन्ना की मर्यादाशीलता पर व्यंग्य करते हैं। इसे नैतिकता नहीं, नैतिक विकृति मानते हैं। उनका कथन है: 'जो इस नैतिक विकृति से अपने को अलग रखकर भी इस तमाम व्यवस्था के विरुद्ध नहीं लड़ते, उनकी मर्यादाशीलता सिर्फ परिष्कृत कांयरता होती है, संस्कारों का अंधानुसरण ! और ऐसे लोग भले आदमी कहलाए जाते हैं, उनकी तारीफ भी होती है, पर उनकी जिन्दगी बेहद कठिन और भयानक हो जाती है और सबसे बड़ा दु:ख यह है कि वे भी अपने जीवन का यह पहलू नहीं समझते और बैल की तरह चक्कर लगाते चले जाते हैं।' यहाँ पुरानी मर्यादा के स्थान पर नई मर्यादा की अपेक्षा का संकेत भर है, उसके निर्माण का प्रयास नहीं, जो कि चरित्र के माध्यम से प्रस्तुत होता।

शेष जो मूल्य-मर्यादाएँ लेखक 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' उपन्यास में उभारता है, वे उसकी वास्तविक मर्यादाएँ प्रतीत नहीं होतीं। उदाहरण के लिए सूरज के सातवें घोड़े के मिथक का प्रकरण लिया जा सकता है। लेखक के अनुसार वह घोड़ा है भविष्य का घोड़ा, जिसकी जिंदगी हमारी जिंदगी से ज्यादा अमन चैन की होगी। ज्यादा पवित्रता की होगी उसमें ज्यादा प्रकाश होगा ज्यादा अमृत होगा। भविष्य के प्रति यह आस्था नितांत आरोपित आशा-आकांक्षा है। उपन्यास की संरचना से यह उभर कर नहीं आती। अपनी इस आस्था पर, अपने इस विश्वास पर स्वयं भारती तो मुग्ध हैं ही, उपन्यास की भूमिका के लेखक, एक महत्वपूर्ण सर्जक-आलोचक विह्वल हो कर लिखते हैं, "ये पुस्तक के कथा-गायक प्रमुख पात्र माणिक मुल्ला के शब्द हैं ...., पर इस उक्ति में बोलने वाला विश्वास, स्वयं भारती का भी विश्वास है, ऐसा मुझे लगता है, और वह विश्वास हम सब में अटूट रहे, ऐसी मेरी कामना है"। वस्तुतः यह विश्वास न उपन्यास की संरचना का अंग बन पाता है और न ही लेखकीय दृष्टि का। इससे उपन्यास का अंत बहुत कमजोर बन गया है। बिना कर्म के इस प्रकार के आस्था या विश्वास निर्मूल्य होकर शुभ कामना मात्र बने रहते हैं। अतः भारती ही नहीं, वरन् अज्ञेय द्वारा व्यक्त आशा और विश्वास जीवन मूल्य या जीवन दर्शन का अंग नहीं बन पाते।

12.3 अन्य रचनाओं में व्यक्त लेखकीय दृष्टि

भारती की प्रारंभिक रचनाओं पर कोमल युवा मन की अनुभूतियों का आवेग प्रधान है। आज़ादी के आस-पास प्रकाशित प्रारंभिक दो कहानी संग्रहों – 'मुर्दों का गाँव' (1946) तथा 'स्वर्ग और पृथ्वी' (1949) में प्रायः भावनात्मक कहानियाँ संगृहीत हैं। इनमें मनुष्य को अच्छाई-बुराइयों के साथ इतना महान् दिखाया गया है जैसे वे ही दुनिया की सबसे ऊँची सत्ता हों। भारती की इन कहानियों में भी केन्द्रीय तत्त्व है: प्रेम। युवा मन का यह प्रेम, उसकी उद्दाम कल्पनाशीलता, रोमानीपन के साथ भारती के समूचे साहित्य-संस्कार में विद्यमान मिलता है। वे स्वयं स्वीकार करते हैं: 'जब उसकी चेतना ने पंख पसारे तब छायावाद का बोलबाला था। उसे लगा कि कविता की शहज़ादी इन अपार्थिव कल्पनाओं, टेढ़े-मेढ़े शब्दजालों, अस्पष्ट रूपकों और उलझे हुए जीवन-दर्शन की शिलाओं से बँधी उदास जलपरी की तरह कैद है और भारती को चाहिए कि वह उसे उन्मुक्तकर सर्वथा मानवीय धरातल पर उतार लाए ताकि वह फैली-फैली चाँदी की बालू पर आदम की संतानों के साथ बेहिचक आँख मिचौनी खेल सके, उनके सीधे-सादे सुख-दुःख, वासनाओं, कामनाओं को समझ सके, उन्हीं की बोली में बोल सके।' भारती का यह वक्तव्य उनके तत्कालीन लेखकीय दृष्टिकोण का सूचक है। यह उनकी कविता, कहानी, उपन्यास सभी पर लागू होता है।

भारती 1950-51 तक प्रेम और सौन्दर्य के सर्जक के रूप में अपनी छवि बना चुके थे। किंतु उनके विकास की प्रक्रिया अभी चल रही थी। जीवन के यथार्थ को वे अपने मानस में उतार रहे थे पर रोमानीपन उन्हें रमा रहा था। 'ठंडा लोहा' (1952) में वे लिखते हैं: 'किशोरावस्था के प्रणय, रूपासक्ति और आकुल निराशा से एक पावन आत्म समर्पणमयी वैष्णव भावना और उसके माध्यम से अपने मन के अहं का शमन कर अपने से बाहर की व्यापक सच्चाई को हृदयंगम करते हुए संकीर्णताओं और कट्टरता से ऊपर एक जनवादी भावभूमि की खोज मेरी इस छंदयात्रा के यही प्रमुख मोड़ रहे हैं"। वास्तव में रोमानी और यथार्थ प्रवृत्तियों का यह द्वन्द्व उनके साहित्य में निरंतर चलता रहा है। कभी एक प्रवृत्ति हावी हो जाती है तो कभी दूसरी। यथार्थ जीवन में आता जा रहा मूल्यों का विघटन 'अंधायुग' (1952) में पौराणिक कथा के माध्यम से व्यक्त होता है। समाज में अनेक समस्याएँ मूल्यों के टूटने से पैदा हुई हैं। भारती की मान्यता है कि जब मर्यादा और रक्षक की मर्यादाओं का भंजक बन जाता है तब सारी व्यवस्थाएँ ढहने लग जाती हैं। गांधारी के

शब्दों में: 'धर्म किसी ओर नहीं था लेकिन/सब ही थे अंधी प्रवृत्तियों से परिचालित/जिसको तुम कहते हो प्रभु/उसने जब चाहा/मर्यादा को अपने ही हित में बदल लिया'। दरअसल यह स्वातंत्र्योत्तर काल का युग सत्य था - जिसे भारती अपनी रचनाओं में अभिव्यक्ति दे रहे थे। किंतु उनका रोमानी आग्रह उन्हें यथार्थ की भूमि से हटाकर बारम्बार 'कनुप्रिया' जैसी कृतियों की ओर ले जाता है।

भारती की परवर्ती कहानियों में पुन: निम्न मध्यवर्गीय यथार्थ, उनके जीवन का सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि पूर्ण अंकन भारती के प्रगतिशील सरोकारों को दर्शाता है। वैसे भी भारती अपनी साहित्य-यात्रा के प्रारंभ में प्रगतिशील लेखक संघ से जुड़े थे। उसकी छाप उनकी कथाकृतियों में जगह-जगह दिखाई देती है। चाहे 'गुलकी बन्नो' कहानी में कुबड़ी गुलकी के बहाने गाँव के अतिसाधारण लोगों का सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन का चित्रण हो या 'यह मेरे लिए नहीं' कहानी का दीनू हो - इन सभी में आस्था, विश्वास, उनकी जीवन से जूझने की शक्ति के संकेत सर्वत्र उपलब्ध होते हैं। लेकिन 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' में ऐसा नहीं है।

12.4 किशोरसुलभ रोमानी (भावुक) दृष्टि की सीमा एवं संभावनाएँ

यह सही है कि भारती की प्रारंभिक रचनाएँ युवा ऊर्जा की प्राणवान् रचनाएँ हैं इनमें स्वतंत्रता आंदोलन के बीच से अर्जित मूल्य हैं, सपने हैं, आशा-आकांक्षाएँ हैं - इन्हें समाज-कल्याण के लिए कैसे लगाया जाए, इसका कोई स्पष्ट दर्शन इनके पास नहीं था। जीवन-व्यापी यथार्थ और मार्क्सवाद इन्हें आकर्षित अवश्य करता था किंतु इनका उन्मुक्त रोमानी स्वभाव उसके अनुकूल नहीं पड़ता था। आज़ादी के तुरंत बाद के इस दृश्य के विषय में कहा जा सकता है: 'नेहरूयुग की आशाओं, स्वप्नों, आकांक्षाओं और फिर शीघ्र ही उनके टूटने की हताश, कुंठित और अवरुद्ध हो जाने वाली मध्यवर्गीय पीढ़ी की मानसिकता का ही दूसरा नाम था: धर्मवीर भारती (राजेन्द्र यादव)।' हताश-कुंठित हो जाने के बाद दो ही रास्ते थे। एक, लेखक अपनी रोमानी दुनिया की खोज में चला जाए या दूसरा बाहर के संसार से जूझे। भारती के साहित्य में दोनों रास्ते मिलते हैं। इसे उनकी दृष्टि की कमजोरी कहा जा सकता है। चारों ओर की रागमय दुनिया, उसके दु:ख-सुख पूरी संवेदना के साथ उजागर हो जाते हैं, लेकिन रचनात्मक स्तर पर उनमें किसी बदलाव का संकेत नहीं मिलता। रचनाकार प्रत्येक भाव या अपने प्रत्येक पात्र के साथ संलग्नता का अनुभव करता है। जैसे 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' उपन्यास में लेखक जमुना जैसी अनपढ़ लड़की की सामाजिक स्थिति के अनुरूप उसके मन-मस्तिष्क के अंदर चलने वाले द्वन्द्व-तनावों-प्रतिक्रियाओं की सजीव झाँकी प्रस्तुत करता है तो लिली के माध्यम से एक स्वप्नजीवी मध्यवर्गीय लड़की का ढुलमुल व्यक्तित्व उभारता है। उसमें सत्ती जैसी तेजस्विता नहीं मिलती। कारण, सत्ती अपने इस व्यक्तित्व को अपने जीवन के संघर्षों के बीच से अर्जित करती है, लेकिन उसका संघर्ष भी अंत तक उसका साथ नहीं देता।

कभी-कभी मध्यवर्गीय चरित्र मान-मूल्य-मर्यादाओं का अतिक्रमण करने के कारण क्रांतिकारी प्रवृत्ति भी धारण कर लेते हैं। माणिक में इस प्रवृत्ति की संभावनाएँ थीं पर कथाकार ने उसकी परिवेशगत सीमाओं के कारण उसका सम्यक् विकास नहीं किया। अत: उपन्यास संवेदना के धरातल पर ताज़गी धारण करते हुए भी उसे पूरा ढाँचा न मिल पाने के कारण गंभीर स्वरूप ग्रहण नहीं कर पाता। उपन्यास में गंभीरता और मार्मिकता तब पैदा होती है जब भाव परिस्थितियों के अनिवार्य आघात से विषम और विसंगतिपूर्ण हो जाते हैं। इस दृष्टि से तन्ना के चरित्र में द्वन्द्व और तनाव की कुछ जटिल स्थितियाँ अवश्य जन्म लेती हैं

किंतु भावुक दृष्टि से ऊपर न उठ पाने के कारण वह भी रूढ़ ढाँचे से टकरा नहीं पातीं। इसलिए वह परेशान रहता है। हर तरफ मार खाता है। न उसे जमुना मिलती है न लिली। अत्यंत विषम स्थितियों में जीवन जीते हुए वह एक रेल दुर्घटना का शिकार हो जाता है। कहा जा सकता है कि उक्त उपन्यास में एकमात्र तन्ना का चरित्र ही ऐसा है जिसमें परिस्थितियों पर भाव की विजय को दर्शाया गया है। परिस्थितियों से निर्मित भाव की जटिलता उसे विवेकवान प्राणी नहीं बनने देती और वह लुंज-पुंज मरने को विवश हो जाता है। यह रोमानी भावुक दृष्टि की सीमा ही कही जाएगी। फिर भी तन्ना का चरित्र 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' उपन्यास की एक उपलब्धि मानी जा सकती है।

12.5 विचार और रचना का समायोजन

विचार अपने युग की अनिवार्य उपज होते हैं। रचनाकार उन्हें युगीन परिस्थितियों के बीच से उठाता है। इसे विचारों का संश्लेष कह सकते हैं। जैसे जमुना की कहानी के रूप में समाज में विद्यमान एक विचार उभरता है तो लिली में दूसरा। जमुना का जीवन सामाजिक-मर्यादाओं-रूढ़ियों में बँधा है तो लिली उन बंधनों-जकड़नों को तोड़कर फेंक देना चाहती है। वह रोमनियत से भरपूर उपन्यास की कथा में कविता का एक दृश्य उभारती है। अपने किशोरवयीन प्रेम से रूढ़ समाज के बीच एक नया विचार लेकर आती है। वह विद्रोह करती है। अपने पति का घर छोड़कर मायके चली आती है। पर पाठक उससे सहानुभूति नहीं रखता। इसका मुख्य कारण यही है कि लेखक उसके विद्रोह को सार्थक और रचनात्मक बदलाव में प्रस्तुत नहीं कर सका है। इसी प्रकार सत्ती के व्यक्तित्व में एक तीसरा विचार विद्यमान है। उसमें संघर्षशील व्यक्ति की छवि उभरती है। वह सामाजिक रूढ़ियों की अपेक्षा समाज की धूर्त्तताओं के कारण अमानवीयता के गर्त में धकेल दी जाती है। चरित्रों के इस प्रकार के समायोजन में कहीं-न-कहीं उपन्यासकार की दृष्टिहीनता का संकेत मिलता है, अन्यथा सभी पात्रों की परिणति एक जैसी नहीं होती।

दरअसल, माणिक मुल्ला छोटी-छोटी परस्पर संबद्ध प्रेम कहानियों के माध्यम से जिन प्रसंगों को प्रस्तुत करते हैं, वे निम्न मध्यवर्गीय जीवन की विद्रूपताएँ हैं, क्षुद्रताएँ हैं, जिसके केन्द्र बिन्दु वे स्वयं हैं, वैसे तो वे दूसरों की प्रेम कथाएँ सुनाते हैं, पर अंत में वे सब मिलकर स्वयं उनके ही जीवन की विडम्बना और उसकी रिक्तता को उजागर कर देती हैं। यह कहें कि माणिक का जीवन यथार्थ और रोमानी दृष्टि का ऐसा घालमेल है जो मध्यवर्ग के खाँटी चरित्र को उद्घाटित करता है। यह उदित होते मध्यवर्ग से संबंधित एक नया विचार कहा जा सकता है।

उधर जमुना-लिली-सत्ती के व्यक्तित्व समाज में विद्यमान परस्पर विरोधी विचार ही हैं जिन्हें उपन्यास में रचनात्मक अन्तर के साथ उपस्थित नहीं किया गया है। सत्ती के जीवन संघर्ष की परिणति जिस प्रकार होती है उसमें भी रचनात्मक संघर्ष की अपेक्षा भावुकता प्रधान होती दिखाई देती है। समूचे उपन्यास में ऐसा प्रतीत होता है जैसे कुछ निष्कर्ष, कुछ विचार कुछ मूल्य पहले से तय कर लिए गए हैं जिसकी पूर्ति के लिए सूरज के सात घोड़ों में से छह घोड़े जीवन के यथार्थ के अनुरूप लंगड़े-लूले विशृंखल हैं। सातवाँ स्वस्थ घोड़ा हम सबको लक्ष्य तक पहुँचाएगा - ऐसी आशा व्यक्त की गई है। किंतु यह विचार रचना में पूरी तरह समायोजित नहीं हो पाता। कुछ विद्वानों के अनुसार यह कृत्रिम और आरोपित ही अधिक रह जाता है। रचना का मूल स्वर नहीं बन पाता।

इससे स्पष्ट है कि रचना में उठाई गयी समस्याओं से उत्पन्न विचारों के समायोजन में लेखक सफल नहीं हो पाया है। इसे उसके जीवन दर्शन की, विश्व दृष्टि की कमजोरी

स्वीकार किया जा सकता है। उसकी यह कमजोरी सातवें घोड़े के मिथक में और अधिक उजागर हुई है। यहाँ विचार ही नहीं, वरन् लेखकीय दृष्टि भी अनुपस्थित है। वह कौन सा सामाजिक आधार या मूलभूत कारक है, जो तन्ना, जमुना और सत्ती के अवैध बच्चों के सातवें घोड़ा की जिन्दगी हमारी जिन्दगी से ज्यादा अमन-चैन की होगी, ज्यादा पवित्रता की होगी, उसमें ज्यादा प्रकाश होगा, ज्यादा अमृत होगा। यह नितान्त रोमानी मान्यता है, जिसमें इतिहास बोध ही नहीं, वरन् वर्तमान का बोध भी गायब है।

12.6 'सूरज का सातवाँ घोडा' उपन्यास की अन्त:प्रेरणा

भारती जी ने इस रचना की प्रेरणा अपने आसपास के परिवेश से ग्रहण की है। यह परिवेश उनका अपना जाना-पहचाना, अपना भोगा हुआ जीवन यथार्थ है। यही कारण है कि उक्त उपन्यास में तत्कालीन गली-मोहल्ले, वहाँ चलने वाली बहसों के अंतरंग चित्र उपस्थित हुए हैं। कथाकार ने निम्नमध्यवर्ग के अप्रीतिकर, टूटे हुए बिखरे हुए जीवन को अपने उपन्यास का कथ्य बनाया है। एक आत्मकथात्मक निबंध में उन्होंने लिखा भी है: 'कहानियाँ मिलीं मुझे अपने गली-मोहल्ले, अड़ोस-पड़ोस से। मेरा मुहल्ला अतर सुइया था। पर वह वस्तुत: एक और बड़े मुहल्ले का उपमोहल्ला था। बड़ा मोहल्ला था - अहियापुर। मीरगंज. सराय मीर खाँ, लोकनाथ, खुशाल पर्वत, कल्याणी देवी, रानी मंडी, अतर सुइया सभी उसके सांस्कृतिक उपनिवेश थे (तब, अब क्या हाल है मैं नहीं जानता)। चंद रईसों और पुराने सामंतों की कोठियाँ और बगीचे और बाकी सभी निम्नमध्यवर्ग के लोगों की बस्ती। छोटे दुकानदार, दफ्तरों के बाबू, अदालत के मुंशी, पेशकार, बैंक के क्लर्क वगैरह। एक खास किस्म की मस्ती भरी जीवन पद्धति लेकिन अंदर से बेहद टूटे हुए, लगातार टूटते हुए।' जैसा कि पहले कहा गया है - यह टूटन, आज़ादी के बाद के सपनों की टूटन है - जो अब पूरे होते नज़र नहीं आ रहे थे। भारती ने अपने इसी आत्मकथ्य में लिखा है: 'आज़ादी आ गई थी। पर आज़ादी आने के साथ वे सपने चरितार्थ होते नहीं दीख रहे थे जिनके आधार पर गली-मोहल्ले ने आज़ादी की लड़ाई लड़ी थी।' इसलिए यदि कोई कहे कि आज़ादी के बाद का साहित्य-विघटन और टूटन का साहित्य है तो वह गलत नहीं है। पर अभी कुछ शेष था जिसे भारती ने सूरज के सातवें घोड़े के रूप में चित्रित किया है। इसी का स्वरूप उभारने के लिए माणिक और उसके मित्र बहस कर रहे थे। इस समय साहित्य में प्रगतिशीलता बनाम व्यक्ति स्वातंत्र्य की अनुगूँज भी सुनी जा सकती है। कथनीय है कि माणिक और उसके मित्रों के वार्तालाप में व्यक्ति-स्वातंत्र्यवादी और प्रगतिशील साहित्यकारों की पारस्परिक नोक-झोंक का संकेत मिलता है। वे मार्क्सवाद पर टीका-टिप्पणी करते हैं जिसे लेखक ने उपन्यास के 'अनध्याय' में रखा है। प्रश्न किया जा सकता है कि उपन्यास के रचना विधान में इन बहसों की योजना कितनी उपयुक्त है। दरअसल, यहाँ यथार्थ के विचार उतने नहीं बल्कि जनसाधारण को देखने की दृष्टि अधिक महत्वपूर्ण है जिसने उन लोगों के दुखदर्द, उन लोगों के क्रियाकलापों को उभारा है। उनके पीड़ाग्रस्त वर्तमान और दु:ख भोगने की नियति को दर्शाया है। इसलिए 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' की सभी कहानियाँ ऊपर से भिन्न दिखते हुए भी 'अन्तत: एक जैसी साहसहीनता, गतानुगतिकता और सुविधावादिता से आक्रांत हैं। एक प्रकार के ढुलमुलपन और संकीर्ण स्वार्थपरता से उनके सपने निरे कल्पना विलास होकर रह जाते हैं'। (अधूरे साक्षात्कार-श्री नेमिचंद्र जैन) उनका टूटा-बिखरा हुआ जीवन समूचे उपन्यास को विषादग्रस्त बना जाता है। परन्तु भारती को सूरज को सातवें घोड़े से कुछ अधिक ही आकांक्षाएँ हैं। वह सभी कष्टों, विकृतियों, विद्रूपताओं को दूर करेगा-यही भविष्य का घोड़ा होगा। यह भारती की मान्यता है, उपन्यास में जिसका कोई आधार नहीं है।

12.7 वर्णन प्रधानता और अनुभवपरकता के सामंजस्य में नवीनता

भारती ने इस मिथक कथा को अपनी रचना 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' में वर्णित किया है। उसमें एक बड़े अनुभव के संकेत सूत्र और उससे भी अधिक आत्मीयता की संवेदनशीलता मिलती है। फिर, उनकी प्रगतिशीलता उन्हें रूढ़ियों, अव्यावहारिक परंपराओं, अन्याय एवं सामाजिक असमानता से उत्पन्न विसंगतियों के प्रति आक्रोश व्यक्त करने के लिए विवश करती है। कथाकार ने तत्कालीन समाज में विद्यमान भिन्न-भिन्न जीवन सरणियों में बनते-बिगड़ते मानव-संबंधों को अपने अनुभव का विषय बनाया है। उदाहरण के रूप में देखें तो परिवार की संस्था में आ रही जड़ता और उसकी विद्रूपता को जमुना-तन्ना के माध्यम से अत्यंत सजीव रूप में उपस्थित किया गया है। रूढ़ियों अंधविश्वासों से घिरे जमुना-तन्ना अपनी परिस्थितियों से समझौता करते जीवन जीते हैं। जबकि सत्ती भारतीय समाज एवं परिवार के दबावों से रहित होकर अपेक्षाकृत स्वस्थ मनोवृत्ति के अनुसार आचरण करती है। जीवन-संघर्ष में वह किसी से पीछे नहीं है। किंतु सामंती कुवृत्तियों के शिकार महेसर दलाल जैसे लोग उसके तथा कथित चाचा के साथ मिलकर उसे घेरने का प्रयास करते हैं। वह बेसहारा होने के बावजूद बड़ी बहादुरी से अपनी लड़ाई लड़ती है। मध्यवर्गीय माणिक भी अन्ततः उसकी सहायता न करके सामंती क्रूर तत्वों की मदद करते हैं। स्पष्ट ही सामंती व्यवस्था के विकृत मूल्य मध्यवर्गीय स्वार्थपरता के साथ मिलकर कायराना रुख अख्तियार कर लेते हैं। इससे सत्ती की परिणति भी जमुना और तन्ना जैसी हो जाती है। रोमानी प्रवृत्ति की लिली समाज और परिवार से संघर्ष करने के नाम पर स्वकेन्द्रित स्वार्थी बन जाती है। तन्ना से विवाह कर लेने के बाद उसे बीमार-दयनीय हालत में छोड़ मायके चली जाती है। इन सबका वर्णन उपन्यास में प्रभावशाली रूप से हुआ है। पर यहाँ अनुभव-विधान कमजोर अधिक हो जाता है। भले ही कथाकार ने उसका कवित्वपूर्ण विवरण क्यों न दिया हो। तन्ना के जीवन का विवेकहीन द्वन्द्व, उसकी सामाजिक मान-मर्यादा के लिए जीवन होम कर देने के अनेकानेक वर्णन, उसकी घुटन, उसकी छटपटाहट, उसकी दर्दनाक मौत उपन्यास में कहीं अधिक मार्मिक बन पड़े हैं। कहा जा सकता है कि भारती ने जमुना और तन्ना के चरित्र को स्वानुभूति के बल पर इस प्रकार सँवारा है कि ये स्मरणीय चरित्र बन गए हैं। उसमें वर्णन और अनुभव का सामंजस्य अपेक्षाकृत संतुलित है। लेकिन लिली में उनकी रोमानी वृत्ति ही उजागर हुई है।

12.8 नए शैली-शिल्प का प्रयोग

इस उपन्यास में शैली-शिल्प के नएपन की चर्चा प्रायः की जाती रही है। शैली की दृष्टि से देखें तो इस उपन्यास से पूर्व हिन्दी उपन्यास-लेखन में अपनाए जाने वाली दो शैलियाँ प्रचलित थीं। एक प्रेमचंद की सामाजिक घटना प्रधान शैली तो दूसरी ओर जैनेन्द्र और अज्ञेय की आत्मोन्मुखी-व्यक्तिप्रधान शैली। भारती ने इनसे अलग एक नवीन शैली-शिल्प का विकास किया। श्री रणधीर सिन्हा लिखते हैं: 'यह नयापन उपन्यास के शिल्प और लक्ष्य में साफ-साफ दृष्टिगोचर होता है। प्रेम के माध्यम से एक वर्ग (निम्न मध्यवर्ग) का पूरा चित्र जिस प्रकार यह उपन्यास हमारे सामने प्रस्तुत करता है, वैसा चित्र शेखर का प्रेम नहीं प्रस्तुत करता। शेखर का प्रेम समाज या वर्ग को नहीं केवल व्यक्ति को स्पष्ट करता है। इस तरह व्यक्ति को समाज से, आर्थिक न्यास को बौद्धिकता से, शारीरिकता को मनः स्थितियों से संपृक्त कर यह उपन्यास एक तीसरे माध्यम का अन्वेषण करने में समर्थ रहा है। इसमें जीवन का खासा रंग है। वास्तविकता का दर्द है।' स्पष्ट है कि यह जीवन का 'खासा रंग' प्रस्तुत उपन्यास के शैली-शिल्प से संबंध रखता है। यह शैली-शिल्प गाँव,

कस्बे, छोटे शहर की अड्डेबाजी से लिया गया है। इसका स्वरूप स्पष्ट करते हुए भारती लिखते हैं: "और हर अड्डे पर मौहल्ले की कहानियाँ कही जाती थीं। ऐसे अंदाज में कि गहरी से गहरी ट्रेजेडी में भी हँसाने की बेलौस अदा। अमूमन कहानियाँ बीच में ही अधूरी छूटती थीं और फिर जब अड्डा जुड़ता था तो कहानियों के बिखरे हुए सूत्र और कहानियाँ आगे बढ़ती थीं। लेकिन साहब आपने लाल बुझक्कड़ की कहानी सुनी है न ? गहरे-से-गहरे सवाल सूक्ष्म से सूक्ष्म समस्या का कोई न कोई हल वे उसी समय जरूर पेश कर देते।" इस उपन्यास में आया यह रोमांचक आख्यान किस्सागोई मात्र नहीं है, अपितु यह अपने मस्ती भरे अंदाज़ में समय के गहरे सवालों से सरोकार रखने से भी संबंधित है। यह फुरसत का समय बिताने वाली अड्डेबाजी मात्र नहीं है। इसीलिए इस उपन्यास के गठन का विशेष महत्व है।

इस किस्सागोई के शैली-शिल्प में सभी विशिष्ट गुण यानी-प्रवाह, आकर्षण, जिज्ञासा, मानसिक आघात-प्रतिघात स्वत: आ गए हैं। साथ ही, सभी कहानियाँ एक लक्ष्य तक पहुँचकर एक समग्र उपन्यास का स्वरूप धारण कर लेती हैं। बोलचाल की भाषा-शैली में आपसी नोक-झोंक किस्सागोई के आनंद को और भी बढ़ा देता है जिससे तत्कालीन अनेक स्तरीय यथार्थ स्वयंमेव उद्घाटित हो जाता है। श्री नेमिचंद्र जैन के अनुसार "इनमें से प्रत्येक कथा अपने आप में संपूर्ण और सार्थक होने के साथ-साथ उन सभी की समग्रता में एक भिन्न स्तर की अन्विति और अर्थवत्ता होती है। आधुनिक युग के बहुस्तरीय जटिल यथार्थ को प्रक्षेपित और संप्रेषित करने में यह कथा रूप बहुत प्रभावी हो सकता है।'' 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' के शैली-शिल्प के विषय में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि कथाकार ने संकेतों के माध्यम से कहानी के विस्तार को छोटा कर लिया है और गली-मोहल्लों की बतकही के परिचित अंदाज को नया स्वरूप प्रदान कर दिया है। इससे यह उपन्यास नई शैली-शिल्प का उपन्यास बन गया है जो जैनेन्द्र-अज्ञेय से कथनगत भिन्नता ही नहीं वरन् कथ्यगत भिन्नता को भी रेखांकित करता है।

12.9 सारांश

भारती का यह उपन्यास तत्कालीन हिन्दी उपन्यासों के परिदृश्य में नई लीक डालने वाला उपन्यास है। इसमें साधारण लोगों के जीवन की मर्मस्पर्शी कहानी कही गई है। यहाँ प्रेम सिर्फ एक माध्यम है जिसके द्वारा कथाकार पात्रों के जीवन में गहरे उतरकर उनकी छोटी-छोटी चीजों में उलझी ज़िन्दगी का मार्मिक चित्रण करता है। उपन्यासकार के लिए निम्नमध्यवर्ग के लोगों का आर्थिक संघर्ष, उनके आचार-विचार, आस्था-विश्वास जिसमें वे अपना जीवन जी रहे थे - उसे उभारना अधिक महत्वपूर्ण रहा है। उसकी मान्यता है कि गरीबी, अशिक्षा, रूढ़ियों के कारण ही उनके जीवन में इतना अनाचार, निराशा, कटुता और अंधेरा छा गया है। कहानियों के बाद आए चार अनध्यायों में बौद्धिक विचार-विमर्श के साथ भावुकता को भी स्थान दिया गया है। कभी बौद्धिकता और भावुकता मिले-जुले रूप में कहानियों में व्यक्त हुए हैं तो कभी अलग-अलग।

यह सही है कि इस उपन्यास की निम्नमध्यवर्ग से संबंधित विषयवस्तु हिन्दी में पहली बार नहीं आई है। किंतु इस उपन्यास की अनुभूति में आत्मीयता और ताज़गी-इसे औरों से अलग करती है। लेकिन फिर भी उपन्यास में प्रस्तुत की गई समस्याओं से उत्पन्न विचारों के समायोजन में लेखक सफल नहीं हो पाया है। यद्यपि इसे प्रस्तुत करने के ढंग में चमक और मौलिकता के अंश उपन्यास को नयापन देते हैं। यह लोककथाओं जैसी सहजता के कारण भी संभव हुआ है जिससे पाठक अभिभूत हुए बिना नहीं रहता। उस पर बोलचाल की भाषा (अपने रोमानी रंग के बावजूद) प्रभावित करती है और उपन्यास को विशिष्ट भाव

भंगिमा प्रदान करती है। वस्तु और शिल्प दोनों के आधार पर कहा जा सकता है कि अपनी समस्त सीमाओं के बावजूद यह हिन्दी का विशिष्ट प्रयोग है।

12.10 अभ्यास प्रश्न

1) उपन्यास में गृहीत समस्याओं में लेखक ने अपनी दृष्टि को किस कौशल के साथ उजागर किया है ? युक्तिसंगत उत्तर दीजिए।

2) किशोर सुलभ रोमानी दृष्टि की सीमाओं और संभावनाओं पर उपन्यास में आए तथ्यों के प्रकाश में विचार कीजिए।

3) नवीन शिल्प के माध्यम से भारती को अपनी दृष्टि व्यक्त करने में कितनी सफलता मिली है? स्पष्ट कीजिए।

4) 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' उपन्यास के औपन्यासिक शिल्प संबंधी नवीनता के प्रमुख बिन्दुओं पर प्रकाश डालिए।

खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें

1) धर्मवीर भारती ग्रंथावली, भाग-1 – सं. पुष्पा भारती

2) धर्मवीर भारती ग्रंथावली, भाग-5 – सं. पुष्पा भारती

3) उपन्यास का शिल्प – ले. गोपाल राय

परिशिष्ट: धर्मवीर भारती और 'सूरज का सातवाँ घोड़ा'

जीवन परिचय

साहित्यकार का जीवन उसके साहित्य में प्रतिबिंबित होता है। रचनाकार के जीवनानुभव के अदृश्य सूत्र के सहारे उसके द्वारा रचे गए साहित्य की अनसुलझी गुत्थियों के रहस्यों का पता मिल सकता है। धर्मवीर भारती के जीवन परिचय के क्रम में इस बात को भली-भाँति देखा जा सकता है। भारती का जन्म 25 दिसम्बर 1926 को इलाहाबाद के अतरसुइया मुहल्ले में हुआ। इनके पिता का नाम चिरंजीवीलाल वर्मा और माता का नाम श्रीमती चंदा देवी था। भारती के पूर्वज शाहजहाँपुर के खुदागंज कस्बे के निवासी थे। वहाँ उनके पुरखों की जमींदारी थी। भारती अपने बचपन के दिनों में छुट्टी बिताने के लिए अपने पुश्तैनी घर आया करते थे। यहाँ की प्रकृति और जीवन का स्नेह भारती के अवचेतन में हमेशा जीवित रहा।

भारती के पिता पाँच भाई थे! दो वहीं खुदागंज में रहते थे और बाकी तीन अन्य नगरों में। लेकिन छुट्टियों में संपूर्ण परिवार खुदागंज में इकट्ठा होता था। इस घर में किसी रिश्तेदार ताऊ की विधवा पत्नी अपने गुजर बसर के लिए यहाँ रहती थी। भारती उसे आइया कहकर पुकारते थे। आइया भारती को गाँव की नाइनों, धोबिनों और घरवालियों के किस्से सुनाती। आइया तेज बुखार के कारण चल बसीं। भारती की स्मृति में उसके प्रति स्नेह और ममत्व का भाव बना रहा। उनकी रचनाओं में इस प्रकार के पात्रों के प्रति गहरे आदर का भाव मिलता है।

भारती के माता-पिता आर्यसमाजी थे। माँ उन्हें संध्या हवन और जनेऊ के कर्मकांड का पालन करने को कहतीं। उनके पिता इस प्रकार की कट्टरता से मुक्त थे। भारती के पिता ने राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन में खुलकर भाग लिया। वे क्रांतिकारी भगतसिंह और चंद्रशेखर आजाद के पक्षधर थे। लेकिन उनमें गाँधी जी के प्रति आदर था। गाँधी जी की पुकार पर उन्होंने सरकारी नौकरी से इस्तीफा दे दिया। यहीं से भारती के जीवन में कठिनाइयों का प्रारंभ हुआ। 1939 में भारती के पिता का निधन हुआ। उस समय भारती तेरह वर्ष के थे।

कठिनाइयों के दिनों में भारती के दूर के मामा अभयकृष्ण चौधरी ने बहुत सहायता की। उन्हें अपने यहाँ संरक्षण ही नहीं दिया अपितु उन्हें पढ़ाई-लिखाई के लिए प्रेरित भी किया। भारती ने पढ़ाई के साथसाथ 1942 के स्वाधीनता आंदोलन में हिस्सा भी लिया था। वस्तुत: उनकी पढ़ाई पाठ्यक्रमों तक सीमित नहीं थी। उन्हें शैली, कीटस, वर्ड्सवर्थ आदि रोमांटिक कवि बेहद पसंद थे। उन्हें विक्टर ह्यूगो, डिकेन्स, बालजाक, दोस्तायव्स्की टालस्टॉय और शरत के उपन्यास में विशेष रुचि थी। कॉलेज के दिनों में उन पर मार्क्सवाद का प्रभाव पड़ा। वे प्रगतिशील लेखक संघ के स्थानीय मंत्री भी बने, लेकिन बाद में उनका उस विचारधारा से मोहभंग हो गया। भारती में भारतीय दर्शन की परंपरा से भी लगाव था। भारतीय दर्शन, वेदान्त, वैष्णव एवं संत साहित्य का अध्ययन उन्होंने विस्तार एवं गहराई से किया।

बी.ए. और एम.ए की पढ़ाई उन्होंने ट्यूशन के सहारे पूरी की। इन दोनों कक्षाओं में वे प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण हुए। इसके बाद डॉ. धीरेन्द्र वर्मा के निर्देशन में उन्होंने सिद्ध साहित्य पर शोध भी किया। सन् 1955 में उनका विवाह एक पंजाबी शरणार्थी लड़की से हुआ। इस संबंध से उन्हें बेटी भी हुई, परंतु तीव्र वैषम्य के कारण यह विवाह संबंध टिकने नहीं पाया। 1960 में उन्होंने पुन: पुष्पा शर्मा से विवाह किया। भारती 1960 में

बंबई आकर धर्मयुग के मुख्य संपादक बने। इस राष्ट्रीय पत्रिका के संपादक के रूप में उनकी भूमिका सराहनीय रही। महत्वपूर्ण राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ से उन्होंने पत्रिका का वैचारिक आधार निर्मित किया। 1986 में धर्मयुग से अवकाश ग्रहण किया। 4 सितम्बर 1997 की रात को बंबई में उनका निधन हुआ। वे जीवन के अंतिम दिनों में भी उपन्यास लिखने की योजना बना रहे थे। इससे साहित्य सृजन के प्रति उनकी निष्ठा प्रमाणित होती है।

डॉ. भारती को अनेक विदेश यात्राओं का अवसर भी प्राप्त हुआ। 1961 में इंग्लैंड तथा यूरोप, 1962 में जर्मनी, 1966 में इंडोनेशिया और थाइलैंड तथा 1974 में वे मॉरीशस गए। 1971 में उन्होंने भारतीय सेना के बंगलादेश के युद्ध के वास्तविक मोर्चे पर जाकर वहाँ के अनुभव लिखे। इसके साथ-साथ उन्हें कई अकादमी तथा संस्थाओं से पुरस्कार भी प्राप्त हुए। 1967 में उन्हें संगीत नाटक अकादमी द्वारा सर्वश्रेष्ठ नाटककार का पुरस्कार प्राप्त हुआ। उत्तर प्रदेश की हिंदी संस्था ने 'व्यास भारती' पुरस्कार से इन्हें सम्मानित किया। 1992 में इन्हें 'साधना सम्मान' और 1994 में 'व्यास' सम्मान से सम्मानित किया गया।

साहित्यिक योगदान

डॉ. धर्मवीर भारती के साहित्यिक परिचय में सर्जक, समीक्षक और पत्रकार तीन तरह का व्यक्तित्व उभरकर सामने आता है। रचनाकर्म में भी उन्होंने विविध विधाओं में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनका रचनात्मक व्यक्तित्व कविता, नाटक, कहानी, उपन्यास, निबंध और यात्रा वृत्तांत में फैला हुआ है। आइए सबसे पहले भारती के काव्य पर दृष्टिपात करते हैं। 'ठंडा लोहा' (1952), 'कनुप्रिया' (1955), 'सात गीत वर्ष' (1959), 'सपना अभी भी' (1993) तथा 'आद्यान्त' (1999) उनके प्रतिनिधि काव्य संग्रह हैं। भारती की कविता में परंपरा की तलाश की प्रक्रिया अत्यंत वैचारिक और भावनात्मक स्तर पर सक्रिय दिखाई पड़ती है। उन्होंने कविता में बिंबों का सहज और अकृत्रिम रूप में प्रयोग किया है। आधुनिकता के मोह के बावजूद उन्होंने शब्द और बिंब में जीवन की सहजता को बनाए रखा है। हर सिंगार के फूल, पुरवैया की मृदुल हिलोरें तथा गाय के रँभाने का बिंब भारती की कविता में देखा जा सकता है। 'ठंडा लोहा' में उन्मुक्त मांसल सौन्दर्य का चित्रण है। काव्य कृति में अंतर्द्वन्द्व से उपजा जीवन का दर्दीला स्वर कविता के भावों को करुण और गीला करता प्रतीत होता है। 'सात गीत वर्ष' में प्रणय की अनुभूति और जीवन के यथार्थ को आमने-सामने रखा गया है। इसके साथ-साथ इस काव्य संग्रह में गीतों में प्रेम की पीड़ा और व्याकुलता की अनुभूति मिलती है। इन कविताओं में एक प्रकार ठंडी उदासी है।

'कनुप्रिया' शृंगार प्रधान काव्य है। कवि ने 'मेघदूत', 'कुमार संभव' भर्तृहरि के शृंगार शतक तथा जयदेव के गीत गोविंद जैसे परंपरा प्रशंसित काव्य संग्रह के संदर्भ में कनुप्रिया की रचना की। 'कनुप्रिया' की कविता का संसार करुणा और कोमलता से ओतप्रोत है। 'सपना अभी भी' भारती द्वारा लिखित उन कविताओं का संकलन है जिन्हें भारती ने 1958 से 1993 के बीच रचा था। इस काव्य संग्रह में भी प्रणयानुभूति है, लेकिन उसका रोमानी तत्व भावुकता से ऊपर उठकर साझे में भोगे गए दर्द की अनुभूति को प्रस्तुत करता है। इसके साथ इस संकलन में विविध राजनीतिक स्थितियों के प्रसंग भी स्थान-स्थान पर प्रस्तुत किए गए हैं। कवि राजनीति और सौन्दर्य के दो परस्पर विरोधी अनुभवों के बीच सौन्दर्य की सुकुमारता की खोज करता है।

'अंधायुग' भारती का कालजयी काव्य नाटक है। इस काव्य नाटक में कवि ने स्वातंत्र्योतर भारत तथा विश्व की परिस्थितियों की बहुत ही सूक्ष्म अभिव्यक्ति की है। औनिवेशिक सत्ता से मुक्त भारत में मध्यवर्गीय संवेदनहीन व्यक्ति का जन्म और उससे जुड़ी कई समस्याओं को भारती ने इस काव्य नाटक का केंद्रीय तथ्य बनाया है। इसके साथ विश्वयुद्ध के बीच

आतंकित मनुष्य की सिसकती हुई आह और वेदना से नाटक में प्रखर नाटकीयता की सृष्टि हुई है। भारती इस काव्य नाटक में जीवन की अर्थहीनता जैसे अस्तित्ववादी प्रश्न को छेड़ते हैं। परंतु उनकी पूरी निष्ठा मानवीय सृजनात्मकता में है। भारती का 'अंधायुग' काव्य नाटक केवल मानवीय संवेदना के भोथड़ेपन को सपाट रूप में प्रस्तुत नहीं करता है, अपितु उसको प्रदर्शित करने के लिए वे विभिन्न नाट्यशैलियों के अन्वेषण से एक निजी रंगशैली की खोज भी करते हैं। यही पहचान 'अंधायुग' को काव्य नाटक की विशिष्टता से सम्मानित करती है।

एक कथाकार के रूप में भारती का योगदान अक्षुण्ण है। उनके द्वारा रचे गए कहानी संग्रह में 'मुर्दों का गाँव' (1946), 'स्वर्ग और पृथ्वी' (1949), 'चाँद और टूटे हुए लोग' (1955), 'बंद गली का आखिरी मकान' (1967) तथा 'साँस की कलम' से महत्वपूर्ण हैं। प्रथम दोनों कहानी संग्रह दो विपरीत ध्रुवों पर स्थित हैं। 'मुर्दों का गाँव' में लेखक ने देश की आर्थिक विपन्नता, समाज की बदहाली और बंगाल के अकाल का भयावह चित्र प्रस्तुत किया है। 'स्वर्ग और पृथ्वी' का रचना संसार पाठक को सामाजिक बंधनों से दूर किसी कल्पना लोक में चलने के लिए प्रेरित करता है। इस कहानी संग्रह में फन्तासियों का माया लोक बुना गया है। 'गुनाहों का देवता' भारती की महत्वपूर्ण औपन्यासिक कृति है। यह कृति अपनी लोकप्रियता में अद्वितीय है। इस कृति में बुद्धिजीवी मध्यवर्ग की युवा पीढ़ी की मानसिकता के बहुआयामी छायाचित्र को प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास के केंद्र में स्त्री-पुरुष के प्रणय संबंधों की अनुभूति और चिंतन को रखा गया है। प्रेम विवाह, स्त्री पुरुष संबंध, हिन्दू समाज की रीतिनीति आदि अनेक महत्वपूर्ण प्रश्नों को उपन्यास में उकेरा गया है। इसमें मात्र किशोर मानसिकता का भावुक मनोवैज्ञानिक प्रसंग ही नहीं है, अपितु उस मानसिकता को लेखक ने सामाजिक जटिलता और वैचारिक संदर्भों से पहचानने की कोशिश की है। 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' में लेखक ने मध्यवर्गीय जीवन के यथार्थ के वैविध्य को प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास में लेखक ने प्रेम और प्रणय की संवेदना को परिवेश की जटिलता के आधार पर समझाने का प्रयत्न किया है। इसलिए यह उपन्यास अपने परिपार्श्व में विविध आयामी है।

भारती के निबंध संग्रह में 'ठेले पर हिमालय' (1958), 'पश्यंती' (1969), 'कहनी-अनकहनी' (1970) प्रमुख हैं। इन रचनाओं में कुछ उनके वैचारिक निबंध हैं, कुछ संस्मरण हैं तथा कुछ यात्रा विवरण के उदाहरण हैं। समीक्षक के रूप में भारती ने 'प्रगतिवाद एक समीक्षा' (1949) में मार्क्सवादी विचारधारा को परखा है। वे प्रगति की अवधारणा को दलगत राजनीति और संकीर्ण मनोवृत्ति से ऊपर उठकर सहज विवेक के आधार पर उसका मूल्यांकन करने का पक्ष लेते हैं। वे व्यक्ति की स्वतंत्रता को समाज निरपेक्ष नहीं मानते। 'मानव मूल्य और साहित्य' (1960) में साहित्य का प्रयोजन, साहित्यकार का दायित्व, सृजन प्रक्रिया में चेतन और अवचेतन का स्थान आदि अनेक प्रश्नों को उन्होंने उठाया है। भारतीय और पाश्चात्य समीक्षा शास्त्र के गहन अध्ययन के आधार पर उन्होंने अपने निष्कर्ष को अभिव्यक्त किया है। उन्होंने सिद्धों की साहित्य की परंपरा, उसका उत्स तथा उसके फलने-फूलने के लिए जिम्मेदार सामाजिक वातावरण का गवेषणात्मक अध्ययन किया। उन्होंने बौद्ध धर्म की विविध शाखाओं के साथ सिद्धों के संबंधों को स्थापित किया। बहुआयामी प्रतिभा के धनी डॉ. धर्मवीर भारती की अदम्य ऊर्जा साहित्य के विविध क्षेत्रों में प्रस्तावित हुई है।

कब लिखी गई: 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' पहली बार 1952 में प्रकाशित हुई थी। 'गुनाहों का देवता' में लेखक ने किशोर भावुकता के स्वप्नमय संसार को रखा है। लेकिन इस उपन्यास में स्वप्न में एक रिसती हुई वेदना है और यह कहीं न कहीं हमारे जीवन मूल्य पर चोट करती है। उपन्यास में मध्यवर्गीय वास्तविकता के अनेक आयाम हैं। आर्थिक तंगी,

नैतिक अवैज्ञानिक परंपराएँ, जातिगत अहं, भय, हीन भावना, कायरता, रोमांटिक भाव, खोखले आदर्श ये सारे पहलू इस उपन्यास को आकार देते हैं। मध्यवर्ग को खोखले आदर्श और खोखली नैतिकता से सूरज के रथ के सारे घोड़े क्षतिग्रस्त हो गए हैं।

अंतर्वस्तु: 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' उपन्यास में प्रेम कहानियाँ हैं। इसमें मध्यवर्गीय प्रेम के अनेक प्रारूप उपस्थित हैं। रोमानी प्रेम, यौन अतृप्ति के भय, समर्पित प्रेम आदि के कई रूपों को कथा में संयोजित किया गया है। माणिक पहली प्रेम कहानी में जमुना की प्रेम कहानी का जिक्र करते हैं। इस प्रेम कहानी के बहाने जमुना की अतृप्त वासना को थोड़े शब्दों में रेखांकित करते हैं। इसके साथ तन्ना और जमुना के प्रसंग के माध्यम से मध्यवर्ग के युवक की कायरता, झूठे अहंकार और आदर्श की भी वे आलोचना करते हैं।

जमुना की कहानी की त्रासदी यह है कि उसकी वासना निरंतर अतृप्त ही रही। ऊँचे खानदान के नाम पर उसका विवाह एक बूढ़े जमींदार से होता है। जमुना को अपनी यौन तृप्ति के लिए अवैध संबंध रामधन से स्थाफ्ति करना पड़ता है। लेखक का बल इस बात पर है कि जीवन की स्वाभाविकता और नैसर्गिकता को छोड़ने पर समाज के बने बनाए मूल्य और प्रतिमान स्वय ही नष्ट हो जाते हैं। विषमता चाहे सामाजिक स्तर पर हो अथवा व्यक्ति के स्तर पर, वह व्यक्तित्व के विकास में बाधक सिद्ध होता है।

लेखक उपन्यास में केवल प्रेम कहानी ही नहीं कहता है, बल्कि मध्यवर्गीय जीवन की घुटन और आर्थिक तंगी को भी पाठक के सामने साकार कर देता है। महेसर दलाल के घर में बच्चों की दयनीय हालत और तन्ना की कमरतोड़ मेहनत का करुण चित्र लेखक ने उपस्थित किया है। विमाता के कारण बच्चे अपने ही घर में कितने उपेक्षणीय और अजनबी हो जाते हैं, उस मनोभाव को सूक्ष्मता से विवेचित किया गया है। इसके साथ-साथ एक अपंग और असहाय व्यक्ति की मनोदशा के यथार्थ को रचने में भी लेखक ने सफलता प्राप्त कर ली है।

प्रेम और सर्मपण के उदात्त मानवीय भाव को भी लेखक ने इस प्रेम कथा में रेखांकित करने का प्रयास किया है। लिली की प्रेम कहानी में भावुकता और वेदना है। वह प्रेम की अवधारणा में जीती है। कहानी के अंत में उसके विवाह की तैयारी की सूचना मिलती है। लिली में इसके लिए थोड़ा भी प्रतिरोध नहीं है। वह हँसकर इस स्थिति को स्वीकारती है। लेखक ने इस प्रसंग में यह प्रश्न पैदा किया है कि लिली में प्रेम की रोमांटिकता नहीं है, क्योंकि रोमांटिकता में एक प्रकार का सामाजिक और नैतिक प्रतिरोध का भी साहस होता है। लिली के प्रेम में छायावादी वायवीयता है। इसलिए उसमें केवल प्रेम भाव के प्रति आकर्षण है। वह भाव सामाजिक जीवन के अनुभवों से नहीं पैदा हुआ है।

प्रेम का एक रूप सत्ती के प्रसंग में भी देखा जा सकता है। यह अन्य प्रकार के प्रेम से अलग और भिन्न है। सत्ती में आत्मविश्वास भरा हुआ है। यह आत्मविश्वास उसके अथक परिश्रम से पैदा हुआ है। वह माणिक मुल्ला के प्रति समर्पित है। लेकिन जाति के आडंबर और मर्यादा का झूठा बंधन उन्हें सत्ती को अपनाने से रोकता है। सत्ती को महेसर दलाल के हाथों बेच दिया जाता है। माणिक मुल्ला इस पर अफसोस करके चुप रह जाते हैं। सत्ती संघर्ष करते हुए भी अंत में फिर चमन ठाकुर की गाड़ी खींचने को विवश है। लेखक ने इस प्रसंग के माध्यम से मध्यवर्ग की कायरता की तीखी आलोचना की है। वास्तव में प्रेम के लिए जिस साहस की आवश्यकता होती है, वह लेखक को यहाँ नहीं मिलता है। मध्यवर्गीय जीवन के अंधेरे को उजागर करने के बाद भी लेखक में भविष्य के प्रति आशा और विश्वास है। लेखक के शब्दों में: "वह घोड़ा है भविष्य का घोड़ा, तन्ना, जमुना और सत्ती के नन्हें निष्पाप बच्चों का घोड़ा, जिनकी जिन्दगी हमारी जिन्दगी से ज्यादा अमन

चैन की होगी, ज्यादा अमृत होगा। वही सातवाँ घोड़ा हमारी पलकों में भविष्य के सपने और वर्तमान के नवीन आकलन भेजता है ताकि हम यह रास्ता बना सकें जिन पर होकर भविष्य का घोड़ा आयेगा, इतिहास के वे नये पन्ने लिख सकें जिन पर अवश्मेध दिग्विजयी घोड़ा दौड़ेगा।"

महत्व: 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' उपन्यास में प्रेम शब्द की अर्थ व्याप्ति बहुत अधिक है। मध्यवर्ग के प्रेम के विविध रूप ठोस परिवेश के यथार्थ से टकराते हुए पाठक के सामने उपस्थित होते हैं। उपन्यास में प्रेम निजी भाव नहीं रह जाता है। उसकी परिधि इतनी अधिक विस्तृत हो जाती है, कि उसकी कसौटी पर हमारे विवेक, नैतिकता, आदर्श और स्वप्न को पुन: परिभाषित करने की जरूरत महसूस होती है। उपन्यास संपूर्णता में हमारी जीवन शैली और जीवन की पद्धति को कठघरे में खड़ा करता है। इसलिए उपन्यास में प्रेम से कहीं ज्यादा महत्व मध्यवर्ग के आर्थिक संघर्ष, नैतिक विशृंखलताएँ निराशा और अनैतिकता को उभारने का है। लेकिन तमाम निराशा के बावजूद जीवन के भविष्य के प्रति अडिग आस्था पाठक में विश्वास का संचार करती है।

उपन्यास का महत्व मध्यवर्गीय मानसिकता को तोड़कर नये मौलिक दृष्टिकोण की स्थापना में है। यथास्थिति को तोड़कर ही बेहतर भविष्य की कल्पना की जा सकती है। उपन्यास में कहीं-कहीं अस्तित्ववादी अर्थहीनता और ऊब की बू आती है, परंतु वह प्रभाव में नगण्य है। भारती की सफलता इस बात में है कि वे उपन्यास में व्यक्ति और समाज को दो स्वायत्त इकाई के रूप में स्वीकार नहीं करते हैं। इस उपन्यास का व्यक्ति और समाज एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। भारती ने व्यक्ति के महत्व को समाज की सीमाओं में ही स्वीकारा है। इसलिए उन्हें मूल्य, नैतिकता आदि प्रश्नों को परिभाषित करने की जरूरत हुई। भारती का व्यक्ति समाज निरपेक्ष होकर मूल्यों का अन्वेषण नहीं करता है।

भाषा शैली: 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' में लेखक ने कहानी की विलक्षण तकनीक का प्रयोग करते हुए कहानी के परंपरागत ढाँचे से अलग हटने का प्रयत्न किया है। माणिक मुल्ला आख्यान की वाचिक शैली में प्रेम कथा को सुनाता है। सात दोपहर तक चलने वाली कहानी माणिक मुल्ला से जुड़कर उपन्यास के रूप में परिवर्तित हो जाती है। अज्ञेय ने इस उपन्यास की भूमिका में लिखा है "सूरज का सातवाँ घोड़ा एक कहानी में अनेक कहानियाँ नहीं, अनेक कहानियों में एक कहानी है। वह एक पूरे समाज का चित्र और आलोचना है और जैसे उस समाज की अनंत शक्तियाँ परस्पर सम्बद्ध, परस्पर आश्रित और परस्पर संभूत हैं, वैसे ही उसकी कहानियाँ भी। प्राचीन चित्रों में जैसे एक ही फलक पर परस्पर कई घटनाओं का चित्रण करके उसकी वर्णनात्मकता को संपूर्ण बनाया जाता है, उसमें एक घटना चित्र की स्थिरता के बदले एक घटनाक्रम की प्रवाहमयता लायी जाती है, उसी प्रकार इस समाज चित्र में एक ही वस्तु को कई स्तरों पर कई लोगों से और कई कालों में देखने और दर्शाने का प्रयत्न किया गया है, जिससे उसमें देश और काल दोनों का प्रसार प्रतिबिंबित हो सके।" उपन्यास की कथा वस्तु में एक ही विषय वस्तु पर उभरते विविध कथाचित्रों में इसे अनुभव किया जा सकता है। कहानी के प्रेम प्रसंग व्यापक मानवीय रिश्तों और परिवेश से संयुक्त होकर नयी अर्थवत्ता को रचते हैं। उपन्यास में प्रारंभ से लेकर अंत तक मनोरंजन का भाव लगातार चलता रहता है। इसके साथ-साथ विचारों की गहनता भी उभरती रहती है। वास्तव में कहानी और औपन्यासिक रूप का तालमेल एक प्रतीकार्थ से उपन्यास के आंतरिक यथार्थ और अनुभव को कसकर बाँधे हुए है।

उपन्यास की भाषा में काव्य की सूक्ष्मता है। लेखक ने मन की परत को भाषा के माध्यम से उधेड़कर रख दिया है। मनोभाव की जटिलता को संकेतमयता और सघनता में प्रस्तुत करना अत्यंत कठिन कार्य है। भारती ने इस प्रकार की काव्यात्मक भाषा को उपन्यास में

संभव बनाया है। लिली और माणिक के प्रेम प्रसंग के विषय में लेखक ने लिखा है - "लिली कभी चुपचाप लजाती हुई खिड़की के बाहर, कभी लजाती हुई अन्दर माणिक की ओर देखती हुई बौछार में खड़ी रही। जब बिजलियाँ चमकतीं तो ऐसा लगता जैसे प्रकाश के झरने में काँपता हुआ नीलकमल।"

उपन्यास कैसे पढ़ें

'सूरज का सातवाँ घोड़ा' में कहानी और उपन्यास की तकनीक को शिल्प के स्तर पर मिश्रित किया गया है। इसलिए इसे पढ़ते समय इन दोनों विधाओं की विशिष्टता को ध्यान में रखना चाहिए। इस उपन्यास को पढ़ते समय कविता की सूक्ष्मता, कहानी की संक्षिप्तता और उपन्यास के विस्तार को एक साथ ध्यान में रखने की आवश्यकता है। उपन्यास को पढ़ते समय उपन्यास के अनेक स्तरीय यथार्थ की अभिव्यक्ति तथा घटनाओं के चित्रमय वर्णन से उभरने वाली सूक्ष्मता को समझने की आवश्यकता है। उपन्यास से मिलने वाली जीवनदृष्टि किस प्रकार से हमारे समाज की आलोचना करती है, इसे भी समझने का प्रयास करें।

कठिन शब्दावली

सियापा - उदासी

ताईद - तरफदारी

इसरार - कुतर्क

देना-पका - लेन देन

इल्लत - दोष। अपराध

व्याख्या के लिए अंश

1. अगर काफ़ी फ़ुरसत हो, पूरा घर अपने अधिकार में हो, चार मित्र बैठे हों, तो निश्चित है कि घूम-फिरकर वार्ता राजनीति पर आ टिकेगी और जब राजनीति में दिलचस्पी ख़त्म होने लगेगी तो गोष्ठी की वार्ता 'प्रेम' पर आ टिकेगी। कम से कम मध्यवर्ग में तो इन दो विषयों के अलावा तीसरा विषय नहीं होता। माणिक मुल्ला का दखल जितना राजनीति में था उतना ही प्रेम में था, लेकिन जहाँ तक साहित्यिक वार्ता का प्रश्न था वे प्रेम को तरजीह दिया करते थे।

   प्रेम के विषय में बात करते समय वे कभी-कभी कहावतों को अजब रूप में पेश किया करते थे और उनमें से न जाने क्यों एक कहावत अभी तक मेरे दिमाग में चस्पाँ हैं, हालाँकि उसका सही मतलब न मैं तब समझा था न अब ! अकसर प्रेम के विषय में अपने कड़वे-मीठे अनुभवों से हम लोगों का ज्ञानवर्धन करने के बाद खरबूज़ा काटते हुए कहते थे, "प्यारे बन्धुओ ! कहावत में चाहे जो कुछ हो, प्रेम में ख़रबूजा चाहे चाकू पर गिरे चाहे चाकू खरबूजे पर, नुकसान हमेशा चाकू का होता है। अत: जिसका व्यक्तित्व चाकू की तरह तेज़ और पैना हो, उसे हर हालत में इस उलझन से बचना चाहिए"। ऐसी अन्य कहावतें थीं जो याद आने पर बाद में लिखूँगा।

2. कुछ पात्र लो, और एक निष्कर्ष पहले से सोच लो, जैसे ... यानी जो भी निष्कर्ष निकालना हो, फिर अपने पात्रों पर इतना अधिकार रखो, इतना शासन रखो कि वे अपने-आप प्रेम के चक्र में उलझ जायें और अन्त में वे उसी निष्कर्ष पर पहुँचें जो तुमने पहले से तय कर रखा है।

मेरे मन में अकसर इन बातों पर शंकाएँ भी उठती थीं, पर निष्कर्षवाद के विषय में उन्होंने मुझे बताया कि हिन्दी में बहुत-से कहानीकार इसीलिए प्रसिद्ध हो गये हैं कि उनकी कहानी में कथानक चाहे लँगड़ाता हो, पात्र चाहे पिलपिले हों, लेकिन सामाजिक तथा राजनीतिक निष्कर्ष अद्‌भुत होते हैं।

3. दूसरे दिन खा-पीकर हम लोग फिर उस बैठक में एकत्र हुए और हम लोगों के साथ श्याम भी आया। जब हम लोगों ने माणिक मुल्ला को बताया कि श्याम जमुना की कहानी को सुनकर रोने लगा था तो श्याम झेंपकर बोला, "मैं कहाँ रो रहा था ?" माणिक मुल्ला हँसे और बोले कि "हमारी ज़िन्दगी में ज़रा-सी पर्त उखाड़कर देखो तो हर तरफ इतनी गन्दगी और कीचड़ छिपा हुआ है कि सचमुच उस पर रोना आता है। लेकिन प्यारे बन्धुओ, मैं तो इतना रो चुका हूँ कि अब आँख में आँसू आता ही नहीं, अत: लाचार होकर हँसना पड़ता है। एक बात और है - जो लोग भावुक होते हैं और सिर्फ रोते हैं, वे रो-धोकर रह जाते हैं, पर जो लोग हँसना सीख लेते हैं वे कभी-कभी हँसते-हँसते उस ज़िन्दगी को बदल भी डालते हैं"।

4. ज़मींदार बेचारे वृद्ध हो चुके थे और उन्हें बहुत कष्ट था, वारिस भी हो चुका था अत: भगवान ने उन्हें अपने दरबार में बुला लिया। जमुना पति के बिछोह में धाड़ें मार-मारकर रोयी, चूड़ी-कंगन फोड़ डाले, खाना-पीना छोड़ दिया। अन्त में पड़ोसियों ने समझाया कि छोटा बच्चा है, उसका मुँह देखना चाहिए। जो होना था सो हो गया। काल बली है। उस पर किसा बस चलता है ! पड़ोसियों के बहुत समझाने पर जमुना ने आँसू पोंछे। घर-बार सँभाला। इतनी बड़ी कोठी थी, अकेले रहना एक विधवा महिला के लिए अनुचित था, अत: उसने रामधन को एक कोठरी दी और पवित्रता से जीवन व्यतीत करने लगी।

5. जमुना की जीवन-गाथा समाप्त हो चुकी थी और हम लोगों को उसके जीवन का ऐसा सुखद समाधान देखकर बहुत सन्तोष हुआ। ऐसा लगा कि जैसे सभी रसों की परिणति शान्त या निर्वेद में होती है, वैसे ही उस अभागिन के जीवन के सारे संघर्ष और पीड़ा की परिणति मातृत्व से प्लावित, शान्त, निष्कम्प दीपशिखा के समान प्रकाशमान, पवित्र, निष्कलंक वैधव्य में हुई।

6. बस, माणिक मुल्ला भी तुम्हारा ध्यान उस अथाह पानी की ओर दिला रहे हैं जहाँ मौत है, अँधेरा है, कीचड़ है, गन्दगी है। या तो दूसरा रास्ता बनाओ नहीं तो डूब जाओ। लेकिन आधी इंच ऊपर जमी बरफ कुछ काम न देगी। एक ओर नये लोगों का यह रोमानी दृष्टिकोण, यह भावुकता, दूसरी ओर बूढ़ों का यह थोथा आदर्श और झूठी अवैज्ञानिक मर्यादा सिर्फ आधी इंच बरफ है, जिसने पानी की खूँखार गहराई को छिपा रखा है।

7. जमुना निम्न-मध्यवर्ग की भयानक समस्या है। आर्थिक नींव खोखली है। उसकी वजह से विवाह, परिवार, प्रेम-सभी की नींवें हिल गयी हैं। अनैतिकता छायी हुई है। पर सब उस ओर से आँखें मूँदे हैं। असल में पूरी ज़िन्दगी की व्यवस्था बदलनी होगी।

8. हम लोग सुबह सोकर उठे तो देखा कि रात ही सहसा हवा बिल्कुल रुक गयी है और इतनी उमस है कि सुबह पाँच बजे भी हम लोग पसीने से तर थे। हम लोग उठकर खूब नहाये मगर उमस इतनी भयानक थी कि कोई भी साधन काम न आया। पता नहीं ऐसी उमस इस शहर के बाहर भी कहीं होती है या नहीं; पर यहाँ तो जिस दिन ऐसी उमस होती है उस दिन सभी काम रुक जाते हैं। सरकारी दफ़्तरों में क्लर्क काम

नहीं कर पाते, सुपरिण्टेण्डेन्ट बड़े बाबुओं को डाँटते हैं, बड़े बाबू छोटे बाबूओं पर खीज उतारते हैं, छोटे बाबू चपरासियों से बदला निकालते हैं और चपरासी गालियाँ देते हुए पानी पिलानेवालों से, भिश्तियों से और मालियों से उलझ जाते हैं; दुकानदार माल न बेचकर ग्राहकों को खिसका देते हैं और रिक्शावाले इतना किराया माँगते हैं कि सवारियाँ परेशान होकर रिक्शा न करें। और इन तमाम सामाजिक उथल-पुथल के पीछे कोई ऐतिहासिक द्वन्द्वात्मक प्रगति का सिद्धांत न होकर केवल तापमान रहता है - टेम्परेचर, उमस, एक-सौ बारह डिग्री फ़ारिनहाइट!

9. खैर, तो माणिक मुल्ला बोले कि, "जब मैं प्रेम पर आर्थिक प्रभाव की बात करता हूँ तो मेरा मतलब यह रहता है कि वास्तव में आर्थिक ढाँचा हमारे मन पर इतना अजब-सा प्रभाव डालता है कि मन की सारी भावनाएँ उससे स्वाधीन नहीं हो पाती और हम-जैसे लोग जो न उच्चवर्ग के हैं, न निम्नवर्ग के, उनके यहाँ रूढ़ियाँ, परम्पराएँ, मर्यादाएँ भी ऐसी पुरानी और विषाक्त हैं कि कुल मिलाकर हम सभी पर ऐसा प्रभाव पड़ता है कि हम यन्त्र-मात्र रह जाते हैं। हमारे अन्दर उदार और ऊँचे सपने खत्म हो जाते हैं और एक अजब-सी जड़ मूर्च्छना हम पर छा जाती है।"

10. तो माणिक मुल्ला बोले, "यह सच है, पर जब पूरी व्यवस्था में बेईमानी है तो एक व्यक्ति की ईमानदारी इसी में है कि वह एक व्यवस्था द्वारा लादी गयी सारी नैतिक विकृति को भी अस्वीकार करे और उसके द्वारा आरोपित सारी झूठी मर्यादाओं को भी, क्योंकि दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू होते हैं। लेकिन हम यह विद्रोह नहीं कर पाते, अतः नतीजा यह होता है कि जमुना की तरह हर परिस्थिति में समझौता करते जाते हैं।

"लेकिन सभी तो जमुना नहीं होते ?" मैंने फिर कहा।

"हाँ, लेकिन जो इस नैतिक विकृति से अपने को अलग रखकर भी इस तमाम व्यवस्था के विरुद्ध नहीं लड़ते, उनकी मर्यादाशीलता सिर्फ़ परिष्कृत कायरता होती है। संस्कारों का अन्धानुसरण ! और ऐसे लोग भले आदमी कहलाये जाते हैं, उनकी तारीफ भी होती है, पर उनकी ज़िन्दगी बेहद करुण और भयानक हो जाती है और सबसे बड़ा दुःख यह है कि वे भी अपने जीवन का यह पहलू नहीं समझते और बैल की तरह चक्कर लगाते चले जाते हैं। मसलन मैं तुम्हें तन्ना की कहानी सुनाऊँ ? तन्ना की याद है न ? वही महेसर दलाल का लड़का !"

11. बेहद उमस ! मन की गहरी से गहरी पर्त में एक अजब-सी बेचैनी। नींद आ भी रही है और नहीं भी आ रही। नीम की डालियाँ ख़ामोश हैं। बिजली के प्रकाश में उनकी छायाएँ मकानों, खपरैलों, बारजों और गलियों में सहमी खड़ी हैं।

मेरे अर्धसुप्त मन में असम्बद्ध स्वप्न-विचारों का सिलसिला।

स्वर्ग का फाटक। रूप, रेखा, रंग, आकार कुछ नहीं जैसा अनुमान कर लें। अतियथार्थवादी कविताएँ जिनका अर्थ कुछ नहीं जैसा अनुमान कर लें। फाटक पर रामधन बाहर बैठा है। अन्दर जमुना, श्वेतवसना, शान्त, गम्भीर। उसकी विशृंखल वासना, उसका वैधव्य, पुरइन के पत्तों पर पड़ी ओस की तरह बिखर चुका है, वह वैसी ही है जैसी तन्ना को प्रथम बार मिली थी।

12. "पता नहीं तुम लोगों को कैसा लगता है, मुझे तो बादलों को देखकर वैसा लगता है जैसे उस घर को देखकर लगता है जिसमें हमने अपना हँसी-खुशी से बचपन बिताया

हो और जिसे छोड़कर हम पता नहीं कहाँ-कहाँ घूमे हों और भूलकर फिर उसी मकान के सामने बरसों बाद आ पहुँचे हों।" जब मैंने स्वीकार किया कि मेरे मन में भी यही भावना होती है तो और भी उत्साह में भरकर बोले, "देखो, अगर ज़िन्दगी में फूल न होते, बादल न होते, पवित्रता न होती, प्रकाश न होता, सिर्फ़ अँधेरा होता, कीचड़ होता, गन्दगी होती तो कितना अच्छा होता ! हम सब उसमें कीड़े की तरह बिलबिलाते और मर जाते, कभी अन्तःकरण में किसी तरह की छटपटाहट न होती। लेकिन बड़ा अभागा होता है वह दिन जिस दिन हमारी आत्मा पवित्रता की एक झलक पा लेती है, रोशनी का एक कण पा लेती है क्योंकि उसके बाद सदियों तक अँधेरे में कैद रहने पर भी रोशनी की प्यास उसमें भर नहीं पाती, उसे तड़पाती रहती है। वह अँधेरे से समझौता कर ले पर उसे चैन कभी नहीं मिलती।"

13. "लेकिन हम सब परम्पराओं, सामाजिक परिस्थितियों, झूठे बन्धनों में इस तरह कसे हुए हैं कि उसे सामाजिक स्तर ग्रहण नहीं करा पाते, उसके लिए संघर्ष नहीं कर पाते और बाद में अपनी कायरता और विवशताओं पर सुनहरा पानी फेरकर उसे चमकाने की कोशिश करते रहते हैं। इस रूमानी प्रेम का महत्व है, पर मुसीबत यह है कि वह कच्चे मन का प्यार होता है, उसमें सपने, इन्द्रधनुष और फूल तो काफ़ी मिक़दार में होते हैं पर वह साहस और परिपक्वता नहीं होती जो इन सपनों और फूलों को स्वस्थ सामाजिक सम्बन्ध में बदल सके। नतीजा यह होता है कि थोड़े दिन बाद यह सब मन से उसी तरह गायब हो जाता है जैसे बादल की छाँह। आख़िर हम हवा में तो नहीं रहते हैं और जो भी भावना हमारे सामाजिक जीवन की खाद नहीं बन पाती, ज़िन्दगी उसे झाड़-झंखाड़ की तरह उखाड़ फेंकती है।"

14. "टेकनीक ! हाँ टेकनीक पर ज़्यादा जोर वही देता है जो कहीं-न-कहीं अपरिपक्व होता है, जो अभ्यास कर रहा है, जिसे उचित माध्यम नहीं मिल पाया। लेकिन फिर भी टेकनीक पर ध्यान देना बहुत स्वस्थ प्रवृत्ति है बशर्ते वह अनुपात से अधिक न हो जाये। जहाँ तक मेरा सवाल है मुझे तो कहानी कहने के दृष्टिकोण से फ्लाबेयर और मोपासा बहुत अच्छे लगते हैं क्योंकि उनमें पाठक को अपने जादू में बाँध लेने की ताकत है, वैसे उनके बाद चेखव कहानी के क्षेत्र में विचित्र व्यक्ति रहा है और मैं उसका लोहा मानता हूँ। चेख़व ने एक बार किसी महिला से कहा था, "कहानी कहना कठिन बात नहीं है। आप कोई चीज़ मेरे सामने रख दें, यह शीशे का गिलास, यह ऐश-ट्रे और कहें कि इस पर कहानी कहूँ। थोड़ी देर में मेरी कल्पना जागृत हो जायेगी और उससे सम्बद्ध कितने लोगों के जीवन मुझे याद आ जायेंगे और वह चीज़ कहानी का सुन्दर विषय बन जायेगी।"

15 अक्सर उनके मित्रों ने उन्हें समझाया कि आदमी में जीवन के प्रति अदम्य आस्था होनी चाहिए। मृत्यु से इस तरह का मोह तो केवल कायरता और विक्षिप्तता के लक्षण हैं, उनकी राह मुड़नी चाहिए पर फिर वे सोचते कि अपने कर्त्तव्य-पथ से विचलित हो रहे हैं। और उनका कर्तव्य तो मृत्युपथ पर अदम्य साहस से अग्रसर होते रहना है। ऐसा विचार आते ही वे फिर कछुए की तरह अपने को समेटकर अन्तर्मुख हो जाते। धीरे-धीरे उनकी स्थिति उस स्थितप्रज्ञ की भाँति हो गयी जिसे सुख-दुःख, मित्र-शत्रु, प्रकाश-तिमिर, सच और झूठ में कोई भेद नहीं मालूम पड़ता, जो समय और दिशा के बन्धन से छुटकारा पाकर पृथ्वी पर वृद्ध जीवों के बीच में जीवन्मुक्त आत्माओं की भाँति विचरण करते हैं। सामाजिक जीवन उन्हें बार-बार अपने शिकंजे में कसने का प्रयास करता था पर वे प्रेम के अलावा सभी चीज़ों को निस्सार समझते थे चाहे वह आर्थिक प्रश्न हो, या राजनीतिक आन्दोलन, मोतिहारी का अकाल हो, या कोरिया की लड़ाई,

शान्ति की अपील हो या सांस्कृतिक स्वाधीनता का घोषणा-पत्र, प्रेम सत्य है, प्रेम जो रस है, रस जो ब्रह्म है - (रसो वै स:-देखिए बृहदारण्यक-)।

16. लेकिन जब हम लोगों ने पूछा कि इसमें आख़िर उन्हें सन्तोष क्या मिलता था तो वे बोले, "मैं महसूस करता था कि मैं अन्य लोगों से कुछ अलग हूँ, मेरा व्यक्तित्व अनोखा है, अद्वितीय है और समाज मुझे समझ नहीं सकता। साधारण लोग अत्यन्त साधारण हैं, मेरी प्रतिभा के स्तर से बहुत नीचे हैं, मैं उन्हें जिस तरह चाहूँ बहका सकता हूँ। मुझसे अपने व्यक्तित्व के प्रति एक अनावश्यक मोह उसकी विकृतियों को भी प्रतिभा का तेज समझने का भ्रम और अपनी असामाजिकता को भी अपनी ईमानदारी समझने का अनावश्यक दम्भ आ गया था। धीरे-धीरे मैं अपने ही को इतना प्यार करने लगा कि मेरे मन के चारों ओर ऊँची-ऊँची दीवालें खड़ी हो गयीं और मैं स्वयं अपने अहंकार में बन्दी हो गया, पर इसका नशा मुझ पर इतना तीखा था कि मैं कभी अपनी असली स्थिति पहचान नहीं पाया।"

17. अन्त में मैंने फिर पूछा कि सूरज के सात घोड़ों से उनका क्या तात्पर्य था और सपने सूरज के सातवें घोड़े से कैसे सम्बद्ध हैं तो वे बड़ी गंभीरता से बोले कि, देखो ये कहानियाँ वास्तव में प्रेम नहीं वरन् उस ज़िन्दगी का चित्रण करती हैं जिसे आज का निम्न-मध्यवर्ग जी रहा है। उसमें प्रेम से कहीं ज्यादा महत्त्वपूर्ण हो गया है आज का आर्थिक संघर्ष, नैतिक विशृंखलता, इसीलिए इतना अनाचार, निराशा, कटुता और अँधेरा मध्यवर्ग पर छा गया है। पर कोई-न-कोई ऐसी चीज़ है जिसने हमें हमेशा अँधेरा चीरकर आगे बढ़ने, समाज-व्यवस्था को बदलने और मानवता के सहज मूल्यों को पुन:स्थापित करने की ताकत और प्रेरणा दी है। चाहे उसे आत्मा कह लो चाहे कुछ और। और विश्वास, साहस, सत्य के प्रति निष्ठा उस प्रकाशवाही आत्मा को उसी तरह आगे ले चलते हैं जैसे सात घोड़े सूर्य को आगे बढ़ा ले चलते हैं। कहा भी गया है, "सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च"।

व्याख्या के लिए निर्देश

"तो माणिक मुल्ला बोले ..... वही महेसर दलाल का लड़का"। स्वातंत्र्योतर पीढ़ी के प्रतिनिधि रचनाकार डॉ. धर्मवीर भारती का उपन्यास 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' उनकी शैल्पिक विशिष्टता का प्रतिमान है। लेखक ने इस उपन्यास में मध्यवर्ग के जीवन की दोहरी नैतिकता और प्रतिमान को अपने व्यंग्य का निशाना बनाया है। उपन्यास में प्रेमकथा के बहाने लेखक ने उन तमाम विकृतियों, अंधी नैतिकता और खोखले आदर्शों पर प्रश्नचिह्न लगाया है, जो मनुष्य की मौलिकता को नष्ट करते हैं।

उपन्यास का यह गद्यांश 'शीर्षक माणिक मुल्ला ने नहीं बताया' शीर्षक से तीसरे दोपहर की कहानी से प्रस्तुत है। इसमें तन्ना के व्यक्तित्व और उसके परिवार के विघटन की कहानी को चित्रित किया गया है।

माणिक मुल्ला व्यवस्था और नैतिकता के प्रश्न को पाठक के सामने रखते हैं। व्यवस्था की अनैतिकता के प्रश्न को भी पाठक के सामने उपस्थित करते हैं। व्यवस्था की अनैतिकता में लोगों की सामूहिकता की भी अनिवार्य जिम्मेदारी है। व्यक्ति अनैतिकता के जाल को विद्रोह के द्वारा ही भंग कर सकता है। नैतिक विकृति और झूठी मर्यादा लेखक की दृष्टि में एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। लेखक व्यक्ति से विद्रोह की आकांक्षा रखता है। लेकिन वह उसकी विवशता को रेखांकित करना भी नहीं भूलता। व्यवस्था के दबाव के नीचे व्यक्ति किस प्रकार की घुटन का अनुभव करता है, इसे तन्ना की जिंदगी में देखा जा सकता है।

किसी व्यवस्था की अनैतिकता बिना प्रतिकार के स्वीकार करना ही अवैध तरीके को जन्म देती है। लेखक ने जमुना का उदाहरण देकर अपनी बात को पुष्ट किया है।

वास्तव में जमुना अपने जीवन से हर कदम पर समझौता करती है। वह माणिक से यौन संबंध स्थापित करना चाहती है, नहीं कर पाती है। वह तन्ना से विवाह करना चाहती है, परंतु उससे विवाह नहीं हो पाता है। उसके नहीं चाहने पर भी बूढ़े जमींदार से विवाह हो जाता है। उसमें सन्तान की आकांक्षा है। लेकिन उसका पति उसमें असमर्थ है। वह रामधन तांगेवाले से संपर्क बढ़ाती है। उसी से उसे पुत्र भी प्राप्त होता है। सामाजिक नैतिकता के मानदंड पर उसके यह कार्य अनैतिक हैं। लेकिन व्यक्ति दमित इच्छा और आकांक्षा पर जब हम उसका मूल्यांकन करते हैं, तो सामाजिक नैतिकता के प्रतिमान बड़े ही स्थूल प्रतीत होते हैं।

नए सामाजिक परिवर्तन के बीच नैतिकता को नए तरह से बनाने की जरूरत है। उसे व्यापक संघर्ष की प्रक्रिया में ही हासिल किया जा सकता है। भारती जिस मध्यवर्गीय जीवन की तस्वीर को पेश करते हैं, उसमें मर्यादा के नाम पर भावों की अराजकता व्याप्त है। लेखक मानवीय भावों की आंतरिकता को वास्तविकता के आयाम में प्रतिपादित करने का पक्षधर है। क्योंकि कायरता के कारण इन भावों को प्रकट नहीं करने पर, व्यक्ति के व्यक्तित्व में कुंठा और घुटन पैदा होती है और यह कुंठा और घुटन उसके व्यक्तित्व को समाप्त कर देती है। जिंदगी चक्कर काटते बैल के समान अर्थहीन और अकारथ हो जाती है। इस बात को लेखक ने तन्ना की कहानी के दृष्टांत द्वारा स्थापित किया है।

विशेष

1. लेखक ने मध्यवर्गीय जीवन की कायरता को इस प्रसंग में उभारने का प्रयत्न किया है।
2. दृष्टांत द्वारा लेखक ने अपनी बात को स्थापित किया है।
3. माणिक अपने जीवन के अनुभव के सत्य द्वारा अपनी बातों को स्पष्ट करते हैं।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन
मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

MAHI-117
प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास

खंड

4

राग दरबारी

इकाई 13
स्वातंत्र्योत्तर भारत और 'राग दरबारी' 219

इकाई 14
'राग दरबारी' में व्यंग्य 234

इकाई 15
'राग दरबारी' की अंतर्वस्तु, संरचना-शिल्प और उसकी भाषा 251

इकाई 16
'राग दरबारी' के पात्र 263

परिशिष्ट 275

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रो. नित्यानंद तिवारी
दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रो. निर्मला जैन
ए-20/17, कुतुब एन्क्लेव, फेज़-1,
गुड़गाँव, हरियाणा

प्रो. मैनेजर पाण्डेय
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

प्रो. असगर वजाहत
जामिया मिलिया इस्लामिया
नई दिल्ली

प्रो. गोपाल राय
सी-3, कावेरी, इग्नो आवासीय परिसर,
मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

प्रो. सत्यप्रकाश मिश्र
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

प्रो. ललिताम्बा
इंदौर

संकाय सदस्य
प्रो. वी. रा. जगन्नाथन
प्रो. जवरीमल्ल पारख
प्रो. रीता रानी पालीवाल
डॉ. सत्यकाम
डॉ. राकेश वत्स
डॉ. शत्रुघ्न कुमार
डॉ. विमल खांडेकर
सुश्री स्मिता चतुर्वेदी

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

खंड लेखक	इकाई संख्या	खंड संपादक
प्रो लल्लन राय शिमला	13, 14, 15, 16	सुश्री स्मिता चतुर्वेदी
श्री संजीव कुमार दिल्ली	परिशिष्ट	**पाठ्यक्रम संयोजक** सुश्री स्मिता चतुर्वेदी वरिष्ठ व्याख्याता, हिन्दी विभाग इं.गा.रा.मु.वि.

सामग्री निर्माण सहयोग

मुद्रण
श्री कुलवंत सिंह
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)
मानविकी विद्यापीठ
इग्नू, नई दिल्ली

फरवरी 2004 (पुनर्मुद्रित)

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2002

ISBN-81-266-0518-9

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कार्य का कोई भी अंश इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफ (मुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

MAHI-117/216

खंड परिचय

एम.ए. (हिन्दी) के पाठ्यक्रम-15 का यह चौथा तथा अन्तिम खंड है। यह खंड श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास 'राग दरबारी' पर आधारित है। इस उपन्यास में लेखक ने स्वातंत्र्योत्तर भारत की सामाजिक, राजनीतिक एवं ग्रामीण व्यवस्था का यथार्थवादी दृष्टि से प्रस्तुतीकरण किया है। यह प्रस्तुतीकरण व्यंग्य व्यंजना के माध्यम से किया गया है। इस उपन्यास पर आधारित प्रस्तुत खंड में चार इकाइयाँ है।

खंड की पहली इकाई, इकाई सं.-13 'स्वातंत्र्योत्तर भारत और राग दरबारी' है। इस इकाई में पृष्ठभूमि के रूप में स्वातंत्र्योत्तर भारत के सामाजिक राजनीतिक परिवेश की जानकारी दी गई है। 'राग-दरबारी' में यह परिदृश्य लेखक ने किस प्रकार प्रस्तुत किया है, इसका भी विवेचन-विश्लेषण किया गया है।

इकाई-14 'राग दरबारी में व्यंग्य' है। इस उपन्यास में प्रयुक्त व्यंग्य के स्वरूप और सीमाओं पर इस इकाई में विचार किया गया है।

इकाई-15 'राग दरबारी की अंतर्वस्तु संरचनाशिल्प और उसकी भाषा' पर आधारित है। राग दरबारी की कथा का संगठन मौलिक तथा नवीन है, इसी कारण वह अपने कलेवर और विषय के प्रस्तुतीकरण में विशिष्ट कृति है। इस इकाई में उपन्यास की विषय-वस्तु, शिल्प पक्ष और भाषिक भांगिमाओं का विवेचन किया गया है।

इकाई-16 'राग दरबारी के पात्र' हैं। इस उपन्यास में लेखक ने समाज के बृहद् तथा विस्तृत रूप का उद्घाटन करने के लिए पात्र-संरचना की है। ये सभी पात्र एक विशेष वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस इकाई में उपन्यास के कुछ विशिष्ट पात्रों की प्रमुख विशेषताओं की चर्चा की गई है।

इन इकाइयों के साथ ही परिशिष्ट में हमने श्री लाल शुक्ल के जीवन और व्यक्तित्व तथा 'राग दरबारी' से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर चर्चा की है। इसमें उपन्यास के कुछ महत्वपूर्ण व्याख्यांशों के संकेत भी हमने दिए हैं। कुछ कठिन शब्दों के अर्थ भी दिए गए हैं जिससे उपन्यास को समझने में कठिनाई उपस्थित न हो।

इकाइयों का अध्ययन करने से पहले यह आवश्यक है कि आप 'राग दरबारी' उपन्यास का ध्यानपूर्वक अध्ययन करें।

इकाई 13 स्वातंत्र्योत्तर भारत और 'राग दरबारी'

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 श्रीलाल शुक्ल के अन्य उपन्यास

13.3 स्वातंत्र्योत्तर भारत का समाज–राजनीतिक परिदृश्य

13.4 'राग दरबारी' और स्वातंत्र्योत्तर भारत का यथार्थ

- 13.4.1 राजनीतिक क्षेत्र
- 13.4.2 शिक्षा क्षेत्र
- 13.4.3 प्रशासन-व्यवस्था
- 13.4.4 न्याय-व्यवस्था
- 13.4.5 सामुदायिक विकास-क्षेत्र : ग्राम सभा और पंचायत व्यवस्था
- 13.4.6 गाँव-समाज की वास्तविक स्थिति

13.5 सारांश

13.6 अभ्यास प्रश्न

13.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप हिन्दी के एक विशिष्ट उपन्यास 'राग दरबारी' के प्रमुख कथ्य का अध्ययन करने जा रहे हैं। इसके लिए आवश्यक है कि आप श्रीलाल शुक्ल के अन्य उपन्यासों का भी संक्षिप्त परिचय प्राप्त करें। इससे आप यह समझ सकेंगे कि 'सूनी घाटी के सूरज' से चलकर 'राग दरबारी' से होते हुए अपने अंतिम उपन्यास 'बिस्रामपुर का संत' की ठोस भावभूमि पर उपन्यासकार किस प्रकार पहुँचता है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- 'राग दरबारी' की पृष्ठभूमि के रूप में स्वातंत्र्योत्तर भारत के समाज-राजनीतिक परिदृश्य से परिचित हो सकेंगे;
- 'राग दरबारी' के मुख्य कथ्य-स्वातंत्र्योत्तर भारत के यथार्थ-का विवेचन-विश्लेषण कर सकेंगे;
- ग्राम समाज की वास्तविक स्थिति का उद्घाटन करते हुए, उसे समूचे राष्ट्रीय विकास के दर्पण के रूप में समझ सकेंगे; और
- वस्तुत: 'राग दरबारी' का शिवपाल गंज समूचे भारतीय ग्राम समाज का ही नहीं, परन् पूरे भारत वर्ष के स्वातंत्र्योत्तर यथार्थ का प्रतीक बन गया है – इस तथ्य का विवेचन कर सकेंगे।

13.1 प्रस्तावना

'राग दरबारी' व्यापक कथ्य, गहरी संवेदना और भाषिक संरचना की दृष्टि से एक विशिष्ट व्यंग्यात्मक औपन्यासिक कृति है। वर्तमान युग की औपन्यासिक अनिवार्यता से भी यह कहीं विचलित नहीं हुआ है। एक गद्य विधा के रूप में उपन्यास की मूलभूत विशेषता पर प्रकाश डालते हुए रैल्फ फॉक्स ने अपने ग्रंथ 'उपन्यास और लोकजीवन' में लिखा है कि 'उपन्यास केवल मात्र कथात्मक गद्य नहीं है। वह मानव के जीवन का गद्य है - ऐसी पहली कला है, जो

सम्पूर्ण मानव को लेकर उसे अभिव्यक्ति प्रदान करने की चेष्टा करती है।' लोकजीवन के साथ गहरा सम्पर्क 'राग दरबारी' की मूलभूत विशेषता है। श्री लाल शुक्ल ने हिंदी के स्वातंत्र्योत्तर रचनाकारों में एक व्यंग्यकार के रूप में अपनी अलग पहचान बनाई है। इस पहचान का ठोस आधार है, सामाजिक-राजनीतिक जीवन से उनकी गहरी पहचान। भारत का स्वाधीनता संग्राम जिस स्वतंत्रता, समानता और भाई-चारे की न्यायपूर्ण व्यवस्था के लिए लड़ा गया था, स्वातंत्र्योत्तर काल में उसकी उपलब्धि नहीं हो पायी। एक संवदेनशील लेखक के रूप में श्रीलाल शुक्ल में सम्पूर्ण अराजक व्यवस्था और उत्पीड़ित जनजीवन को लेकर गहरा असंतोष दिखायी देता है। कबीर, भारतेन्दु; निराला, नागार्जुन आदि रचनाकारों ने सामाजिक व्यवस्था के प्रति अपने असंतोष को अपनी तीखी व्यंग्यात्मक शैली में अभिव्यक्ति प्रदान की है। इस परंपरा को आगे बढ़ाते हुए हरिशंकर परसाई के साथ श्रीलाल शुक्ल ने स्वातंत्र्योत्तर सामाजिक-राजनीतिक विसंगतियों का पर्दाफाश अपनी व्यंग्यात्मक शैली में अत्यंत कौशल के साथ किया है।

श्रीलाल शुक्ल का जन्म 1925 ई. में लखनऊ जनपद के अतरौली गाँव में हुआ था। प्रयाग विश्वविद्यालय, इलाहाबाद से बी.ए. की उपाधि प्राप्त करने के बाद 1949 ई. में इनका चयन लोक सेवा आयोग, उत्तर प्रदेश के लिए हुआ। बाद में आई.ए.एस में प्रोन्नत होकर वित्त, स्वास्थ्य, सहकारिता आदि मंत्रालयों में काम करते हुए वे 1983 ई. में सेवा निवृत्त हुए। उन्होंने आठ उपन्यासों की रचना की जिनका परिचय हम अलग शीर्षकों के अंतर्गत इकाई में आगे देंगे। यहाँ यह व्यंग्यकार के रूप में भी इनका परिचय प्राप्त कर लेना आपके लिए उपयोगी हो सकता है। क्योंकि श्रीलाल शुक्ल के रचनाकार रूप का आरम्भ व्यंग्य लेखक के रूप में ही हुआ है और 'राग दरबारी' व्यंग्यात्मक उपन्यास का अप्रतिम उदाहरण है।

'अंगद का पाँव', 'यहाँ से वहाँ तक', 'कुछ जमीन कुछ हवा में', 'आओ बैठ लें कुछ देर' आदि इनके प्रमुख व्यंग्य संग्रह हैं। इनमें आए 'होरी और उन्नीस सौ चौरासी', 'धुँधलके में समाज सेवा', 'जीती जागती सरकार का एक हसीन सपना', 'संस्कृत पाठशाला में प्रसाद', 'बया और बन्दर की कहानी: एक रिसर्च स्कालर की जबानी', 'दुराचार बनाम भ्रष्टाचार', 'जनवाणी बनाम महाजनवाणी', राजनीतिज्ञों की पंचायत', 'तलाश जारी है आदमी की' आदि कुछ शीर्षकों के माध्यम से इनके कथ्य की ओर स्पष्ट संकेत हो जाता है। वस्तुत: 'राग दरबारी' उपन्यास के कथ्य अपनी व्यंग्यात्मक शैली में इनमें संम्पूर्णता के साथ समाविष्ट हुए हैं। इनमें से कुछ को आप देख-पढ़ सकें तो 'रागदरबारी' को समझने में पर्याप्त सहायता मिलेगी।

जनजीवन के बहुमुखी विकास की तमाम सारी लोक-लुभावनी घोषणाओं के बावजूद बहुसंख्यात्मक साधारण आदमी का जीवन बद-से-बदतर हो गया है। एक प्रशासनिक अधिकारी और जनजीवन से गहराई के साथ जुड़े होने के कारण श्रीलाल शुक्ल इस स्थिति से आहत हुए हैं। फलस्वरूप राग दरबारी में बीस-बाईस वर्ष के विकास की तथाकथित उपलब्धियों की विकलांगता और विद्रूपता को उन्होंने निर्ममता के साथ अनावृत्त किया है। उपन्यास की मुख्यस्थली शिवपालगंज भीखमखेड़ा ग्राम पंचायत के अन्तर्गत आने वाला एक गाँव है। लेकिन इस गाँव से किसान लगभग गायब हैं। अनेक प्रकार की सरकारी-गैरसरकारी व्याधियों से ग्रस्त इस गाँव में वैद्य जी हैं, जो अपनी वैद्यकी के साथ ही सहकारी समिति के मैनेजिंग डायरेक्टर और छंगामल विद्यालय इण्टर कॉलेज के मैनेजर हैं। अब उनकी नज़र गाँव के प्रधान के पद पर है। वहाँ बकवास करने वाला 'गंजहों' के साथ झूठी गवाही देने में माहिर पं. राधेलाल, ग्रांटखोरी के माहिर कालिका प्रसाद, जुवाड़ी-शराबी जोगनाथ, छात्र-नेता, रुप्पन, कुंठित-रीढ़हीन रिसर्च स्कालर रंगनाथ के साथ ही प्रिंसिपल, सुपरवाइज़र, मास्टर, थानेदार, सनीचर जैसे लोग हैं। इन्हीं से गाँव का व्यक्तित्व निर्मित किया गया है। अपने इस रूप में शिवपालगंज एक गाँव न होकर समूचे भारत के प्रतिनिधि के रूप में चित्रित हुआ है। आगे हम इसे व्यापक संदर्भों में समझने-समझाने का प्रयास करेंगे।

13.2 श्रीलाल शुक्ल के अन्य उपन्यास

एक उपन्यास के रूप में 'राग दरबारी' का विवेचन-विश्लेषण और मूल्यांकन करने के लिए श्रीलाल शुक्ल के अन्य उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय आपके लिए उपयोगी होगा। एक उपन्यासकार और व्यंग्यकार के रूप में श्रीलाल शुक्ल अपना विशिष्ट स्थान बना चुके हैं। अब तक उनके आठ उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं, जिनका संक्षिप्त परिचय आगे दिया जा रहा है।

1. सूनीघाटी का सूरज - यह उपन्यास 1957 ई. में प्रकाशित हुआ था। इसके अन्तर्गत उपन्यासकार ने गरीब किन्तु मेधावी ग्रामीण रामदास के शिक्षाकालीन जीवन का चित्रण किया है। इस प्रक्रिया में उसने जमींदारों, ठेकेदारों के शोषण, अपराधियों और पुलिस व्यवस्था की ज्यादतियों, विश्वविद्यालयों में छात्र नेताओं, प्रोफेसरों, राजनीतिक नेताओं आदि का भी कुशलतापूर्वक चित्रण किया है। अनेक बाधाओं से जूझता हुआ रामदास एम.ए. और अनुसंधान कार्य समाप्त कर विश्वविद्यालय में लेक्चरर बनना चाहता था। लेकिन अंतत: सिफारिश के अभाव में उसे विवश होकर गाँव के एक स्कूल में अध्यापक बनना पड़ा। इस उपन्यास में श्रीलाल शुक्ल ने देश में व्याप्त शोषण के अनेक क्षेत्रों का उद्घाटन करते हुए विश्वविद्यालयों में भी गरीब शिक्षार्थियों के शोषण का चित्रण किया है। रामदास द्वारा आरम्भिक अर्थशास्त्र पर लिखी गयी पुस्तक प्रोफेसर सिन्हा के नाम से प्रकाशित हुई जो शिक्षा जैसे बौद्धिक क्षेत्र के लिए एक कलंक है।

2. अज्ञातवास - इस उपन्यास का प्रकाशन 1961 ई. में हुआ। अज्ञातवास में मध्यवर्गीय रजनीकान्त और उसकी पत्नी रानी के सम्पूर्ण जीवन का चित्रण है। रजनीकान्त गाँव का होकर भी वहाँ की आन्तरिकता से अपरिचित है। ग्रामीण परिवेश में रची-बसी अपनी सुशीला पत्नी रानी से उदासीन होकर वह डॉ. सीता दत्त को अपनी उपपत्नी बनाता है। लेकिन डॉ. सीता दत्त पूरी स्थिति से परिचित होने के बाद अपना सम्बंध तोड़ लेती है। इसके बाद रजनीकांत रानी से रागात्मक लगाव न होने के बावजूद शारीरिक संबंध स्थापित करना चाहता है। लेकिन इससे असंतुष्ट रानी रजनीकान्त को छोड़कर अपने गाँव चली जाती है। जहाँ दो वर्षों के पश्चात् उसका देहान्त हो जाता है। माँ-बाप के संबंधों की असलियत जानकर जब रजनीकांत की बेटी प्रभा उससे कहती है, 'पापा तुमने माँ का तिरस्कार किया। आप, उन्हें अपनी उन्नति में बाधा मानते थे। घर आने पर भी आपने उनका तिरस्कार किया। इससे रजनीकांत के जीवन में एक बदलाव अवश्य आया, लेकिन तब, जब सब कुछ समाप्त हो गया था। इस उपन्यास में श्री लाल शुक्ल ने मध्य वर्ग के अन्तर्गत पारिवारिक संबंधों की कटुता और मानवीय भावना के गिरते हुए स्तर के साथ ही असहाय किसानों का जमींदारों द्वारा निर्मम शोषण भी चित्रित किया है।

3. राग दरबारी - 'राग दरबारी' का प्रकाशन 1968 ई. में हुआ है। इस प्रतीकात्मक और ग्रामीण परिवेश के यथार्थवादी उपन्यास के माध्यम से श्रीलाल शुक्ल ख्याति के शिखर तक पहुँचे। 1970 ई. में साहित्य अकादमी के पुरस्कार ने इसकी ख्याति में चार चाँद लगा दिया। कहने को तो इस उपन्यास की कथावस्तु शिवपाल गंज तक ही सीमित है, लेकिन इसकी अन्तर्वस्तु देशव्यापी है। उपन्यास के केन्द्रीय चरित्र वैद्यजी हैं। वे बद्री पहलवान और रुप्पन के पिता और रंगनाथ के मामा हैं। पेशे से वैद्य होने के साथ ही वे छंगामल इण्टर कॉलेज में मैनेजर, कोऑपरेटिव यूनियन के मैनेजिंग डायरेक्टर और अपने दरबारी सनीचर की आड़ में ग्रामसभा के प्रधान भी हैं। इस प्रकार वे उस राजनीतिक संस्कृति के साक्षात प्रतीक हैं, जो प्रजातंत्र और लोकहित के नाम पर हमारे चारों ओर फल-फूल रही है। वस्तुत: इस उपन्यास में प्रतीकात्मक-रूप में स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज में व्याप्त अराजकता, भाई-भतीजावाद, अवसरवादिता, लूट-खसोट, भ्रष्टाचार, चुनावी छद्म, प्रशासनिक एवं न्यायिक विद्रूप को अत्यंत कौशल के साथ उजागर किया गया है। राग दरबारी आपके पाठ्यक्रम में निर्धारित उपन्यास है, जिसके अन्यान्य पहलुओं पर हम आगे यथास्थान विस्तार से विचार करेंगे।

4. सीमाएँ टूटती है - यह उपन्यास 1973 ई. में प्रकाशित हुआ। व्यापारी दुर्गादास द्वारा अपने पार्टनर गोविन्द की हत्या के कारण उसे आजीवन कारावास होता है। दुर्गादास के मित्र विमल, पुत्र राजनाथ, पुत्रवधू नीला, पुत्री चाँद आदि सजा के निर्णय के विरुद्ध कोर्ट में अपील करते हैं। प्रस्तुत उपन्यास दुर्गादास-हत्याकांड, विमल चाँद प्रणय संबंध, विमल जुही प्रेम प्रकरण को अत्यंत मनोरंजक ढंग से चित्रित करता है। वस्तुत: खाते-पीते सम्पन्न वर्ग की मनोदशा का चित्रण ही इस उपन्यास का उद्देश्य लगता है।

5. आदमी का जहर - यह उपन्यास 1974 ई. में प्रकाशित हुआ। इसकी विषयवस्तु भी 'सीमाएँ टूटती है' की तरह हत्या और प्रेम संबंधों में आई दरार है। दोनों में छान-बीन के बाद वास्तविक हत्यारा दूसरा निकलता है। उपन्यास का नायक हरिशचंद्र रूबी को बहुत प्रेम करता है। लेकिन ब्लैक मेलिंग में माहिर एक पत्रकार अजीत सिंह के साथ रूबी के संबंध पर उसे आशंका है। अत: रूबी के साथ होटल कमरे में बैठे अजीत सिंह पर हरिशचंद्र रिवाल्वर से जानलेवा हमला करता है। गोली निकाल देने के बाद अजीत सिंह खतरे से बाहर घोषित कर दिया जाता है। लेकिन अचानक हुई उसकी मृत्यु के बाद पोस्टमार्टम की रिपोर्ट से पता चलता है कि उसकी मृत्यु जहर खाने से हुई है। इसके पश्चात् हरिशचंद्र के साथ रूबी को भी हिरासत में ले लिया जाता है। लेकिन छान-बीन के पश्चात् अजीत सिंह को जहर देने वाला एक नेता शान्ति प्रकाश पकड़ा जाता है, जो अजीत सिंह की तरह व्यभिचार में लिप्त था और उसे अपने रास्ते का कांटा समझकर समाप्त करना चाहता था। 'सीमाएँ टूटती हैं' की तरह यह उपन्यास भी जासूसी प्रकृति का है।

6. मकान - यह उपन्यास 1976 ई. में प्रकाशित हुआ, जो डायरी शैली में लिखा गया है। पूरा उपन्यास एक प्रसिद्ध सितारवादक और नगर-निगम के असिस्टेण्ट पद पर नियुक्त नारायण बैनर्जी की मकान संबंधी समस्या को लेकर लिखा गया है। अन्तत: उसे मकान एलॉट कर दिया गया। दूसरे ही दिन शहर के बड़े-बड़े संभ्रांत आफिसर उन्हें बधाई देने पहुँचते हैं। उसका बड़ा बेटा पिण्टू और शिष्या श्यामा मकान देखकर प्रसन्न होते हैं। लेकिन मकान पर काबिज होने के पहले नारायण बैनर्जी की हत्या कर दी जाती है। इस शोक के अवसर पर उसके सितारवादन के कार्यक्रम रेडियो से प्रसारित हुए, नगर-निगम और प्रदेश की संगीत कला का दफ्तर पूरे दिन बंद रहा, गुण्डा विरोधी अभियान चलाया गया। सरकारी घोषणा के अनुसार वह मकान नारायण की पत्नी को रियायती दर पर एलॉट किया गया, उसे अध्यापिका की नौकरी मिली तथा बेटे पिण्टू को हाउसिंग इंसपेक्टर के पद पर नियुक्त किया गया। इस उपन्यास में श्रीलाल शुक्ल ने नारायण बैनर्जी की सीधी कहानी न लिखकर मकान की समस्या के साथ-साथ समाज में व्याप्त भाई-भतीजावाद, नौकरशाही का भ्रष्टाचार, नेताओं का अनैतिक आचरण, रिश्वतखोरी, गुण्डागर्दी आदि का विस्तार से पर्दाफाश किया है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में जिस गति से विकास योजनाएँ लागू की गयीं, उससे भी तीव्र गति से भ्रष्टाचार अपनी जड़ें मजबूत करता हुआ विशाल बरगद की तरह पूरे देश में फैल गया। सारी समस्याएँ उसकी सन्तानें हैं, जो समाज को भीतर से घुन की तरह खाकर खोखला कर रही हैं। ये सारे तथ्य 'मकान' में अत्यंत कौशल के साथ व्यंग्यात्मक शैली में बुने गए हैं।

7. पहला पड़ाव - यह उपन्यास 1987 ई. में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में श्रीलाल ने मुख्य रूप से भवन-निर्माण और ईंट के भट्ठों पर काम करने वाले राज-मिस्त्रियों, मजदूरों, ठेकेदारों, इंजीनियरों और शिक्षित बेरोजगारों के जीवन को अत्यंत यथार्थपरक ढंग से प्रस्तुत किया है। भवन-निर्माण के साथ ही ईंट के भट्ठों पर काम करने वाले मजदूरों की वास्तविक स्थिति पर टिप्पणी करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है, 'मजदूरों के दलाल उन्हें एडवांस देकर यहाँ ले आते हैं, पर पूरे खानदान के खानदान मजदूरी की तलाश में इतनी दूरी तक आकर क्या पाते हैं ? आधी-तिहाई मजदूरी सुअरबाड़े जैसी झोपड़ियाँ, बेइज्जती, बीमारी। कानून में बँधुआ न होते हुए भी ये सबसे बड़ी जकड़ में फँसे हुए बँधुआ मजदूर हैं।' इस प्रकार की अमानवीय जिन्दगी जीने वाले मजदूरों के साथ ही उपन्यासकार ने मालिक, ठेकेदार और इंजीनियरों के क्रूर कारनामों का भी यथार्थ चित्रण किया है। उपन्यास में शिक्षित बेरोजगार

समुदाय और शोषक वर्ग दोनों का प्रतिनिधि बनकर आने वाले मुंशी (सत्ते) अर्थशास्त्र में एम.ए. है। लेकिन सारी स्थितियों से परिचित होने के बाद वह अंतत: शोषित मजदूरों को बेहतरी के लिए संघर्ष हेतु कटिबद्ध हो जाता है। अपने निजी स्वार्थ का परित्याग कर मजदूरों का साथ देने का उसका दृढ़ संकल्प ही पहला पड़ाव अर्थात पहली सीढ़ी है। शोषण और भ्रष्टाचार के विरुद्ध प्रतिरोध का यह रूप श्रीलाल शुक्ल के उपन्यासों में पहली बार प्रकट हुआ है। उपन्यासकार ने 'राग दरबारी' जैसी व्यंग्यात्मक शैली अपनाकर इस उपन्यास को सुरुचिपूर्ण ढंग से पठनीय बनाया है।

8. बिस्रामपुर का संत - बिस्रामपुर का संत 1998 ई. में प्रकाशित हुआ। यह समकालीन जीवन की ऐसी महागाथा है, जिसका फलक अत्यंत विस्तीर्ण है। इसकी कथा एक साथ कई स्तरों पर चलती है, जिसे कुछ आलोचकों ने श्रीलाल शुक्ल का सर्वोत्तम उपन्यास माना है। 1999 ई. में बिड़ला फाउण्डेशन के 'व्यास सम्मान' से सम्मानित इस उपन्यास की मूल चेतना और महत्व को उद्घाटित करते हुए पंकज गौतम ने राष्ट्रीय सहारा के सत्रह जनवरी, 2001 के अंक में 'औपन्यासिक विमर्श: तीसरा चेहरा' शीर्षक के अन्तर्गत लिखा है, "औपन्यासिक संरचना में वह सामाजिक दृष्टि भी जरूरी होती है, जो सापेक्ष वैयक्तिकता के सहारे यथार्थ में पैठकर रचनाशील का हिस्सा बनती है। इसका औपन्यासिक उदाहरण है श्रीलाल शुक्ल का 'बिस्रामपुर का संत'। मध्यवर्गीय अवस्थाओं का कुछ ऐसा रूप, जिसमें संवेदनहीन सत्ता का खेल जारी है। आर्थिक और राजनीतिक भ्रष्टाचार के दलदल में भारतीय समाज के बदले चेहरे को पढ़ने का यह नाम माध्यम है। 'राग दरबारी' की 'चुहुल' और उपहास-मुद्रा से उबरते हुए श्रीलाल शुक्ल ने अपनी कल्पनाशीलता का बेहतर उपयोग इस उपन्यास में किया है।"

यह लम्बा उद्धरण इसलिए दिया गया है कि आप 'राग दरबारी' से 'बिस्रामपुर का संत' की सामाजिक दृष्टि और लेखकीय सरोकार को अलगा सकें। इसके साथ ही आपको इस बात का भी ध्यान रखना होगा कि 'राग दरबारी' में चुहुलबाजी और उपहास की मुद्रा इतनी हावी हो गयी है कि पात्रों के प्रति पाठक की अपेक्षित सहानुभूति नहीं हो पाती इसका मूल कारण है लेखक में प्रगतिशील सामाजिक दृष्टि का अभाव, जिसके कारण वह हर प्रकार की विकृतियों में ही रस लेने लगता है, उसे कोई परिप्रेक्ष्य नहीं देता। इस स्थिति में उपन्यासकार 'पहला पड़ाव' और 'बिस्रामपुर का संत' - दोनों उपन्यासों में एक अपेक्षित सामाजिक दृष्टि का परिचय देता है। फिर भी 'चुहुलबाजी' और उपहास-मुद्रा के आरोप से 'राग दरबारी' को खारिज नहीं किया जा सकता। उपहास की व्यंग्य में एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इस विषय पर हम इस इकाई से आगे विचार करेंगे।

'बिस्रामपुर का संत' की कथा का मुख्य केंन्द्र एक भूतपूर्व ताल्लुकेदार और अब राज्यपाल कुँवर जयंती प्रसाद सिंह की अन्तर्कथा के रूप में महत्वाकांक्षा, आत्मछल, कुण्ठा आदि की कहानी मात्र न होकर वर्तमान भारत के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक तंतुओं से भी बुनी गयी है। इसमें स्वाधीन देश की सरकार में सामंती तत्वों की पैठ और भ्रष्टाचार के नित नए रूपों के साथ ही आचार्य विनोबा भावे का भूदान आन्दोलन भी उभर कर सामने आया है। सब मिलाकर यह उपन्यास वर्तमान भारत का राजनीतिक, समाज नीतिक और अर्थनीतिक दस्तावेज बन गया है। अपने कुकृत्यों से दु:खी जयंती प्रसाद की आत्महत्या जहाँ पुरातन की समाप्ति का द्योतक है, वहीं नवीन के सूत्रपात का संकेतक भी।

इस उपन्यास का 'राग दरबारी' के संदर्भ में सर्वाधिक महत्व इस बात को लेकर है कि 'राग दरबारी' में श्रीलाल शुक्ल ने भूदान के संबंध में कई जगह कटाक्ष किए हैं। बार-बार भूदानी मुद्रा, भूदानी नमस्कार जैसे शब्दों का प्रयोग, थानेदार द्वारा भूदानी कार्यकर्त्ता की भगल (वेश) में आने वाले चोरों का उल्लेख ही नहीं, शिवपाल गंज के उस लम्बे-चौड़े ऊसर-बंजर मैदान का, जिसे भूदान में विनोबा भावे को दिया गया है, का जिक्र करके उसकी हास्यास्पदता को उजागर किया गया है। लेकिन 'बिस्रामपुर का संत' में भूदान आन्दोलन को मंच बनाकर उसको विस्तार से चित्रित किया गया है। उपन्यास के नायक कुँवर जयंती प्रसाद सिंह का विवाह-प्रस्ताव भूदान की हास्यास्पदता को पूरी तरह उजागर करता है। आचार्य विनोबा भावे

के नाम के कारण भूदान आन्दोलन को जो मर्यादा मिली थी, उसे देखते हुए श्रीलाल शुक्ल को इस उपन्यास के अन्त में परिशिष्ट के रूप में अलग से भूदान का इतिहास और परिणति पर विस्तार से लिखना पड़ा है।

13.3 स्वातंत्र्योत्तर भारत का समाज-राजनीतिक परिदृश्य

15 अगस्त, 1947 को प्राप्त भारत की स्वतंत्रता कांग्रेस के नेतृत्व में भारत की बहुसंख्यक जनता के कठोर संघर्ष की महत्तम उपलब्धि है। अपने जातीय और साम्प्रदायिक भेद-भाव को भुलाकर जनता ने जिस एकजुटता का परिचय दिया है, वह अपने-आप में बेमिसाल है। बड़े उत्साह और मनोयोग के साथ देश का संविधान निर्मित हुआ। इसके अन्तर्गत भारत संसदीय प्रणाली के तहत गणतंत्र के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। प्रथम आम चुनाव के बाद प्रत्येक राज्य की विधान सभाओं के साथ केन्द्र में संसद अस्तित्व में आयी। अपने चुने हुए प्रतिनिधियों से देश की आमजनता में पनी खुशहाली की उम्मीदें बलवती हुईं। जमींदारी उन्मूलन के माध्यम से खेतों पर काबिज काश्तकारों को जमीन दी गयी। संविधान की भूमिका में प्रस्तावित राज्य के नीति निर्देशक तत्वों के तहत बहुत से प्रदेशों में ग्राम पंचायत व्यवस्था कायम हुई है। इससे एक आशा और विश्वास का वातावरण समूचे देश में व्याप्त हुआ।

प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर देश की एक नयी छवि बनी। बादुंग कान्फ्रेंस, कोलम्बो प्लान, सहअस्तित्व, पंचशील, भारत-चीन मैत्री संबंध, रूस के साथ सुरक्षा-समझौता और आर्थिक संबंध, गुटनिरपेक्षता की नीति आदि के माध्यम से पं. नेहरू ने भारत को विश्व के मानचित्र पर एक महत्वपूर्ण राष्ट्र के रूप में प्रतिष्ठित किया। लेकिन यह सब सिक्के का एक पहलू मात्र है। उसका दूसरा पहलू पर्याप्त भिन्न है।

1947 ई. की स्वाधीनता के बाद भारत की स्वाधीन सरकार ने मिश्रित अर्थव्यवस्था की आड़ में देश के विकास के लिए जो पूँजीवादी रास्ता अपनाया उससे देश की आम जनता, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्र की जनता की बदहाली बढ़ती गयी। भारतीय अर्थतंत्र पर अंग्रेजों तथा उनके सामंती तथा इजारेदार सहायकों के प्रभुत्व को समाप्त किए बिना देश की जनता का आर्थिक विकास दिवास्वप्न मात्र सिद्ध हुआ। इसके चलते देश की जनता की आर्थिक उन्नति तो दूर रही, अवनति को रोकने का संघर्ष और अधिक कठिन हो गया। शासन सत्ता समाज से, जनता के एक बहुत बड़े समुदाय से कटकर एक अत्यंत सीमित वर्ग के हाथों में केन्द्रित हो गयी। स्वतंत्रता आन्दोलन की मूल कारक शक्ति जनता उपेक्षित रह गयी। सेना, पुलिस, नौकरशाही, न्याय व्यवस्था आदि के रूप में राजसत्ता पूँजीवादी व्यवस्था का अंग बनी। भारत जैसे धर्म बहुल देश में धर्मनिरपेक्षता की नीति समाज निरपेक्षता के रूप में प्रतिफलित हुई। फलस्वरूप समाज सुधार संबंधी कार्य अधूरे रह गए। इससे समाज की विघटनकारी शक्तियों को खुलकर खेलने की छूट मिली। स्थान-स्थान पर जातीय और साम्प्रदायिक दंगे हुए। स्वतंत्रता मनमानी लूट-खसोट की स्वतंत्रता का पर्याय बन गयी। सम्प्रदायवाद, जातिवाद, भाई-भतीजावाद को निजी ही नहीं, सार्वजनिक संस्थानों से भी बढ़ावा मिला। इस आपाधापी, मनमानी का सर्वाधिक शिकार ग्रामीण क्षेत्र बने।

पंचवर्षीय योजनाओं, पंचायत-व्यवस्था, जमींदारी उन्मूलन, भूदान आन्दोलन के लाभ से साधारण किसान जनता वंचित रही। सहकारी समितियों, विकास खंडों की स्थापना का लाभ ग्रामीण क्षेत्र के मुट्ठी भर प्रभावशाली सम्पन्न व्यक्तियों और नौकरशाही द्वारा उठाया गया। लेकिन इस ताम-झाम का पूरा बोझ साधारण गरीब किसान जनता के सिर पर पड़ा। प्रशासनिक स्तर पर वित्त, स्वास्थ्य और सहकारिता मंत्रालयों से संबद्ध श्रीलाल शुक्ल को स्वातंत्र्योत्तर सामाजिक-राजनीति का गहन अनुभव था। इसे उन्होंने अपने उपन्यास 'राग दरबारी' में बड़ी ही कलात्मकता से समाविष्ट किया है। इस तथ्य पर आगे विस्तार से विचार किया जाएगा।

13.4 राग दरबारी और स्वातंत्र्योत्तर भारत का यथार्थ

13.4.1 राजनीतिक क्षेत्र

'राग दरबारी' कोई राजनीतिक उपन्यास नहीं है। इसमें किसी भी महत्वपूर्ण राजनीतिक घटना को कहीं भी, किसी भी रूप में प्रत्यक्ष रूप से कथा का आधार नहीं बनाया गया है। लेकिन उपन्यास में घटित घटनाओं, पात्रों के मनोभावों, उनकी चारित्रिक विशेषताओं की पुष्टि के लिए कतिपय राजनीतिक तथ्यों का संकेत इस प्रकार हुआ है कि तत्कालीन राजनीति पर श्रीलाल शुक्ल का कटाक्ष उजागर हो जाता है। इस दृष्टि से उपन्यास के फ्लैप पर उल्लिखित यह अंश अत्यंत महत्वपूर्ण है, 'शिवपाल गंज की पंचायत, कॉलेज की प्रबंध समिति और कोऑपरेटिव सोसायटी के सूत्रधार वैद्य जी साक्षात् वह राजनीतिक संस्कृति हैं जो प्रजातंत्र और लोकहित के नाम पर हमारे चारों ओर फल-फूल रही है। कुछ उदाहरणों के माध्यम से आप इस तथ्य को आसानी से समझ सकेंगे। पंचायत चुनाव में वैद्यजी की नाइंसाफी और अपने बड़े भाई बद्री पहलवान के कारनामों से असंतुष्ट रुप्पन की मनोदशा का चित्रण करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है :

'यानी उस लड़के (रुप्पन) के मन में वह बेचैनी पैदा हो गयी थी, जिसकी वजह से आदमी विभीषण, ट्राटस्की या सुभाषचंद्र बोस बनकर कुछ कर दिखाना चाहता है और अंत में फाँसी के तख्ते पर, जेल में या जयप्रकाश नारायण और अच्युत पटवर्धन के संन्यास में जाकर दम लेता है।' (पृ. 295)

इसी संदर्भ में रंगनाथ की मनोदशा का चित्रण करते हुए लेखक ने लिखा है : 'सनीचर की विजय के दिन उसने बहुत सोच डाला और उस दौरान उसे प्रदेश की राजधानियों में न जाने कितने वैद्यजी और मंत्रियों और मुख्यमंत्रियों की कतार में न जाने कितने सनीचर घुसे हुए दीख पड़े।' (पृ. 295) इसके अंतर्गत देश की जनतांत्रिक प्रणाली पर एक गहरा कटाक्ष हुआ है। भारतीय राजनीति के कर्णधारों की गुटनिरपेक्षता और तटस्थता की नीति पर भी उपन्यासकार ने इसी पद्धति से कटाक्ष किया है। रामनगर ग्राम सभा से प्रधान पद के उम्मीदवार रिपुदमन और शत्रुघ्न के प्रति मतदाताओं ने पहले तटस्थ रहने का निर्णय किया। लेकिन जब उन्हें मालूम हुआ कि फर्जी जमीन प्राप्त करने के लिए प्रधान पद काफी महत्वपूर्ण है, तब उन्होंने पंचायत चुनाव में एक गुट का सक्रिय समर्थन करने का निर्णय लिया। इस पर टिप्पणी करते हुए लेखक ने लिखा है, 'फिर उनके (मतदाताओं के) सामने वही मानसिक समस्या पैदा हो गयी जो चीनी हमले के मौके पर आचार्य कृपलानी ने पूरे देश के सामने पैदा कर दी थी। वे सोचने लगे कि तटस्थ रहना बिल्कुल बेकार है और उसमें कमजोरी भी है और नुक्सान भी।..... अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में तटस्थता की समस्या को हम लोग तो चुपचाप कतराकर झेल गए क्योंकि इस तरह से हम कई समस्याओं को झेल चुके थे। लेकिन ..... ।' (पृ. 251)

छोटे पहलवान द्वारा बद्री के सामने गोपनीयता की शपथ पर टिप्पणी करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है, 'छोटे ने निष्ठापूर्वक गोपनीयता की शपथ ली। पर वह शपथ गोपनीयता की उन सभी शपथों जैसी थी जो राजभवनों में ली जाती है।' (पृ. 294) यहाँ राजभवनों मे आयोजित शपथ समारोह की वास्तविकता पर गहरा कटाक्ष किया गया है। श्रीलाल शुक्ल एक प्रशासनिक अधिकारी रहे हैं, अत: बहुत से राजनीतिक तथ्यों को उन्होंने अत्यंत सांकेतिक ढंग से उजाकर किया। उदाहरणस्वरूप छोटे पहलवान द्वारा डाँटे जाने पर ग्राम सभा के प्रधान सनीचर की स्थिति को इन्होंने इस प्रकार संकेतित किया है, 'जैसे कोई प्राइमिनिस्टर पार्टी प्रेसिडेण्ट की डाँट खाकर एकदम से प्रेस कांफ्रेस में पहुँच रहा हो, कुछ उसी पोज से उसने (सनीचर ने) अपने चेहरे को निर्विकार करने की कोशिश की।' यहाँ एक तत्कालीन घटना का संकेत है, जो पार्टी प्रेसिडेण्ट कामराज और श्रीमती इंदिरागांधी के मध्य होने वाले विवाद से संबद्ध है। सिण्डीकेट-इण्डीकेट का विवाद तत्कालीन राजनीति का एक खला अध्याय है।

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'राग दरबारी' की मूल कथा से अलग रहकर भी इसमें स्वातंत्र्योत्तर राजनीति के यथार्थ को अत्यंत कलात्मक ढंग से उजागर किया गया है। लेखक ने सनीचर के रूप में विराजमान साक्षात प्रजातंत्र और वैद्यजी के लोकतंत्रीय हथकण्डे को भारतीय राजनीति के छलछद्म का पर्याय बना दिया है। इससे लगता है लोकतंत्र का बीज भारतीय जमीन पर पड़ते ही सड़ गया।

13.4.2 शिक्षा क्षेत्र

'राग दरबारी' में शिक्षा-संस्था के रूप में छंगामल विद्यालय इन्टर कॉलेज को कथा का प्रमुख केन्द्र बनाया गया है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में शिक्षा की स्थिति विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों की शिक्षा संस्थाओं में व्याप्त भ्रष्टाचार को उजागर करने के लिए उपन्यासकार ने ऐसा किया है। छंगामल विद्यालय इण्टर कॉलेज और तमाम ऐसे कॉलेजों की स्थापना के पीछे निहित उद्देश्य पर टिप्पणी करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है, 'ये कॉलेज प्रायः किसी स्थानीय जननायक की प्रेरणा से शिक्षा प्रचार के लिए और वास्तव में उसके लिए विधान सभा या लोक सभा के चुनावों की जमीन तैयार करने के उद्देश्य से खोले जाते थे और उनका मुख्य कार्य कुछ मास्टरों और सरकारी अनुदानों का शोषण करना था। ये कॉलिज जमाने के फैशन के हिसाब से बिना आगा-पीछा सोचे हुए चलाए जा रहे थे।'

उपन्यास के कथा-पट पर अंकित कॉलेज के मैनेजर वैद्यजी और छात्र नेता रुप्पन ही नहीं, उसके प्रिंसिपल और खन्ना तथा मालवीय जैसे मास्टरों के कारनामे स्वातंत्र्योत्तर भारत की शिक्षा-पद्धति पर एक गहरा कटाक्ष हैं। मास्टर मोतीराम केमिस्ट्री के अध्यापक हैं, जो आपेक्षिक घनत्व पढ़ाते हुए अपनी आटा-चक्की का विज्ञापन करते हैं। वे प्रिंसिपल और मैनेजर वैद्यजी के सर्वाधिक विश्वासपात्र हैं। गणित के मास्टर मालवीय जी को विद्यार्थियों से विशेष प्रेम है। कुछ विद्यार्थियों से उनका प्रेम शारीरिक स्तर का है। वे लड़कों को सिनेमा दिखाकर उनके साथ रात बिताकर गणित का पर्चा बनाते हैं। अठारह वर्षीय रुप्पन बाबू मैनेजर वैद्यजी के सुपुत्र और छात्रनेता हैं, जो तीन वर्षों से मैट्रिक में पड़े हुए हैं। पढ़ाई-लिखाई को छोड़कर शेष सभी बातों में उनका नेतृत्व है। स्कूल, थाना, कोऑपरेटिव के साथ ही गाँव के 'गंजहों' में उनका राजनीतिक दखल निर्विवाद है।

छंगामल इण्टर कॉलेज की स्थापना देश के नव नागरिकों को महान आदर्शों की ओर प्रेरित कर राष्ट्रीय उत्थान हेतु हुई थी। चमकीले नीले कागज का छपा उसका 'संविधान और नियमावली' पढ़कर यथार्थ की गंदगी में लिपटा हुआ मन कुछ वैसा ही निर्मल और पवित्र हो जाता था, जैसा भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों का अध्याय पढ़कर।' लेकिन वास्तविकता इसके बिल्कुल विपरीत थी। कॉलेज के मैनेजर, प्रिंसिपल, खन्ना, मालवीय, मोतीराम जैसे मास्टर, रुप्पन जैसे विद्यार्थी स्वातंत्र्योत्तर भारतीय शिक्षा-पद्धति के यथार्थ को अच्छी तरह उजागर करते हैं। शिक्षा-क्षेत्र की स्थिति की बीहड़ता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि अध्यापकों पर दफा 107 का मुकदमा दायर है और वे चोर डाकुओं की कतार में खड़े कर दिए गए हैं।

छंगामल इण्टर कॉलेज की अनियमितताओं की जाँच डिप्टी डायरेक्टर से करवाने के बहाने कॉलेज मैनेजर वैद्यजी द्वारा खन्ना और मालवीय का त्यागपत्र जिस हथकण्डे से लिया जाता है, वह रक्षा व्यवस्था के लिए घोर कलंक है। वैद्यजी के सुपुत्र रुप्पन और भांजे बाबू रंगनाथ इसके विरुद्ध हैं। बावजूद इसके कुछ हो नहीं पाता। शिक्षा-व्यवस्था की इस स्थिति से खिन्न रंगनाथ निर्णय करता है कि 'रहना नहिं देश विराना है।' उसकी इस मनोदशा पर एक प्रकार से टिप्पणी करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है, 'पलायन करो। यहाँ की झंझटों में मत फँसो। ..... तुम्हें यहीं रहना पड़े तो अलग से अपनी एक हवाई दुनिया बना लो। उस दुनिया में रहो जिसमें बहुत से बुद्धिजीवी आँख मूँद कर पड़े हैं। होटलों और क्लबों में। शराबखानों में अथवा कहवाघरों में, चण्डीगढ़-भोपाल-बंगलौर के नवनिर्मित भवनों में, पहाड़ी आरामगाहों में,

जहाँ कभी न खतम होने वाले सेमिनार चल रहे हैं। विदेशी मदद से बने हुए नये-नये शोध-संस्थानों में, जिनमें भारतीय प्रतिभा का निर्माण हो रहा है। चुरुट के धुएँ, चमकीली जैकेट वाली किताब और गलत, किन्तु अनिवार्य अंग्रेजी की धुंध वाले विश्वविद्यालयों में। वहीं कहीं जाकर जम जाओ। ..... भागो, भागो, भागो। यथार्थ तुम्हारा पीछा कर रहा है।' वस्तुत: यहाँ उपन्यासकार ने ग्रामीण क्षेत्रों की विकृत एवं भ्रष्ट शिक्षा व्यवस्था ही नहीं, वरन् सम्पूर्ण देश की बौद्धिक क्रीड़ा और शिक्षण-प्रशिक्षण व्यवस्था के यथार्थ की हास्यास्पदता भी प्रकट की है।

13.4.3 प्रशासन-व्यवस्था

'राग दरबारी में स्वातंत्र्योत्तर भारत के प्रशासन के रूप में शिवपाल गंज का थाना, थानेदार और सिपाही ही मुख्य रूप से आए हैं। लेकिन कोऑपरेटिव यूनियन और छंगामल विद्यालय इण्टर कॉलेज के संदर्भ में प्रशासन के सहकारिता अधिकारी और शिक्षा विभाग के अधिकारी भी अपने मूलभूत चरित्र के साथ उपस्थित हुए हैं। शिवपाल गंज के जुआरी संघ के मैनेजिंग डायरेक्टर थानेदार से हाथ जोड़कर कहते हैं कि 'हुजूर आज मेरा चालान अवश्य कर दें। दुश्मनों ने कानाफूसी शुरू कर दी है। कप्तान के पास गुमनाम चिट्ठी गयी है। चालान हो जाता तो सारी झंझट खत्म हो जाती।' इस कथन से जुआरी संघ के साथ थानेदार की मिलीभगत का भी पता चलता है। थाने के सामने एक नंग-धड़ंग लंगोटधारी भंग घोट रहा है। वह अकेला सिपाही बीस गाँवों की सुरक्षा के लिए तैनात है और जिस हालत में, जहाँ है, वहीं से वह बीसों गाँवों के अपराध को रोक सकता है। अपराध हो गया हो तो पता लगा सकता है तथा अपराध न हुआ हो तो उसे करा सकता है।

जुआरियों के साथ थानेदार और सिपाहियों की मिलीभगत है। रामाधीन भीखम खेड़वी के घर आयी डाके की फर्जी चिट्ठी पर मय सिपाहियों के साथ फर्जी मुठभेड़ का दृश्य पुलिस प्रशासन की कलई पूरी तरह उतार देती है। जिला विद्यालय निरीक्षक, डिप्टी डायरेक्टर एजुकेशन, कोऑपरेटिव इंसपेक्टर की उपस्थिति से सरकारी प्रशासन तंत्र का पूरा यथार्थ सामने आ जाता है। जो कमी रह जाती है, उसे कोऑपरेटिव का सुपरवाइजर गबन के द्वारा पूरा कर देता है।

13.4.4 न्याय-व्यवस्था

'राग दरबारी' उपन्यास स्वातंत्र्योत्तर भारतीय न्याय-व्यवस्था के यथार्थ का एक जीवन्त दस्तावेज है। न्याय की दुस्तरता पर उपन्यासकार ने एक टिप्पणी इस प्रकार की है, 'पुनर्जन्म के सिद्धान्त की ईजाद दीवानी की अदालतों में हुई है ताकि वादी और प्रतिवादी इस अफसोस को लेकर न मरे कि उनका मुदकमा पड़ा रहा। इसके सहारे वे चैन से मर सकते हैं कि मुकदमे का फैसला सुनने के लिए अभी अगला जन्म तो पड़ा ही है।' उपन्यास के अत्यंत निरीह किन्तु दृढ़ निश्चयी पात्र लंगड़ ने लगभग सात वर्ष पहले दीवानी का एक मुकदमा दायर किया था। मुकदमे के लिए एक पुराने फैसले की नकल चाहिए थी, जिसके लिए तहसील में दरख्वास्त दी थी। नकल बाबू को पाँच हजार रुपये रिश्वत न देकर वह धर्म की लड़ाई से नकल लेने में जीवन पर्यन्त जूझता रहा। उपन्यासकार लंगड़ को इतने रूपों, इतने संदर्भों में इतनी बार, इतने दयनीय रूप में प्रस्तुत करता है कि वह पाठक की सर्वाधिक सहानुभूति प्राप्त कर लेता है। वस्तुत: वह कचहरी के दरवाजे पर टँगा हुआ एक भयानक पोस्टर बन जाता है, जो चीख-चीख कर इस तथ्य की घोषणा करता है कि आज सर्वसाधारण आदमी लंगड़ बना न्यायालयों के लगातार बढ़ते हुए लूट-चक्र से आक्रान्त होकर त्राहि-त्राहि कर रहा है।

स्वातंत्र्योत्तर न्याय-व्यवस्था के यथार्थ को उद्घाटित करने वाला दूसरा उदाहरण है न्याय पंचायत भीखम खेड़ा। यहाँ अपने बेटे छोटे पहलवान द्वारा पीटे जाने पर कुसहर प्रसाद ने मुकदमा किया है। दो पेशियों में पंचों की अनुपस्थिति के कारण मुकदमे पर कोई कार्रवाई

नहीं हो पायी। तीसरी पेशी पर जो कार्रवाई हुई, उसमें पंच, सरपंच की नासमझी और छोटे पहलवान!की जिरह का स्तर पंचायत अदालतों की हास्यापद स्थिति को पूरी तरह उजागर करता है। सरपंच द्वारा अपने बाप कुसहर प्रसाद पर की गयी अपभानजनक टिप्पणी से क्रुद्ध छोटे पहलवान आग बबूला होकर सरपंच से कह देता है, 'ऐ चिमिरखा दास, चाँय-चाँय बंद करो। एक पड़ाक से कंटाप (थप्पड़) पड़ेगा तो यह मिसिल-विसिल लिए जमीन में घुस जाओंगे। दो घण्टे से सुन रहा हूँ हमारे बाप को घुमा-फिराकर हरामी बता रहे हो। हमारे बाप हरामी हैं तो तुम्हारे बाप क्या हैं ?' यह कथन ग्रामीण न्याय-पंचायत के स्तर और यथार्थ को पूरी तरह उजागर करता है।

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय न्याय व्यवस्था का तीसरा उदाहरण है, गयादीन बनाम जोगनाथ का मुकदमा। अदालत शहर की है, जिसकी सुनवाई ऑनरेरी मजिस्ट्रेट द्वारा की जा रही है। थानेदार की फर्जी कार्रवाई, मुकदमे के झूठे गवाह, पुलिस के झूठे मुखबिर के सामने पब्लिक प्रॉसीक्यूटर और ऑनरेरी मजिस्ट्रेट असहाय सिद्ध होते हैं। इसी तरह का एक चौथा उदाहरण भी है, जिसमें छंगामल इण्टर कॉलेज के प्रिंसिपल ने अपने विरोधी अध्यापकों पर 107 का मुकदमा दायर किया है। इसकी कार्रवाई अदालत में तो नहीं दिखायी गयी है, केवल सूचना के माध्यम से पाठकों को दी गयी है। मजिस्ट्रेट के संबंध में टिप्पणी करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है, 'इजलास जोश में भी। बचपन में अध्यापकों ने उसे हमेशा निम्नकोटि के विद्यार्थियों में शुमार किया था और उसे आज इन अध्यापकों को निम्न कोटि का आदमी सिद्ध करने का मौका मिल गया था। इसलिए सारे तर्क, वितर्क और सबूत को दरकिनार कर हर बार उसका फैसला होता था कि, अध्यापकों को शर्म आनी चाहिए।' यह तो कुछ मुकदमो की बात हुई किन्तु मुकदमे बाजी ग्रामीण क्षेत्रों में इतने जोर-शोर पर है कि पेशेवर गवाहों का एक समूह तैयार हो गया है। पं. राधेलाल की जीविका का एकमात्र साधन झूठी गवाही हो गयी है। कभी न उखड़ने वाले इस गवाह के कौशल पर टिप्पणी करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है, 'जिस तरह कोई भी जज अपने सामने के किसी भी मुकदमे में फैसला दे सकता है, कोई भी वकील किसी भी मुकदमे में वकालत कर सकता है, वैस ही पं. राधेलाल ने अपनी शिष्य परंपरा भी कायम कर दी थी। ये सारे तथ्य मात्र शिवपाल गंज ही नहीं वरन् समूचे देश की न्याय व्यवस्था के यथार्थ को अच्छी तरह उद्घाटित करते हैं।

13.4.5 सामुदायिक विकास क्षेत्र : ग्राम-सभा और पंचायत व्यवस्था

'स्वाधीनता के बाद भारतीय गाँवों के समुचित विकास के लिए विकासखण्डों के साथ ही सहकारी समितियों, ग्राम सभाओं, न्याय-पंचायतों आदि की भी व्यवस्था हुई। इन्हें समुचित रूप से चलाने के लिए बी.डी.ओ., ए.डी.ओ., बहुत सारे इंसपेक्टरों, ग्राम सेवकों, पंचायत मंत्रियों आदि जैसे कर्मचारियों का जाल बिछाया गया। पंचवर्षीय योजनाओं के प्रावधान से इनके लिए समुचित वित्तीय अनुदान भी सरकार की ओर से दिए गए। भारत की लोकतंत्रीय प्रणाली के मद्देनजर कुछ विकासाधारित संस्थाओं में चुनाव की भी व्यवस्था की गई। इसके अन्तर्गत ग्राम-सभा के प्रधान का चुनाव गाँव के सभी बालिग मतदाताओं द्वारा और ब्लॉक (खण्ड) प्रमुख का चुनाव प्रधानों द्वारा किए जाने का प्रावधान था। सहकारी संघ के मैनेजिंग डायरेक्टर के लिए भी चुनावों का प्रावधान रखा गया। 'राग दरबारी' में इन तथ्यों को पूरी तरह से ध्यान में रखा गया है। जिस प्रकार लोकतांत्रिक पद्धति की शासन-व्यवस्था में केन्द्रीय और राज्य-स्तर पर चुनाव को सर्वाधिक महत्व दिया गया, उसी तरह निचले स्तर पर पंचायतों के गठन में भी चुनाव की अहम् भूमिका मानी गयी है। अत: सर्वप्रथम पंचायतों या ग्राम सभाओं के चुनाव की वास्तविकता पर विचार करना अधिक संगत होगा।

शिवपालगंज गाँव सभा के प्रधान रामाधीन भीखमखेड़वी के भाई थे। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इतने दिनों तक प्रधान रह चुकने के बावजूद न तो पागलखाने गए थे और न जेल खाने। वैद्यजी भी प्रधानी के फायदे से परिचित नहीं हो पाए थे। लेकिन उन्हें

पता चला कि शिवपालगंज के पूर्ण विकास के लिए कॉलेज की मैनेजरी, कोऑपरेटिव यूनियन में मैनेजिंग डायरेक्टरी के साथ ही गाँव सभा की प्रधानी भी आवश्यक है। स्वयं प्रधानी का कार्य छोटा है लेकिन उसके फायदे बहुत हैं। यह सोचकर उन्होंने अपने दरबार में भाँग घोंटने वाले जाहिल सनीचर को प्रधान बनाने का निश्चय किया। निश्चित समय पर जब चुनाव हुआ तो रामाधीन की ओर से प्रचार की काफी सरगर्मी के बावजूद 'महिपालपुर वाली तरकीब' से सनीचर चुनाव जीत गया।

यहाँ उपन्यासकार ने ग्राम सभा के चुनावों की हास्यास्पदता को उजागर करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में प्रचलित तीन पद्धतियों का उल्लेख अत्यंत मनोरंजक ढंग से किया है। एक रामनगर वाली, दूसरी नेवादावाली और तीसरी महिपालपुर वाली।

रामनगर ग्राम सभा के चुनाव में एक बार दो ठाकुर-शत्रुघ्न सिंह और रिपुदमन सिंह प्रधान के पद पर खड़े हुए। अत: मतदान का जातीय आधार नहीं बन सका। सवर्ण मतदाताओं ने इसमें पहले तटस्थता का परिचय दिया। लेकिन जब प्रधान से होने वाले लाभ की बात लोगों को मालूम हुई तो वे तटस्थता छोड़कर किसी एक के समर्थक बन गए। ऐसी स्थिति में चुनाव में काफी गर्मी आ गयी। रिपुदमन के भाई सर्वदमन की राय पर अशांति की गड़बड़ी के आधार पर दोनों पक्षों के उम्मीदवार सहित पच्चीस-पच्चीस आदमियों को चुनाव से दो दिन पहले हिरासत में ले लिया गया। सर्वदमन के भाई रिपुदमन के समर्थक बाहर अधिक रह गए थे। अत: उन्हें शान्तिपूर्वक विजय मिल गयी। यही तरीका रामनगर के नाम से पेटेण्ट हुआ।

चुनाव का नेवादा वाला तरीका कुछ अधिक उलझा हुआ था। वहाँ मुख्य मुकाबला सवर्ण और अवर्ण के बीच था। संख्या के आधार पर जब अवर्णों का पलड़ा भारी लगा तो ब्राह्मण उम्मीदवार ने गाँव में नए आए एक बाबा जी का सहारा लिया। अपने गाने-बजाने और गाँजा-भाँग की धूम द्वारा वे पूरे गाँव में कृष्ण के अवतार माने जाने लगे। जाति-पाँति को मिटाकर और पूरे गाँव को अपने प्रभाव में लेकर बाबा जी ने एक दिन घोषणा कर दी कि इस गाँव का प्रधान बहुत ही धर्मात्मा आदमी है। जब एक सिरफिरे भँगेड़ी ने कहा कि अभी प्रधान का चुनाव ही नहीं हुआ, तो बाबा जी ने इशारा किया कि हमारे भगवान ने तो चुनाव कर दिया है। अत: सर्वसम्मति से सभी गाँव वालों ने ब्राह्मण उम्मीदवार को प्रधान स्वीकार कर लिया। यह तरीका नेवादावाली पद्धति के नाम से प्रचारित-प्रसारित हुआ।

महिपालपुर वाली पद्धति एक घड़ी से सम्बद्ध होने के कारण अत्यंत वैज्ञानिक साबित हुई। चुनाव दिन के बारह बने होना था। लेकिन चुनाव अधिकारी की घड़ी सवा घंटा तेज थी। अत: नतीजा पौने ग्यारह बजे ही घोषित कर दिया गया। मतदाताओं की याचिका पर तीन साल मुदकमा चला पर कोई निर्णय नहीं हुआ। इस पद्धति को अपनाने के कारण वैद्यजी को सिर्फ एक सस्ती घड़ी पर खर्च करना पड़ा जो चुनाव अधिकारी के हाथ पर बंधी थी। इस प्रकार की पद्धतियाँ कथाकार की कल्पना भले ही हों लेकिन ग्राम पंचायतों के चुनाव के यथार्थ को अवश्य उद्घाटित करती हैं।

वैसे चुनाव तो वैद्यजी के बाएँ हाथ खेल मात्र था, जिसका परिचय उन्होंने कॉलेज की चेयरमैनी से लेकर कोऑपरेटिव यूनियन के मैनेजिंग डायरेक्टर के चुनाव में भी कुशलतापूर्वक दिया है। कॉलेज की चेयरमैनी तो वे अपने बाहुबल से पुन: प्राप्त कर लेते हैं लेकिन कोऑपरेटिव यूनियन की मैनेजिंग डायरेक्टरशिप में थोड़ी अड़चन है। वहाँ उनकी मिलीभगत से कोऑपरेटिव के सुपरवाइज़र ने गेहूँ के एक ट्रक का गबन किया है। नये कोऑपरेटिव इंसपेक्टर को कुछ ईमानदारी की लत पड़ गयी है, उसका ट्रांसफर कराने में भी वे असफल हो जाते हैं। अत: उसी मोहकमें के बड़े अधिकारी को बुलाकर बैठक में वे अपनी नेकनीयती का विश्वास दिलाते हैं और स्वयं त्यागपत्र देकर अपने बड़े बेटे बद्री पहलवान को बड़े कौशल के साथ मैनेजिंग डायरेक्टर बनवा देते हैं। उपर्युक्त सारे तथ्य स्वातंत्र्योत्तर भारतीय ग्रामीण चुनाव व्यवस्था के यथार्थ को सशक्त ढंग से उजागर करते हैं।

सामुदायिक विकास के लिए योजना आयोग द्वारा पर्याप्त ग्राण्ट (अनुदान) दिया जाता है। यह सरकारी अनुदान सरकारी समिति, ग्राम पंचायत और विकास खंडों के माध्यम से प्राप्त होता है। शिवपाल गंज में अनुदानखोर कालिका प्रसाद का अप्रतिम व्यक्तित्व है। यह कार्य वे क्षेत्रीय एम.एल.ए. खद्दर की पोशाक और कार्रवाई रोक पाने के कौशल से करते थे। मुर्गीपालन, चर्मउद्योग, खाद के गड्ढे पक्का करवाने, बिना धुएँ का चूल्हा लगवाने, सुलभ शौचालय बनवाने आदि के सारे अनुदान खाकर उन्होंने अपेक्षित कारगुजारी की समुचित रिपोर्ट भेज दी है। मात्र पाँच बीघे खेत की जमानत पर वे पचासों तरह के कर्जे और तकाबियाँ उदरस्थ कर चुके हैं। यह है, सामुदायिक विकास के यथार्थ का एक छोटा सा उदाहरण। प्रधान बनने के एक महीना पहले ही सनीचर इस महापुरुष को लेकर विकास खण्ड के कृषि विकास अधिकारी (ए. डी. ओ.) के साथ सहकारी खेती का सौदा कर आता है। वैद्यजी को सूचना देता है कि गाँव के पश्चिम वाले ऊसर भूमि के टुकड़े पर 'कुआपरेटिव फारम लहकेगा। ऊसर होने से कोई हर्ज नहीं। कामज़ पत्तर वाला काम ब्लॉक वाले संभालेंगे। ..... कहो तो आसमान में कुआपरेटिव बना दें। यह तो धरती की बात है।' इसके लिए पाँच सौ रुपये के अनुदान की बात पक्की हो गयी है।

इस प्रकार विकास खण्ड, उसके अधिकारी, सहकारी समिति, ग्राम पंचायत आदि सभी संस्थाएँ गाँव के जीवन पर एक भारी बोझ बनाकर थोप दी गयी हैं। इनके भार से ग्रामीण जीवन त्राहि-त्राहि कर रहा है।

13.4.6 गाँव-समाज की वास्तविक स्थिति

भूदान आन्दोलन, जमींदारी उन्मूलन, विकास खण्डों, सहकारी समितियों ग्राम पंचायतों की व्यवस्था आदि के बावजूद गाँव की बदहाली बढ़ती जा रही है। शिवपाल गंज की चमरेही (चमारों की बस्ती) और आम लोगों की खस्ताहालत को देखते हुए जमींदारी उन्मूलन की बात हास्यास्पद प्रतीत होती है। आचार्य विनोबा भावे को मिलाकर गाँव के बाहर का बंजर मैदान भूदान के हश्र को उद्घाटित कर देता है। वह मैदान गाँव-सभा को वापस मिला, जिसने उसे गाँव सभा के प्रधान को दान कर दिया है। प्रधान ने दान रूप में अपने रिश्तेदारों और मित्रों को दे दिया। उसके बचे-खुचे हिस्से को उसने गरीबों और भूमिहीनों को बेच दिया। विक्रम की जमीन पर मुकदमा चल रहा है और आगे भी चलता रहेगा। शिवपाल गंज का थानेदार कहता है कि अब गाँव में चोर भूदानी कार्यकर्ता की 'शगल' (वेश) में आने लगे हैं। उपन्यास में प्रयुक्त भूदानी चेहरा, भूदानी नमस्कार भूदानी मुद्रा आदि शब्दों का प्रयोग एक विशेष छद्म में उद्घाटन के लिए हुआ है।

विकास खंड, सहकारी समिति, ग्राम पंचायत आदि लूट-खसोट और भ्रष्टाचार के अड्डे बन गए हैं। यहाँ किसान और कृषि कार्य पूरी तरह गायब है। कृषि क्रांति दरोदीवार पर लिखे नारों तक सीमित रह गयी है। जो बाकी रह गया है, उसे नेताओं और सरकारी अफ़सरों के भाषणों से पूरा कर दिया जाता है। वे कहते हैं कि भारत एक कृषि प्रधान देश है लेकिन किसान अपनी बदमाशी से अधिक अन्न नहीं उपजाते। वैसे यहाँ कोई भला आदमी दिखायी नहीं देता। गाँव छोटे पहलवान, जोगनाथ, रामाधीन, शत्रुघ्न सिंह, रिपुदमन सिंह, डा. बलराम सिंह जैसे डाकुओं की क्रीड़ास्थली बन गया है। सबसे बड़े डाकू स्वयं वैद्यजी हैं। गाँव का सबसे निठल्ला सनीचर वैद्यजी का पालतू कुत्ता है, जिसे ठेलठाल कर गाँव प्रधान की कुर्सी पर बैठ दिया जाता है। उसकी परचून की दुकान खुल जाती है, जिस पर सभी चीजों के साथ प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र से उड़ाई गई दवाएँ और प्राइमरी स्कूल पर बच्चों के लिए वितरित होने वाले अमेरिकी दूध-पाउडर की भी बिक्री होती है।

शिवपाल गंज के बस अड्डे की गंदगी और उसके निकट मिठाई की दुकान, मंदिर, धर्मशाला आदि गंदगी उत्पादक संस्थाएँ उसके नाम को रोशन करती हैं। गंदगी-प्रसार योजना को पूर्णता तक पहुँचाने के लिए बस अड्डे के पीछे एक झीलनुमा पोखर था। इसका उपयोग सुबह-शाम

शौच-क्रिया के लिए होता था। पालतू सुअरों के उपयोग या दुरुपयोग से आदमी द्वारा छोड़ी गयी गंदगी से गुजरती हुई हवा मुसाफिरों को नाक पर पट्टी लगाकर कभी जैन धर्म स्वीकार करने को विवश कर रही थी तो कभी सुअरों की गुर-गुराहट उन्हें वाराह-अवतार की कल्पना से अभिभूत करती थी। सेनेटरी इंसपेक्टर के अस्तित्व के बावजूद गाँव में गंदी नालियों का जाल बिछा था। गाँव के किनारे एक छोटे से तालाब की गंदगी को देखकर उपन्यासकार को मैथिलीशरण गुप्त की पचास वर्ष पहले लिखी गई एक कविता की पंक्तियाँ - 'अहा ग्राम्य जीवन भी क्या है?' याद आ जाती है।

छंगामल इण्टर कॉलेज गाँव के लिए शिक्षा का नहीं अशिक्षा का केन्द्र बना हुआ है। यहाँ हुल्लड़बाजी, गुंडई, दुश्चरित्रता की शिक्षा मिलती है। स्थानीय थाना असुरक्षा का केन्द्र बना हुआ है। इसके रहते घटनाएँ नहीं, दुर्घटनाएँ होती हैं, चोरी नहीं डकैती पड़ती है। जुआ, शराब आदि के अड्डे उसी के संकेत पर चलते हैं। सबसे ऊपर कोढ़ में खाज की तरह शिवपाल गंज की छाती पर वैद्यजी सवार है।

नैतिक अवमूल्यन की पहुँच परिवार के अन्दर भी प्रवेश कर गयी है। माने हुए लठैत ठाकुर दुरबीन सिंह बुढ़ापे में अपने नशेबाज़ भतीजे के जोरदार तमाचे से कुएँ की जगत पर गिर पड़ते हैं। वृद्ध कुसहर प्रसाद अपने बेटे छोटे पहलवान की लाठी का शिकार बनते हैं। रुप्पन कई मुद्दों पर अपने पिता वैद्यजी का विरोध करने लगा है। बड़ा बेटा बद्री पहलवान वैद्यजी के मुँह पर खरी-खोटी सुनाने से नहीं चूकता।

स्वाधीनता के बाद पंचवर्षीय योजनाओं के तहत योजना आयोग द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों के आर्थिक विकास के साथ ही बहुमुखी विकास पर रुपया पानी की तरह बहाया गया। लोगों में जिस अनुपात में शासन पर अतिनिर्भरता की वृत्ति में वृद्धि हुई है, सरकार पर उससे कहीं अधिक अविश्वास बढ़ा। विकास के नाम पर गाँव समाज के अन्दर हुल्लड़बाजी असुरक्षा, तनाव, लूट-खसोट, पारस्परिक अविश्वास, असहयोग, संस्थाजीविता, भ्रष्टाचार में वृद्धि हुई। अस्वस्थ नेतृत्व के कारण राष्ट्रीय भावना का लोप हुआ है। कहीं कोई प्रेरणास्रोत नहीं रह गया। नयी पीढ़ी नितांत खोखली, निस्तेज और उद्दण्ड सिद्ध हुई। सामुदायिक विकास योजनाओं के तहत शोषण के नये-नये क्षेत्र खुले, जिसका सर्वाधिक प्रमुख क्षेत्र बनी शिक्षा और शिक्षण संस्थाएँ। इन सारी स्थितियों को देखते हुए शहर से आए इण्डोलॉजी के शोध छात्र और तथाकथित बुद्धिजीवी बाबू रंगनाथ काफी असंतुष्ट रहने लगे थे लेकिन प्रधानी में सनीचर की विजय के बाद उनके धैर्य का बाँध डगमगाने लगा। इसका संकेत देते हुए उपन्यासकर ने लिखा है "सनीचर की विजय के दिन उसने (रंगनाथ ने) बहुत कुछ सोच डाला और उस दौरान उसे प्रदेश की राजधानियों में न जाने कितने वैद्यजी और मंत्रियों और मुख्यमंत्रियों की कतार में न जाने कितने सनीचर घुसे दिखे।" (पृ. 296) लेकिन पवित्र भ्रष्टाचार का केन्द्र छंगामल इण्टरकॉलेज में मालवीय और खन्ना के विरुद्ध चल रहे षड्यंत्र को देखकर उनके धैर्य का बाँध टूट जाता है और वे कहते हैं, "धरती पर एक शिवपाल गंज ही नहीं है। हमारे-तुम्हारे लिए सारा मुल्क पड़ हुआ है।" इस पर भुनभुनाते हुए रुप्पन ने कहा, "मुझे तो लगता है दादा, सारे मुल्क में शिवपालगंज ही फैला हुआ है।" (पृ. 388) उपन्यास में चित्रित समाज के चित्रण से ऐसा लगता है कि इसमें शिवपाल गंज के माध्यम से सारे गाँव-समाज ही नहीं, वरन् समूचे स्वातंत्र्योत्तर भारत का यथार्थ प्रस्तुत किया गया है। अतः 'रागदरबारी' में चित्रित स्वातंत्र्योत्तर भारत के गाँव समाज की वास्तविक स्थिति समूचे देश के यथार्थ को प्रतीकित करती है।

13.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई में एक विशिष्ट उपन्यासकार श्रीलाल शुक्ल के महत्वपूर्ण उपन्यास 'राग दरबारी' के समुचित अध्ययन के लिए उनके समूचे कृतित्व, विशेषकर सभी उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। इस प्रक्रिया में कुछ ऐसे तथ्यों का भी उद्घाटन किया गया है, जिनसे

'राग दरबारी' के बहुत सारे निहितार्थों को आसानी से समझा जा सके। कुछ आलोचकों ने "राग दरबारी" उपन्यास में तर्कसंगत परिप्रेक्ष्य और सामाजिक दृष्टि का अभाव देखा, जो बिस्रामपुर का संत' में पूरी तरह समाविष्ट है। इस संबंध में पंकज गौतम ने लिखा है कि "औपन्यासिक संरचना में वह सामाजिक दृष्टि भी ज़रूरी होती है जो सापेक्ष वैयक्तिकता के सहारे यथार्थ में पैठकर कल्पनाशीलता का हिस्सा बनती है।" अपनी कल्पनाशीलता का बेहतर उपयोग श्रीलाल शुक्ल ने 'बिस्रामपुर का संत' में किया है। बावजूद इस आरोप के राग दरबारी' का यथार्थ चित्रण अपने आप में महत्वपूर्ण है। यह आवश्यक नहीं है कि उपन्यासकार अपनी ओर से किसी नये मॉडल या तंत्र का सुझाव ही दे। पाठक स्वयं बदलाव के स्वरूप का निर्धारण कर सकता है। इस तथ्य को भी हमने इस इकाई में उजागर करने का प्रयास किया गया है।

इस इकाई का मुख्य विषय 'राग दरबारी' में चित्रित स्वातंत्र्योत्तर भारत का यथार्थ है। इसलिए स्वातंत्र्योत्तर भारतीय सामाजिक राजनीतिक परिदृश्य पर भी अलग से विचार करने की जरूरत पड़ी है। इस प्रक्रिया में कहीं प्रत्यक्ष लेकिन अधिकांशत: परोक्ष रूप से भारतीय राजनीति 'राग दरबारी' में संकेतित हुई है। बावजूद इसके प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू की विदेशनीति के तहत गुटनिरेपेक्षता, कोलम्बो पलान, बांडुंग कान्फ्रेंस, सह अस्तितत्व, पंचशील, भारत-चीन, भारत-रूस संबंध आदि से जुड़ हुए आर्थिक-राजनीतिक परिदृश्य पर भी विचार किया गया है। इस संदर्भ में भारत की स्वाधीन सरकार द्वारा अपनायी गयी मिश्रित अर्थव्यवस्था की आड़ में देश के विकास के लिए जो पूँजीवादी रास्ता अपनाया गया, उसकी कृतियों और विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में उपस्थित आर्थिक बदहाली को भी रेखांकित किया गया है। इस दृष्टि से एक महत्वपूर्ण तथ्य, जो उभर कर सामने आता है वह है, स्वाधीनता आन्दोलन की महत्वपूर्ण शक्ति बहुसंख्यक जनता का शासन-सत्ता से अलगाव। फलस्वरूप पंचवर्षीय योजनाओं, पंचायत-व्यवस्था, जमींदारी उन्मूलन, सामुदायिक विकास योजनाओं आदि का वास्तविक लाभ साधारण जनता तक नहीं पहुँचा। इसका वास्तविक लाभ बिचौलियों और सम्पन्न वर्गों तक ही सीमित रहा। प्रशासनिक स्तर पर वित्त, स्वास्थ्य, सहकारिता आदि मंत्रालयों से संबद्ध होने के कारण ही श्रीलाल शुक्ल ने इसे बहुत गहराई से अपने 'राग दरबारी' उपन्यास से अभिव्यक्त किया है।

'राग दरबारी' में चित्रित स्वातंत्र्योत्तर भारत के यथार्थ को, राजनीतिक, शैक्षणिक, प्रशासनिक, न्यायिक क्षेत्रों के साथ ही सामुदायिक विकास योजनाओं और विशेष रूप से पंचायत-व्यवस्था के संदर्भ में हमने इस इकाई में विवेचित-विश्लेषित किया गया है। अंत में गाँव-समाज की वास्तविक स्थिति पर विचार करते हुए 'राग दरबारी' की प्रतीकात्मकता की ओर भी संकेत किया गया है। वस्तुत: यह उपन्यास शिवपाल गंज नामक एक गाँव का यथार्थ चित्र मात्र न होकर समूची भारतीय राजनीतिक-सामाजिक व्यवस्था की विसंगतियों को प्रतीकित करता है।

13.6 अभ्यास प्रश्न

1. अपने अन्य उपन्यासों के संदर्भ में एक उपन्यासकार के रूप में श्रीलाल शुक्ल के महत्व पर प्रकाश डालें।

2. 'राजनीतिक पात्रों और घटनाओं के अभाव के बावजूद 'राग दरबारी' एक सशक्त राजनीतिक उपन्यास है।' इस कथन को सोदाहरण स्पष्ट करें।

3. 'राग दरबारी' उपन्यास में शिक्षा संस्था को केन्द्र बनाकर समाज में व्याप्त किन विकृतियों का पर्दाफाश किया गया है?

4. सरकारी योजना आयोग द्वारा भरपूर वित्तीय सहायता के बावजूद ग्रामीण क्षेत्रों का बहुमुखी विकास क्यों नहीं हो पाया? प्रमुख कारणों पर प्रकाश डालें।

5. निम्नलिखित पर टिप्पणियाँ लिखें :

i) 'राग दरबारी' में चित्रित न्याय व्यवस्था

ii) ग्राम पंचायत के चुनावों की धाँधली

iii) ग्राण्ट या अनुदानखोर कालिका प्रसाद

iv) 'राग दरबारी' में चित्रित पुलिस-प्रशासन

इकाई 14 'राग दरबारी' में व्यंग्य

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 व्यंग्य की परिभाषा और उसकी विभिन्न छायाएँ

- 14.2.1 शब्दार्थ निरूपण
- 14.2.2 विभिन्न परिभाषाओं के संदर्भ में व्यंग्य
- 14.2.3 व्यंग्य की विभिन्न छायाएँ
- 14.2.4 व्यंग्य की साहित्यिक-सामाजिक उपयोगिता और उसका साहित्य रूप

14.3 'राग दरबारी' में प्रयुक्त व्यंग्य का स्वरूप

14.4 'राग दरबारी' का यथार्थ और व्यंग्य शैली की सार्थकता

- 14.4.1 वस्तुस्थितियों तथा मनोभावों के सम्मूर्तन के लिए व्यंग्य
- 14.4.2 गृहीत तथ्यों की पुष्टि के लिए व्यंग्य
- 14.4.3 व्यंग्य के लिए चुनी गयी आंचलिक शब्दावली

14.5 'राग दरबारी' में प्रयुक्त व्यंग्य की सीमाएँ

14.6 सारांश

14.7 अभ्यास प्रश्न

14.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- व्यंग्य शब्द के परम्परागत अर्थ पर विचार करते हुए अंग्रेजी के पर्याय के रूप में उसकी सार्थकता को समझ सकेंगे;
- विभिन्न पाश्चात्य और भारतीय चिंतकों की व्यंग्य संबंधी मान्यताओं से परिचित होते हुए उसकी सर्वसम्मत परिभाषा की कठिनाइयों को जान सकेंगे। साथ ही इस प्रक्रिया में व्यंग्य की महत्वपूर्ण विशेषताओं की चर्चा करते हुए व्यंग्य के सर्वस्वीकृत लक्षणों का भी उल्लेख कर सकेंगे;
- व्यंग्य के व्यापक स्वरूप पर विचार करते हुए उसके विभिन्न घटकों/छायाओं यथा- हास्य, परिहास, उपहास, वाग्वैदग्ध्य, वाग्दंश आदि की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे;
- व्यंग्य की साहित्यिक-सामाजिक उपयोगिता की चर्चा कर सकेंगे; साथ ही इस प्रश्न पर भी विचार कर सकेंगे कि व्यंग्य एक शैली है या स्वतंत्र साहित्यिक विधा;
- 'राग दरबारी' में प्रयुक्त व्यंग्य के स्वरूप पर विचार करते हुए उसकी प्रहार और उपहास की प्रवृत्ति से उत्पन्न नकारात्मक-सकारात्मक या ध्वंसात्मक- निर्माणात्मक भूमिका को भी रेखांकित कर सकेंगे;
- 'राग दरबारी' का यथार्थ और व्यंग्य शैली की सार्थकता से परिचित हो सकेंगे, और,
- 'राग दरबारी' में प्रयुक्त व्यंग्य की सीमाओं का निरीक्षण-परीक्षण कर सकेंगे।

14.1 प्रस्तावना

श्रीलाल शुक्ल और उनके 'राग दरबारी' के अध्ययन के लिए प्रस्तुत इकाई आपके लिए विशेष महत्वपूर्ण है। इसके माध्यम से आप व्यंग्य के सैद्धान्तिक स्वरूप से परिचित होकर उसके उपयोग-दुरुपयोग के मध्य आसानी से अंतर कर सकेंगे। साथ ही एक साहित्यिक अस्त्र के रूप में उसकी शक्ति और सीमाओं का भी ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। इस इकाई के माध्यम से आप की आलोचनात्मक दृष्टि का भी विकास होगा।

'राग दरबारी' एक अत्यंत प्रखर व्यंग्यात्मक उपन्यास है। उपन्यासकार ने समाज के संबंध में अपनी मानसिक प्रतिक्रियाओं को कारगर अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए व्यंग्य-शैली का सहारा लिया है। व्यंग्य का अभिप्राय हास्य, मजाक या गाली नहीं है। विश्व साहित्य की परम्परा में इसका प्रयोग निरंतर होता आया है। हिन्दी साहित्य मे भी इसकी एक समृद्ध परम्परा अब तक गतिमान रही है। कबीर जैसे प्रखर व्यंग्यकार ने इस अस्त्र के प्रयोग द्वारा बहुसंख्यक जनता के शत्रुओं को हिलाकर रख दिया था। भारतेन्दु और उनके मण्डल के अधिकांश साहित्यकारों ने इसका अत्यंत सधा हुआ प्रयोग किया था। भारतेन्दु के बाद निराला, नागार्जुन जैसे सशक्त कवियों ने अपनी कटु-तिक्त मानसिक प्रतिक्रियाओं को व्यग्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया है। इन कवियों की वास्तविक ऊर्जा व्यंग्य के माध्यम से ही पाठक के सामने आती है। इसके माध्यम से इन कवियों ने सामाजिक-राजनीतिक सुधार का एक जोरदार अभियान चलाया था। अब तक हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, रवीन्द्र नाथ त्यागी, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन इस परम्परा को आगे बढ़ाते आए हैं। श्रीलाल शुक्ल इस परम्परा की एक सशक्त कड़ी के रूप में हमारे सामने आते हैं। इनकी व्यंग्यात्मक रचनाओं से हम इस खंड की इकाई सं० 13 की प्रस्तावना में परिचित हो चुके हैं। इस इकाई में व्यंग्य के मान्य आधारों पर हम 'राग दरबारी' का निरीक्षण-परीक्षण करेंगे।

अपनी अतिशय व्यंग्यात्मकता के कारण कुछ आलोचकों/पाठकों ने 'राग दरबारी' को चुहलबाजी और उपहास की मुद्रा से ओत-प्रोत उपन्यास बताया है और इसमें सामाजिक दृष्टि का अभाव, नकार और अस्वीकार भावना की अधिकता की ओर संकेत किया है। बावजूद इसके यह एक यथार्थवादी रचना है, जो सार्वदेशिक भ्रष्ट व्यवस्था की कलई उतार कर नयी व्यवस्था की अनिवार्यता को रेखांकित करती है। यह नयी व्यवस्था क्या होगी, इसका सूत्रपात कौन और कैसे करेगा, इसे पाठक के सामाजिक सरोकार पर छोड़ दिया गया है। अपनी सह-स्वाभाविक शैली में रचित यथार्थवादी उपन्यास 'गोदान' में प्रेमचंद ने भी यही किया है। आगे चलकर श्रीलाल शुक्ल ने अपने 'पड़ाव' शीर्षक उपन्यास में सत्ते उर्फ मुंशी के माध्यम से और 'बिसामपुर का संत' में विवेक के माध्यम से परिवर्तन की एक प्रणाली का संकेत अवश्य किया है, लेकिन इसे श्रीलाल शुक्ल के बाद के सामाजिक दृष्टिकोण का परिचायक माना जा सकता है। 'राग दरबारी' को पढ़कर कोई भी पाठक यह नहीं सोचेगा कि जो स्थिति है, वही बनी रहेगी या इसमें कोई परिवर्तन संभव है।

उपर्युक्त सभी तथ्यों को ध्यान में रखकर हम विभिन्न पहलुओं पर अनेक कोणों से विचार करने के बाद 'राग दरबारी' में प्रयुक्त व्यंग्य की सीमाओं, उसके औचित्य-अनौचित्य पर भी विचार करेंगे।

14.2 व्यंग्य की परिभाषा और उसकी विभिन्न छायाएँ

14.2.1 शब्दार्थ निरूपण

व्यंग्य संस्कृत भाषा का काव्यशास्त्रीय शब्द है, जिसका कोषगत अर्थ 'व्यंजित होने वाला' है। शब्द-व्यापार, और शब्द-शक्तियों के विवेचन-विश्लेषण में व्यंग्य अभिधा, लक्षणा से आगे

व्यंग्यार्थ के रूप में व्यंजना के क्षेत्र में चला जाता है। व्यंजना शब्दार्थ की वह शक्ति है, जो अभिधा और लक्षणा शक्तियों से आगे बढ़कर एक विलक्षण अर्थ का बोध कराती है। अत: इसे अभिधागत वाच्यार्थ और लक्षणागत लक्ष्यार्थ से भिन्न व्यंजनागत व्यंग्यार्थ के रूप में पूर्व-स्वीकृति प्राप्त है। संस्कृत और हिंदी आलोचना में भी व्यंजना के साथ ही व्यग्यार्थ शब्द भी परम्परागत अर्थ में ही प्रयुक्त होता रहा है। लेकिन व्यंग्य को अंग्रेजी के 'सेटायर' के अर्थ में अब पूर्णत: स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। कुछ विद्वानों ने व्यंग्य शब्द को संस्कृत में चले आ रहे परंपरागत अर्थ के लिए नियत मानकर 'सेटायर' के लिए 'व्यंग' शब्द के प्रयोग का प्रस्ताव किया था, लेकिन इसे स्वीकृति नहीं मिली। संस्कृत का 'व्यंग' शब्द खण्डित अंग, विकलांग, लंगड़, अव्यवस्थित आदि अर्थों का भी सूचक है। अत: 'सेटायर' के लिए 'व्यंग्य' शब्द सर्वथा उपयुक्त है। कारण अंग्रेजी में 'सेटायर' या हिन्दी में आलोचना में व्यंग्य शब्द अब कोई अलग इकाई न होकर अपनी अनेक छायाओं – जैसे हास्य, उपहास, वाग्दंश कटूक्ति आदि को अपने समेटे हुए है। अत: 'राग दरबारी' के संबंध में जब हम व्यंग्य शब्द का प्रयोग करेंगे तो उसमें इसकी सभी छायाएँ समाहित होगी।

14.2.2 विभिन्न परिभाषाओं के संदर्भ में व्यंग्य

साहित्य में प्रयोग की दृष्टि से पाश्चात्य एवं भारतीय चिंतकों ने व्यंग्य को परिभाषित करने का प्रयास किया है। लेकिन यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि प्रत्येक परिभाषाकर्ता ने अपने जीवन-दर्शन, जीवन-दृष्टि, अपने वैयक्तिक चरित्र, अपनी अपेक्षाओं-आकांक्षाओं, मानव समाज और साहित्य से सम्बद्ध अपनी मान्यताओं के अनुरूप ही व्यंग्य को परिभाषित करने की चेष्टा की है। यहाँ पहले हम कुछ पाश्चात्य चिंतकों की व्यंग्य संबंधी मान्यताओं पर विचार कर लें तो अधिक अच्छा होगा।

व्यंग्य के संबंध में ए. निकोल की मान्यता है कि 'हास्य के अभाव में व्यंग्य इतना कटु होता है कि वह मात्र चोट करता हैं। उसमें कोई नैतिक बोध नहीं होता। दया, करुणा, उदारता से वह विरहित होता है। युग की पूरी रीति-नीति पर अक्षम्य भाव से टूट पड़ता है। लेकिन अधिकांश पाश्चात्य चिंतक निकोल की इस मान्यता से असहमत हैं। मेरिडिथ का तो यहाँ तक मानना है कि 'व्यंग्यकार नैतिकता का ठेकेदार होता है वह बहुधा समाज की गंदगी की सफाई करने वाला होता है।' हैरी शॉ ने व्यंग्य के नैतिक पक्ष पर अधिक जोर देते हुए उसे कटाक्ष, उपहास, वक्रोक्ति आदि के मिश्रण से मानवीय क्रियाकलापों तथा संस्थाओं की आलोचनात्मक व्याख्या करने वाला बताया है। 'व्यंग्य में सामान्यतया नैतिक चिन्ता तथा किन्हीं तौर-तरीकों, विश्वास अथवा परंपरा में सुधार लाने की प्रबल अकांक्षा – दोनों ही भाव विद्यमान रहते हैं। 'व्यंग्य पर सार्थक चिन्तन करने वाले जोनाथन स्विफ्ट के अनुसार व्यंग्य एक ऐसा शीशा है, जिसमें देखने वाले को अपने सिवा हर किसी का चेहरा नज़र आता है। यही कारण है कि संसार में व्यंग्य का स्वागत किया जाता है तथा बहुत कम लोग इससे आहत होते हैं।

उपर्युक्त परिभाषाओं पर ध्यान से विचार करें तो वे पाश्चात्य समाज और वहाँ के साहित्य की स्थिति को ध्यान में रखकर निर्मित लगती हैं। लेकिन उसमें आक्रोश, आक्रामकता, उपहास, सुधार आदि सामान्य रूप से व्यंग्य के आवश्यक उपकरण के रूप में आए हैं। इसके साथ ही नैतिकता का आग्रह भी उसमें प्राय: सर्वत्र दिखायी देता है। यहाँ हम कुछ वामपंथी चिन्तकों के व्यंग्य संबंधी मान्यताओं की ओर भी ध्यान आकृष्ट करना चाहेंगे। इस दृष्टि से ए. लूनाचार्स्की की मान्यता विचारणीय है। उसने प्रसिद्ध व्यंग्यकार जोनाथन स्विफ्ट की रचनाधर्मिता पर विचार करते हुए व्यंग्य के स्वरूप तथा उद्देश्य का भी विश्लेषण किया है। उसने भी व्यंग्य के नैतिक पक्ष पर बल दिया है। लेकिन उसने शत्रु पर किए गए व्यंग्य के संदर्भ में नैतिकता का उल्लेख किया है। उसकी मान्यता है कि व्यंग्य पाठक को यह अहसास दिलाता है कि आप विजयी और शत्रु कमजोर है, शोचनीय है और आप उसे हँसी में उड़ा सकते हैं। इस तरह नैतिक स्तर पर आप शत्रु से श्रेष्ठ हो जाते हैं।.....इस तरह व्यंग्य की विजय नैतिक विजय

होती है, वास्तविक विजय नहीं। वस्तुत: व्यंग्य लोगों को नैतिक स्तर पर अपेक्षाकृत अधिक शक्तिशाली, दुष्टों से श्रेष्ठ सिद्ध कर उनमें आत्मविश्वास पैदा करता है तथा बुराइयों और दुर्गुणों से लड़ने के लिए प्रेरित करता है। यहाँ व्यंग्य की आक्रामकता और लड़ाकूपन के संदर्भ में नैतिकता को व्याख्यायित किया गया है। मतलब शत्रु संहारक कार्य के बावजूद भी उसमें नैतिकता निहित होती है।

प्रसिद्ध राजनीतिवेत्ता मावो त्से-तुंग ने व्यंग्य के क्षेत्र को अधिक व्यापक बनाते हुए उसकी स्थिति पर और अधिक तर्कसंगत ढंग से विचार किया है। साहित्य के अंतर्गत व्यंग्य की सार्थकता को स्वीकार करते हुए उन्होंने ल्यूसुन को एक आदर्श व्यंग्यकर्ता के रूप में प्रतिष्ठित किया है। इसके लिए उन्होंने समाज-स्थिति, वर्ग-स्थिति, परिवेश और तात्कालिक आवश्यकता को ध्यान में रखने की सिफारिश की है। उनकी स्पष्ट मान्यता है कि व्यंग्य शत्रु पर भी किया जाता है और मित्र पर भी लेकिन इनकी प्रवृत्ति और तेवर में अंतर की तमीज व्यंग्यकार को होनी चाहिए। अपने 'कला, साहित्य और संस्कृति' शीर्षक ग्रंथ में इसे स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है कि 'अपने साथियों के साथ दुश्मनों जैसा व्यवहार करने का मतलब होगा शत्रु के दृष्टिकोण को अपनाना। तो क्या हम व्यंग्य को खत्म कर डालें? नहीं। व्यंग्य का रहना हमेशा आवश्यक है। लेकिन व्यंग्य कई किस्म के होते हैं और हर व्यंग्य का रवैया अलग-अलग होता है। जैसे, अपने दुश्मनों के लिए व्यंग्य, अपने सहकर्मियों के लिए व्यंग्य, अपनी पाँतों के लिए व्यंग्य। हम सामान्य रूप से व्यंग्योक्ति का विरोध नहीं करते, लेकिन जिस चीज को हम खत्म करन चाहते हैं, वह है व्यंग्योक्तियों का दुरुपयोग।' (पृ० 73-74) - इससे स्पष्ट है कि व्यंग्य का एकमात्र रुख आक्रामकता और लड़ाकूपन ही नहीं है, जैसा कि अधिकांश चिन्तकों ने माना है। अपने इस रुख के अन्तर्गत वह शत्रुओं का सुधार नहीं कर सकता, उसे समाप्त करना ही उसका उद्देश्य होना चाहिए। दूसरी ओर अपने सहयोगियों, मित्रों और पिछड़ी चेतना के सर्वहारा जनगण पर व्यंग्य करते हुए उनमें सुधार, उन्हें शिक्षित करने की हार्दिक उत्सुकता आवश्यक है। यहाँ व्यंग्य की आक्रामकता और सुधार-क्षमता को अलगाने का प्रयास किया गया है।

पाश्चात्य विद्वानों के साथ ही हिन्दी समीक्षकों ने भी व्यंग्य को परिभाषित करने का प्रयास किया है। इस दृष्टि से शेरजंग गर्ग, बरसाने लाल चतुर्वेदी, आदि समीक्षकों के साथ ही हरिशंकर परसाई, श्रीलाल शुक्ल, जी.पी. श्रीवास्तव आदि व्यंग्यकारों ने भी व्यंग्य की वास्तविकता को उद्घाटित करने की चेष्टा की है। इस संबंध में शेरजंग गर्ग की मान्यता है कि "व्यंग्य एक ऐसी साहित्यिक अभिव्यक्ति या रचना है, जिसमें व्यक्ति तथा समाज की कमजोरियों, दुर्बलताओं, करनी एवं कथनी के अंतरों की समीक्षा अथवा निन्दा भाषा को टेढ़ी भंगिमा देकर अथवा कभी-कभी पूर्णत: सपाट शब्दों में प्रहार करते हुए की जाती है।.....व्यंग्य में आक्रमण की स्थिति अनिवार्य है।" यहाँ आक्रामकता को व्यंग्य का अनिवार्य तत्व मानते हुए उसे हास्य से अलगाने का प्रयास दिखायी देता है। लेकिन आक्रामकता केवल व्यंग्य के शत्रुतापूर्ण रुख में ही निहित है। अपनी पातों पर, मित्रों पर व्यंग्य करते हुए इसकी अनिवार्यता नहीं रहती, जैसा कि मावो त्से-तुंग की मान्यता से स्पष्ट होता है। हिन्दी के प्रखर व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई ने व्यंग्य को आक्रामकता नहीं, वरन् सहानुभूति का उत्कृष्ट रूप मानते हुए लिखा है, "व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार करता है। विसंगति, मिथ्याचारों और पाखण्डों का पर्दाफाश करता है।.....अच्छा व्यंग्य सहानुभूति का सबसे उत्कृष्ट रूप होता है।"

श्रीलाल शुक्ल व्यंग्य के वास्तविक स्वरूप का एक नये कोण से उद्घाटन करते हैं। उनकी मान्यता है कि "व्यंग्य सत्य की खोज नहीं, झूठ की खोज है। यही उसका पेंचदार रास्ता है। झूठ की खोज के सहारे या उसके बहाने ही यहाँ सत्य को पहचानने की प्रक्रिया चलती है।" कबीरदास के व्यंग्य का मर्मोद्घाटन करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है, "व्यंग्य वह है जहाँ कहने वाला अधरोष्ठ में हँस रहा हो और सुनने वाला तिलमिला उठा हो, फिर भी कहने वाले को जवाब देना अपने को और भी उपहासास्पद बना लेना हो जाता

है।'' आधुनिक हिन्दी भाषा में इधर व्यंग्य को हास्य का सहायक मानने की प्रवृत्ति कम हुई है। इसे एक दायित्वपूर्ण तथा चुनौतीपूर्ण कार्य करने मानने की प्रवृत्ति बढ़ी है। इस दृष्टि से गुलाम अहमद 'फुरकत' की यह मान्यता अत्यंत महत्वपूर्ण है, "व्यंग्य का वास्तविक उद्देश्य सोसायटी की बुराइयों, कमजोरियों और त्रुटियों की हँसी उड़ाकर पेश करना है, मगर इसमें तहजीब का दामन मजबूती से पकड़े रहने की जरूरत है, वरना व्यंग्यकार भड़ैती की सीमाओं में प्रवेश कर जाएगा।'' वस्तुतः ये सारी मान्यताएँ चिन्तकों की अपनी रुचि-अरुचि और अपनी स्वयं की वर्ग स्थिति के साथ ही हिन्दी साहित्य में व्यंग्य की स्थिति के आधार पर निर्मित उनकी मानसिक प्रतिक्रियाएँ हैं। इनमें वस्तुनिष्ठता की अपेक्षा व्यक्तिनिष्ठता या आत्मनिष्ठता का योग अधिक है।

इस सभी पाश्चात्य और भारतीय मान्यताओं के आधार पर व्यंग्य की एक निश्चित परिभाषा निर्धारित करना कठिन है। समाज और वर्ग स्थिति की सापेक्षता तथा व्यंग्यकार के स्वयं के जीवन-दर्शन और समाज-दर्शन या सामाजिक दृष्टि के आधार पर व्यंग्य के लक्षण और उसकी विशेषताएँ भिन्न हो जाती हैं। इल भिन्नताओं के बावजूद आक्रामकता, विनोदात्मकता, सुधार अथवा परिवर्तनपरक सामाजिक सोद्देश्यता व्यंग्य के सर्वस्वीकृत लक्षण या तत्व माने जा सकते हैं। व्यंग्य के अनेक उपकरण या उसकी छायाएँ हैं, जिनकी सम्यक् जानकारी के बिना हम उसके वास्तविक अभिप्राय और उसकी सार्थक भूमिका को नहीं समझ सकते। अतः आगे उसकी विभिन्न छायाओं पर संक्षेप में विचार किया जा रहा है।

14.2.3 व्यंग्य की विभिन्न छायाएँ

व्यंग्य एक व्यापक पारिभाषिक शब्द है, जिसका दायरा अत्यंत विस्तृत है। यदि इसे साहित्य की एक शैली के रूप में स्वीकार किया जाए तो यह प्राचीन भारतीय काव्य शास्त्र में अलंकार शब्द की तरह अभिव्यक्ति का माध्यम मात्र है। अलंकार के अन्तर्गत, जिस प्रकार उपमा, रूपकादि साम्यमूलक और विरोधाभास, प्रतीक आदि की तरह विरोधमूलक अर्थालंकारों के साथ ही श्लेष, अनुप्रास आदि शब्दालंकार भी आते हैं, उसी तरह व्यंग्य के अन्तर्गत, उसके सहायक के रूप में बहुत सारे साहित्यिक उपकरण भी आते हैं। इस दृष्टि से हास्य, उपहास, परिहास, वक्रोक्ति, वाग्वैदग्ध्य, वाग्दंश, कटाक्ष, कटूक्ति, पैरोडी, आक्षेप, अतिरंजना, अपकर्ष आदि उल्लेखनीय हैं। इन्हीं के माध्यम से व्यंग्य शैली का ढाँचा निर्मित हुआ है।

व्यंग्य की छाया या उपकरण के रूप में हास्य, उपहास और परिहास की स्थिति सर्वप्रथम विचारणीय है। हास्य (ह्यूमर) का उद्देश्य असंबद्धता और बेढंगपन के उल्लेख से आनंद या मजा उत्पन्न करना है, जबकि उपहास (रिडीक्यूल) का उद्देश्य तुच्छता या तिरस्कारमूलक मजाक या खिल्ली उड़ाना है। हास्य और उपहास से भिन्न परिहास चुटकी, मजा या मसखरी से जुड़ा हुआ, उसका एक अपरिष्कृत रूप है। इसी प्रकार व्यंग्य के सहायक के रूप में वक्रोक्ति, वाग्वैदग्ध (विट) और वाग्दंश भी व्यंग्य के विभिन्न उपकरण हैं। वक्रोक्ति के लिए विडंबना शब्द का प्रयोग करते हुए उसे अंग्रेजी के 'आइरनी' शब्द के पर्याय के रूप प्रतिष्ठित किया गया है। यह भारतीय काव्यशास्त्र में एक काव्य-सिद्धान्त के साथ ही एक विशिष्ट अलंकार के रूप में भी मान्यता प्राप्त शब्द है। इसके अन्तर्गत वास्तविक अभिप्राय को दर्शाने के लिए सुर एवं शैली को कुछ इस प्रकार घुमा-फिरा दिया जाता है कि उसमें एक चमत्कार उत्पन्न हो जाता है। इसे उक्ति-चमत्कार की भी संज्ञा दी जाती है। आजकल वक्रोक्ति के स्थान पर प्रायः विडम्बना शब्द का प्रयोग किया जाता है। वाग्वैदध्य (विट) एक प्रकार से असंगतों के मध्य संगति दिखाकर मूल अभिप्राय को चतुराई से अभिव्यक्त करने की एक कला है। इसे समझ की तीव्रता, हाज़िरजबाबी और प्रत्युत्पन्नमतित्व के साथ जोड़कर भी देखा जा सकता है। इसके माध्यम से व्यंग्य की गरिमा के साथ ही उसकी प्रहारक्षमता में भी वृद्धि होती है। कटाक्ष (सरकाज़्म) तानाकशी, छींटकशी, व्यंग्योक्ति आदि कई अर्थों में प्रयुक्त होता है।

प्रहारात्मकता या आक्रात्मकता इसकी प्रमुख विशेषता है। जिसमें करुणा, सहानुभूति आदि के लिए कोई स्थान नहीं होता। यह एक प्रकार से कटु और कठोर उपहास ही है। व्यंग्य में

जिसका उपयोग प्राय: शत्रु वर्ग के लिए होता है। वाग्दंश (सारडोनिक) की मूलभूत विशेषता असह्य कटुता है। वाणी द्वारा डँसना (काटना) या विषाक्त वाणी के अभिप्राय को भी इस शब्द द्वारा व्यंजित किया जाता है। कटाक्ष की तरह इसकी भी क्षमता प्रहार के लिए अधिक होती है। इसका प्रहार भी शत्रुपक्ष पर ही होता है।

कटूक्ति, पैरोडी, आक्षेप (लैम्पून), अतिरंजना, अपकर्ष आदि भी व्यंग्यकार के तरकश के तीर हैं। कटूक्ति का अभिप्राय शब्दार्थ से पूरी तरह व्यक्त हो जाता है। अंग्रेजी के 'सिनिसिज्म' का पर्याय कटूक्ति में आचरण के पूर्वनिर्धारित मानदण्डों - ईमानदारी, नैतिकता आदि के प्रति संदेह और आशंका की भावना निहित होती है। अत: इसके अन्तर्गत प्रतिष्ठित मर्यादा के उपहास का भाव भी समाहित होता है। पैरोडी अंग्रेजी का शब्द है जिसका अर्थ है कि मूल रचना या पंक्ति के शब्दों को उलट-पलट कर चमत्कारपूर्ण हास्य की सृष्टि करना। वस्तुत: इसके अन्तर्गत किसी रचना की शैली, छंद, तुक, ताल, लय की विशेषताओं के ग्रहण के बावजूद कुछ शब्दों को स्थानापन्न बनाकर एक पुनर्रचना की जाती है, जिससे समूचा अर्थ बदल जाता है। इसके लिए 'राग-दरबारी' से ही एक स्पष्ट उदाहरण लेना अधिक उपयुक्त होगा :

मूल - लेके पहला-पहला प्यार, भर के आँखों में खुमार,
जादू नगरी से आया है कोई जादूगर।,

पैरोडी - लेके पहला-पहला प्यार, तज के ग्वालों का संसार,
मथुरा नगरी से आया है, कोई वंशीधर।

आपको यह जानकर सुखद आश्चर्य होगा कि श्रीलाल शुक्ल का रचनात्मक लेखन छात्र जीवन की एक "पैरोडी" से हुआ था। एक प्रसिद्ध प्रयाण-गीत की 'पैरोडी' उन्होंने इस प्रकार की थी :

मूल - खिदमते हिन्द में जो कि मर जाएँगे।
नाम दुनिया में अपना भी कर जाएँगे।।

पैरोडी - हम बिना बाथरुम के मर जाएँगे।
नाम दुनिया में अपना भी कर जाएँगे।।
यह न पूछो की मरकर किधर जाएँगे।।
होगा पानी जिधर हम उधर जाएँगे।।

हास्टल में पानी की दिक्कत को लेकर लिखी गई यह 'पैरोडी' लेखक की व्यंग्य लेखन के प्रति आरम्भिक रुझान को व्यक्त करती है।

'पैरोडी' से भिन्न आक्षेप द्वेषपूर्ण व्यक्तिगत आरोप होता है, जिसमें तिरस्कार करने या बदला लेने की भावना प्रमुख होती है। इसका उद्देश्य अपने अहम् की तुष्टि के साथ ही शरारत के लिए चोट पहुँचाना है। अतिरंजना में असंगति और विद्रूपताओं को बढ़ा-चढ़ाकर दिखाया जाता है, जिसका झुकाव बद-से-बदतर की ओर होता है। जबकि अपकर्ष में लक्ष्य को तुच्छ और निन्दनीय बताकर उसका तिरस्कार करते हुए खिल्ली उड़ाई जाती है। इन तमाम सारे उपकरणों/माध्यमों के सहारे व्यंग्यकर्ता अपनी व्यंग्यात्मक शैली का नियोजन करता है। व्यंग्य की इन छायाओं/उपकरणों की जानकारी के बाद आप आसानी से व्यंग्य की साहित्यिक-सामाजिक उपयोगिता को समझ सकते हैं।

14.2.4 व्यंग्य की साहित्यिक-सामाजिक उपयोगिता और उसका साहित्य रूप

व्यंग्य के शब्दार्थ निरूपण के साथ ही उसे परिभाषित करने की प्रक्रिया में उसकी सामाजिक उपयोगिता को स्थान-स्थान पर रेखांकित करना पड़ा है। यहाँ व्यंग्य की साहित्यिक और सामाजिक उपयोगिता पर पुन:संक्षेप में विचार कर लेना आपके लिए अधिक उपयोगी होगा।

वर्ग विभाजित विषमताग्रस्त समाज में शोषण, अन्याय, असमानता, स्वार्थपरता आदि बुराइयों ने अराजकता और मूल्यहीनता की भयावह स्थिति उत्पन्न कर दी है। ऐसी स्थिति में समाज की बहुसंख्यक जनता अपने को वंचित और उत्पीड़ित महसूस करती है। इसके निदान के लिए जिस प्रकार सामाजिक-राजनीतिक आन्दोलन अनिवार्य हैं, उसी प्रकार साहित्य के मोर्चे से भी आन्दोलन होते रहे हैं। इस प्रकार के आन्दोलनों में साहित्य के अधिकांश नेतृत्वकर्ताओं ने अपनी वर्गीय पक्षधरता का भी परिचय दिया है। हिन्दी साहित्य के मध्यकालीन निर्गुण भक्ति से भक्ति का आन्दोलनकारी रूप प्रत्यक्ष रूप से उद्घाटित हुआ है। इसके नेतृत्वकर्ता कबीर की वाणी ने व्यंग्य का जो आक्रामक रूप धारण किया था - वह हमारे लिए एक मिसाल है। आधुनिक हिन्दी साहित्य के सूत्रपातकर्ता भारतेन्दु बाबू हरिशचंद्र की वाणी ने ब्रिटिश शासन के साथ ही भारतीय समाज में व्याप्त अन्याय, अनाचार, धार्मिक पाखंड, अंधविश्वास, सामाजिक भेदभाव आदि पर अत्यंत प्रखर व्यंग्यबाणों का संचालन किया है। छायावाद के प्रमुख स्तम्भ निराला के व्यंग्यवाणों की धार कभी कुंठित नहीं होने पायी। प्रगतिशील साहित्यान्दोलन से जुड़े अधिकांश कवियों-कलाकारों ने प्राय: व्यंग्य का सहारा लिया है। त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल के साथ इस दृष्टि से सर्वाधिक महत्व नागार्जुन का है। इन्होंने स्वातंत्र्योत्तर भारत की अनाचार और अन्यायकारी शक्तियों पर गिन-गिन कर चोटें की हैं। इसके साथ ही स्वातंत्र्योत्तर शासनतंत्र की जनविरोधी नीतियों का पर्दाफाश करने से कभी चूके नहीं। वस्तुत: इन व्यंग्यकर्ताओं ने एक साहित्यकार के रूप में अपने सामाजिक दायित्व को अत्यंत कारगर ढंग से निबाहा है। अत: साहित्य की सामाजिक उपयोगिता को व्यंग्य के माध्यम से अधिक असरदार बनाने का प्रयास किया गया है।

स्वातत्र्योत्तर काल में स्वतंत्रता, लूट-खसोट और मनमानी की स्वतंत्रता का पर्याय बनी। सत्तालोलुप अवसरवादी राजनीति के कारण न्याय-व्यवस्था और प्रशासन-व्यवस्था - दोनों की चूलें हिल गयी। समाज में असमानता, अन्याय, भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, जातिवाद, सम्प्रदायवाद की प्रवृत्ति को खुलकर खेलने की छूट मिली। इस अराजक व्यवस्था ने आम आदमी, विशेषकर किसान-मजदूर और पिछड़ी हुई अछूत और छोटी समझी जाने वाली जातियों के जीवन को दूभर कर दिया। ऐसे में बहुत से सामजिक-राजनीतिक कार्यकर्ताओं ने सक्रिय विरोध, धरना, असंतोष प्रदर्शन आदि का मार्ग ग्रहण किया। साहित्य के मोर्चे पर सक्रिय और सामाजिक चेतना से सम्पन्न चिन्तक-कलाकारों में से कुछ अधिक संवेदनशील लोगों ने अपनी अभिव्यक्ति के लिए व्यंग्य शैली का सहारा लिया। नागार्जुन, केदारनाथ त्यागी, बरसाने लाल चतुर्वेदी, अमृतलाल नागर, लतीफ घोंघी, धूमिल, सर्वेश्वर दयाल, श्रीलाल शुक्ल आदि के नाम इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। आज के संदर्भ में इनकी सामाजिक उपयोगिता निर्विवाद है। इनकी व्यंग्य-योजना मात्र सामाजिक-राजनीतिक विसंगतियों का पर्दाफाश ही नहीं करती, वरन् जागरण और समाज के नवनिर्माण की प्रेरणा भी देती है। व्यंग्यकर्ता का कार्य एक प्रकार से साहित्य के मोर्चे पर धरना या विरोध प्रदर्शन ही है।

जहाँ तक व्यंग्य की साहित्यिक उपयोगिता का प्रश्न है, वह अभिव्यक्ति को प्रखर और अधिक प्रभावशाली बनाता है। इसके साथ ही व्यंग्य अशिष्ट गाली-गलौज या भड़ैती न होकर एक शिष्ट और परिष्कृत आलोचना है, जो उसे साहित्य का रूप देती है। लेकिन साहित्य का परम शुद्धता के कट्टर समर्थकों की भाँति हमें साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र की ऐसी कसौटी भी नहीं निर्मित कर लेनी चाहिए कि आक्रोशपूर्ण आक्रामकता और विद्वेषजनित व्यंग्योक्तियों को ही साहित्य के क्षेत्र से निष्कासित करना पड़ जाए। वस्तुत: सामाजिक विषमता एवं विद्रूपता की विसंगतियों से झकझोरा हुआ व्यक्ति जब अपने को व्यंग्योक्तियों के माध्यम से व्यक्त करने लगता है तो शिष्टता के पूर्वनिर्धारित मानदण्ड भी खण्डित होने लगते हैं। कबीर बौखलाहट की दशा में पहुँचकर कहते हैं :

तू बामन बामनि का जाया, तो आन बाट ह्वै क्यों नहिं आया।

अथवा

जो तू तुरुक तुरकनी जाया, अन्दर खतना क्यों न कराया।

इस प्रकार की तमाम उक्तियों को अगर कबीर के साहित्य से निकाल दिया जाए तो उनका व्यंग्यकार रूप हमारी आँखों से ओझल हो जाएगा। नागार्जुन के काव्य में आई इस प्रकार की अनेक व्यंग्योक्तियाँ हैं। यथार्थ की नग्नता के चित्रण में श्रीलाल शुक्ल ने भी कहीं-कहीं ऐसा ही रुख अपनाया है। उस पर गंभीरता से विचार करने की जरूरत है। साहित्य की सीमाओं का कुछ अंश तक अतिक्रमण करने के बावजूद यदि उसकी सामाजिक उपयोगिता बढ़ती है तो हमें इस प्रकार के अतिक्रमणों को स्वीकार करना पड़ेगा। इसके लिए हमें एलेक्ज़ेण्डर बेन के 'यूजेज और एब्यूजेज' शीर्षक ग्रंथ के साथ ही मलय द्वारा लिखे गए ग्रंथ- व्यंग्यका का सौन्दर्यशास्त्र' की कतिपय मान्यताओं को ध्यान में रखना पड़ेगा। अतः व्यंग्य के औचित्य-अनौचित्य, उसकी शिष्टता-अतिशिष्टता, साहित्यिकता-असाहित्यिकता का निरीक्षण-परीक्षण करते समय हमें व्यंग्यकार के लक्ष्य, व्यंग्य की सामाजिक उपयोगिता, उसकी प्रभाव-क्षमता पर भी पूरा ध्यान देने की जरूरत है। उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखकर ही हम आगे 'राग दरबारी' में प्रयुक्त व्यंग्य के स्वरूप पर विचार करेंगे। लेकिन इससे हमें इस प्रश्न पर भी विचार कर लेना चाहिए कि व्यंग्य साहित्य की एक शैली है या स्वतंत्र विधा।

वैसे देखा जाए तो हिन्दी में व्यंग्य की परंपरा का सूत्रपात अभिव्यक्ति की एक शैली के रूप में ही हुआ है। कबीर, भारतेन्दु से लेकर निराला, नागार्जुन आदि सभी कवि-गद्यकारों ने अपनी रचनाओं में व्यंग्य शैली का उपयोग किया है। कबीर ने अपनी कविताओं में इसका उपयोग किया है, जबकि भारतेन्दु ने कविताओं के साथ ही मुख्य रूप से इसका उपयोग अपने नाटकों और निबंधों में किया है। 'निराला' के यहाँ कविता, कहानी, उपन्यास आदि सभी विधाओं में इसका उपयोग हुआ है। नागार्जुन ने भी इसे शैली के रूप में मुख्य रूप से अपनी कविताओं में ही प्रयुक्त किया है। वर्तमान युग में हिन्दी के कुछ रचनाकार सामने आए हैं, जिन्होंने इसे स्वतंत्र विधा के रूप में भी अपनाया है। हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, रवीन्द्रनाथ त्यागी, बरसाने लाल चतुर्वेदी, लतीफ घोंघी के साथ ही श्रीलाल शुक्ल के नाम इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। इनकी बहुत सी रचनाओं को यदि निबंध, कहानी, जीवनी, लघुकथा आदि पूर्वस्वीकृत विधाओं में समाविष्ट नहीं किया जा सकता तो निश्चय ही व्यंग्य को एक विधा के रूप में स्वीकृति देनी होगी।

व्यंग्य को शैली और साहित्य-विधा मानने के प्रश्न को लेकर अंग्रेजी साहित्य में विवाद रहा है, लेकिन वहाँ उसे विधा के रूप में स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। बावजूद इसके 'इंगलिश सेटायर' पर महत्वपूर्ण कार्य करने वाले आलोचक जेम्स सदरलैण्ड जैसे प्रखर चिन्तकों को यह मानना पड़ा है कि "यदि मैं अपने अध्ययन को केवल उन रचनाओं तक सीमित रखता जो आदि से अंत तक व्यंग्यात्मक हैं, तो मुझे अंग्रेजी साहित्य के प्रखरतम और विचक्षणतम व्यंग्य को छोड़ देना पड़ता।'' हिन्दी का कोई भी व्यंग्य रचयिता कबीर और नागार्जुन से प्रखर और विचक्षण व्यंग्यकार नहीं हुआ है। इस स्थिति और विशेष रूप से हिन्दी साहित्य में व्यंग्यकारों की वास्तविक स्थिति को ध्यान में रखकर हमें जहाँ एक ओर व्यंग्य को एक सशक्त शैली के रूप में मान्यता देनी पड़ेगी, वहीं उसे विधा के रूप मे भी स्वीकृति देनी पड़ेगी। इसमें कोई अन्तर्विरोध नहीं है।

14.3 'राग दरबारी' में प्रयुक्त व्यंग्य का स्वरूप

किसी रचना में प्रयुक्त व्यंग्य का निर्धारण करते हुए रचनाकार के लक्ष्य, उसकी हार्दिक आशा-आकांक्षा, उसके सामाजिक सरोकार, उसकी मूल्य-चेतना, तत्कालीन सामाजिक-राजनीतिक स्थिति-परिस्थिति को केन्द्र में रखना आवश्यक है। सामाजिक विषमताओं और विकृतियों के गहरे संकट के दौर में जहाँ उसका व्यंग्य निर्मम, आक्रामक और ध्वंसात्मक होगा,

वहीं प्रगतिशील समाज के विकास और स्वस्थ जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठा के वातावरण में उसका रुख अधिक सकारात्मक और रचनात्मक होगा। इस दृष्टि से देखें तो श्रीलाल शुक्ल के सम्मुख भारत की स्वातंत्र्योत्तर सामाजिक-राजनैतिक स्थिति-परिस्थिति मूलाधार के रूप में रही है। पिछले बीस वर्षों के तथाकथित विकास के बाद राजनीति और समाज में जो कुछ फल-फूलकर तैयार हुआ है, वह ठीक नहीं है - इस मान्यता को लेकर उपन्यासकार 'राग दरबारी' की रचना में प्रवृत्त हुआ है। अत: तत्कालीन वास्तविकता को बेनकाब करना ही उसका प्रमुख लक्ष्य रहा है।

अपने निर्धारित लक्ष्य की पूर्ति के लिए उपन्यासकार ने देश की समूची स्थिति-परिस्थिति पर चौतरफा आक्रमण किया है। स्वतंत्रता, जनतंत्र, बहुमुखी विकास, सहकारिता, पंचायत-व्यवस्था के साथ खिलवाड़ करने वाले समाज के दुष्ट और निहित स्वार्थी चरित्र वाले तत्वों को बेनकाब करते हुए उपन्यासकार ने निर्मम आक्रमण किया है। इस आक्रमण में उपहास, विडम्बना, वाग्वैदग्ध्य, वाग्दंश, कटाक्ष आदि व्यंग्य के अधिकांश उपकरणों का सहारा लिया गया है। लोकतंत्र को झूठतंत्र ही नहीं, लूटतंत्र में परिवर्तित करने वाले तत्वों के काले कारनामों को दिखाने के लिए शिवपाल गंज को चुना गया है। वस्तुत: यहाँ शिवपाल गंज और उसके अधिनायक वैद्य जी ऐसे सशक्त प्रतीक हैं, जो पंचायत व्यवस्था, कॉलेज का प्रबंध, कोऑपरेटिव यूनियन का प्रबंध, थाना-पुलिस व्यवस्था ही नहीं न्याय व्यवस्था को भी अपनी मुट्ठी में बंद किए हुए हैं। इस जकड़न में छटपटाता यथार्थ इतना भयावह और विद्रूप है कि उसे देखना एक त्रासद ही नहीं घिनौने अनुभव से गुजरना है।

इस खण्ड की पहली इकाई के अन्तर्गत 'बिसामपुर का संत' उपन्यास का परिचय देते हुए आपके सम्मुख हमने इस तथ्य को संकेतिक किया कि कुछ आलोचकों ने चुहलबाजी और उपहास की मुद्रा की भरमार के कारण 'राग दरबारी' पर सामाजिक दृष्टि के अभाव का आरोप लगाया है। वस्तुत: चुहलबाजी हास्य और परिहास का आधार है, जो किसी रचना को बोझिल और नीरस होने से बचाता है। जहाँ तक उपहास का प्रश्न है, वह नकारात्मक ही नहीं, परोक्ष रूप से सकारात्मक भूमिका का भी निर्वाह करता है। उपहास की सकारात्मक रचनाधर्मिता पर बल देते हुए लूनाचार्स्की ने लिखा है कि "व्यंग्यकार दुर्गणों, बुराइयों और शत्रुओं पर टूट पड़ता है और उसे उपहासास्पद बना देता है। वह आपको अहसास दिलाता है कि आप विजयी हैं और शत्रु कमजोर है, शोचनीय है और आप उसे हँसी में उड़ा सकते हैं। इस तरह नैतिक स्तर पर आप शत्रु से श्रेष्ठ हो जाते हैं।" वस्तुत: यही स्थिति "राग दरबारी" में वैद्यजी के साथ ही रामाधीन, भीखम खेड़वी, बद्री पहलवान, छोटे पहलवान, कालिका प्रसाद, राधेलाल आदि की भी है। नैतिकता और मानवीय गुणों से विपन्न इन पात्रों को उपहासास्पद बनाकर श्रीलाल शुक्ल ने एक सकारात्मक भूमिका का निर्वाह किया है।

व्यंग्य की सामाजिक सोद्देश्यता के संदर्भ में 'राग दरबारी' में प्रयुक्त व्यंग्य की स्थिति पर कई लोगों ने उँगली उठाई है, जो बहुत तर्कसंगत नहीं है। इस संबंध में मैथ्यू होंगर्थ की मान्यता काफी समीचीन प्रतीत होती है। उसके अनुसार "व्यंग्य चेतावनी देता है कि मनुष्य वह खतरनाक जानवर है जिसमें मूर्खतापूर्ण कार्य करने की असीम क्षमता है। और यदि व्यंग्यकार द्वारा इस सत्य की अभिव्यक्ति कर दी जाती है तो बहुत पर्याप्त है। मनुष्य के गौरव का वर्णन कवियों का कार्य है।" इस मान्यता को और आगे बढाते हुए नारमन फर्लांग ने लिखा है कि "व्यंग्य कार्य मात्र रोशनी दिखाना है, रास्ता चुनकर देना नहीं। वह शराब की बुराइयों को सामने लाता है, शराब के स्थान पर क्या पीना चाहिए, यह नहीं सुझाता और न ऐसा करना उसका उद्देश्य ही होता है। व्यंग्यकार सीधे-सीधे सुधारक का कार्य नहीं करता बल्कि मूल्यों के पुनर्निधारण का मार्ग प्रशस्त करता है।" 'राग दरबारी' में प्रयुक्त व्यंग्य इस दृष्टि से सोद्देश्य और सार्थक सिद्ध होता है।

जहाँ तक चुहलबाजी का संबंध है, वह कहीं-कहीं 'राग दरबारी' में जरूरत से ज्यादा दिखायी देती है। आइए, इसके लिए 'राग दरबारी' से कुछ उदाहरण लेते हैं। गाँव के किनारे के

तालाब की गंदगी का यथार्थ, किन्तु व्यंग्यात्मक चित्र प्रस्तुत करने के बाद उपन्यासकार मानव द्वारा पैदा की गयी गंदगी का चित्रण करते हुए लिखता है, 'गंदगी की कमी को पूरा करने के लिए दो दर्जन लड़के नियमित रूप से शाम सबेरे और अनियमित रूप से दिन के किसी भी समय पेट के स्वेच्छाचार से पीड़ित होकर तालाब के किनारे जाते थे और - ठोस, द्रव तथा गैस - तीनों प्रकार के पदार्थ उसे समर्पित कर, हलके होकर, वापस लौट जाते थे।'' इसके आरम्भ में लेखक ने 'अहा ग्राम्य जीवन भी क्या है' जैसी मैथिलीशरण गुप्त की काव्य पंक्ति का 'अपकर्ष' के सहारे उल्लेख करते हुए तालाब के किनारे की जिस मानवकृत गंदगी का चित्र प्रस्तुत किया है, वह गंदगी की अपेक्षा परिहास के हावी हो जाने की सूचक है। शिवपाल गंज के बस अड्डे की गंदगी के चित्रण में भी उपन्यासकर ने यही पद्धति अपनायी है, "सुबह होते ही, 'शर्मदार के लिए सींक की आड़ भी काफी होती है', इस सिद्धान्त पर वहाँ उगने वाली घास के हर तिनके के पीछे एक-एक शर्मदार आदमी छिपा हुआ नज़र आता था। बहुत ऐसे भी लोग थे जो, 'भाइयों और बहनों, मेरे पास छिपाने को कुछ नहीं है', वाली सच्चाई से बिल्कुल खुले में बैठकर और सींक की आड़ भी न लेकर अपने-आपको पेश करने लगते थे। इस मौक़े का फायदा उठाने के लिए शिवपाल गंज के सभी पालतू सुअर, सबेरे-सबेरे उधर ही पहुँच जाते थे। वे आदमियों द्वारा पैदा की गयी गंदगी को आत्मसात करते, उसे इधर-उधर छितराते और वहाँ की हवा को बदबू से बोझिल बनाने की कोशिश करते।.....इधर बस के अड्डे पर बैठे हुए मुसाफिर नाक पर कपड़ा लपेट कर कभी जैन धर्म स्वीकार करने को तैयार दिखते, कभी सुअरों की गुरगुराहट सुनते हुए वाराह-अवतार की कल्पना में खो जाते। वातावरण बदबू और धार्मिक संभावनाओं से भरा-पूरा था।''

वस्तुस्थिति के साथ ही मनोदशाओं के चित्रण में भी उपन्यासकार ने प्राय: व्यंग्य का ही सहारा लिया है। जमीन के प्रति किसानों के सहज प्रेम पर वाग्वैदग्ध्य और कटाक्ष के सहारे उपन्यासकार की टिप्पणी है, 'किसान को, जैसा कि 'गोदान' पढ़ने वाले और 'दो बीघा जमीन' जैसी फिल्में देखने वाले पहले से ही जानते हैं, जमीन बहुत प्यारी होती है। यही नहीं, अपनी जमीन के मुकाबले दूसरे की जमीन ज्यादा प्यारी होती है।.....ये बातें 'गोदान' में इतनी साफ नहीं लिखी गयी हैं और बम्बइया फिल्मों में - शायद कृश्न चन्दर और ख्वाजा अहमद अब्बास के डर से - या प्रगतिशीलता के जोश में चास फीसदी अंधे हो जाने के कारण या सिर्फ-जहालत के कारण - साफ तौर पर नहीं दिखायी गयी हैं। इसलिए इन्हें जरा सफाई से कहना पड़ा, अगर्चे अपने देश में सफाई का काम कलाकारों का नहीं है, फिर भी.....।'' वस्तुत: इस प्रकार की व्यंग्यात्मक टिप्पणियों का सम्बंध मात्र वस्तुस्थिति के उद्घाटन तक सीमित न होकर एक बृहत्तर साहित्यिक-सामाजिक संदर्भ को भी रेखांकित करने में है। इन्हें मात्र चुहलबाजी कहकर नजरन्दाज नहीं किया जाना चाहिए। इसी तरह के न जाने कितने चित्रण 'राग दरबारी' में भरे पड़े हैं, जो वस्तुस्थिति के स्पष्टीकरण के साथ उसे मनोरंजक भी बनाते हैं और बृहत्तर संदर्भों से भी जोड़ते हैं। अत: हम कह सकते हैं कि 'राग दरबारी' में प्रयुक्त व्यंग्य का स्वरूप उपन्यासकार के लक्ष्य, उसकी बहुज्ञता और निजी अनुभव-सम्पन्नता के अनुरूप ही है।

14.4 'राग दरबारी' का यथार्थ और व्यंग्य शैली की सार्थकता

14.4.1 वस्तुस्थितियों का मनोभावों के सम्मूर्तन के लिए व्यंग्य

राग दरबारी के आरंभ से ही व्यंग्य धारा प्रवाहित होने लगती है। सड़क पर खड़े ट्रक के बाहरी ढाँचे का उल्लेख किए बिना ही लेखक एक भावप्रवण चित्र इस प्रकार प्रस्तुत करता है, "उसे देखते ही यकीन हो जाता था, इसका जन्म केवल सड़कों के साथ बलात्कार करने के लिए हुआ है।'' सड़क के किनारे पेट्रोल पंप के पास की खस्ताहाल दुकानों का यथार्थ चित्रण करते हुए वह मिठाइयों के बारे में अपनी व्यंग्यात्मक टिप्पणी करता है,''.....जो दिन-रात

मक्खी-मच्छरों के हमलों का बहादुरी से मुकाबला करती थीं। वे हमारे देशी कारीगरों के हस्त-कौशल और उनकी वैज्ञानिक दक्षता का सबूत देती थीं। वे बताती थीं कि हमें एक अच्छा रेजर-ब्लेड बनाने का नुस्खा भले ही न मालूम हो, पर कूड़े को स्वादिष्ट खाद्य पदार्थों में बदल देने की तरकीब सारी दुनिया में अकेले हमीं को आती है।''

उपर्युक्त दोनों उदाहरणों में प्रत्यक्ष रूप से व्यंग्य कें किसी महत्वपूर्ण उपकरण का सहारा नहीं लिया गया है, फिर भी इन्हें अतिरंजना और अपकर्ष का सुन्दर उदाहरण माना जा सकता है। ट्रक और मिठाइयों की स्थिति हमारे सामने उनके यथार्थ को मूर्त कर देती है। इसी प्रकार बस अड्डे की गंदगी, गाँव के बगल के तालाब, चमरही बस्ती आदि के यथार्थ को उद्‌घाटित करने में भी राग दरबारी में इसी पद्धति का सहारा लिया गया है। एक नेता द्वारा अपनी नकल प्राप्त करने के लिए तहसील के सामने झोपड़ी डाल कर भूख हड़ताल करने और अखबार में नाम छपने का प्रलोभन देने के सुझाव पर लंगड़ की खुली हँसी पर टिप्पणी करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है, "लंगड़ इस बार जैसी हँसी हँसा वह सिर्फ वैष्णवजन की न थी। उस पर कबीर स्कूल, वर्धा स्कूल और सेवापुरी स्कूल की छाप तो थी ही, कुछ लखनऊ स्कूल का भी असर था, जिसका इसके सिवा कोई जवाब नहीं होता कि आप भी दाँत खोलकर हें हें हें' करने की कोशिश करें।'' यहाँ केवल लंगड़ की साधारण हँसी ही नहीं वरन् नेता के विषय में उसकी समझ भी मूर्त हो गयी है।

वैद्य जी और बद्री से डाँट खाये रुप्पन की मनोदशा को मूर्त करने के लिए उपन्यासकार की टिप्पणी है, "सभी मशीनें बिगड़ पड़ी हैं। सब जगह कोई-न-कोई गड़बड़ी है। सड़कों पर सिर्फ कुत्ते बिल्लियाँ और सुअर घूमते हैं। हवा सिर्फ धूल उड़ाने के लिए चलती है। आसमान का कोई रंग नहीं, नीलापन उसका फरेब है। बेवकूफ लोग बेवकूफ बनाने के लिए बेवकूफों की मदद से बेवकूफों के खिलाफ बेवकूफी करते हैं। घबराने की, जल्दबाजी में आत्महत्या करने की जरूरत नहीं। बेईमान और बेईमानी सब ओर से सुरक्षित है।'' यह रुप्पन की अनमनी मनोदशा का एक बाह्य बिम्ब है, जो उसके आन्तरिक ऊहापोह और अंततः सान्त्वना का संकेत करता है। स्थूल यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए उपन्यासकार ने एक भिन्न पद्धति अपनाई है। सनीचर द्वारा खोली गयी नयी दुकान की वास्तविकता का कच्चा चिट्ठा प्रस्तुत करते हुए उसने लिखा है, "दुकान पर पान-बीड़ी से लेकर आटा, दाल, चावल, गरम मसाला आदि सब कुछ था जो खुले आम खरीदा और खाया जाता है। यह तो राजनीति का वह पहलू था, जो मेनीफेस्टो में लिखा जाता है। इसके बाद वह पहलू आता था जो पार्टी की बैठकों में गुप्त मंत्रणा के रूप में प्रकट होता है और जो सिर्फ विश्वस्त सूत्रों को ही मालूम हो पाता है। उसके भीतर वे चीजें आती थीं जो खुलेआम खरीदी तो नहीं जाती थीं, पर खायी जा सकती थीं। इस कोटि के माल में बहुत सी अंग्रेजी दवाइयाँ थीं, जिनका उद्‌गम स्थानीय अस्पताल के स्टोर में था। इन्हीं में पाउडर वाले अमरीकी दूध के डिब्बे थे, जिनका उद्‌गम स्थानीय प्राइमरी स्कूल में था। इस तरह के पदार्थों में कुछ वे पदार्थ आते थे, जो सिर्फ छिपाकर खरीदे जा सकते थे और छिपाकर ही इस्तेमाल हो सकते थे। इनमें गाँजा, भाँग और चरस थी।'' वस्तुतः इस पद्धति से श्रीलाल शुक्ल ने ग्रामीण जीवन में व्याप्त यथार्थ को परत-दरपरत उघाड़ने का सफल प्रयास किया है। पार्टी मेनीफिस्टो और उसके दलीय चरित्र के माध्यम से लेखक ने सनीचर की दूकान के खुले-छिपे सभी पहलूओं को बेनकाब किया है।

14.4.2 गृहीत तथ्यों की पुष्टि के लिए व्यंग्य

श्रीलाल शुक्ल ने 'राग दरबारी' में गृहीत तथ्यों की पुष्टि के लिए प्रायः व्यंग्य शैली का सहारा लिया है। तथ्य चाहे किसी पात्र के चरित्र से संबद्ध हो चाहे वातावरण या पृष्ठभूमि के चित्रण से, उपन्यासकार ने सर्वत्र इसी पद्धति का सहारा लिया है। यहाँ उदाहरण के लिए वैद्यजी के आवास की छत के ऊपरी कमरे के दृश्यांकन को लिया जा सकता है, "छत के ऊपर एक

कमरा था जो हमेशा संयुक्त परिवार की पाठ्य-पुस्तक जैसा खुला रहता था।.....परिवार के सभी लोगों में शांतिपूर्ण सहअस्तित्व का नारा बुलंद करने वाले इस कमरे को देख कर लोगों के मन में स्थानीय संस्कृति के लिए श्रद्धा पैदा हो सकती थी। इसे देख लेने पर कोई भी समाजशास्त्री यह नहीं कह सकता था कि पूर्वी गोलार्द्ध में संयुक्त परिवार की व्यवस्था को कहीं से कोई खतरा है।'' उपन्यासकार का यह निष्कर्ष एक अपेक्षात्मक टिप्पणी के रूप में प्रस्तुत हुआ है। इस कमरे की आन्तरिक सज्जा का विवरण देते हुए कोने में रखी मुगदरों की जोड़ी, काँच और मिट्टी के बर्तनों में रखे हुए अचार, कमरे के आर-पार बँधी रस्सी पर एक साथ लटके हुए लंगोट और चोलियाँ, अँगोछे और पेटीकोट, वैद्यजी के दवाखाने की खाली शीशियाँ तथा इनके साथ ही रुप्पन बाबू का गुप्त साहित्य समान रूप से प्रतिष्ठित था। रुप्पन के गुप्त साहित्य पर टिप्पणी करते हुए लेखक का कहना है कि "बहुत सी दफ्तरी बातों की तरह गुप्त रहकर भी वह गुप्त नहीं रहता। विशिष्ट और जन-साहित्य की बनावटी श्रेणियों का अतिक्रमण कर वह सबके हृदयों में समान रूप से प्रतिष्ठित है। सुमित्रानंदन पंत की दार्शनिक भाषा में कहा जाए, तो 'मानव और मानव के चिरंतन' संबंधों का ही उसमें वर्णन होता है।'' यहाँ एक प्रकार से आक्षेपात्मक टिप्पणी है, जिसमें गुप्त साहित्य के साथ पंतजी को भी लपेट लिया गया है।

रंगनाथ के आ जाने से इस कमरे के मूल चरित्र में परिवर्तन आ गया है।"रंगनाथ ने आते ही इसमें अपना व्यक्तिवाद फैला दिया था।" क्योंकि इसमें एक स्थायी चारपाई पर एक स्थायी बिस्तर डाल दिया गया था। आलमारी में शोधकार्य से संबधित उसकी किताबें लग गयी थीं, जिसमें गुप्त साहित्य के प्रवेश का निषेध कर दिया गया था। चारपाई से लगी खिड़की खुलने पर बगीचों और खेतों का दृश्य रंगनाथ के व्यक्तित्व को कवित्वमय बना देता था। वह सोचने लगता था कि "उसके सामने न जाने कितने वड्र्सवर्थ, कितने राबर्ट फ्रास्ट, कितने गुरुभक्त सिंह एक आर्केस्ट्रा बजा रहे हैं और उनके पीछे अनगिनत आंचलिक कथाकार मुँह में तुरही लगाए, साँस फुलाए खड़े हैं।'' कटाक्ष और आक्षेप की यह शैली उपन्यास में आद्यंत विद्यमान है, जो इस बात का संकेत करती है कि तत्कालीन समाज का हर व्यक्ति उपन्यासकार को अपना शत्रु ही दिखायी देता है। कहीं भी उसका सहयोगी या उसकी पाँत का कोई व्यक्ति है ही नहीं।

रंगनाथ के मन में यह भ्रम पैदा हो गया है कि गाँव में पीढ़ियों को लेकर कोई विवाद नहीं दिखायी देता। इस पर टिप्पणी करते हुए उपन्यासकार पाठक को सामाजिक क्षेत्र से हटाकर क्षणभर के लिए साहित्य के क्षेत्र की ओर ले जाते हुए लिखता है, "यह विवाद विशेष रूप से साहित्य और कला के क्षेत्र में ही चल रहा था, क्योंकि औरों के मुकाबले वाद-विवाद के लिए साहित्य और कला के क्षेत्र ही ज्यादा-से-ज्यादा फैलावदार और कम-से-कम हानिकारक हैं। पिछली पीढ़ी के मन में अगली पीढ़ी को मूर्ख और अगली के मन में पिछली को जोकर समझने का चलन वहाँ इतना बढ़ गया था कि अगर क्षेत्र साहित्य या कला का न होता, तो अब तक गृह-युद्ध छिड़ चुका होता।'' इस पद्धति का वह आगे भी सहारा लेता है। अखाड़े से आ रहे बद्री और छोटे पहलवान जिस असावधानी से लंगोट पहने हुए थे, उस पर टिप्पणी करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है, "जिस तरह कला के नाम पर हेनरी मिलर और डी.एच. लारेंस की अश्लीलता को माफ़ी मिल जाती है, उसी तरह भारतीय व्यायाम के नाम पर इन दोनों पहलवानों को यह सब दिखाने की छूट मिल गयी थी।'' इसी तरह गाँव के निकट सन्ध्याकाल में होने वाले गीदड़ों की सामूहिक आवाज पर लेखक की टिप्पणी है, "इससे प्रमाणित होता है कि उनमें सामूहिक रूप से रहने की शक्ति काफी मात्रा में मौजूद है और गाँव के आसपास का सारा जंगल कट जाने के बावजूद - अपने देश में उखड़े हुए यहूदियों की तरह - वे कहीं बसने के लिए आन्दोलन जैसा छेड़ने वाले हैं।'' वस्तुत: इस प्रकार के व्यंग्य अधिकांशत: हास्य और चुहलबाजी की वृत्ति के ही परिचायक हैं, जिनमें रचनाकार का कोई गंभीर सरोकार नहीं दिखायी देता। इनका महत्व मनोरंजन या विनोद के साथ ही वातावरण की सृष्टि या पृष्ठभूमि के निर्माण में सहायक हो सकता है।

'राग दरबारी' की उपर्युक्त प्रवृत्ति को देखकर श्रीपत राय जैसे प्रगतिशील साहित्यकार ने इसे 'अतिशय उबाऊ, कुरुचिपूर्ण और कुरचित रचना' बताया और नेमिचंद्र जैन जैसे सुधी समीक्षक ने 'असंतुष्ट, क्षुब्ध व्यक्ति की बेशुमार शिकायतों और खीझ भरे आक्षेपों का अंतहीन सिलसिला' बताया है। लेकिन पाठकों के बीच और बहुत सारे आलोंचकों के बीच भी अपनी यथार्थोन्मुखता के कारण 'राग दरबारी' ने एक निज़ी पहचान निर्मित की है। गाँव समाज में वैद्यजी, बद्री पहलवान, छोटे पहलवान, रामाधीन भीखम खेड़वी, कालिका प्रसाद, राधेलाल, सनीचर, जोगनाथ आदि पात्र अपने जिस कल, बल, छल का परिचय देते हैं - वह पूरे समाज के चरित्रोद्घाटन का एक प्रामाणिक दस्तावेज बन जाता है। इनकी तमाम गतिविधियाँ केवल ग्राम समाज को ही नहीं, वरन् समूचे देश के राजनीतिक-सामाजिक यथार्थ को अत्यंत कौशल के साथ प्रस्तुत करती हैं। विकृत राजनीतिक-संस्कृति के प्रतीक वैद्यजी पूरे देश के पटल पर एक घातक व्यंग्य हैं। लोकतंत्र के नाम पर प्रजातंत्र का यह नाटक जब तक समाप्त नहीं होता तब तक वैद्यजी और अधिक ताकतवर होते जाएँगे। इस यथार्थ का उद्घाटन 'राग दरबारी' का सर्वाधिक महत्वपूर्ण लक्ष्य है, जिसे कौशलपूर्वक प्रस्तुत करने में उपन्यासकार सफल रहा है।

14.4.3 व्यग्य के लिए चुनी गई आंचलिक शब्दावली

'राग दरबारी' में यथार्थोद्घाटन के लिए आंचलिक शब्दों के प्रयोग द्वारा व्यंग्य-कौशल की समुचित योजना की गयी है। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि राग दरबारी आंचलिक उपन्यास नहीं है। स्वयं लेखक ने इसे अनआंचलिक उपन्यास कहा है। बावजूद इसके जुआड़ियों, कुश्ती के अखाड़ों, शराब के अड्डों के साथ ही ग्रामीण पात्र अपनी सामान्य बात-चीत, रार-तकरार और हँसी-मजाक के लिए आंचलिक शब्दावली का अत्यंत सटीक प्रयोग करते हैं। ये शब्द अपने स्वरूप, बलाघात, लहजे के कारण अत्यंत सार्थक व्यंग्य का कार्य करते हैं। इस प्रकार के शब्दों के चयन के लिए श्रीलाल शुक्ल को पर्याप्त श्रम करना पड़ा है। इस संबंध में उनका कहना है, "किताब लिखना दिमाग के लिए कठोर और शरीर के लिए कष्टप्रद कार्य है।..... फिर 'राग दरबारी', इसने मुझे छह साल बीमारी की हालत में रखा। उन गँवार चरित्रों के साथ दिन-रात रहते हुए मेरी जबान खराब हो गयी। भद्र महिलाएँ खाने की मेज पर कभी-कभी भौंहें उठाकर देखने लगीं। मैं परिवार से और परिवार मुझसे कतराने लगा।" 'राग दरबारी' की यह रचना-प्रक्रिया, शब्द चयन के लिए लेखक के कठोर श्रम का परिचायक है। इसी कारण वह गँवारों के असंस्कृत ठेठ शब्दों का इतना जीवन्त प्रयोग कर सका है। ये शब्द आलोच्य की आलोचना के लिए ऐसे धारदार हथियार का कार्य करते हैं, जो उसे छील-छालकर उसके आंतरिक सच को पाठक के सामने प्रस्तुत कर देता है। श्रीलाल शुक्ल चुटकी भी लेते हैं, मखौल करते हैं और यकायक गंभीर होकर टिप्पणी भी करने लगते हैं। इसके लिए कुछ उदाहरण लिए जा सकते हैं। जब रंगनाथ ने फ्लश के खिलाड़ियों के पेयर के लिए 'जोड़', फ्लश को 'लंगड़ी', रन को 'दौड़', रनिंग फ्लश को 'पक्की' और ट्रेल को 'टिर्रैल' कहते सुना तो उसने सोचा, "अंग्रेजी शब्दों को हिन्दी में ढालने की समस्या को सही जबाब यही है।" इस पर उपन्यासकार के माध्यम से रंगनाथ की टिप्पणी है :

"देश के पेशेवर कोशकारों और उनकी समितियों का जाल बिछा है।.....एक ओर कमरे के भीतर एक नयी भाषा का निर्माण हो रहा है, दूसरी ओर इतना वक्त भी लग रहा है कि निर्माणकर्ता पेंशन पाने भर की नौकरी पूरी कर लें। इस तरह बनायी गयी भाषा का कोई अर्थ नहीं है, सिवाय इसके कि कहा जा सकता है कि 'लो भाई, जो शै हमारी अंग्रेजी में थी, वह तुम्हारी भाषा में आ गयी।' भाई उसे लें या न लें, इससे किसी को कोई मतलब नहीं।... .....क्यों न इन चार-पाँच गँजहों की एक समिति बनाकर दिल्ली में बैठा दी जाए। ये बड़े-बड़े परिभाषिक शब्दों के लिए सिर्फ सामाजिक स्वीकृति के आधार पर अपनी मातृभ श के कुछ शब्द निकालकर पेश कर देंगे और कुछ न हुआ तो ट्रेल को 'टिर्रैल' बनाने में क्या देर

लगती है।'' वस्तुत: यहाँ राष्ट्रीय स्तर पर कोश-निर्माण की पूरी प्रक्रिया पर कटाक्ष के द्वारा आक्षेप है।

छोटे पहलवान एक विशेष सन्दर्भ में 'लपक गए', 'अण्डा देने', 'धोबीपाट मारने', 'टें बोल जाने', 'बाल उखाड़ने', 'राँड़ों की तरह फाँय-फाँय करने', 'खूँटा गाड़कर बैठ जाने' आदि शब्दों का प्रयोग कर रहे थे। "रंगनाथ को हिन्दी भाषा के इस रूप का विशेष ज्ञान नहीं था। उसने मन में सोचा, लोग यों ही कहा करते हैं कि हमारी हिन्दी में सशक्त शब्दों की कमी है। यदि हिन्दी के विद्वानों को छोटे पहलवान की तरह अखाड़े में चार महीने रखा जाए तो व्यक्तिगत असुविधा के बावजूद यहाँ की मिट्टी के जर्रे-जर्रे से इस तरह के शब्दकोश निकालने लगेंगे।'' इसके बाद छोटे पहलवान का जब धारा-प्रवाह वक्तव्य शुरू होता है, तो उसमें 'फुट्टफैरी', 'लासेबाजी', 'नक्शेबाजी', 'वस्ताद', 'टाँय-टाँय', 'गूदा निकलना', 'तिड़ी-बिड़ी',. 'ठाँसना', 'कल्लाना' आदि जीवन्त शब्दों की झड़ी लग जाती है।

अपने बाप कुसहर प्रसाद को बुरी तरह पीटने के बाद जब छोटे पहलवान को समझाया जाता है कि अपने बाप को कहीं इस तरह मारा जाता है, तो बिफर कर कहता है, "साला बाप जैसा बाप हो, तब तो एक बात भी है।'' और यह कहने पर कि उसने तुम्हें पैदा किया है, पाल-पोस कर बड़ा किया है तो छोटे उत्तर देता है, "कोई हमने स्टाम्प लगाकर दरखास्त दी थी कि हमें पैदा करो। चले साले कहीं के पैदा करने वाले।'' 'साले' शब्द छोटे पहलवान का तकिया कलाम है, जिसे वह गाली नहीं मानता। अपने पिता को पीटने के बाद गाँव की पंचायती अदालत में पेश होने पर जब छोटे पहलवान श्रवण कुमार की संज्ञा से प्रताड़ित किया जाता है तो उसे बहुत बुरा लगता है क्योंकि कंधे पर काँवर रखे हुए माँ-बाप को इधर-उधर मुर्गों की तरह लटकाकर चलना एक शर्मनाक बात थी। अत: वह कहता है, "इस खानदान में सब साले श्रवणकुमार ही तो होते आए हैं।'' इस पर जब एक पंच आपत्ति करता है कि "गाली-गलौज न करो पहलवान, इससे अदालत की तौहीन होती है।" तो अपनी भलमनसाहत का परिचय देते हुए छोटे कहता है, "असली गाली अभी तुमने सुनी नहीं है पण्डित जी, घुस जाती है तो कलेजा छिल जाता है।''

पिता-पुत्र के रूप में वैद्य-बद्री पहलवान का विवाद शुरू होता है तो बद्री पहलवान भी थोड़ी परिष्कृत शब्दावली में छोटे पहलवान का ही रुख अपनाते हैं। वैद्यजी जब बद्री पर आरोप लगाते हैं कि "इतने समझदार होकर तुम गयादीन की लड़की से फँस कैसे गए..... मेरी नाक कट कर गिर जाएगी।'' इस पर बद्री पहलवान का उत्तर वैद्यजी की आन्तरिक कलई खोलने के लिए पर्याप्त है, "नाक वाली बात न करो! नाक है कहाँ? वह तो पण्डित अजुध्यापरसाद के दिनों में ही कट गयी थी।..... फँसना-फँसाना चिड़ीमार का काम है। तुम्हारे खानदान में तुम्हारे बाबा अजुध्यापरसाद रघुबरा की महतारी से फँसे थे। इसे कहते हैं फँसना। मैं बाबा अजुध्यापरसाद की चाल नहीं चल सकता। जो कुछ करूँगा कायदे से करूँगा। इधर-उधर की गिचिर-पिचिर मुझे पसंद नहीं।'' यह उत्तर, इस प्रकार की पारिवारिक बात-चीत, वैद्यजी की अन्दरूनी गाथा का उद्‌घाटन कर उनकी कलई ही नहीं उतारती, वरन् उन्हें नितांत कमजोर सिद्ध करती है। अपने छोटे बेटे रुप्पन के आचरण पर आक्षेप करने के बाद उन्हें उत्तर मिलता है कि "मुझे भी तुम्हारे आचरण की खबर है।", इससे वे चुप्पी साध लेते हैं। इसके माध्यम से व्यंग्यकार इस तथ्य को भी संकेतित करता है कि सारे गाँव-समाज को अपनी मुट्ठी में बन्द किए और शहर के ऊँचे अधिकारियों की नब्ज़ पर नियंत्रण रखने वाले वैद्यजी वस्तुत: कमजोर हैं। अत: उन्हें परास्त करना संभव है।

आंचलिक शब्दावली के अतिरिक्त उपन्यासकार ने 'राग दरबारी' की कथा में अपने वाग्वैदग्ध्य का पूरा परिचय दिया है। इसके माध्यम से उसने ग्राम-समाज के परिवेश, राष्ट्रीय राजनीति के अन्तर्गत आने वाली अर्थनीति, शिक्षा नीति, संस्कृति नीति के साथ ही विदेश नीति और राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उठने वाले अनेक मुद्दों को अपने व्यंग्य का निशाना बनाया है।

14.5 'राग दरबारी' में प्रयुक्त व्यंग्य की सीमाएँ

'राग दरबारी' एक प्रतीकात्मक उपन्यास है, लेकिन इसी प्रतीकात्मकता का एक महत्वपूर्ण आधार व्यंग्यात्मकता ही है। कविता, कहानी, निबंध आदि काव्य एवं गद्य-विधाओं में व्यंग्य शैली का उपयोग अपेक्षाकृत अधिक सुगमता से किया जा सकता है। लेकिन उपन्यास जैसी युग-जीवन को उसकी समग्रता में प्रस्तुत करने वाली गद्य विधा में व्यंग्यात्मक शैली का समुचित उपयोग प्राय: कंठिन रहा है। यही कारण है कि 'राग दरबारी' अपनी तरह का हिन्दी में संभवत: पहला उपन्यास है, जिसकी शैली आद्यंत व्यंग्यात्मक है। व्यंग्यधर्मिता को औपन्यासिक गरिमा प्रदान करने वाला यह अकेला उपन्यास है। अत: पारंपरिक उपन्यास-कला के अभ्यस्त पाठक-आलोचक की रुचि को इससे एक धक्का लगा है। युगाभिव्यक्ति, चरित्र-विधान, भाषा-शैली आदि के समुचित मूल्यांकन के लिए समीक्षकों को नयी चुनौतियों का भी सामना करना पड़ा है। पाठक के सामने जो विशेष दिक्कत पैदा हुई है, वह है कथा-रस की निरंतरता का अभाव। इसके लिए एक उदाहरण लिया जा सकता है :

"इण्डोलॉजी के शोधकर्ता को सबसे पहले इस विषय के शोधकर्ताओं का शोध करना पड़ता है।.. .....इस समय नीम पर फैली धूप की मार्फत उनका अध्ययन कर रहा था। उसके दाएँ मार्शल और बाईं ओर कनिंघम विराजमान थे। विण्टरनित्ज़ बिल्कुल नाक के नीचे थे। कीथ पीछे की ओर पायजामें से सटे थे। स्मिथ पायताने की ओर ढकेल दिए गए थे और वहीं उल्टी-पुल्टी हालत में राइसडेविट की झलक दिखायी दे रही थी। पर्सी ब्राउन को तकिए ने ढक लिया था। ऐसी भीड़-भाड़ में काशीप्रसाद जायसवाल बिस्तर की एक सिकुड़न के बीच औंधे मुँह पड़े थे। भण्डारकर चादर के नीचे से कुछ सहमें हुए झाँक रहे थे। इण्डोलॉजी की रिसर्च का समा बँध गया था।'' कथा-प्रवाह को रोकने वाले ऐसे बहुत से स्थल उपन्यास में आए हैं, जो पाठकीय रुचि को बाधित करते हैं। वातावरण और पृष्ठभूमि के रूप में प्रस्तुत किए गए ऐसे विस्तृत विवरण औपन्यासिक शिल्प को खण्डित करते हैं। बावजूद इसके, अपनी व्यंग्यात्मक शैली के कारण ऐसे वर्णन मनोरंजक ही नहीं, वरन् यथार्थ का साक्षात्कार कराने वाले और ज्ञानवर्धक भी हो सकते है। हास्य और आक्षेप के विरोधी उपकरणों के कौशलपूर्ण मिश्रण से ऐसे स्थलों की पठनीयता बनी रहती है। अत: औपन्यासिक शिल्प की दृष्टि से इसे बड़ी त्रुटि के रूप में स्वीकार करना बहुत संगत नहीं है।

व्यंग्य के सीमा-निर्धारण की सर्वाधिक महत्वपूर्ण कसौटी है सोद्देश्यता के संदर्भ में उसके सदुपयोग की स्थिति। 'राग दरबारी' के सभी पात्र लेखक के उपहास के ही पात्र बने हैं। जबकि रुप्पन और रंगनाथ में से किसी एक को वह अपनी सहानुभूति दे सकता था। 'बिसामपुर का संत' में उसने विवेक और सुन्दरी के साथ ऐसा किया भी है। इसलिए कुछ आलोचकों ने 'राग दरबारी' में अपनायी गयी व्यंग्य शैली में कल्पनाशीलता का पूरा समावेश होते हुए भी सामाजिक दृष्टि का अभाव देखा है। कहीं भी उन्हें भविष्यकामी प्रेरणा का स्रोत नहीं दिखायी देता। इस दृष्टि से यदि हम हरिशंकर परसाई और श्रीलाल शुक्ल की व्यंग्य-दृष्टि की तुलना करें तो दोनों के अन्तर को आसानी से समझ सकते हैं। अपनी व्यंग्य-प्रक्रिया में परसाई देश की राजनीतिक, प्रशासनिक, न्यायिक विसंगतियों पर अतिशय आक्रामक रुख अपनाते हुए भी सामाजिक विषमता को दूर करने के लिए समाज के आमूल परिवर्तन की अपरिहार्यता को रेखांकित करते हैं। इस प्रकार की परिवर्तन कामना का श्रीलाल शुक्ल में पर्याप्त अभाव दिखायी देता है। उनकी सारी योजना सुधार तक ही सीमित है। एक सम्भ्रान्त और विशिष्ट नागरिक की तरह वे राष्ट्र में व्याप्त सभी क्षेत्रों की अराजकता को आक्षेप और उपहास की मुद्रा में देखते और उद्घाटित तो करते हैं, लेकिन अपने आभिजात्य को कायम रखते हुए वे अपने को कहीं भी किसी से जोड़ नहीं पाते। जबकि हरिशंकर परसाई अपनी प्रखर राजनीतिक चेतना के कारण किसी के विरोध में, तो किसी के साथ खड़े दिखायी देते हैं। यह संश्लिष्टता श्रीलाल शुक्ल में नहीं मिलती।

उपर्युक्त कुछ आरोपों-आक्षेपों के बावजूद श्रीलाल की व्यंग्य शैली की अपनी सार्थकता है। आलोचनात्मक यथार्थवादी रचनाकारों की तरह वे वर्तमान व्यवस्था की कलई खोल कर लोगों के लिए प्रकाश-स्तंभ का कार्य तो करते ही हैं, जिससे एक चेतावनी भी मिलती है। पूँजीवादी चेतना के तंग दायरे में विकसित पश्चिमी चिन्तकों ने भी अधिकांशत: व्यंग्य की इसी भूमिका को रेखांकित किया है। नारमन फर्लांग ने 'इंगलिश सेटायर' पर विचार करते हुए अपना अभिमत दिया है कि "व्यंग्य का कार्य मात्र रोशनी दिखाना है, रास्ता चुनकर देना नहीं। वह शराब की बुराइयों को सामने लाता है, शराब के स्थान पर क्या पीना चाहिए यह नहीं सुझाता।" प्राय: यही दृष्टि 'राग दरबारी' में भी अपनाई गयी है। लेकिन वर्तमान युग की अत्यंत जटिल और क्रूर व्यवस्था शोषण, की नित नयी युक्तियों के आविष्कार के चलते बहुसंख्यक जनता की अत्यंत पिछड़ी हुई चेतना के परिवेश में एक संवेदनशील कलाकार के रूप में व्यंग्यकार के लिए रोशनी दिखाने के साथ ही एक नयी दिशा का संकेत भी आवश्यक हो गया है। अपनी सम्पूर्ण विदग्धता और अद्‌भुत कौशल के बावजूद 'राग दरबारी' में इसका नितांत अभाव है।

14.6 सारांश

इस इकाई में हमने सबसे पहले व्यंग्य के शब्दार्थ पर विचार करते हुए उसे संस्कृत काव्यशास्त्र से भिन्न अंग्रेजी के 'सेटायर' के समानार्थी के रूप में प्रस्तुत किया है। व्यंग्य के संबंध में यूरोपीय एवं हिन्दी के चिंतकों की मान्यताओं को स्पष्ट करते हुए उसके मूलभूत लक्षणों के निरूपण के साथ ही उसकी प्रमुख विशेषताओं का भी विवेचन-विश्लेषण किया गया है। इस प्रक्रिया में उसकी अभिव्यक्ति क्षमता को भी स्पष्ट करने का हमने प्रयास किया है।

व्यंग्य के व्यापक स्वरूप का उद्‌घाटन करते हुए उसके विभिन्न उपकरणों, रूपों और छायाओं पर अलग-अलग विचार करते हुए उनके वास्तविक स्वरूप और महत्व के उद्‌घाटन का प्रयास किया गया है। इस प्रक्रिया में हास्य, परिहास, उपहास, वाग्वैदग्ध्य, वाग्दंश, कटाक्ष आदि को व्यंग्य के सहायक के रूप में जाँचा-परखा गया है।

आगे चलकर हमने व्यंग्य की साहित्यिक-सामाजिक उपयोगिता को भी रेखांकित करने का प्रयास किया है। इस प्रक्रिया में इस प्रश्न पर भी विचार किया गया है कि व्यंग्य को साहित्य में एक शैली रूप में स्वीकार किया जाए या स्वतंत्र साहित्य-विधा के रूप में। अब तक समूची वस्तुस्थिति को देखते हुए तो व्यंग्य को एक शैली के रूप में ही स्वीकार किया जाना चाहिए। लेकिन हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, रवीन्द्रनाथ त्यागी, बरसाने लाल चतुर्वेदी, लतीफ घोंघी के साथ ही श्रीलाल शुक्ल आदि की बहुत सी व्यंग्य-रचनाओं को निबंध, कहानी, संस्मरण, जीवनी, लघुकथा आदि पूर्वस्वीकृत विधाओं में समाविष्ट करना कठिन है। इसे देखते हुए व्यंग्य को विधा और शैली - दोनों ही रूपों में स्वीकृति देना अधिक संगत है।

इस इकाई में व्यंग्य के स्वरूप पर विचार करते हुए 'राग दरबारी' में उसके नकारात्मक सकारात्मक स्वरूप के साथ ही उसके उपहासात्मक-आक्रामक स्वरूप को भी उद्‌घाटित किया गया है। 'राग दरबारी' के यथार्थोद्‌घाटन में व्यंग्य शैली के योगदान पर कई कोणों से विस्तार से विचार करते हुए हमने 'राग दरबारी' में प्रयुक्त व्यंग्य की सार्थकता की जानकारी दी है। इससे आप अच्छी तरह समझ सकते हैं कि वस्तुस्थितियों, मनोदशाओं और गृहीत तथ्यों की अभिव्यक्ति में व्यंग्य शैली कितनी उपयोगी है। इसे और अधिक स्पष्ट करने के लिए 'राग दरबारी' में प्रयुक्त आंचलिक शब्दावली के महत्व पर भी विचार गया है।

इस इकाई का अंतिम महत्वपूर्ण मुद्दा है - 'राग दरबारी' में प्रयुक्त व्यंग्य की सीमाएँ। इसके अन्तर्गत 'राग दरबारी' की व्यंग्य-बहुलता के औचित्य-अनौचित्य पर भी विचार किया गया है। इस प्रक्रिया में औपन्यासिक शिल्प को कहाँ, कितना आघात लगा है - इसे भी स्पष्ट किया गया है।

14.7 अभ्यास प्रश्न

1. व्यंग्य शब्द का वास्तविक अभिप्राय स्पष्ट करते हुए उसकी मूलभूत विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।
2. 'राग दरबारी' में चित्रित यथार्थ में व्यंग्य शैली के योगदान पर विचार कीजिए।
3. 'राग दरबारी' में प्रयुक्त व्यंग्य के औचित्य-अनौचित्य को स्पष्ट कीजिए।

इकाई 15 'राग दरबारी' की अन्तर्वस्तु, संरचना-शिल्प और उसकी भाषा

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 'राग दरबारी' की अन्तर्वस्तु

- 15.2.1 अन्तर्वस्तु के संदर्भ में शीर्षक की सार्थकता
- 15.2.2 विषय और अन्तर्वस्तु या वस्तु-तत्व
- 15.2.3 'राग दरबारी' की अन्तर्वस्तु का वास्तविक स्वरूप

15.3 'राग दरबारी' का संरचना-शिल्प

15.4 व्यंग्य शैली और भाषिक भंगिमा

15.5 भाषा-प्रयोग के विविध रूप

- 15.5.1 शब्दावली चयन
- 15.5.2 मुहावरों, कहावतों और लाक्षणिक शब्दों का प्रयोग
- 15.5.3 चित्रात्मकता
- 15.5.4 धारदार अभिव्यक्ति-कौशल

15.6 सारांश

15.7 अभ्यास प्रश्न

15.0 उद्देश्य

यह इकाई राग दरबारी की अंतर्वस्तु और संरचना शिल्प पर आधारित है।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- 'राग दरबारी' की अन्तर्वस्तु के संदर्भ में शीर्षक की सार्थकता को समझ सकेंगे;
- विषय और अन्तर्वस्तु के अंतर पर विचार कर सकेंगे;
- 'राग दरबारी' की अन्तर्वस्तु के वास्तविक स्वरूप का उद्घाटन कर सकेंगे;
- 'राग दरबारी' की संरचना पर विचार करते हुए उसके औपन्यासिक शिल्प की चर्चा कर सकेंगे;
- 'राग दरबारी' की व्यंग्य शैली के संदर्भ में उसकी भाषिक विशेषताओं का परिचय दे सकेंगे; और
- 'राग दरबारी' में भाषा-प्रयोग के विभिन्न रूपों का पर विभिन्न कोणों से विचार इसके लिए शब्द सम्पदा, मुहावरों, कहाक्तों, लाक्षणिक प्रयोगों, चित्रात्मकता, धारदार अभिव्यक्ति कौशल का विस्तार आदि का अलग से परिचय दे सकेंगे।

15.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने व्यंग्य के सैद्धान्तिक स्वरूप के साथ ही 'राग दरबारी' में उसके सफल प्रयोग के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन कर लिया है। प्रस्तुत इकाई में आप उपन्यास की अन्तर्वस्तु, उसके रचना-शिल्प और भाषा संबंधी विशेषताओं का अध्ययन करने जा रहे हैं। वस्तुत: एक सफल रचना के लिए उसके कथ्य के साथ ही उसके शिल्प का महत्व भी निर्विवाद है। उपन्यास एक लोकोन्मुख यथार्थवादी गद्य-विधा है, जिसके संबंध में इकाई-13 की प्रस्तावना में संकेत करते हुए इस तथ्य को रेखांकित किया गया है कि "उपन्यास केवल मात्र कथात्मक गद्य नहीं है, वह मानव के जीवन का गद्य है।" अत: इसका सहज, स्वाभाविक और गृहीत जीवन तथ्यों के अनुकूल होना सर्वथा अनिवार्य है। लेकिन यह सहजता-स्वाभाविकता केवल शिल्प तक ही सीमित नहीं है, उसके साथ जीवन की सहजता और स्वाभाविकता भी अनिवार्य रूप से जुड़ी हुई है।

जीवन का कोई भी एक क्षेत्र उपन्यासकार का विषय हो सकता है। बावजूद इसके क्या उपन्यासकार अपने आस-पास की अन्य समस्याओं से बेखबर रह सकता है? क्या वह अपने देश की सम्पूर्ण स्थिति-परिस्थिति की ओर से आँखें बन्द रख सकता है ? क्या उसे उस समय अपना मुख बन्द रखना चाहिए जब चारों ओर शोषण, उत्पीड़न, अन्याय, अनाचार और लोभ-लाभ की विभीषिका मँडरा रही हो? क्या उसे तब चुप रहना चाहिए, जब सम्पूर्ण जनजीवन के हित को अक्षुण्ण रखने के प्रति वचनबद्ध राज्य-सत्ता के नाम पर बहुसंख्यक जनजीवन को दो जून की रोटियों के लाले पड़े हों? यदि ऐसा नहीं है तो उपन्यासकार को अपने गृहीत विषय को अत्यंत व्यापक संदर्भ देकर उसे विशिष्ट अन्तर्वस्तु का रूप देना पड़ता है। ऐसी स्थिति में केवल भौतिक जगत के स्थापित मानदण्डों का ही नहीं, वरन् कला-जगत के मानदण्डों का अतिक्रमण भी उपन्यासकार को करना पड़ सकता है। इस इकाई में हम देखेंगे कि श्रीलाल शुक्ल ने गृहीत विषय के बंधन के साथ ही औपन्यासिक शिल्प के पूर्वनिर्धारित बंधन से भी अपने को मुक्त करने का यथाशक्ति प्रयास किया है। इन सभी तथ्यों को ध्यान में रखकर 'राग दरबारी' के विषय, उसकी अन्तर्वस्तु उसके संरचना-शिल्प, भाषा प्रयोग आदि पर विस्तार से विचार करेंगे।

15.2 'राग दरबारी' की अन्तर्वस्तु

15.2.1 अन्तर्वस्तु के संदर्भ में शीर्षक की सार्थकता

'राग दरबारी' के मुख पृष्ठ पर लिखा गया है, "राग दरबारी का संबंध एक बड़े नगर से कुछ दूर बसे हुए गाँव की जिन्दगी से है जो आजादी के बाद की प्रगति और विकास के नारों के बावजूद निहित स्वार्थों और अनेक अवांछनीय तत्वों के आघातों के सामने घिसट रही है। यह उसी जिन्दगी का दस्तावेज है।" इससे स्पष्ट है कि 'राग दरबारी' का विषय शिवपाल गंज और उसकी छाती पर सवार वैद्य जी और उनकी बैठक है। इस दृष्टि से यह बैठक ही दरबार है, जिसके राग से पूरा गाँव-समाज संचालित है। सतह पर यह उपन्यास उसी जिन्दगी का दस्तावेज दिखायी दे सकता है। लेकिन वास्तविकता यह है कि लखनऊ जैसे किसी बड़े शहर से कुछ मील की दूरी पर सड़क के किनारे बसा गाँव-कस्बा शिवपाल गंज हिन्दुस्तान के नक्शे में ढूँढने पर शायद न मिले। बावजूद इसके उपन्यास का शिवपालगंज आजादी के बाद विकसित हुए हिन्दुस्तान में कहीं भी मिल सकता है। इस लिए वैद्य जी के दरबार का राग अपनी आंचलिक सीमाओं का अतिक्रमण कर समूचे देश का राग बन जाता है। इसलिए दरबार की वास्तविक स्थिति देश के बड़े-बड़े प्रतिष्ठान यहाँ तक कि संसद और विधानसभाओं द्वारा स्थापित सत्ता-प्रतिष्ठानों की चहारदीवारी में पहुँच जाती है।

शीर्षक की यह अर्थवत्ता 'राग दरबारी' की अन्तर्वस्तु की सार्वदेशिकता द्वारा व्यंजित होती है। इस उपन्यास की अन्तर्वस्तु की परिधि इतनी व्यापक है कि इसमें सम्पूर्ण देश की

प्रशासन-व्यवस्था, न्याय-व्यवस्था और अर्थ-व्यवस्था की पूरी झाँकी मिल जाती है। पंचायत, ग्राम-सभा, सहकारी समितियों के चुनावों में वे सभी हथकण्डे अपनाए जाते हैं जो विधान सभा और संसद के चुनावों की चीज है। राष्ट्रीय प्रजातंत्रवाद के परिणामस्वरूप सत्ता की राजनीति, विरोध की राजनीति, गुटबंदी, भ्रष्टाचार, तिकड़म, शोषण-उत्पीडन आदि नीचे से ऊपर की ओर नहीं, वरन् ऊपर से नीचे की ओर आ रहे हैं। गाँव के कथा का केन्द्र बनकर भी उपन्यासकार ने दरबार के राग को कभी मद्धिम नहीं होने दिया है। इसलिए शीर्षक की सार्थकता उपन्यास की प्रतीकात्मकता को उजागर करने में है। क्योंकि इससे अन्तर्वस्तु का फलक संकुचित न होकर और अधिक विस्तृत ही हुआ है। अत: 'राग दरबारी' केवल वैद्य जी की बैठक (दरबार) का ही राग न होकर समूचे देश के प्रमुख सत्ता-प्रतिष्ठानों का भी राग बन जाता है। अपने इस रूप में उपन्यास का शीर्षक अत्यंत सार्थक है।

15.2.2 विषय और अन्तर्वस्तु या वस्तु-तत्व

किसी रचना की अन्तर्वस्तु को समझने के पूर्व विषय और अन्तर्वस्तु के अन्तर को समझ लेना आवश्यक है। विभिन्न सामाजिक युगों में साहित्य के अन्तर्गत गृहीत विषय अन्तर्वस्तु की दृष्टि से भिन्न हो सकते हैं और रहे भी हैं, क्योंकि प्रत्येक रचनाकार की रचना प्रक्रिया के साथ ही उसकी सामाजिक और वैयक्तिक चेतना से भिन्न हो सकती है। इस भिन्नता से उसकी दृष्टि और रुझान में भी अन्तर आ जाता है। अत: किसी विषय के प्रति उसकी मानसिक प्रतिक्रिया में भी निश्चित रूप से भिन्नता होती है। इस प्रकार कोई 'विषय' साहित्यकार की दृष्टि, उसके रुख-रवैये और उसकी समग्र चेतना से चालित होकर किसी रचना की अन्तर्वस्तु अथवा उसका वस्तु-तत्व बनता है। इसीलिए किसी साहित्यिक कृति का विषय नहीं, वरन् उसकी अन्तर्वस्तु अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। पुराने विषय को ग्रहण करके भी अन्तर्वस्तु की दृष्टि से कोई रचना नवीन दृष्टि की परिचायिका हो सकती है और इसके विपरीत नये विषय को ग्रहण करके भी अन्तर्वस्तु की दृष्टि से कोई रचना पुरानी भावधारा की परिचायिका हो सकती है। विषय को नया या पुराना बनाने में साहित्यकार की दृष्टि और मूल्य व्यवस्था निर्णायक भूमिका अदा करता है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर 'राग दरबारी' की अन्तर्वस्तु के वास्तविक स्वरूप को आसानी से समझा जा सकता है।

15.2.3 'राग दरबारी' की अन्तर्वस्तु का वास्तविक स्वरूप

श्रीलाल शुक्ल ने इस उपन्यास में ग्रामीण संदर्भों में हमारे राष्ट्रीय जीवन की उस परख को आकलित किया हैं, जो बीच-पच्चीस वर्षों की तथाकथित उपलब्धियों के परिप्रेक्ष्य में विकलांग एवं विद्रूप प्रतीत हो रही हैं। इस दृष्टि से एक महत्वपूर्ण प्रश्न हमारे सामने आता है कि क्या ग्राम-विकास पूरे देश के विकास से कटकर अलग से अंकित किया जा सकता है ? सार्वदेशिक विकास-चित्र में आन्तरिक परिवर्तन के स्तर पर हमारा राष्ट्रीय वास्तव गाँव-समाज के वास्तव से भिन्न नहीं है। विकास के नाम पर गाँव में प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र हैं, प्राइमरी स्कूल हैं और इन सबका नियमन करने वाली गाँव की पंचायत भी है। लेकिन वास्तविकता क्या है? गाँव के मरीजों में मुफ्त वितरण के लिए चिकित्सा केन्द्र की अंग्रेजी दवाएँ और असहाय बच्चों में वितरित होने के लिए प्राइमरी स्कूल में आए अमेरिकी दूध के डिब्बे, गाँव-प्रधान सनीचर की दुकान पर चोरी-छिपे बिकते हैं। इससे केवल सनीचर या वैद्यजी की असलियत का ही पर्दाफाश नही होता, वरन् केन्द्रीय सरकार की अर्थनीति और राष्ट्रीय विकास के लिए निर्मित योजना आयोग तथा उसकी बहुमुखी विकास योजनाओं की वास्तविकता की भी कलई खुलती है।

उपन्यास में स्थान-स्थान पर देश के बुद्धिजीवियों, नेताओं, सरकारी कार्यालयों, न्यायालयों, ग्रामीण विकास अधिकारियों, शिक्षा-संस्थाओं, ऋण एवं अनुदान वितरण प्रणाली, सामुदायिक कृषि, अन्यान्य राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय स्थितियों, घटनाओं, साहित्यकारों, सरकारी कोशकारों, बुद्धिजीवियों आदि पर कहीं प्रत्यक्ष तो कहीं अप्रत्यक्ष रूप से टिप्पणी की गयी है। यह सब उपन्यास का विषय न होकर उसकी अन्तर्वस्तु बनता है। पार्टी प्रेसीडेंट (कामराज) की डाँट

पर प्रधान मंत्री (इंदिरा गांधी) का प्रेस वक्तव्य, चीनी आक्रमण के समय आचार्य कृपलानी द्वारा भारत की गुटनिरपेक्षता का विरोध, पातक बालकों की भूमिका पर लोकसभा और विधानसभाओं में धुँधाधार, भारत सरकार द्वारा विदेशी ऋण और सहायता की स्थिति आदि का संकेत उपन्यास की ग्रामीण कथा को राष्ट्रीय संदर्भों से जोड़ता है। उपन्यास भारतीय बुद्धिजीवियों की स्थिति, पेशेवर कोशकारों पर कटाक्ष, मैथिलीशरण गुप्त, वड्सर्वर्थ, रवीन्द्रनाथ टैगोर, .सुमित्रानंदन पंत, गिरिजा कुमार माथुर की कविता, प्रेमचंद और उनका गोदान, 'दो बीघा जमीन' जैसी फिल्म, साहित्यकार कृश्न चन्दर और ख्वाजा अहमद अब्बास का फिल्मी दुनिया में प्रवेश, प्रगतिशीलता के जोश में पचास प्रतिशत अंधे होना, हेनरी मिलर और डी.एच. लारेंस की अश्लीलता, कला-संगीत अकादमी आदि का उल्लेख राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय साहित्य एवं कला-जगत की ओर पाठक का ध्यान आकृष्ट करता है।

एक काल्पनिक गाँव के रूप में शिवपाल गंज के व्यक्तित्व को लेखक ने प्रतीक के रूप में चित्रित किया है। वैद्य जी की बैठक में गँजहों की सोहब्बत से 'कुछ दिनों में ही रंगनाथ को शिवपाल गंज के बारे में ऐसा लगने लगा कि महाभारत की तरह, जो कहीं नहीं है यहाँ है और जो यहाँ नहीं है कहीं नहीं है। उसे जान पड़ा कि हम भारतवासी एक हैं और हर जगह हमारी बुद्धि एक सी है। उसने देखा कि जिसकी प्रशंसा में सभी-मशहूर अखबार पहले पृष्ठ से ही मोटे-मोटे अक्षरों में चिल्लाना शुरू करते हैं, जिसके सहारे बड़े-बड़े निगम चलते हैं, आयोग और प्रशासन उठते हैं, गिरते हैं, घिसटते हैं, वहीं दाँव-पेंच और पैंतरेबाजी की अखिल भारतीय प्रतिभा यहाँ कच्चे माल के रूप में इफरात फैली पड़ी है। ऐसा सोचते ही भारत की सांस्कृतिक एकता में उसकी आस्था और भी मजबूत हो जाती हैं।'' (पृ. 63) अपने इस रूप में शिवपाल गंज समूचे भारत का प्रतिनिधि हो जाता है। यह प्रतिनिधिकता 'राग दरबारी' के अधिकांश पात्रों को भी मिली हुई है।

शिवपाल गंज और भारत की इस अभिन्नता को उपन्यासकार ने कई युक्तियों से रेखांकित करने का प्रयास किया है। ग्राम-सभा की अमीरी और गाँव-प्रधान की अमीरी की अभिन्नता पर व्यंग्य करते हुए लेखक ने लिखा है "उस पद (ग्राम-प्रधान) के सम्मान में कमी नही होती थी क्योंकि सारे देश की तरह शिवपाल गंज में भी, किसी भी तरीके से हो, केवल अमीर बन जानें से ही आदमी सम्मानपूर्ण बन जाता था और वहाँ भी, सारे देश की तरह, किसी संस्था का फोकट पैसा खा लेने भर से आदमी का सम्मान नष्ट नहीं होता था।'' (पृ. 245) यहाँ लेखक ने देश-व्यापी भ्रष्टाचार और आर्थिक घोटाले की प्रवृत्ति को उजागर किया है। रंगनाथ को सनीचर की विजय में 'प्रदेश की राजधानियों में न जाने कितने वैद्य जी और मंत्रियों तथा मुख्य मंत्रियों की कतार में न जाने कितने सनीचर घुसे हुए दीख पड़े।'' (पृ. 296) यहाँ वैद्य जी और सनीचर की स्थिति मंत्रियों-मुख्यमंत्रियों के मध्य मूर्ख और निठल्ले जनप्रतिनिधियों की स्थिति को अभिन्न सिद्ध करती है। शिवपाल गंज की बदतर स्थिति से खिन्न होकर जब रंगनाथ कहता है कि 'धरती पर एक शिवपाल गंज ही नहीं है। हमारे-तुम्हारे लिए सारा मुल्क पड़ा हुआ है।'' इस पर खिन्न होते हुए रुप्पन कहता है, "मुझे तो लगता है दादा, सारे मुल्क में शिवपाल गंज ही फैला है।'' (पृ० 388)

उपर्युक्त उद्धरणों के साथ ही 'राग दरबारी' उपन्यास का अंत भी उसकी अन्तर्वस्तु के स्वरूप की वास्तविकता को ही रेखांकित करता है। उपन्यास का अंत भारतीय बुद्धिजीवियों के रुग्ण प्रतिनिधि रंगनाथ के 'पलायन संगीत' से होता है। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि उपन्यास का आरंभ भी शिवपालगंज में रंगनाथ के प्रवेश के प्रवेश से ही होता है। रंगनाथ शिवपालगंज का नंगा-नाच देख पूरी तरह से ऊब जाता है और वहाँ से निकल भागने का निर्णय कर लेता है। तभी कॉलेज के प्रिंसिपल से झड़प हो जाती है, जिसमें प्रिंसिपल का उत्तर है कि "बाबू रंगनाथ, तुम्हारे विचार बहुत ऊँचे हैं। पर कुल मिलाकर उनसे यही साबित होता है कि तुम गधे हो।'' यह उत्तर स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज में प्राय: हर बुद्धिजीवी के गाल पर यहाँ के यथार्थ का एक तमाचा है। इस पर एक सार्थक टिप्पणी करते हुए विवेकी राय ने लिखा है, "तब ऐसा

लगता है कि भारत का हर बुद्धिजीवी आज रंगनाथ की दयनीय तस्वीर बना हत बुद्धि (होकर) कांग्रेसी समाज की उन चुनौतियों से भीतर-ही-भीतर जूझ रहा है, जो जाल की तरह उसके चारों ओर लगे हैं। और जिनके जालिम मछुओं के सरदार-रूप में कोई वैद्यजी अपने खास रिश्तेदार पड़ रहे हैं तथा जिनसे निपटने का इससे अधिक सुकर कोई मार्ग नहीं कि तमाशा भूमि को छोड़कर चुप-चाप सरक जाएँ। वहाँ बजती रहे मदारी की डुग्गी, भूँक्ते रहे कुत्ते और खड़े रहें 'भरतनाट्यम' की मुद्रा में गंभीर बन्दर।'' (हिन्दी उपन्यास : उत्तरशती की उपलब्धियाँ) इससे स्पष्ट है कि 'राग दरबारी' उपन्यास की अन्तर्वस्तु ग्रामीण यथार्थ से आगे बढ़कर स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज के अत्यंत व्यापक यथार्थ को प्रस्तुत करती है।

15.3 'राग दरबारी' का संरचना-शिल्प

'राग दरबारी' के रचनाकाल तक हिन्दी में आंचलिक उपन्यासों की भाँति ही ग्राम जीवन से संबद्ध यथार्थवादी उपन्यासों की एक सुदृढ़ परम्परा स्थापित हो चुकी थी। प्रेमचंद से लेकर नागार्जुन, भैरवप्रसाद गुप्त, फणीश्वरनाथ रेणु आदि सशक्त उपन्यासकारों ने ग्रामीण यथार्थ को अत्यंत सहज-स्वाभाविक और यथार्थपरक भाषा-शैली में अभिव्यक्ति प्रदान की थी। श्रीलाल शुक्ल ने विषय के रूप में ग्रामीण जीवन को लेकर उसे सार्वदेशिक अन्तर्वस्तु का स्वरूप ही प्रदान नहीं किया, वरन् भाषिक भंगिमा और उसके संरचना-शिल्प को भी परिवर्तित कर दिया। 'राग दरबारी' में स्थान-स्थान पर फूटने वाली उपाख्यानों की झड़ी निरंतरता में बाधक बनकर भी कथारस से परिपूर्ण बनी रहती है। विषयान्तरों में भी अपनी व्यंग्यात्मक शैली के कारण श्रीलाल शुक्ल एकान्विति बरकरार रखने के कौशल का परिचय देते हैं।

'राग दरबारी' की किस्सागोई, प्रेमचंद ही नहीं फणीश्वरनाथ रेणु की भी किस्सागोई से आगे बढ़कर कभी वक्रोक्ति और अतिरंजना तो कभी वाग्वैदग्ध्य और अपकर्ष के सहारे कथा को कौतूहलपूर्ण बनाती है। उपन्यास के ठाकुर दुरबीन सिंह की कथा और सनीचर द्वारा उनके दो संस्मरण, पण्डित राधेलाल की कथा, छोटे पहलवान द्वारा बताई गई अपने खानदान की कथा आदि का इस प्रकार विन्यास किया गया है कि वे मूल कथा से विषयान्तर नहीं प्रस्तुत करतीं। प्रिंसिपल साहब की प्रो. बनर्जी को लेकर की गयी गप्प के साथ की इण्डिया से इंग्लैण्ड जाते हुए हवाई जहाज से जुड़ी गप्प विशेष उल्लेखनीय है जिसे उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है :

"एक हवाई जहाज इण्डिया से इंग्लैण्ड जा रहा था। हवाई जहाज में एक तम्बाकू का व्यापारी बैठा था। अचानक उसे क्या सूझा कि वह लिटरेचर और फिलासफी की बात करने लगा। बस, हवाई जहाज के इंजन भी उसी वक्त बंद हो गए। तहलका मच गया।'' लेकिन जब "हवाई जहाज़ के इंजीनियर ने जाँच-पड़ताल की, तो आप जानते हैं क्या पता चला? मालूम हुआ कि तम्बाकू के व्यापारी ने कार्ल जैस्पर्स का नाम ले लिया था। उसी सदमें से हवाई जहाज के इंजन अचानक बंद हो गए थे।'' वस्तुत: इस प्रकार की गप्पें उपन्यास के पाठकों का मनोरंजन भले ही करें, कथा से जुड़कर न उसे सार्थक बनाती हैं और न ही पाठकों को आलोचनात्मक विवेक प्रदान करती हैं।

चुनाव की रामनगर, नेवादा और महिपालपुर की पद्धतियों के तीन किस्से 'राग दरबारी' की मूल कथा से जुड़ते भी हैं और उसके उद्देश्य की पूर्ति में सहायक भी बनते हैं। चाहे गप्पे हों या मूलकथा से जुड़ने वाले किस्से - संर्वत्र उपन्यासकार की कल्पनाशीलता, उसके वाग्चातुर्य, विशिष्ट अनुभव, सामान्य ज्ञान आदि का पूर्ण परिचय देते हैं।

ग्राम पंचायत की अदालत के कौड़िल्ला छाप न्याय का परिचय देते हुए एक पुराने नवाब साहब के शाहजादे की बीमारी की कहानी का विस्तार यद्यपि उबाने वाला है लेकिन इसकी योजना में उपन्यासकार ने अपनी कल्पनाशीलता का दुरुपयोग किया है।

उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखें तो 'राग दरबारी' की संरचना में थोड़ी शिथिलता दिखायी दे सकती है, जिसे उपन्यासकार ने अपने वर्णन कौशल से पूरा किया है। उपन्यास की अन्तर्वस्तु को देखते हुए पाठक का ध्यान इस शिथिलता की ओर नहीं जाता। अत: इसका संरचना-शिल्प, व्यंग्य-कौशल और भाषिक भंगिमा के कारण नयी औपन्यासिक गरिमा का संकेत करता है।

15.4 व्यंग्य-शैली और भाषिक भंगिमा

अपनी व्यंग्य-शैली और भाषिक भंगिमा के कारण 'राग दरबारी' अपने समकालीन उपन्यासों से भिन्न प्रकृति का दिखायी देता है। पारम्परिक औपन्यासिक शिल्प का परित्याग कर एकदम भिन्न शैली अपनाकर श्रीलाल शुक्ल ने अपनी सृजन-क्षमता का पूरा परिचय दिया है। इसके माध्यम से उन्होंने इस तथ्य को भी रेखांकित कर दिया है कि एक भिन्न और नयी अन्तर्वस्तु एक नये रूप अथवा शिल्प की माँग करती है। अत: यहाँ अन्तर्वस्तु और रूप (शिल्प) की पारस्परिकता पर संक्षेप में विचार कर लेना उचित होगा।

जीवन-मर्म से जुड़े नये तत्व प्रकट होने की प्रक्रिया में भाषा का सहारा लेते हैं। भाषा एक सामाजिक सम्पत्ति है। उसके शब्द-संयोग एक भाव-परम्परा, एक ज्ञान-परम्परा अर्थात् एक अर्थ-परम्परा से लिपटे हुए होते हैं। अत: अपने नये जीवन-मर्म को, उसके मूल रूप में व्यक्त करने के लिए साहित्यकार को नये सिरे से शब्द-साधना भी करनी पड़ती है। इस साधना में नये शब्दानुषंग बनते हैं, जिससे साहित्यकार के लिए अपेक्षित अर्थानुषंग विकसित होते हैं। यह एक प्रकार से नयी अन्तर्वस्तु और नये रूप के मध्य संघर्ष की स्थिति है। अभिव्यक्ति के संघर्ष के दौरान होता यह है कि साहित्यकार द्वारा निर्मित भाषा में या भाषा के नये शब्दानुषंगों और अर्थानुषंगों के कटघरे में साहित्यकार के नये आशय-अभिप्राय प्राय: पूरी तरह फिट नहीं हो पाते। भाषा में स्थिति या प्रचलित अर्थ-संवेदना नये शब्द-संयोगों, अर्थ-संयोगों और नयी भंगिमा के निर्माण में बाधक बनती है। अत: अभिव्यक्ति के लिए स्वीकृत अभिप्राय अर्थात् अन्तर्वस्तु परिवर्तित होने लगती है। भाषा और भाव का यह द्वन्द्व साहित्यकार का मानसिक द्वन्द्व बन जाता है, जिसमें एक तरफ भाषा के परम्परानुमोदित अर्थ-स्पन्दन नये जीवन तत्वों की कतर-ब्योंत करने लगते हैं तो दूसरी तरफ भाषा की काट-छाँट, तोड़-मरोड़ करने लगते हैं। यहाँ भाषा से अभिप्राय उसके पूरे तंत्र से है, उसकी अभिव्यक्ति-क्षमता के समस्त उपकरणों शब्दावली, शब्द-विन्यास, मुहावरे, व्यंग्य, प्रतीक यानी कि अभिव्यक्ति की पूरी भंगिमा से है, उसके पूरे तंत्र से है। इस प्रक्रिया में अन्तर्वस्तु कटकर संकुचित ही हो, यह आवश्यक नहीं। एक सामाजिक निधि होने के कारण भाषा अन्तर्वस्तु को विस्तृत और सम्पन्न भी कर सकती है। यह निर्भर करता है साहित्यकार की अभिव्यक्ति-संघर्ष की क्षमता पर।

इस इकाई के आरम्भ में आप देख चुके हैं कि श्रीलाल शुकल को 'राग दरबारी' की रचना के लिए ग्रामीण-गँवार पात्रों के बीच रहकर कितनी कठिन जिन्दगी बितानी पड़ी है। पात्रों की बोली-बानी उन पर इतनी हावी हो जाती है कि जीवन और रिश्तेदारों के बीच उन्हें तिरस्कार का भाजन बनना पड़ता है। 'राग दरबारी' में खेड्डस, चकाचक, चुर्रेट, फंटूश, फुट्टफैरी, लासेबाजी, भरत-मिलाप, गिचिर-पिचिर घसड़-फसड़ आदि शतश: शब्दों का प्रयोग इस बात का प्रमाण है। इसके लिए छोटे पहलवान की वार्ता का एक उदाहरण पर्याप्त होगा, 'अरे गुरु कहा है 'तन पर नहीं लत्ता, पान खाँय अलबत्ता।' लखनऊ में दिन-रात फुट्टफैरी करता था। तो, बिन मसाले के फुट्टफैरी कैसे? गेहूँ तो बेचेगा ही। ..... फुट्टफैरी नहीं समझे। वह ससुरा बड़ा लासेबाज था। तो लासेबाजी कोई हँसी-ठट्टा है। बड़ों-बड़ों का गूदा निकल जाता है। जमुनापुर की रियास इसी में तिड़ी-बिड़ी हो गयी।..... अरे गुरु, मुँह न खुलवाओ। वैद्य जी तुम्हारे मामा हैं, पर हमारे कोई बाप नहीं। सच्ची बात ठाँस दूँगा कलेजे में कल्लाएगी, हाँ।'' यह तो ग्रामीण लोगों के बीच से अर्जित भाषिक भंगिमा है, लेकिन उपन्यासकार ने स्वयं अपनी

भाषा का भी अत्यंत सावधानी से निर्माण किया है, जिसके व्यंग्यात्मक तेवर अभिव्यक्ति को धारदार बनाते हैं। इसके लिए कहीं से भी कोई उदाहरण लिया जा सकता है।

यहाँ गुटबंदी से सम्बद्ध उपन्यासकार की टिप्पणी का उदाहरण अधिक उपयुक्त होगा, "सवाल है, गुटबंदी क्यों थी? यह पूछना वैसा ही है जैसे पानी क्यों बरसता है? सत्य क्यों बोलना चाहिए? वस्तु क्या है? ईश्वर क्या है? वस्तुत: यह एक सामाजिक मनोवैज्ञानिक सवाल है यानी दार्शनिक सवाल है। ..... वेदांत के अनुसार गुटबंदी परात्मानुभूति की चरम दशा का नाम है। उसमें प्रत्येक 'तू', 'मैं' को और प्रत्येक 'मैं', 'तू' को अपने से ज्यादा अच्छी स्थिति में देखता है। यह उस स्थिति को पकड़ना चाहता है। 'मैं', 'तू' और 'तू', 'मैं' को मिटाकर 'मैं' की जगह 'तू' और 'तू' की जगह 'मैं' बन जाना चाहता है।..... वेदांत हमारी परम्परा है और चूँकि गुटबंदी का अर्थ वेदान्त से खींचा जा सकता है, इसलिए गुटबंदी भी हमारी परम्परा है और दोनों हमारी सांस्कृतिक परम्पराएँ हैं। ..... अंग्रेजी राज में अंग्रेजों को बाहर भगाने के झंझट में कुछ दिनों के लिए हम उसे भूल गए थे। आजादी मिलने के बाद अपनी और परम्पराओं के साथ इसको भी हमने बढ़ावा दिया है। अब हम गुटबंदी के तू-तू, मैं-मैं, लात-जूता साहित्य और कला आदि सभी पद्धतियों को आगे बढ़ा रहे हैं। यह हमारी सांस्कृतिक आस्था है। यह वेदान्त को जन्म देने वाले देश की उपलब्धि है। यही, संक्षेप में, गुटबंदी का दर्शन, इतिहास और भूगोल है।" (पृ. 96) इस प्रकार उपन्यासकार गुटबंदी जैसी व्यापक विकृति के यथार्थ का उद्‌घाटन करने के लिए उसकी नयी अर्थ-स्थापना के साथ ही उसे वेदान्त से खींचकर स्वातंत्र्योत्तर कालीन राजनीति, साहित्य, कला आदि सभी क्षेत्रों में उसकी व्याप्ति पर वाग्वैदग्ध के सहारे कटाक्ष करता है। अपनी व्यंग्य शैली और भाषिक भंगिमा के माध्यम से उसने उपन्यास की नयी अन्तर्वस्तु को अभिव्यक्ति देने का सफल प्रयास किया है। अत: संरचना की दृष्टि से कुछ शिथिल होकर भी 'राग दरबारी' की व्यंग्यात्मकता उसे औपन्यासिक गरिमा से परिपूर्ण करती है।

15.5 भाषा-प्रयोग के विविध रूप

उपन्यास में जीवन के अनेक प्रसंगों और स्थितियों की योजना के अनुसार भाषा परिवर्तित होती है। सामाजिक व्यवहार की विश्वसनीयता शब्दों के द्वारा प्रतिपादित होती है। उदाहरण के लिए स्कूल के शिक्षक, वैद्य जी, रंगनाथ, सनीचर ब्रदी पहलवान, रुप्पन बाबू, जोगनाथ, आदि अनेक पात्र हैं, जिनकी भाषा बोलने का लहजा आदि एक खास-प्रकार की पृष्ठभूमि को पाठक के सामने उपस्थित करते हैं। रंगनाथ की भाषा में बौद्धिकता है, वह अपने ज्ञान के आधार पर स्थितियों का विश्लेषण करता है। शहरी मध्यवर्ग के बौद्धिक पात्र की तरह की उसकी भाषा में राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ मिलते हैं। वैद्यजी की भाषा का लहजा लोचदार है। वे राजनीतिज्ञ की तरह भाषा का इस्तेमाल करते हैं। उनके द्वारा प्रयुक्त शब्दों में स्पष्टता नहीं हैं। वे ऐसे शब्दों का प्रयोग करते है। जिसके अभिप्राय बाहर और भीतर से एक समान नहीं हैं। इसी प्रकार गाँव के अनपढ़ लोग भी कई प्रकार की पृष्ठभूमि से आए हैं। कुछ पहलवान है, कुछ सेवक हैं, कुछ जुआरी और शराबी हैं। इन लोगों की शब्दावली की भी अपनी एक पहचान है। लेकिन पात्र के लिए सामाजिक पृष्ठभूमि महत्वपूर्ण होने के बावजूद मन:स्थिति के परिवर्तन से भाषा का तेवर भी बदलता है। मनोवेग के अनुसार पात्र कभी कभी लगभग अंतर्विरोधी बातें करते प्रतीत होते हैं। उदाहरण के लिए रंगनाथ की बौद्धिकता तब गायब हो जाती है, जब उसके मन में सैक्स के विभिन्न प्रतीक उभरते हैं।

15.5.1 शब्दावली चयन

'राम दरबारी' में प्रचलित हिन्दी के शब्द भण्डार के साथ ही लोक जीवन की क्षेत्रीय शब्दावली से भी शब्द लिए गए हैं। हिन्दी के शब्द भण्डार से श्रीलाल शुक्ल ने तत्सम और तद्‌भव दोनों प्रकार के शब्दों का अवसरानुकूल प्रयोग किया है। इसके साथ ही हिन्दी में

आगत विदेशी शब्दों - अंग्रेजी, फारसी और अरबी शब्दों के प्रयोग में भी उन्हें किसी प्रकार की हिचक नहीं दिखायी देती। संवादों की भाषा में पात्रानुकूलता का ध्यान रखते हुए लेखक ने नवाबी दरबार में आए एक हकीम का संवाद इस प्रकार प्रस्तुत किया है, "अंत में एक बुर्जुग हकीम आए। शाहजादे को देखकर बोले, 'जहाँपनाह, आधी रियासत और शाहजादी देने से काम न चलेगा। मुझे इस ऐशोआराम की जरूरत भी नहीं। मेरी तो बस एक दरख्वास्त मान ली जाए, फिर शाहजादे के चंगा कर देने का मेरा जिम्मा रहा। दरख्वास्त पेश करने के लिए तखलिया (एकांत) चाहिए।'' लेकिन 'राग दरबारी' की एक बहुत बड़ी विशेषता है, सभी पात्रों की अपने चरित्र के अनुकूल भाषा और उनके द्वारा प्रयुक्त शब्दों का मिजाज। इस दृष्टि से देखें तो वैद्यजी हों या रामाधीन भीखमखेड़वी, बद्री पहलवान हों या छोटे पहलवान, रंगनाथ हों या रुप्पन, प्रिंसिपल साहब हों या खन्ना मास्टर, सनीचर हों या जोगनाथ, कुसहर प्रसाद हों या गयादीन-सभी की भाषा का निश्चित ढर्रा है। इस दृष्टि से लेखक की सावधानी सराहनीय है। इसकी सोदाहरण विस्तृत चर्चा चरित्र-चित्रण पर विचार करते हुए इकाई-16 में की जाएगी।

यहाँ स्वयं द्वारा की गयी टिप्पणियों, चित्रणों, वातावरण की सृष्टि में प्रयुक्त श्रीलाल शुक्ल की भाषा और शब्द-विन्यास पर भी विचार कर लेना आवश्यक है। एक व्यंग्यकार के रूप में ही नहीं, वरन् व्यापक अध्ययन, सामान्य ज्ञान, गहन अनुभव आदि ने 'राग दरबारी' के रचनाकार को जीवनपारखी के साथ ही भाषा-पारखी भी बना दिया है। इस दृष्टि उदाहरण दर्शनीय हैं :-

"आबादी लगभग पचास गज पीछे छूट गयी थी और वह वीरान इलाका शुरू हो गया था जहाँ आदमी कविता, रहजनी और पाखाना तक कर सकता था। परिणामस्वरूप कई एक बच्चे कविता और रहजनी के मामले में असमर्थ, सड़क के दोनों किनारे पर बैठे पाखाना कर रहे थे ओर एक-दूसरे पर ढेले फेंक रहे थे। उनसे कुछ दूर आगे बहुत सी प्रौढ़ और तजुर्बेकार महिलाएँ भी उसी मतलब से सड़क के दोनों ओर कतार बाँधकर बैठी थीं। वहाँ पर उनकी बेशर्म मौजूदगी नवभारत के निर्माताओं पर लानत भेज रही थी। पर इसका पता उन निर्माताओं को निश्चय ही नहीं था, क्योंकि वे शायद अपने घर के सबसे छोटे, पर लकदक कमरे में कमोड पर बैठे हुए अखबार, कब्जियत और विदेश-गमन की समस्याओं पर विचार कर रहे थे।'' 'राग दरबारी' की भाषा का यह स्वरूप लेखक द्वारा स्वीकृत भाषा का रूप है। लेकिन इसका अवसरानुकूल तेवर स्वयं उसके द्वारा नियोजित है। इसका व्यंग्य हास्य के मिश्रण से चाहे बहुत तीखा न बन पाया हो लेकिन कटाक्ष के माध्यम से नवभारत के निर्माताओं की कलई पूरी तरह से उतारने के साथ ही शहरी और ग्रामीण जीवन की विषमता को भी उद्घाटित करता है।

बात से बात निकालने में माहिर श्रीलाल शुक्ल ने 'राग दरबारी' में अपने इस कौशल का अच्छा परिचय दिया है। बात कोऑपरेटिव के मैनेजिंग डायरेक्टर पर से वैद्य जी के त्याग-पत्र की है। इतनी गंभीर समस्या के रूप में त्यागपत्र की बात आए और 'त्यागपत्र' उपन्यास के रचयिता जैनेन्द्र कुमार छूट जाएँ, यह श्रीलाल शुक्ल को कहाँ गँवारा हो सकता है, "अंतिम वाक्य लगता था, श्री जैनेन्द्र के किसी लेख से उड़ाए गए थे। पर वैद्य जी राजनीति के आदमी थे और बीसवीं सदी का हिन्दी साहित्य जब हिन्दी के प्रोफेसर तक बड़े कष्ट से पढ़ते हैं तो वैद्य जी से यह आशा करना कि उन्होंने श्री जैनेन्द्र का दार्शनिक साहित्य पढ़ा होगा, एक अनुचित बात होगी। यदि ऐसा होता और यदि उन्होंने श्री जैनेन्द्र कुमार के लेख पढ़े होते तो इस शैली में कही गयी बातें सुनकर वे समझ जाते कि उन्हें केवल शब्द-जाल से धमकाया जा रहा है।'' इस प्रकार यहाँ जैनेन्द्र और त्यागपत्र को एक नया शब्दानुषंग बनाकर वैद्य जी ही नहीं जैनेन्द्र की दार्शनिक स्थिति पर भी कटाक्ष किया गया है। अधिकांश विवरणों, वर्णनों और चित्रणों में श्रीलाल शुक्ल द्वारा इसी पद्धति का सहारा लिया गया है। इसके माध्यम से लेखक ने राजनीति, अर्थनीति, समाजनीति,

राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों, कला, साहित्य और अनेक क्षेत्रों के विशिष्ट व्यक्तियों गंभीर स्थितियों के बारे में आयी मानसिक प्रतिक्रियाएँ भी व्यक्त कर दी हैं। 'राग दरबारी' के शब्द-चयन और भाषिक प्रयोग की यह एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

15.5.2 मुहावरों, कहावतों और लाक्षणिक शब्दों का प्रयोग

'उपन्यास लोकजीवन का गद्य है' - इस तथ्य को हमने पिछली इकाइयों के साथ ही इस इकाई में भी अच्छी तरह से रेखांकित किया है। लोकजीवन की सर्वाधिक निकटता उसमें प्रयुक्त मुहावरों, कहावतों और लाक्षणिक प्रयोगों में दिखायी देती है। 'राग दरबारी' में बहुत सधे हुए मुहावरों और सटीक कहावतों का प्रयोग तो अधिक नहीं दिखायी देता, फिर भी 'तन पर नहीं लत्ता, पान खाँय अलबत्ता', 'जिसकी पूँछ उठाया, मादा पाया', 'हर शाख पर उल्लू बैठे हैं', 'चमड़ी जाय पर दमड़ी न जाए', 'आग खाएगा तो अंगार हगेगा', 'मुँह में राम बगल में छुरी' आदि जैसी कहावतनुमा उक्तियों के साथ 'हाथ खींचना', 'मुँह चुराना', 'हवा बाँधना', 'तीन तेरह होना', 'अंधों में काना राजा' आदि कुछ इनेगिने मुहावरे ही 'राग दरबारी' में मिलेंगे। कुछ लोकोक्तियों को लेखक ने बदल भी दिया है, जैसे - 'स्थान विशेष में गू नहीं, पर कौवों को न्यौता'। इससे लगता है कि उपन्यासकार इन्हें छोड़कर कुछ लाक्षणिक प्रयोगों, विशेषणों, ग्रामीण जीवन-मर्म से संवेदित विशिष्ट शब्दों के प्रयोग द्वारा लोकजीवन से निकटता को दर्शाने का प्रयास करता है। लक-दक, चकाचक, फंटूश, खड्डूस, तिड़ी-बिड़ी, लासेबाजी, ठाँसना, कल्लाना, लुलुहाना, कुकुरहाँव, टें बोलना, टिप्पस, चिड़ीमार, चुर्रेट, नक्शेबाजी, हड़काना, हुड़कना आदि शब्द ग्रामीण जीवन के स्पन्दन को मुहावरों की तरह ही अभिव्यक्त करते हैं।

उपर्युक्त लाक्षणिक शब्दों के साथ ही 'राग दरबारी' में चित्रोपम विशेषणों का प्रयोग देखते ही बनता है। भूदानी चेहरा, भूदानी मुसकान, भूदानी हँसी, वैष्णवजन वाली हँसी, सुअर का-सा लेंड़ आदि ऐसे शब्द हैं,जो पात्रों, मनोस्थितियों और मुद्राओं के चित्र उपस्थित करते हैं। इनमें जो कमी रह गयी है, उपन्यासकार उसे अपनी भाव प्रवणता और कल्पनाशीलता के माध्यम से सम्पन्न करता है। इसके लिए भी कुछ उदाहरण दर्शनीय हैं। जैसे - 'हवा धूल उड़ाने के लिए चलती है, आकाश का कोई रंग नहीं होता - नीलापन उसका फरेब है', 'प्यार' शब्द कविता की साजिश से शब्दकोशों में स्थान पा सका है।' अपनी इस पद्धति के द्वारा श्रीलाल शुक्ल ग्रामीण कथा-प्रसंगों में अवसर ढूँढकर हिन्दी के कहानीकारों, उपन्यासकारों, कवियों, कोशकारों पर कटाक्ष और टिप्पणियाँ करते हैं। सार्वदेशिक राजनीतिक, संसद, विधान-सभा, मंत्रियों, विशिष्ट अधिकारियों, विदेशनीति, ऋणनीति, सत्ताधारी दल, विरोधी दल की स्थिति, दुकानदारों, व्यापारियों के हथकण्डों, बड़े नेताओं की कुनबापरस्ती, उनकी सत्तालोलुपता आदि को उद्घाटित करने के लिए लेखक का अपना शब्द-भण्डार अत्यत कारगर सिद्ध हुआ। इसी माध्यम से उसने स्वांतत्र्योत्तर भारत के यथार्थ को आलोचनात्मक दृष्टि से देखने समझने और प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।

15.5.3 चित्रात्मकता

चित्रात्मकता 'राग दरबारी' की भाषा की एक विशेषता है। शब्द-विन्यास और भाषिक भंगिमा के सफल प्रयोग द्वारा लेखक ने बाह्य वातावरण के चित्रण में प्रायः इस प्रद्धति का सहारा लिया है। जोगनाथ के खिलाफ चोरी के मुकदमें में जहाँ पूरा शिवपाल गंज पहुँच गया है, शहर की अदालत का एक बाहरी दृश्य है, "वातावरण फूहड़ और अश्लील था। बरामदे में कुत्तों की तरह नागरिक लेटे हुए थे। ..... मैले-कुचैले, बढ़ी दाढ़ियों वाले वादी-प्रतिवादी-साक्षीगण, बीड़ी पीते हुए या गंदे दाँतों के पीछे तम्बाकू का चूरा सुरक्षित किए हुए, चीख-चीखकर बात कर रहे थे। ..... पाँवों में खाकी पट्टी लेपेटे हुए दो वर्दीदार सिपाही बरामदे में नंगे सिर घूम रहे थे। ..... वकील लोग, काम कुछ भी न हो तब भी, काम के बोझ से दबे हुए बार-बार इजलास के भीतर जाते थे और बाहर आ जाते थे। इत्मीनान से जम्हाई लेते हुए अहलमद लोग प्रत्येक पन्द्रह मिनट पर इजलास के बाहर आकर सामने एक पान की दूकान की

ओर जाते थे और फिर किसी मुकदमेबाज को अपने पीछे डाले हुए, किसी को बगल में लटकाए, यह समझाते हुए कि आज काम बहुत है, अब परसों आना, मुँह में पान और चूना भरे हुए, ऊँट की तरह गरदन ऊपर उठाए, पुनः इजलास के सुरक्षित दातावरण में घुस जाते थे।'' (पृ० 263) चित्रात्मकता की यह पद्धति चाहे थाने का बाह्य दृश्य हो या बस अड्डे की गंदगी का, चाहे गाँव के किनारे कीचड़युक्त तालाब का हो, चाहे कचहरी का नुक्कड़, सर्वत्र दिखायी देती है।

चित्रात्मकता से मिलती-जुलती एक और पद्धति 'राग दरबारी' में मिलती है, जिसे बिम्बात्मकता की संज्ञा दी जा सकती है। इसे आचार्य शुक्ल ने कविता में बिम्बों के माध्यम से अर्थ-ग्रहण के नाम से अभिहित किया है। अर्थग्रहण की इस पद्धति में श्रीलाल शुक्ल ने प्रस्तुत की अभिव्यक्ति के लिए भिन्न क्षेत्रीय नजीर (उदाहरण) दिए हैं जैसे, सनीचर को उस किसान के सामने घरेलू बातें सुनने में अड़चन हो रही थी। इस अड़चन का चित्रण लेखक ने इस प्रकार किया - "जैसे कोई प्राइममिनिस्टर पार्टी प्रेसीडेंट का डाँट खाकर एकदम से प्रेस-कांफ्रेंस में पहुँच रहा हो, कुछ उसी पोज से उसने अपने चेहरे को निर्विकार बनाने की कोशिश की।'' यहाँ छोटे पहलवान की डाँट और पार्टी प्रेसीडेंट की डाँट पर सनीचर के निर्विकार पोज को प्राइममिनिस्टर के पोज द्वारा प्रतिबिम्बित कराया गया है। यह भाषा की चित्रात्मकता का एक अधिक कलात्मक रूप है। दूसरा उदाहरण है, "इस छोकरे पहलवान को रुप्पन बाबू कुछ उसी तरह छूट दिए थे, जिस तरह सुना जाता है, कड़ी बात कहने की छूट सरदार पटेल को गांधीजी की तरफ से मिली हुई थी।'' अन्य उदाहरण है, "गीता सुनकर जिस भाव से अर्जुन अठारह दिन कुरुक्षेत्र की धूल फाँकते रहे, उसी तरह छोटे पहलवान गाड़ी की उड़ाई हुई धूल फाँक गए।'' रामसरूप की चोरी की प्रशंसा सुनते-सुनते जब किसी प्रौढ़ आदमी ने बहराम चोट्टे का जिक्र किया तो, "उसका नाम सुनते ही एक लड़के ने बड़े जोर-शोर से विरोध किया और बतर्ज विधानसभा की स्पीचों के बिना किसी तर्क के, सिर्फ आवाज ऊँची कर के साबित करने को कोशिश की कि बहराम चोट्टा भी कोई चोट्टा था।'' गयादीन के भावहीन चेहरे को प्रतिबिम्बित करने के लिए रामलीला के राम-लक्ष्मण के भावहीन चेहरे का उदाहरण इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। इसी प्रकार छंगामल कॉलेज की नियमावली और संविधान को, भारतीय संविधान के मौलिक अधिकारों वाले अध्याय से, सनीचर को साक्षात् प्रजातंत्र से, छोटे पहलवान की गोपनीयता की शपथ को राजभवनों में दिखलायी गयी शपथ से उपमित कर 'राग दरबारी' के लेखक ने अर्थग्रहण के लिए प्रायः बिम्बात्मकता का सहारा लिया है। अतः चित्रात्मकता और बिम्बात्मकता 'राग दरबारी' की एक महत्वपूर्ण भाषागत विशेषता मानी जा सकती है।

15.5.4 धारदार अभिव्यक्ति-कौशल

'राग दरबारी' की व्यंग्य शैली और भाषिक भंगिमा के साथ ही आपने उसमें भाषा-प्रयोगों के विविध रूपों का जो अब तक अध्ययन किया है, वे सभी धारदार अभिव्यक्ति के सशक्त उपकरण हैं। अपनी किस्सागोई की कला को श्रीलाल शुक्ल ने धारदार अभिव्यक्ति कौशल के माध्यम से खूब चमकाया है। शिवपाल गंज जाते समय जब रंगनाथ की ट्रेन छूट जाती है तो वह ट्रक ड्राइवर से ले जाने का निवेदन करता है। ट्रक ड्राइवर ने जब अपनी नजर घुमाई तो, "अहा ! पैर खद्दर के पैजामें में, सिर खद्दर की टोपी में, बदन खद्दर के कुरते में। कंधे से लटकता हुआ भूदानी झोला। साथ में चमड़े की अटैची। ड्राइवर ने उसे देखा और देखता ही रह गया।'' पात्रों और स्थल विशेष के इस प्रकार के रेखाचित्र उपन्यास से भरे पड़े हैं।

गुटबंदी, फुसफुसाहट, भुनभुनाहट, इंसानियम, नैतिकता, ठहाका आदि की व्याख्या-विश्लेषण में, इनके स्वरूप और प्रकारों के चित्रण में, इनके शील-निरूपण में श्रीलाल शुक्ल जमीन-आसमान एक कर देते हैं। इस प्रक्रिया में राजनीति, साहित्य, सामाजिक

जीवन--सबकी परत-दर-परत उघाड़ते हुए वे कथा की गति को विराम ही नहीं देते, वरन् कभी-कभी बहक भी जाते हैं। उदाहरणार्थ यहाँ 'गुटबंदी' को लिया जा सकता है। छंगामल इण्टर कॉलेज में गुटबंदी का जिक्र आते ही वह उसे वेदान्त दर्शन की परंपरा से जोड़कर उसकी आध्यात्मिक व्याख्या करने लगते हैं तो कभी हिन्दी कविता और कथा-साहित्य के साथ जोड़कर कवियों, कथाकारों की खबर लेने लगते हैं, "यह सही है 'सत्य', 'अस्तित्व', आदि शब्दों के आते ही हमारा कथाकार चिल्ला उठता है, सुनो भाइयो, यह किस्सा-कहानी रोककर मैं थोड़ी देर के लिए तुमको फिलासफी पढ़ाता हूँ, ताकि तुम्हें यकीन हो जाए कि वास्तव में मैं फिलासफर था, पर बचपन के कुसंग के कारण यह उपन्यास (या कविता) लिख रहा हूँ। इसलिए हे भाइयो, लो, यह सोलह पेजी फिलासफी का लटका।..... तात्पर्य यह है, क्योंकि फिलासफी बघारना प्रत्येक कवि और कथाकार के लिए अपने-आप में एक 'वैल्यू' है, क्योंकि मैं कथाकार हूँ, क्योंकि 'सत्य', 'अस्तित्व' आदि की तरह 'गुटबंदी' जैसे एक महत्वपूर्ण शब्द का जिक्र आ चुका है। इसलिए सोलह पृष्ठ के लिए तो नहीं, पर एक-दो पृष्ठों के लिए अपनी कहानी रोक कर भी पाठकों से कहना चाहूँगा कि कि सुनो-सुनो हे भाइयो मैं एक फिलासफर हूँ पर बचपन से कुसंग के कारण .....।" (पृ. 95) वस्तुत: इस प्रकार के विराम कथा-साहित्य के परम्परानिष्ठ पाठकों के लिए अत्यंत उबाऊ चीज बन जाते हैं। औपन्यासिक संरचना की दृष्टि से भी इस प्रकार की छूट लेना संगत नहीं माना जा सकता। बावजूद इसके इसे 'राग दरबारी' उपन्यास की एक विशिष्टता मानी गई है और इसी के कारण उसकी अन्तर्वस्तु सार्वदेशिक बन सकी है। सार्वदेशिकता के इस विस्तार को उपन्यासकार का धारदार अभिव्यक्ति-कौशल प्राय: उबाऊ होने से बचाता है।

बात पं. राधेलाल के 'कभी न उखड़ने वाले गवाह' के स्वरूप की प्रतिष्ठा की है। लेकिन हिन्दी के अन्य उपन्यासकारों से भिन्न श्रीलाल शुक्ल केवल इतने से संतुष्ट नहीं होते। पं राधेलाल पास-पड़ोस में अपनी शादी न होने से बाहरी इलाके से शादी कर वापस आ जाते हैं। इस पर टिप्पणी करते हुए श्रीलाल शुक्ल इसे भारत की प्राचीन परंपरा से जोड़ देते हैं, "हमारी प्राचीन परंपरा है कि लोग बाहर जाते हैं और जरा-जरा सी बात पर शादी कर बैठते हैं। अर्जुन के साथ चित्रांगदा आदि को लेकर यही हुआ। यही भारतवर्ष के प्रवर्तक भरत के पिता दुश्यंत के साथ हुआ, यही ट्रिनीडाड और टोबैको, बर्मा और बैंकाक जाने वालों के साथ होता था।..... अपने मुहल्ले में देवदास पार्वती के साथ शादी नहीं कर सका और एक समूची पीढ़ी को कई वर्षों तक रोने का मसाला दे गया था। उसे विलायत भेज दिया जाता तो वह .....।" इस प्रकार लेखक राधेलाल के बहाने अपने इतिहास, पुराण और साहित्य सबकी खबर लेते हुए अपनी किस्सागोई, जानकारी तथा वर्णन कौशल के सहारे पाठक को अपने साथ बनाए रखता है। इसमें उसकी कल्पनाशीलता का भी विशेष योगदान है।

'राग दरबारी' की धारदार अभिव्यक्ति का एक महत्वूपर्ण कारण यह है कि इसमें श्रीलाल शुक्ल का व्यंग्यकार अधिक प्रखरता से समाविष्ट हुआ है। इनके अन्य उपन्यासों में व्यंग्य की यह पहल नहीं दिखायी देती। अपने व्यंग्य लेखों में वे व्यंग्य-विषय से बँधे न रहकर अपने चिन्तन की डोर राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र के अनेक मुद्दों तक पहुँचा देते है।। यही 'राग दरबारी' में भी हुआ है, और अपनी पूरी व्यंग्य-क्षमता के साथ। उपन्यास जैसी कथा प्रधान विधा में कथेतर तथ्यों के ग्रहण के साथ व्यंग्य शैली का भरपूर ग्रहण 'राग दरबारी' की निजी विशेषता बन जाता है। व्यंग्य का यह व्यापक प्रयोग उपन्यासकार के अभिव्यक्ति कौशल को एक नयी धार देता है।

15.6 सारांश

इस इकाई में 'राग दरबारी' की अन्तर्वस्तु के साथ उसके संरचना-शिल्प और भाषा-प्रयोग से संबद्ध विशेषताओं का विवेचन-विश्लेषण किया गया है। इस प्रक्रिया में कृति के विषय से

भिन्न उसकी अन्तर्वस्तु संबंधी विशेषताओं पर विचार करते हुए इस तथ्य को विशेष रूप से रेखांकित किया गया है कि परम्परागत प्राचीन विषय की अन्तर्वस्तु नवीन जीवन-मूल्यों की वाहिका बन सकती है और नया विषय होकर भी उसकी अन्तर्वस्तु पुराने मुल्यों की वाहिका को सकती है। इस मान्यता के प्रकाश में यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि 'राग दरबारी' का विषय ग्रामीण जीवन का चित्रण है लेकिन उसकी अन्तर्वस्तु स्वातंत्र्योत्तर भारतीय राजनीतिक-सामाजिक विसंगतियों के यथार्थ का चित्रण है।

इस इकाई का दूसरा महत्वपूर्ण बिन्दु 'राग दरबारी' का संरचना-शिल्प है। इसके अन्तर्गत अन्तर्वस्तु और शिल्प के द्वन्द्वात्मक संबंध के प्रकाश में अन्तर्वस्तु की भाँति ही शिल्प की नवीनता पर भी विचार किया गया है। इस दृष्टि से 'राग दरबारी' को परम्परागत उपन्यास-रचना के मानदण्डों का किंचित परित्याग करने वाला एक नयी औपन्यासिक गरिमा से मण्डित उपन्यास सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। इस नयेपन का अधिकांश श्रेय 'राग दरबारी' की व्यंग्य-शैली और भाषिक भंगिमा में निहित है - इस तथ्य को भी यहाँ विशेष रूप से रेखांकित किया गया है।

इस इकाई का तीसरा महत्वपूर्ण पहलू है - 'राग दरबारी' में भाषा प्रयोग। इसके लिए उपन्यास में प्रयुक्त शब्दावली, मुहावरे, कहावतें और लाक्षणिक शब्दों पर विचार करते हुए भाषा की चित्रात्मकता तथा उसके धारदार अभिव्यक्ति-कौशल को रेखांकित किया गया है। सब मिलाकर इस इकाई में 'राग दरबारी' के रचना-संसार की अन्तर्बाह्य विशेषताओं को हमने स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

15.7 अभ्यास प्रश्न

1. 'राग दरबारी' शीर्षक की सार्थकता पर विचार कीजिए।
2. 'राग दरबारी' में गृहीत विषय और उसकी अन्तर्वस्तु के अंतर को स्पष्ट कीजिए।
3. "राग दरबारी को परम्परागत औपन्यासिक रचना-शिल्प की किंचित उपेक्षा के बावजूद एक नयी औपन्यासिक गरिमा प्राप्त हुई है।" इस मान्यता के संदर्भ में अपने विचार स्पष्ट कीजिए।
4. भाषा-प्रयोग की दृष्टि से 'राग दरबारी' की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
5. 'राग दरबारी का व्यंग्य-विधान' -पर एक निबंध लिखिए।

इकाई 16 'राग दरबारी' के पात्र

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 'राग दरबारी' एक सामान्य चरित्रोपाख्यान

16.3 'राग दरबारी' के विशिष्ट पात्र

16.3.1 वैद्य जी

16.3.2 रंगनाथ और रुप्पन

16.3.3 बद्री पहलवान और छोटे पहलवान

16.3.4 रामाधीन भीखमखेडवी

16.3.5 सनीचर

16.3.6 लंगड़

16.3.7 प्रिंसिपल साहब और खन्ना मास्टर

16.4 चरित्रों की प्रातिनिधिकता और अन्य चरित्र

16.5 'राग दरबारी' का चरित्र-विधान : रचनाकार की मूल्य-दृष्टि

16.6 सारांश

16.7 अभ्यास प्रश्न

खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें

16.0 उद्देश्य

पिछली इकाई में आपने 'राग दरबारी' की अन्तर्वस्तु और उसके संरचना-शिल्प का अध्ययन कर लिया है। यहाँ आप उसके एक महत्वपूर्ण पक्ष चरित्र-विधान से संबद्ध विशेषताओं का अध्ययन करने जा रहे है।

यह उपन्यास बहुत से चरित्रों के उपाख्यान से मिलकर निर्मित हुआ है। वैद्य जी, छोटे पहलवान, रामाधीन भीखम खेड़वी के साथ अनेक उपकथाएँ किस प्रकार मिलकर उपन्यास की कथा को आगे बढ़ाती हैं- इसका समुचित विवरण इस इकाई में दिया जाएगा। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- उपन्यास के विशिष्ट चरित्रों की विशेषताओं पर चर्चा कर सकेंगे;
- उपन्यास में आए चरित्रों की प्रातिनिधिकता और उन अन्य चरित्रों की विशेषताओं का विवेचन कर सकेंगे जो थोड़ी देर के लिए उपस्थित होकर भी अपने प्रातिनिधिक स्वरूप और महत्व को उद्घाटित कर जाते हैं; और
- 'राग दरबारी' के चरित्र-विधान में अपनायी गई उपन्यासकार की मूल्य-दृष्टि का उद्घाटन कर सकेंगे।

16.1 प्रस्तावना

अब तक आपने 'राग दरबारी' पर तीन इकाइयों का अध्ययन कर लिया है, जिनसे उपन्यास की समसामयिक पृष्ठभूमि के साथ ही उसकी अधिकांश अन्तर्बाह्य विशेषताओं से भी परिचित

हो चुके हैं। प्रस्तुत इकाई में आप 'राग दरबारी' के चरित्र-विधान और पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं का अध्ययन करने जा रहे हैं। उपन्यास जैसी विस्तृत कथात्मक रचना की सफलता का एक बहुत बड़ा आधार पात्रों के चरित्र-चित्रण की सहजता, स्वाभाविकता और प्रामाणिकता है। लेकिन किसी रचना की सफलता उसकी सार्थकता का स्थान नहीं ग्रहण कर सकती। अत: पात्र-रचना को लेकर, पात्रों के प्रति लेखकीय रुख-रवैया को लेकर सार्थकता का प्रश्न अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। क्योंकि पात्र-रचना के पीछे निहित उद्देश्य लेखकीय दृष्टिकोण से भी जुड़ा रहता है।

कुछ आलोचकों ने 'राग दरबारी' में पात्रों की भीड़ का उल्लेख करते हुए लेखक द्वारा उनके समुचित विकास को न दिखा पाने का आरोप लगाया है। लेकिन यहाँ यह ध्यान में रखने की बात है कि 'राग दरबारी' एक सामान्य चरित्रोपाख्यान है। इसमें आए चरित्रों के क्रिया-कलाप ही नहीं, उनकी कथाएँ और बहुत सारी उपकथाएँ मिलकर उसे उपन्यास विधा का रूप देती है। इसके साथ ही 'राग दरबारी' एक यथार्थवादी उपन्यास है। यथार्थवाद का तकाजा है कि विवरण की सच्चाई के साथ प्रतिनिधि परिस्थितियों में प्रतिनिधि चरित्रों का भी सच्चा चित्र प्रस्तुत किया जाए। इस दृष्टि से 'राग दरबारी' में स्वातंत्र्योत्तर भारत के बीस-पच्चीस वर्षों के तथाकथित सामाजिक विकास की परिस्थितियों में वैद्य जी, रंगनाथ, रुप्पन, प्रिंसिपल साहब आदि के साथ ही सनीचर, लंगड़, ग्राण्टखोर कालिका प्रसाद, झूठी गवाही में कभी न उखड़ने वाले गवाह पं राधेलाल आदि जैसे पात्रों की प्रातिनिधिकता से इनकार नहीं किया जा सकता।

यहाँ जो अधिक विचारणीय है, वह यह है कि ये सभी पात्र मिलकर लेखक की किस मूल्य-दृष्टि का उद्घाटन करते हैं। कहीं वह अवमूल्यन की झाड़-झंखाड़ में ही तो पाठक को नहीं छोड़ देता? कहीं वह अपनी एतद्विष्यक टिप्पणियों को ही तो अपनी मूल्य-दृष्टि का वाहक नहीं बना लेता ? अत: 'राग दरबारी' की पात्र-योजना पर विचार करते हुए पात्रों की प्रातिनिधिकता के साथ ही लेखक की मूल्य-दृष्टि के औचित्य-अनौचित्य पर भी विचार करना आवश्यक है। यह विचार हम इकाई के अंत में अपेक्षित विस्तार के साथ करेंगे।

16.2 'राग दरबारी' : एक सामान्य चरित्रोपाख्यान

'राग दरबारी' के संरचना-शिल्प पर विचार करते हुए इस तथ्य की ओर संकेत किया जा चुका है कि इसका निर्माण अनेक कथाओं, उपकथाओं और लेखक की टिप्पणियों के संयोग से हुआ है। अत: इसे सामान्य चरित्रोपाख्यान की संज्ञा दी जा सकती है। वस्तुत: उपन्यास की स्थितियाँ और कथ्य वर्णन-क्रम से नहीं जीवन-क्रम से अर्थात् उन्हें जिए जाने के क्रम से संवेदित होकर उपस्थित हुए हैं। इसमें आए हुए प्राय: सभी पात्र अपनी अलग-अलग कहानी लिए हुए हैं। एक तरफ छंगामल इण्टर कॉलेज की गतिविधियों और उसके चुनाव की कहानी है, तो दूसरी तरफ कोऑपरेटिव यूनियन के गबन और उसके चुनाव की कहानी है और तीसरी ओर ग्राम पंचायत के चुनाव की कहानी है। शिवपाल गंज गाँव सभा के चुनाव के महत्व को रेखांकित करने के लिए रामनगर, महिपालपुर और नेवादा की ग्राम पंचायतों के चुनाव की अलग-अलग तीन कहानियाँ हैं।

उपन्यास में आए सभी पात्रों की अपनी-अपनी अलग कहानी है। रुप्पन, बद्री पहलवान, छोटे पहलवान, गयादीन, रामाधीन भीखम खेड़वी, जोगनाथ, सनीचर, लंगड़ आदि सभी पात्र अपनी-अपनी कहानी लिए हुए हैं। इनमें वैद्यजी और छोटे पहलवान अपने पूरे खानदान की कथा के साथ उपस्थित हैं। प्रिंसिपल और खन्ना मास्टर की अलग ही कहानी है। सब मिलाकर 'राग दरबारी' एक बृहद चरित्रोपाख्यान के रूप में हमारे सामने आता है।

16.3 राग दरबारी के विशिष्ट पात्र

16.3.1 वैद्य जी

मुखौटों के बीच असलियत की पहचान को असंभव बनाने वाले वैद्य जी मात्र एक व्यक्ति नहीं, संस्था हैं। वे गाँव के कुलपूज्य ब्राह्मण हैं, जान-माने वैद्य हैं, छंगामल इण्टर कॉलेज के मैनेजर हैं, कोऑपरेटिव यूनियन के मैनेजिंग डायरेक्टर हैं और अब गाँव-पंचायत को हथियाने के लिए लपक रहे हैं। खान-पान में विशुद्ध शाकाहारी और पोशाक में खद्दर की धोती, कुर्ता, सदरी, टोपी, चादर में वे भव्य मूर्ति के रूप में दिखायी देते हैं।

वैद्यजी अंग्रेजी हुकूमत के समय अँग्रेजों के विश्वास पात्र बनकर जापान से लड़ने के लिए सेना में भारतीयों की भर्ती कराते थे। हुकूमत का कृपा-पात्र बनकर जज की अदालत में 'जूरी' और 'असेसर' बनकर, दीवानी मुक़द्दमों में जायदाद के सिपुर्ददार का काम करते थे। गाँव के जमींदारों में लम्बरदार का दर्जा उन्हें मिला हुआ था। स्वातंत्र्योत्तर भारत में वे देशी शासकों के फर्माबरदार सेवक बनकर रातोंरात अपने राजनीतिक गुट में सैकड़ों सदस्य बनाने लगे। इस प्रकार वे वर्तमान शासन-सत्ता के अनिवार्य स्तम्भ बन गए थे।

ऊपर से देखने में वैद्यजी का मुख्य पेशा वैद्यक था, जिसमें प्रकट रोगों के अलावा गुप्त रोगों की उनके पास अचूक दवा थी। अपने इस रूप में वे 'जीवन से निराश नवयुवकों के लिए आशा का संदेश थे।' लेकिन उनकी आमदनी का परोक्ष साधन छंगामल इण्टर कालेज की प्रबंध समिति, कोआपरेटिव यूनियन की मैनेजिंग डाइरेक्टरशिप और विकास कार्यों के लिए प्राप्त होने वाला सरकारी अनुदान, ऋण और तकाबियाँ थी। डिप्टी डाइरेक्टर, स्कूल निरीक्षक और डिप्टी डाइरेक्टर कोआपरेटिव उन्हीं के इशारों पर काम करते थे। सभी संस्थाओं के चुनाव का परिणाम उनकी मुट्ठी में था। समाज में भ्रष्टाचार का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं था जो उनकी पहुँच के बाहर हो। छात्र नेताओं के प्रतिनिधि रुप्पन और बाहरी तथा गाँव के गुण्डों के सरदार बद्री पहलवान उनके पुत्र थे, बुद्धिजीवियों के प्रतिनिधि रंगनाथ उनके भांजे थे। थाने की पुलिस और थानेदार उनके इशारों पर चलने के लिए विवश थे। कालेज का प्रिंसिपल उनका चाकर था। गाँव और बाहर की राजनीति के लिए वे अटल स्तम्भ थे। बड़े-बड़े अधिकारियों को वश में करने के लिए उनके पास वीर्यपुष्टि की अचूक दवा के साथ ही देश के प्रसिद्ध ज्योतिषियों और बाबाओं का गहन सम्पर्क था। अपनी बेरोकटोक स्वार्थ सिद्धि के मार्ग में आने वाली सभी बाधाओं को छिन्न-भिन्न करने वाली करामात उनके पास थी। सब मिलाकर वैद्यजी उस राजनीतिक-सांस्कृतिक संस्कृति के प्रतीक थे जिसके असत्य भार से देश का प्रजातंत्र और लोक-कल्याण की कामना त्राहि-त्राहि कर रही थी।

यह तो एक साक्षात् संस्था के रूप में वैद्यजी का बाहरी खाका है। 'राग दरबारी' में उनका आन्तरिक चरित्र भी स्थान-स्थान पर संकेतित हुआ है। इसके लिए कुछ उदाहरण अपेक्षित हैं। जाड़े की रात में लिहाफ को अच्छी तरह लपेटने के बाद भी जब जाड़ा उनकी हड्डियों को बेधने लगा तो उन्होंने "याद किया कि अकेले लेटने का विस्तार ज्यादा ठण्डा रहता है। इस याद के बाद यादों का एक ताँता सा लग गया।'' इससे वैद्यजी के निजी क्रिया कलाप और आन्तरिक चरित्र का संकेत मिलता है। रंगनाथ जब रुप्पन के प्रेम-पत्र की चर्चा करते हुए उससे कहता है कि इसको लेकर मामाजी बहुत नाराज हैं तो रुप्पन कहता है कि 'वे क्या नाराज होंगे। जरा मुझसे बात करके देखो चौदह वर्ष की उम्र में विवाह होने और बड़ी माँ के मर जाने पर उनसे एक साल भी नहीं रुका गया, दूसरी शादी कर ली। यह सब तो किया कायदे से। और बेकायदे क्या किया वह भी सुनोगे।'' बद्री पहलवान और वैद्यजी की झड़प में जब रुप्पन मध्यस्थता करता है तो वैद्यजी रुप्पन से कहते हैं कि "मुझे तुम्हारे आचरण की भी खबर है।'' इस पर रुप्पन का जबाब है। "मुझे भी आपके आचरण की खबर है।'' यहाँ

आचरण फँसने-फँसाने के प्रेम-प्रसंग के संदर्भ में आया है, अत: वैद्यजी के दुराचरण की ओर संकेत करता है। बद्री पहलवान के आचरण पर अपनी नाक कटकर गिरने की बात करते हैं तो बद्री तुरंत उत्तर देता है, "नाक वाली बात न करो। नाक है कहाँ? वह तो पंडित अजुध्याप्रसाद के दिनों में ही कट गई थी।..... तुम कहते हो कि मैं बेला में फँस गया हूँ। तुम हमारे बाप हो, तुमको कैसे समझाया जाए। फँसना-फँसाना चिड़िमार का काम है। तुम्हारे खानदान में तुम्हारे बाबा अजुध्याप्रसाद जैसे रघुबंश की महँतारी से फँसे थे। इसे कहते हैं फँसना।'' इससे स्वयं वैद्यजी ही नहीं, उनके खानदान तक की चरित्रहीनता उजागर होती है।

इन उदाहरणों से स्पष्ट पता चलता है कि लेखक ने वैद्यजी का जो व्यंग्य चित्र प्रस्तुत किया है, उसे देखकर पाठक भौतिक दृष्टि से अपने को उनसे श्रेष्ठ समझता है। नैतिकता की इस विजय को दिखाकर वैद्यजी को छोटा और कमजोर सिद्ध किया गया है, जिससे पाठक में आत्मविश्वास पैदा होता है कि वह वैद्यजी को पराजित कर सकता है। वैद्य जी का चरित्र प्रस्तुत करने में लेखक की यही मूल दृष्टि है। इस तरह वैद्यजी उपन्यास में नायक नहीं खलनायक हैं और पाठक को स्वयं नायक की भूमिका का निर्वाह करना है यह संदेश भी उपन्यास में परोक्ष रूप से दिया गया है।

16.3.2 रंगनाथ और रुप्पन

'राग दरबारी' में रंगनाथ को भारतीय बुद्धिजीवियों के रुग्ण प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास का आरंभ और अन्त भी रंगनाथ के शिवपाल गंज में प्रवेश और पलायन से होता है। इसलिए वह शिवपाल गंज की समस्त गतिविधियों का द्रष्टा भी है। वह वैद्यजी का भांजा है, इस लिए सर्वत्र उसकी पूछ और सम्मान है। अठारह वर्षीय रुप्पन छंगामल इण्टर कालेज की दसवीं का छात्र-नेता और कॉलेज के मैनेजर वैद्यजी का पुत्र है। केवल पढ़ाई लिखाई को छोड़कर शेष सभी क्षेत्रों - कालेज, थाना कोआपरेटिव से लेकर गाँव के 'गँजहों' तक में उसका बोल-बाला है। उद्दंडता और अनुशासनहीनता के रोग से ग्रस्त इसे विद्रोही युवापीढ़ी का प्रतिनिधि बनाकर उपन्यासकार ने प्रस्तुत किया है। कालेज के प्रिंसिपल से लेकर थानेदार तक उनकी हाँ-में-हाँ मिलाते थे। उन पर टिप्पणी करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है, "उनकी इतनी इज्जत थी कि पूँजीवाद के प्रतीक दुकानदार उनके हाथ सामान बेचते नहीं, अर्पित करते थे और शोषण के प्रतीक इक्केवाले उन्हें शहर तक पहुँचाकर किराया नहीं, आशीर्वाद माँगते थे।'' उनकी नेतागिरी का प्रारंभिक और अंतिम क्षेत्र वहाँ का कालेज था, जहाँ उनका इशारा पाकर सैकड़ों विद्यार्थी तिल का ताड़ बना सकते थे और जरूरत पड़े तो उस पर चढ़ भी सकते थे।''

रंगनाथ और रुप्पन में एक मूलभूत अन्तर था। "सारे मुल्क में फैले शिवपालगंज के अनुभव तक रुप्पन जैसा गँवार नागरिक उपन्यास के अंत में पहुँच पाता है। जबकि रंगनाथ जैसा गँवार नागरिक बहुत पहले ही (पृ. 63) पहुँच जाता है। बावजूद इसके रंगनाथ कोई खतरा मोल लेने के लिए तैयार नहीं है और प्राय: तटस्थ द्रष्टा की भूमिका में ही रहना चाहता है। प्रिंसिपल के विरुद्ध, खन्ना मास्टर के प्रति उसे पूरी सहानुभूति थी। लेकिन कॉलेज की जाँच के लिए होने वाली बैठक में खन्ना के गुट के लोगों द्वारा मारपीट की बात आई तो वह उदासीन होने लगता है। वह सोचता है कि "स्वास्थ्य ठीक रहने के लिए शिवपालगंज की आबोहवा भले ही अच्छी हो, वहाँ की हवालात की इस मामले में ख्याति अच्छी नहीं।'' कर्मक्षेत्र के प्रति एक बुद्धिजीवी की उदासीनता यहाँ व्यक्त हुई है।

रंगनाथ के विपरीत रुप्पन की सहानुभूति कर्म क्षेत्र में भी प्रवेश करती दिखायी देती है। वह कॉलेज की जाँच कमेटी की बैठक में किसी भी स्थिति के मुकाबले के लिए प्रिंसिपल और वैद्य जी के विरुद्ध पूरी तैयारी करता है। लेकिन अपने षड्यंत्र में सफल वैद्यजी जब बिना जाँच के ही खन्ना और मालवीय को पूर्व निर्मित त्यागपत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए विवश करते हैं तो वह पूरे आवेश के साथ अपना विरोध प्रकट करते हुए कहता है- ऐसा नहीं हो सकता।

आप जबरदस्ती इनसे इस्तीफा नहीं लिखा सकते। ये इस्तीफा नहीं देंगे।'' रुप्पन इस्तीफे की कार्रवाई तो नहीं रोक पाता, लेकिन वैद्यजी की दहाड़ और गालियाँ सुनकर जब वहाँ से चलता है तो उसका व्यक्तित्व कुंठित या लुचलुचाया हुआ नहीं, तिलमिलाया हुआ प्रतीत होता है। वह कुछ करने पर उतारू दिखायी देता है। इसका आभास वह बहुत पहले ही रंगनाथ के सामने दे देता है। जब रंगनाथ पूछता है कि क्या तुमने शराब पी है तो वह उत्तर देता है,' "कभी न कभी तो शुरू करना ही पड़ता शिवपालगंज में रहना है तो इसी तरह रहा जाएगा।... यहाँ महात्मा गांधी बनने से काम नहीं चलेगा।!''

रुप्पन के विपरीत रंगनाथ विरोध की पहली ही कोशिश में भरभरा कर उलट जाता है। उसके मन में पलायन का संगीत गूँजने लगता है- 'रहना नहिं देस बिराना है।' रंगनाथ को उपन्यासकार ने अधिकांश बुद्धिजीवियों के प्रतिनिधि के रूप में चुना है, जिस पर विवेकी राय ने एक अत्यन्त सार्थक टिप्पणी इस प्रकार की है, 'ऐसा लगता है कि भारत का हर बुद्धिजीवी आज रंगनाथ की दयनीय तस्वीर बना हत बुद्धि होकर कॉंग्रेसी समाजवाद की उन चुनौतियों के भीतर-ही-भीतर जूझ रहा है, जो जाल की तरह उसके चारों ओर लगे हैं और जिनके जालिम मछुओं के सरदार रूप कोई वैद्यजी अपने खास रिश्तेदार पड़ रहे हैं तथा जिनसे निपटने का इससे सुकर मार्ग नहीं कि तमाशा भूमि छोड़कर चुप-चाप सरक जाएँ।'' इस टिप्पणी के प्रकाश में देखे तो पूरे 'राग दरबारी' में रंगनाथ की भूमिका बुद्धिजीवियों के एक प्रतिनिधि के रूप में ही प्रकट हुई है।

16.3.3 बद्री पहलवान और छोटे पहलवान

'राग दरबारी' के बद्री पहलवान वैद्य जी के बेटे हैं और छोटे पहलवान के गुरु हैं। उनके अखाड़े से निकले शिष्यों का एक बड़ा जाल आस-पास के गाँवों में फैला हुआ है। चोरी, डकैती, व्यभिचार आदि के मामलों में फँसे अपने गुण्डा-बदमाश शिष्यों के बचाव और जमानत के लिए उन्हें काफी श्रम करना पड़ता है। दुनिया में कल्ले के जोर (बाहुबल) को ही वे सबसे बड़ी ताकत मानते हैं। नैतिकता उनके लिए कल्ले के जोर की कमी की द्योतक है। अपने 'पालक बालकों' की रक्षा उनके लिए परम कर्तव्य था।

छोटे पहलवान बद्री के 'पालक-बालक' हैं। किन्तु इसके साथ ही वे एक खानदानी आदमी (हरामी) हैं। उन्हीं की जबानी उपन्यास में उनके खानदान का ठोस इतिहास प्रस्तुत हुआ है। उनके परदादा भोलानाथ ने अपने पिता के साथ और फिर अपने पुत्र गंगादयाल के साथ एक ठोस परम्परा कायम कर दी थी, जिसका पालन गंगादयाल के पुत्र कुसहर प्रसाद और उनके पुत्र छोटे पहलवान बड़ी ईमानदारी से कर रहे थे। "उनके यहाँ बाप-बेटे में हमेशा से बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध चला आ रहा था। प्रेम करना होता तो एक दूसरे से प्रेम करते, लाठी चलाना होता तो एक-दूसरे पर लाठी चलाते। जो भी अच्छा बुरा गुण उनके हाथ में था उसकी आजमाइश एक दूसरे पर ही किया करते।'' छोटे जब तक पहलवान नहीं बने थे, तब तक अपने बाप कुसहर प्रसाद की लाठी का जबाब पत्थर के टुकड़ों से देते रहे, लेकिन जवान हो जाने पर बाप-बेटों ने शब्दों का प्रयोग बन्द कर दिया। इस पर टिप्पणी करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है। "अब वे उच्चकोटि के कलाकारों की तरह अपना अभिप्राय छापा, चिन्हों और बिम्बों में प्रकट करने लगे। उनके बीच में मारपीट की घटनाएँ भी कम होने लगीं और धीरे-धीरे उसने एक रस्म का रूप ले लिया, जो बड़े-बड़े नेताओं की वर्षगाँठ की तरह साल में एक बार, जनता की माँग हो या न हो, नियमित रूप से मनायी जाने लगी।'

छोटे पहलवान ने अपने बाप कुसहर प्रसाद को इसी रस्म अदायगी के तौर पर कुछ ज्यादा ही घायल कर दिया तो खून से लथपथ वे वैद्यजी की बैठक में शिकायत के लिए आते हैं। इस घटना से खिन्न होकर रंगनाथ कहता है - "ताज्जुब है, इस तरह के लोगों (छोटे पहलवान) को बद्री दादा अपने पास बैठा लेते हैं।'' इस पर बद्री पहलवान लापरवाही से जवाब देते हैं, "ये कुसहर भी किसी से कम नहीं। इनके बाप गंगादयाल जब मरे थे तो यह उनकी अर्थी तक नहीं

निकलने दे रहे थे कि घाट तक घसीटकर डाल आएँगे।'' आगे चलकर जब बद्री उस समझाते हैं कि अपने बाप को इस तरह नहीं मारना चाहिए तो छोटे उत्तर देता है, "गुरु, साला बाप जैसा बाप हो, तब तो एक बात भी है।'' इस पर सनीचर समझाते हुए कहता है कि "आखिर कुसहर ने तुम्हें पैदा किया है, पाला-पोसा है।'' इस पर छोटे भुनभुनाकर कहता है,'' कोई हमने स्टाम्प लगाकर दरखास्त दी थी कि हमें पैदा करो। चले साले कहीं के पैदा करने वाले।'' इससे छोटे पहलवान का पूरा चरित्र पाठक के सामने आ जाता है। इस प्रकार का गँवार अक्खड़पन उनके चरित्र की विशेषता है, जिस का परिचय उपन्यास में स्थान-स्थान पर मिलता है।

छोटे पहलवान जैसा अक्खड़पन बद्री पहलवान में भी है जिसे आप वैद्य-बद्री-विवाद में देख चुके हैं। बावजूद इसके बद्री पहलवान वैद्यजी की शक्ति के एक दृढ़ स्तंभ हैं। कालेज की प्रबंध समिति और कोआपरेटिव के गबन की समस्याएँ जब गंभीर रूप धारण कर लेती हैं, तो बद्री उसे अपने बाएँ हाथ का खेल बताकर वैद्यजी को संतुष्ट कर देते हैं। कोआपरेटिव इंस्पेक्टर डिप्टी डाइरेक्टर, खन्ना मास्टर आदि की समस्याओं को वे कल्ले के बल पर सुलझाने का जो नुस्खा पेश करते हैं, उससे वैद्यजी संतुष्ट हैं। आगे बद्री, बिना बीच में आए अपने बाहुबल पर वायदे का निर्वाह करते हैं। इस प्रकार बद्री और छोटे पहलवान दोनों ही अपनी खानदानी परम्परा को अपने-अपने ढंग से आगे बढ़ाते हैं।

16.3.4 रामाधीन भीखमखेड़वी

रामाधीन शिवपालगंज से लगे एक गाँव भीखमखेड़ा के रहने वाले थे। यह गाँव अब कुछ झोपड़ों, माल विभाग के कागजात और रामाधीन की पुरानी शायरी में ही सुरक्षित था। बचपन में काम-धाम की तलाश में वे कलकत्ता पहुँच गए थे। वहाँ एक व्यापारी के यहाँ पत्र वाहक का कार्य करते हुए बाद में उसके साथ मिलकर कारोबार शुरू कर दिया। अंत में उस कारोबार के मालिक बन बैठे। कारोबार अफीम का था। कच्ची अफीम कलकत्ते के व्यापारियों के पास पहुँचाने की आढ़त उनके पास थी। पैसा अच्छा था। लेकिन गैरकानूनी काम होने से वे पकड़े गए और दो साल की सजा हो गयी। सजा के बाद वह काम चला पाना संभव न देख वे पुन: भीखमखेड़ा वापस आ गए। अपने बचे-खुचे पैसे से एक घर बनवाया और थोड़ी जमीन लेकर खेती करने लगे। तभी ग्रामीण क्षेत्रों में नयी पंचायतें बनीं। अपने चचरे भाई को प्रधान बनवाकर गाँव पंचायत की जमीन के पट्टे का शुल्क स्वयं लेने लगे और भाई को गबन के मुकदमे में जेल जाने के लिए छोड़ दिया।

गाँव में टिक पाने के बाद रामाधीन ने गाँव के लड़कों को कौड़ी की जगह ताश से जुआ खेलने की शिक्षा दे दी। उनके मकान के सामने छप्पर के बंगले में एक तरफ गाँव के नौजवान ताश खेलते और दूसरी तरफ भांग घुटती थी। धीरे-धीरे वैद्यजी की फितरत और आधुनिक सभ्यता के असर से वे भी गुटबंदी के शिकार हुए। ग्राम-पंचायत की आड़ में कोआपरेटिव यूनियन की ओर उनका थोड़ा झुकाव तो था ही, खन्ना-मालवीय जैसे मास्टरों के दुख-दर्द से प्रेरित होकर छंगामल इण्टरकालेज की प्रबंध समिति में भी उन्होंने प्रवेश पा लिया था। कुछ हो-न-हो कोआपरेटिव इंस्पेक्टर और डिप्टी डाइरेक्टर एजूकेशन के माध्यम से वे वैद्यजी की निद्रा में किंचित खलल डालने में भी सफल हो गए थे। बावजूद इसके उपन्यास में वे एक निष्क्रिय, गुटबाज के रूप में ही आते हैं। उनकी सक्रियता का क्षेत्र अफीम विक्रय, जुआरियों के साथ लेन-देन, और गाँव पंचायत की जमीन के पट्टे तक ही सीमित रहती है।

16.3.5 सनीचर

'राग दरबारी' उपन्यास का एक महत्वपूर्ण पात्र सनीचर है, जिसका मुख्य काम वैद्यजी की बैठक में सुबह-शाम भंग घोटना था। उपन्यासकार ने आरम्भ में ही उसका परिचय इस प्रकार दिया है - "एक दुबला-पतला आदमी गन्दी बनियायन और धारीदार अण्डर वियर पहने बैठा

था।... उसका नाम मंगल था, पर लोग उसे सनीचर कहते थे। उसके बाल पकने लगे थे और आगे के दाँत गिर गए थे। उसका पेशा वैद्यजी की बैठक पर बैठे रहना था।'' इसके साथ ही सनीचर पृथ्वी पर वैद्यजी को एकमात्र आदमी और स्वर्ग में हनुमान जी को एक मात्र देवता मानता था। वैद्यजी का अत्यधिक कृपा-पात्र होने के कारण वह छोटे-मोटे लोगों के मामलों में दखल भी दे देता था।

रामाधीन भीखम खेड़वी ने जिस तरह अपने चचरे भाई को गाँव का प्रधान बनाकर उल्लू सीधा किया, उससे वैद्यजी परिचित थे। अत: सनीचर को गाँव-सभा का प्रधान बनाने का उन्होंने निश्चय कर लिया। वैद्यजी के दरबार के अनुभवों का लाभ उठाकर सनीचर भी बड़े उत्साह से प्रधानी के स्वप्न को साकार करने में लग जाता है। अपने चुनाव से एक महीना पहले ही गाँव के प्रसिद्ध ग्राण्टखोर कालिका प्रसाद को शहर ले जाता है। वहाँ ए.डी.ओ. (कृषि विकास अधिकारी) से मिलकर सहकारी खेती की स्कीम की स्वीकृति ले आता है। वह इसका खुलासा वैद्यजी के सामने इस प्रकार करता है – ''गुरु जी हुआ यह है कि अब इस गाँव में एक कोआपेरिटिव फारम खुलेगा।... पच्छिम की तरफ वाले ऊसर पर फारम लहकेगा। ऊसर होने से कोई हरज नहीं। कागज-पत्तर वाला काम बालक वाले सँभालेंगे। कागज-पत्तर के मामले में वे तहसील-थाने वालों के भी बाप हैं। कहो तो आसमान में कोआपरेटिव बना दें। यहाँ तो धरती की बात है।'' सनीचर की इस कारस्तानी से वैद्यजी बाग-बाग हो जाते हैं।

चुनाव अधिकारी के लिए एक सस्ती घड़ी का इंतजाम कर वैद्यजी ने महिपालपुर वाली पद्धति से सनीचर को ठेलठाल कर प्रधान के पद पर आसीन कर दिया। तमंचे के बल पर वैद्यजी के सर्वसम्मत मैनेजर चुने जाने के नाटकीय प्रभाव को झेलने के बाद सनीचर की विजय पर आहत रंगनाथ की मनोदशा का चित्रण करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है, ''सनीचर की विजय के दिन उसने बहुत कुछ सोच डाला और उस दौरान उसे प्रदेश की राजधानियों में न जाने कितने वैद्यजी और मंत्रियों और मुख्यमंत्रियों की कतार में न जाने कितने सनीचर घुसे हुए दीख पड़े।'' भारतीय प्रजातंत्र के रूप में साक्षात् सनीचर की उपस्थिति द्वारा उपन्यासकार ने भारत की लोकतंत्रीय चुनाव व्यवस्था पर गहरा कटाक्ष किया है। अपने इस रूप में सनीचर एक प्रतिनिधि पात्र बन गया है, जो एक विशेष सामाजिक-राजनीतिक प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करता है। अत: इसे रचनाकार के उद्देश्य से सीधे जुड़ा हुआ पात्र कह सकते हैं। सारे देश में ग्राम-प्रधान के रूप में सनीचरों का एक लम्बा-चौड़ा जाल बिछा हुआ है, जो चुनावी दृष्टि से भारतीय प्रजातंत्र की नींव को डावाँडोल किए हुए हैं।

16.3.6 लंगड़

लंगड़ 'राग दरबारी' का एकमात्र ऐसा पात्र है, जिसे रचनाकार के साथ ही समूचे पाठक समुदाय की पूरी सहानुभूति प्राप्त हुई है। उपन्यास के आरंभ में लंगड़ का रेखा-चित्र इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है, ''माथे पर कबीर पंथी तिलक, गले में तुलसी की कण्ठी, आँधी पत्ती झेला हुआ दढ़ियल चेहरा, दुबली-पतली देह, मिर्जई पहने हुए। एक पैर घुटने के पास से कटा था, जिसकी कमी एक लाठी से पूरी की गई थी। चेहरे पर पुराने जमाने के उन ईसाई संतो का भाव, जो रोज अपने हाथ से अपनी पीठ पर खींचकर सौ कोड़े मारते हों।'

लंगड़ को दीवानी मुकदमे के सिलसिले में एक पुराने मुकदमे की नकल लेनी थी। इसके लिए नकलनबीस ने पाँच रुपये माँगे तो लंगड़ ने कहा कि रेट दो रुपए है। इस पर दोनों में हुज्जत हो गयी। नकल नबीस ने प्रतिज्ञा कर लिया कि बिना रिश्वत के वह नकल कायदे से देगा और लंगड़ ने भी कण्ठी छूकर प्रतिज्ञा की कि वह भी कायदे से ही नकल लेगा। अपने 'सत्र' की लड़ाई,' 'धरम' की लड़ाई वह जारी रखता है। अपने गाँव से पाँच मील दूर शिवपालगंज की कचहरी का वह चक्कर लगाता रहता है। पर किसी न किसी गलती को निकालकर नकल की कार्रवाई अधूरी पड़ी रहती है। उसे पूरा विश्वास है कि नकल एक न एक दिन अवश्य मिलेगी। लेकिन अंत में जब नकल ले नहीं पाता तो बड़ी वेदना से कहता है कि ''नकल की दरख्वास्त फिर से न लगा दूं?'' यहाँ उसकी यातना का चरम बिन्दु साकार हुआ है।

वस्तुत: 'राग दरबारी' के लंगड़ की स्थिति 'मैला आँचल' के वामनदास का स्मरण दिलाती है। एक छोटे से गांधीवादी आदर्श के लिए पूरा संघर्ष करते हुए वामनदास आत्मबलिदान कर देता है। लंगड़ रिश्वत न देने के आदर्श की रक्षा के लिए अपने को न्यौछावर कर देता है। कथाकार लंगड़ को एक भयानक पोस्टर के रूप में कचहरी में लटका देता है, जो हजार-हजार जिह्वाओं से वहाँ की काली करतूतों की कहानियाँ घोषित करता है। वह इस तथ्य को भी रेखांकित करता है कि देश का आम नागरिक 'लंगड़' बनकर न्यायालयों की दिन-प्रतिदिन बढ़ती लूट-खसोट से त्राहि-त्राहि कर रहा है। इस प्रकार सनीचर के माध्यम से जहाँ उपन्यासकार ने भारतीय चुनाव व्यवस्था की विकृतियों का यथार्थ उद्‌घाटित किया है, वहीं लंगड़ के माध्यम से भारतीय न्याय-व्यवस्था के यथार्थ का नंगा नाच प्रस्तुत किया है। दोनों ही एक दूसरे से भिन्न समुदाय के प्रतिनिधि के रूप में हमारे सामने आते हैं।

16.3.7 प्रिंसिपल साहब और खन्ना मास्टर

श्री लाल शुक्ल ने 'राग दरबारी' के लिए शिक्षा-संस्था के रूप में छंगामल इण्टर कालेज को प्रमुख केन्द्र के रूप में प्रस्तुत किया है। इसमें आए प्रिंसिपल साहब और खन्ना मास्टर स्वातंत्र्योत्तर शिक्षा व्यवस्था के यथार्थ को पूरी तरह उद्‌घाटित करते हैं। लेकिन शिक्षा व्यवस्था का पूरा वृत्त कालेज मैनेजर वैद्यजी को मिलाकर ही पूरा होता है। प्रिंसिपल साहब वैद्यजी की बैठक में नित्य उपस्थित होकर माँग मानते हैं, उनकी चापलूसी करते हैं और खन्ना तथा उसके गुट के मास्टरों की शिकायत करते हैं। उनकी सबसे बड़ी योग्यता कालेज में गुटबंदी, मारपीट, गाली-गलौज, गुण्डई, नोटिस बरख्वास्तगी, आतंक, नंगई आदि की समुचित व्यवस्था है। उन्होंने अध्यापकों पर 107 का मुकदमा कर उन्हें चोर-डाकुओं की कतार में खड़ा कर दिया है। वैद्यजी ने प्रिंसिपलं को हर तरह के काम के लिए पूरी छूट दे रखी है। साथ ही बद्री और छोटे पहलवान उनके लिए सुरक्षा कवच का काम करते हैं।

खन्ना मास्टर आम अध्यापक समुदाय के प्रतिनिधि हैं, जिन्हें प्रिंसिपल की ज्यादतियाँ स्वीकार नहीं हैं। अपने सक्रिय विरोध के कारण विद्यार्थियों की ओर भी वे समुचित ध्यान नहीं दे पाते। वे किसी तरह वैद्यजी के पुत्र छात्र नेता रुप्पन और रंगनाथ की सहानुभूति जुटा लेते हैं। इसी के सहारे प्रिंसिपल और उनके गुट के विरुद्ध मोर्चाबन्दी करते हैं। लेकिन वैद्यजी जैसे घाघ के सामने उनकी चलती नहीं। डिप्टी डाइरेक्टर, एजूकेशन की जाँच के बहाने बैठक रखकर वे गहरे षड्‌यंत्र द्वारा खन्ना और भालवीय को बद्री और छोटे पहलवान के कल्ले के जोर पर पहले से तैयार त्यागपत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए विवश कर देते हैं।

प्रिंसिपल और खन्ना के विवाद के माध्यम से उपन्यासकार ने स्वातंत्र्योत्तर शिक्षा- व्यवस्था के कुत्सित यथार्थ का उद्‌घाटन सफलतापूर्वक किया है। अध्यापकों की नियुक्ति प्रिंसिपल और मैनेजर के रिश्तेदारों में से की जाती है। दूने वेतन पर अध्यापकों से हस्ताक्षर कराकर आधा वेतन दिया जाता है। जो ज्यादा ही सिर उठाते हैं, उन्हें खन्ना, त्रिपाठी, मालवीय आदि की तरह शिक्षा संस्थाओं से बाहर कर दिया जाता है। विद्यार्थी पढ़ाई-लिखाई छोड़कर अध्यापकों की गुटबंदी के शिकार बनते हैं। विद्यालयों को मिलने वाले सरकारी अनुदान शिक्षा-कार्य में न लगकर प्रिंसिपल और मैनेजर की जेब गरम करते हैं। ये सारे तथ्य प्रिंसिपल और खन्ना के विवाद में 'राग दरबारी' में बड़ी ही कुशलता से प्रस्तुत किए गए हैं। इनके चरित्र के माध्यम से शिक्षा-व्यवस्था का प्रामाणिक यथार्थ पाठक के सामने आता है।

16.4 चरित्रों की प्रतिनिधिकता और अन्य चरित्र

ऊपर विशिष्ट पात्रों के चरित्र-चित्रण के माध्यम से आपने देख लिया है कि 'राग दरबारी' के अधिकांश चरित्र अपनी निजी विशेषताओं की अपेक्षा एक समुदाय विशेष के प्रतिनिधि के रूप में आए हैं। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य पात्र भी उपन्यास में चित्रित हुए हैं, जो अपनी वर्गीय विशेषताओं को ही उद्‌घाटित करते हैं। इनमें जोगनाथ, गयादीन, पं राधेलाल, कालिका प्रसाद

के साथ ही शत्रुघ्न सिंह, रिपुदमन और उनके भाई सर्वदमन सिंह, ठा बलराम सिंह के नाम उल्लेखनीय हैं।

जोगनाथ का सर्वप्रथम परिचय उपन्यास में शराब के नशे में धुत्त सर्फरी बोलने वाले के रूप में होती है। जब रात में फर्जी गश्त पर लगे थानेदार और सिपाहियों को आवाज देता है कि "कर्फोन है सर्फाला" (कौन है साला), थानेदार द्वारा गोली चलाने की धमकी दी जाती है तो उसका उत्तर है, "मर्फर गर्फए सर्फाले, गर्फोली चर्फ़लाने वाले (मर गए साले गोली चलाने वाले)। वैसे वह गाँव में दीवारों पर इश्तिहार रंगने का काम करता है, लेकिन उसकी प्रसिद्धि एक जुआरी, शराबी और गाने हुए चोर के रूप में है। शाम को अँधेरा होते ही वह शिवपालगंज के बाहर दो-चार साथियों को मिलाकर राहजनी करता है और ठेके पर जमकर शराब पीता है। गयादीन के घर में चोरी के समय वह रंगे हाथों पकड़ा नहीं जाता, अत: फर्जी मुठभेड़ में थानेदार द्वारा कैदी बनाया जाता है इसमें छोटे पहलवान पुलिस का मुखबिर बनकर बड़े छल के साथ जोगनाथ का पक्ष लेता है और उसे बरी करा देता है। उसे वैद्यजी का आदमी माना जाता है। उपन्यास में वह गाँव के असामाजिक तत्वों के प्रतिनिधि के रूप में आया है।

गयादीन जाति के बनिया थे, जिनका पेशा सूद खोरी था। उनकी दुकान पर ऋण के रूप में रुपयों की लेन-देन के साथ कपड़े की भी बिक्री भी होती थी। कोआपरेटिव यूनियन भी सूद पर रुपये देती थी और कपड़े की दुकान करती थी। वैद्यजी के साथ अच्छे सम्बन्ध के कारण गयादीन और कोआपरेटिव में शान्तिपूर्ण सह अस्तित्व था। और कालेज कमेटी प्रबंध समिति के भी वे उपाध्यक्ष थे। पैसे और इज्जत के कारण थाना-पुलिस, स्थानीय एम.एल.ए और जिला बोर्ड के टैक्स कलेक्टर की उन पर कृपा थी। आचार-विचार में वे इतने सात्विक थे कि उड़द की दाल तक नहीं खाते थे - कारण उससे क्रोध आने की आशंका थी। उनकी सबसे बड़ी कमजोरी उनकी स्वस्थ, सुन्दर और गृहकार्य में निपुण बेटी बेला थी। उस पर रुप्पन और बद्री दोनों भाइयों की नजरें थी। रुन्ना और उनके गुट के अध्यापकों के बहकावे में न आकर वे गुटबंदी में शामिल नहीं हुए। अपनी बेटी को लेकर हो रही बदनामी से आज़िज आकर वे उसका विवाह शहर में करने के बाद गाँव छोड़कर शहर में बसने चले गए। उन्हें उपन्यासकार ने निरामिष सूदखोर महाजनों के प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत किया है।

पंडित राधेलाल 'कभी न उखड़ने वाले' गवाह के रूप में गाँव में प्रसिद्ध थे। उन पर टिप्पणी करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है, "जिस तरह कोई भी जज अपने सामने के किसी भी मुकदमें में फैसला दे सकता है, कोई भी वकील किसी भी मुकदमें की वकालत कर सकता है, वैसे ही पं राधेलाल किसी भी मामले में चश्मदीद गवाह बन सकते थे।" लेकिन गाँव के लोगों की छींटाकशी, तानों आदि को देखते हुए ऐसा लगता है कि उनके बारे में अधिकतर लोगों की राय अच्छी नहीं थी। स्वयं लेखक द्वारा प्रस्तुत उनके रेखाचित्र से भी यही लगता है, "एक पुरोहितनुमा बुढ्डा, पिचके गाल। खिचड़ी दाढ़ी। बिना बटन का कुरता। सिर पर अस्त व्यस्त गांधी टोपी... माथे पर लाल चंदन का टीका। गले में रुद्राक्ष की माला।" लेकिन बावजूद इसके पं राधेलाल जब किसी पूर्वी जिले में जाकर एक चौकीदार की ब्याहता को पुनर्विवाह कर घसीट लाए तो गँजहों के बीच 'कभी न उखड़ने वाले गवाह' के साथ ही 'कभी न चूकने वाले मर्द' के रूप में भी विख्यात हो गए। इससे स्पष्ट है कि उपन्यास में पं. राधेलाल गाँव-समाज के एक झूठे गवाह, मक्कारी, फरेब को ही अपना व्यवसाय बनाने वाले टिपिकल चरित्र के रूप में प्रस्तुत हुए हैं। इन्होंने पूरे इलाके में अपनी शिष्य परंपरा कायम कर दी है, जिसका प्रमाण वैद्यनाथ है, जो जोगनाथ की सजा वाले मामले पुलिस का मुखबिर बन कर उपस्थित होता है।

कालिका प्रसाद - 'सरकारी पैसे के द्वारा सरकारी पैसे के लिए जीने वाले' व्यक्ति थे। ग्रांटखोर के रूप में इनकी ख्याति बेमिसाल थी। इस पेशे में उनके तीन सहायक थे - स्थानीय एम.एल.ए., खद्दर की पोशाक और कर्ज की वसूली के समय कार्रवाई रोकने की कार्रवाई का

कौशल। मुर्गी-पालन, चमड़ा कमाने, खांद के गड्ढों को पक्का कराने, बिना धुँए का चुल्हा लगवाने, नये ढंग का संडास बनवाने के लिए मिलने वाले सभी अनुदानों को हजमकर सबकी कारगुजारी की समुचित रिपोर्ट इन्होंने भेज दी थी। इनके पाँच बीघे खेत अकेले पचासों तरह के कर्जे और तकाबियों की जमानत संभाले हुए थे। अनुदान या कर्ज देने वाली किसी नयी स्कीम के विषय में योजना आयोग के सोचने भर की देर थी कि उन्हें सारी सूचना मिल जाती थी। इसके लिए वे पहले से ही अर्जी तैयार रखते थे। इन्हीं कालिका प्रसाद को सनीचर प्रधान बनने से एक महीना पहले ही अपना सहायक बनाता है। केवल सहायक ही नहीं बनाता, वरन् ए.डी.ओ. से मिलकर सहकारी खेती की स्कीम का सौदा पक्का कर आता है, जिसका उल्लेख सनीचर के चरित्र-चित्रण के संदर्भ में पहले ही किया जा चुका है। सनीचर जिस विस्तार से कालिका प्रसाद के कारनामों का वर्णन वैद्यजी के सामने करता है। उससे योजना आयोग की बहुमुखी विकास योजनाओं की असलियत का भण्डाफोड़ पूरी तरह हो जाता है। सब मिलाकर देखें तो पं. कालिका प्रसाद को उपन्यासकार ने ग्रांट खोरों ही नहीं ऋण-चोरों के प्रतिनिधि के रूप में भी प्रस्तुत किया है।

शत्रुघ्न सिंह, रिपुदमन सिंह और उनके भाई सर्वदमन सिंह का उल्लेख रामनगर चुनाव-पद्धति के संदर्भ में किसी ग्राम पंचायत के चुनाव की विशेषता दिखाने के लिए हुआ है। इनमें वकालत की उपाधि धारण कर गाँव की राजनीति में आए सर्वदमन की जीविका का उल्लेख करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है, "उनके पास दस गैस बत्तियाँ थी। जो शादियों के मौसम में किराए पर चलती थी। साथ ही उनके पास दो बंदूकें थी, जो इकैतियों के मौसम में किराए पर चलती थी। कुल मिलाकर सर्वदमन को इतना मिल जाता था कि इत्मीनान से ग्रामीण राजनीति का संचालन कर सकें।" ठा. बलराम सिंह उपन्यास के कथा-पटल पर केवल एक बार कॉलेज के चैयरमैन के चुनाव पर उपस्थित होते हैं। उनके आगमन पर टिप्पणी करते हुए एक लड़का कहता है, "अब कोई वैद्यजी का बाल भी बाँका नहीं कर सकता। ठाकुर बलराम सिंह आ गए।" उनके दबदबे में आकर विरोधी सदस्य वापस चले जाते हैं और वैद्यजी का चेयरमैन के पद पर सर्वसम्मत चुनाव हो जाता है। उपर्युक्त पात्रों के माध्यम से उपन्यासकार ने इस तथ्य को उजागर किया है कि अब गाँव पूरी तरह गुण्डों और बदमाशों की गिरफ्त में आ चुका है और किसी भी क्षेत्र के विकास में आम किसान जनता की कोई भागीदारी नहीं रह गयी है।

16.5 'राग दरबारी' का चरित्र-विधान : रचनाकार की मूल्य-दृष्टि

'राग दरबारी' के चरित्र चित्रण और चरित्रों की प्रातिनिधिकता पर विचार करते हुए हमने उनकी योजना के पीछे निहित उद्देश्य पर भी विचार किया है। अब हम चरित्र-विधान में निहित रचनाकार की मूल्य-दृष्टि पर विचार करेंगे। वैसे तो मूल्य दृष्टि उद्देश्य के साथ ही जुड़ी होती है लेकिन हम उद्देश्य को ही प्रत्यक्ष रूप से मूल्य-दृष्टि की संज्ञा नहीं दे सकते। 'राग दरबारी' में रचनाकार की मूल्य-दृष्टि का संधान करते हुए जो सबसे बड़ी बाधा उत्पन्न होती है वह है नायक का अभाव। हमें 'गोदान' और 'रंग भूमि' में प्रेमचंद की मूल्य-दृष्टि का संधान करने में कोई दिक्कत नहीं होती, क्योंकि उसे वे नायक होरी और सूरदास के आदर्शों के साथ जोड़कर प्रस्तुत करते हैं। 'राग दरबारी' में केवल नायक का अभाव ही नहीं, वरन् वैद्यजी जैसे खलनायक की भूमिका को विस्तार दिया गया है। इसके साथ ही अन्य अधिकांश पात्र भी दुष्ट चरित्र के रूप में हमारे सामने आते हैं। इसके लिए हम यह कहकर छुट्टी नहीं ले सकते कि श्रीलाल शुक्ल एक सामाजिक-राजनीतिक व्यंग्यकार हैं। अत: अपने चरित्र-विधान के लिए उन्हें इस प्रकार की नीति अपनानी पड़ी। इस सम्बन्ध में रैल्फ फाक्स ने एक महत्वपूर्ण तथ्य की ओर संकेत करते हुए लिखा है, "उपन्यासकार निश्चय ही सामाजिक व्यंग्य को अपनी कथा-वस्तु बना सकता है। सच तो यह है कि इसने विश्व के अनेक महानतम उपन्यासों को जन्म दिया है, किन्तु व्यंग्यकार भी - बल्कि इस मामले में तो व्यंग्यकार का नाम सबसे पहले लेना चाहिए - मानव चरित्र को अपनी कृति का केन्द्र बनाने की जिम्मेदारी से मुक्त नहीं है।" (उपन्यास और लोक जीवन, पृ 79)

उपर्युक्त तथ्यों और मान्यताओं के आधार पर 'राग दरबारी' के चरित्र-विधान में लेखकीय मूल्य-दृष्टि का संधान किस प्रकार करें? इसके लिए हमें उपन्यासकार के उद्देश्य का ही सहारा लेना पड़ेगा। उसने स्वातंत्र्योत्तर न्याय-व्यवस्था, शिक्षा-व्यवस्था, अर्थव्यवस्था, प्रजातांत्रिक व्यवस्था, जन कल्याण-व्यवस्था आदि की जन विकृतियों के उद्घाटन के उद्देश्य से प्रेरित होकर उपन्यास की रचना की है, उसमें इसी प्रकार के चरित्रों की गुंजाइश रही है। अत: पाठक समुदाय पर एक बड़ी जिम्मेदारी लेखक की ओर से डाल दी गयी है। उसे स्वयं खलनायक वैद्यजी के स्थान पर नायक की भूमिका या दुष्ट पात्रों के स्थान पर सदूपात्र की भूमिका में आना पड़ेगा। यदि पूरा उपन्यास पढ़ने से हमें ऐसा नहीं लगता कि लेखक प्रजातंत्र का विरोधी है, समता, न्याय और भाई चारे की याचना का विरोधी है, लोकहित का विरोधी है, तो निश्चित रूप से मानना पड़ेगा उसकी चेतना जनतांत्रिक है। उपर्युक्त मूल्यों से उसका जुड़ाव है और जीवन में उनकी प्रतिष्ठा को अपना आग्रह-अनुरोध बना चुका है। यही नहीं, वरन् वैद्यजी से लेकर तमाम दुर्जन पात्रों के अन्तर्बाह्य चरित्र को उद्घाटित कर उसने उनके नैतिक पतन को रेखांकित किया है। व्यंग्यकार की इस भूमिका को उद्घाटित करने के लिए जोनाथन स्विफ्ट की रचना धर्मिता पर विचार करते हुए ए.लूनाचार्स्की ने लिखा है कि व्यंग्यकार शत्रु के नैतिक अध:पतन को दिखाकर हमें उससे श्रेष्ठ सिद्ध करता है। शत्रु को उपहासास्पद बनाकर उस पर हमारी नैतिक विजय की घोषणा करता है। व्यंग्य की विजय नैतिक होती है- वास्तविक नहीं। व्यंग्य के सामाजिक उद्देश्य पर विचार करते हुए इकाई-14 में विस्तार से आप को इस तथ्य से अवगत कराया गया है।

व्यंग्य की उपर्युक्त भूमिका को ध्यान में रखकर देखें तो नैतिकता, इन्सानियत, सदाचार, समता, न्याय, भाई-चारे की भावना पर आधारित मूल्यों से श्रीलाल शुक्ल की सहमति दिखायी देती है। 'राग दरबारी' के चरित्र-विधान में भी उनकी यही मूल्य-दृष्टि परोक्ष रूप से व्यक्त हुई है। वर्तमान सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था में संवैधानिक दायरे में रहकर ही वे अपनी मूल्य-दृष्टि को व्यवस्थित करते हैं। उनमें पूँजीवादी सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था के अतिक्रमण की वह मूल्य-दृष्टि नहीं है, जो हमें नागार्जुन, हरिशंकर परसाई आदि में मिलती है। ये व्यंग्यकार सुधार के स्थान पर आमूल सामाजिक परिवर्तन की अनिवार्यता को भी रेखांकित करते हैं। अत: यहाँ केवल मूल्य-दृष्टि का ही नहीं विश्व-दृष्टि का भी प्रश्न उपस्थित हो जाता है। मूल्य-दृष्टि इसी विश्व-दृष्टि से संचालित और नियन्त्रित होती है। इस आधारभूत तथ्य के प्रकाश में देखें तो श्रीलाल शुक्ल और नागार्जुन या हरिशंकर परसाई की विश्व-दृष्टि में बुनियादी अंतर दिखायी देता है। यह अंतर प्रगतिशील-परिवर्तन की भी प्रखर चेतना के अभाव से श्रीलाल शुक्ल में आया है। अत: मूल्य-दृष्टि के लिए चरित्र-विधान में पात्रों के साथ सलूक की बात प्रमुख हो जाती है। कभी-कभी वे उनकी विकृतियों के चित्रण में आत्मघाती आनन्द लेने लगते हैं। यह तथ्य चरित्र-विधान के साथ ही उनके अन्य व्यंग्यात्मक चित्रों में भी मिलता है। इसे उनकी सीमा के रूप में देखा जा सकता है।

16.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई में हमने 'राग दरबारी' की पात्रगत विशेषताओं पर प्रकाश डाला है। इस प्रक्रिया में सर्वप्रथम राग दरबारी का एक सामान्य चरित्रोपाख्यान के रूप में निरीक्षण-परीक्षण किया गया है। इसमें आप देखें तो बहुत सारे पात्रों की कथाएँ-उपकथाएँ मिलकर उपन्यास के बृहद कलेवर का निर्माण करती है।

इस इकाई का दूसरा महत्वपूर्ण बिन्दु है, 'राग दरबारी' के विशिष्ट पात्रों का चरित्र- चित्रण। इसके अन्तर्गत मुख्य पात्रों के चरित्र की अन्तर्बाह्य विशेषताओं पर विचार करते हुए उनकी योजना में लेखक के उद्देश्य को भी स्पष्ट करने का प्रयत्न हमने किया है।

इकाई का तीसरा पहलू है, पात्रों की प्रातिनिधिकता का विवेचन-विश्लेषण। इसके साथ ही कुछ गौण पात्रों के चरित्र पर भी इसी के अन्तर्गत विचार गया है। इस प्रक्रिया में विशेष रूप से यह

दिखाने का प्रयास किया गया है कि 'राग दरबारी' के अधिकांश पात्र अपनी निजी विशेषताओं की अपेक्षा एक सामाजिक-राजनीतिक प्रवृत्ति के प्रतिनिधि बनकर आए हैं।

इकाई का चौथा बिन्दु 'राग दरबारी' के चरित्र विधान में उपन्यासकार की मूल्य-दृष्टि का संधान है। विभिन्न पात्रों की योजना के पीछे निहित लेखकीय मूल्य-दृष्टि का उद्‌घाटन करते हुए इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि इस कार्य में उसे किस सीमा तक सफलता मिल सकी है। व्यंग्य शैली के अत्यधिक आग्रह के कारण लेखक कहीं चुहलबाजी या चमत्कार-प्रदर्शन का शिकार तो नहीं हुआ है। इस दृष्टि से हमने उसकी क्षमताओं सीमाओं को भी रेखांकित करने का प्रयास किया है।

16.7 अभ्यास प्रश्न

1. 'राग दरबारी एक सामान्य चरित्रोपाख्यान है' - इस कथन की सार्थकता पर प्रकाश डालिए।
2. 'राग दरबारी' के वैद्यजी का चरित्र-चित्रण करते हुए बताइए कि उनके माध्यम से लेखक ने अपने किस उद्देश्य की पूर्ति की है।
3. सनीचर की चरित्रिक विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए बताइए कि लेखक ने उसे किस समुदाय का प्रतिनिधि-बनाकर प्रस्तुत किया है।
4. लंगड़ के माध्यम से श्रीलाल शुक्ल ने भारतीय न्याय-व्यवस्था पर एक करारी चोट की है।' इस कथन को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
5. 'राग दरबारी' के अधिकांश पात्र अपनी निजी विशेषताओं की अपेक्षा किसी समुदाय गत विशेषताओं का अधिक प्रतिनिधित्व करते दिखाई देते हैं। इस कथन की सार्थकता पर सोदाहरण विचार कीजिए।
6. 'राग दरबारी' के चरित्र-विधान में लेखक ने अपनी किस मूल्य-दृष्टि का परिचय दिया है? सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें

1. व्यंग्य के मूलभूत प्रश्न : ले. शेरजंग गर्ग, सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली-2
2. व्यंग्य का सौन्दर्यशास्त्र : ले. मलय; साहित्यवाणी, इलाहाबाद-6
3. सृजनशीलता का संकट : ले. नित्यानन्द तिवारी ; राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली
4. तद्‌भव विशेषांक (अंक - 1) : अखिलेश

परिशिष्ट : श्रीलाल शुक्ल और 'राग दरबारी'

जीवन परिचय

सहज किस्सागो और मनोविनोदी प्रवृत्ति के व्यक्ति के रूप में श्रीलाल शुक्ल की पहचान लोगों की स्मृति में अंकित है। इसे उन्होंने अपने अनगढ़ जीवनानुभव से पोषित किया। शुक्ल जी का जन्म 1925 ई. में लखनऊ के पास एक गाँव में हुआ था। उनकी प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा भी वहीं हुई थी। एक साक्षात्कार में उन्होंने अपने गाँव के विषय में लिखा है "इसके दो पक्ष हैं। जमींदारी वाले दिनों की व्यवस्था में जकड़ा हुआ गाँव जिसमें अलग-अलग जातियों की अपनी-अपनी परम्पराएँ अपने तौर तरीके थे। किसी भी तरह की वर्ग चेतना नहीं थी। हर आदमी की अपनी हैसियत मुकर्रर थी। गंदी गलियाँ, बच्चे, रास्ते आदि थे, एक ओर एक भी पक्का मकान नहीं था। दूसरा पक्ष परिवेश और प्रकृति का था। गाँव के तीन ओर खेत थे और विस्तीर्ण जंगल थे। चौथी ओर लखनऊ जानेवाली सड़क थी और घनी अमराइयों का सिलसिला था। आज जब उस गाँव के बारे में सोचता हूँ तो वह एक ओर कई अद्‌भुत व्यक्तियों और दूसरी तरफ अपनी प्राकृतिक मोहकता के कारण याद आता है।'' श्रीलाल शुक्ल के इन वाक्यों में अपने ग्राम और अंचल के प्रति उनका प्रेम दिखाई देता है। अपनी मिट्‌टी के लिए यह सम्मान उनमें आज भी बना हुआ है। वे अपने गाँव और रिश्तेदार से मिलने के लिए वहाँ अभी भी जाते रहते हैं। श्रीलाल शुक्ल की पारिवारिक पृष्ठभूमि निम्न मध्यवर्गीय थी। उनके दादा एक अध्यापक थे। वे उर्दू फारसी और संस्कृत के अच्छे जानकार थे। उनके पिता ने स्कूली शिक्षा प्राप्त नहीं की थी परंतु हिन्दी, उर्दू और संस्कृत की सामान्य जानकारी उन्हें थी। शुक्लजी ने पढ़ाई लिखाई का संस्कार विरासत में पाया था। अपनी स्कूली शिक्षा को समाप्त कर वे उच्चतर शिक्षा प्राप्त करने इलाहाबाद गए। वहाँ से उन्होंने बी.ए. की परीक्षा पास की। इसी समय उन्हें वहाँ की साहित्यिक संगोष्ठी 'परिमल' में जानें का अवसर प्राप्त हुआ। विजय देव नारायण साही, धर्मवीर भारती, केशव चंद्र वर्मा और सर्वेश्वर आदि का उन्हें सान्निध्य प्राप्त हुआ। शुक्लजी एम.ए. और कानून की पढ़ाई करना चाहते थे, परंतु आर्थिक विपन्नता के कारण उनके लिए यह संभव नहीं हुआ। जीविकोपार्जन के लिए उन्होंने नौकरी की तलाश की। वे उत्तर प्रदेश प्रशासनिक सेवा की प्रतियोगिता परीक्षा पास कर डिप्टी कलेक्टर नियुक्त हुए। सन् 1983 ई. में इस नौकरी से सेवा मुक्त होकर, अभी वे लखनऊ में साहित्य सृजन कर रहे हैं।

सरकारी सेवा के दौरान उत्तर प्रदेश के कई शहरों में उन्हें कई प्रकार के खट्‌टे मीठे अनुभव हुए। अधिकारी होने के कारण उनके जनसंपर्क का दायरा बड़ा रहा होगा। इसलिए समाज के अनेक प्रकार के पात्रों से भी उनका परिचय हुआ होगा। मुख्यमंत्री, विधायक, पुलिस, जज, वकील, छात्र, शिक्षक और दलाल आदि अनेक प्रकार के समूह को उन्हें गहराई में अनुभव करने का अवसर मिला। उन्होंने 'राग दरबारी' तथा अन्य कई उपन्यासों में इस प्रकार के लोगों की यथार्थ रूप में रचना की है। इसके पीछे उनके स्वानुभूत अनुभव की सच्चाई छिपी हुई है। उनके जीवन के संबंध में सबसे विचारणीय बात यह है कि वे प्रशासनिक व्यस्तता के बीच न केवल साहित्य रचते रहे अपितु प्रशासनिक अधिकारी से अपने सर्जक व्यक्तित्व को दूर भी रखा। शीला सिंधु के शब्दों में "श्री लालजी का लेखक और अफसर एक मकान की दो मंजिलों में रहने वाले अलग-अलग व्यक्तियों की तरह हैं। शायद ही कभी उन्होंने लेखक की चर्चा करते हुए यह आभास दिया हो कि वे कुछ अलग, कुछ विशिष्ट, कुछ निराले किस्म के इंसान हैं। इसलिए उनमें अपने लेखन के प्रति निर्मम रूप से तटस्थ हो जाने की क्षमता है। वे स्थितियों, व्यक्तियों यहाँ तक कि खुद अपने आपको भी एक बाहरी व्यक्ति की तरह अलग खंड हो कर देख सकते हैं। अपने लेखन का मूल्यांकन कर सकते हैं।'' इस प्रकार तटस्थ और निर्मम होकर अपना मूल्यांकन करना किसी भी रचनाकार के लिए बौद्धिक चुनौती और गौरव का विषय हो सकता है।

साहित्यिक योगदान

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य के उपन्यास और व्यंग्य लेखन में श्रीलाल शुक्ल का महत्वपूर्ण योगदान है। उन्होंने उपन्यास को सामान्य पाठक के लिए पठनीय और रोचक बनाया। यह उनके लेखन की मौलिक विशेषता है और लोकप्रियता का महत्वपूर्ण आधार भी। लोकप्रियता के आवेश में कहीं भी वे उपन्यास को सतही और बाजारू नहीं बनाते हैं। इसमें समाज की नई वास्तविकता को पहचानने की क्षमता है। 'सूनी घाटी का सूरज' (1957) और 'अज्ञातवास' उनके प्रारंभिक उपन्यास हैं। 'सूनी घाटी का सूरज' में गाँव के एक गरीब और साधनहीन बच्चे रामदास की आत्मकथा को चित्रित किया गया है। रामदास का जीवन वहाँ से शुरू होता है जहाँ अभाव, निर्धनता और गरीबी के सिवा कुछ भी नहीं है। फिर पढ़ना लिखना और सम्मान से जीने का सवाल ही नहीं उठता है। परंतु रामदास ने अपनी जिजीविषा के बल पर इस चुनौती को स्वीकार किया। उसने पढ़ाई-लिखाई के द्वारा अपने सपने को साकार करना चाहा, परंतु सिफारिश नहीं होने के कारण वह लगातार झटका खाता रहा। वास्तव में इस उपन्यास में नेहरू युग के आदर्श की छाया में एक नौजवान की वास्तविक स्थिति का पता मिलता है। यह युग की विषमता पर पाठक को सोचने पर विवश करता है। इस उपन्यास में विद्यार्थियों की प्रतिभा का शोषण, अयोग्य व्यक्ति का योग्य पद पर नियुक्ति होना, सामंती शोषण आदि कई सवाल को लेकर लेखक ने बड़े ही सार्थक ढंग से उठाया है। 'सूनी घाटी का सूरज' में शोषण का आधार सामंती है, परंतु 'अज्ञातवास' उपन्यास में नौकरशाही शोषण को सामने रखा गया है। इस प्रकार सत्ता के बदलते चेहरे के साथ शोषण का स्वरूप भी बदला। उपन्यास में लेखक ने गहराई से इसका मूल्यांकन करने का प्रयत्न किया है। 'अज्ञातवास' में मध्यवर्ग की दोहरी नैतिकता पर लेखक ने प्रश्नचिह्न लगाया है। शोषण के बदलते चेहरे को श्रीलाल जी ने देखा था इसलिए उसे उभारने में उन्होंने बड़ी कुशलता का परिचय दिया है। इस उपन्यास का मुख्य पात्र रजनीकांत नौकरशाह है। वह घूस के पैसे से ऐय्याशी करता है। धन जमा करना और उससे विलासिता का संसाधन जुटाना उसकी जिंदगी का लक्ष्य है। लेकिन उपन्यास के अंत में उसे हार्ट अटैक हो जाता है। 'आदमी का जहर' अपराध कथा पर आधारित रचना है। एक संवेदनशील कथाकार होने के नाते श्री लालजी ने इस चलता और बाजारू विषय के माध्यम से भद्र समाज की नंगी वास्तविकता को रोशनी में लाने का प्रयत्न किया है। यह उपन्यास अपने गठन में अत्यंत रहस्यात्मक है।

'पहला पड़ाव' (1987) उपन्यास की कथा तीन भागों में विभक्त है। मजदूर, ठेकेदार इंजीनियर और सत्ता के प्रतिनिधि तथा शिक्षित बेरोजगार उपन्यास के तीन बिंदु हैं। विलासपुर के मजदूर, जो रोजगार की तलाश में अपने परिवेश से बाहर निकलते हैं, उनकी कठिनाइयों का इसमें यथार्थ वर्णन है। ये मजदूर मिस्त्री ठेकेदार, इंजीनियर और धन्ना सेठों के सामने अपने को अनजान और असहाय अनुभव करते हैं। ठेकेदार, इंजीनियर और सेठ मजदूरों का शोषण करते हैं। उपन्यास में शोषण के समानांतर शोषक का समाज है जो विकास के नाम पर जनता की संपत्ति को लूट रहा है। इंजीनियर, ठेकेदार और सत्ता के प्रतिनिधियों के बीच साँठ-गाँठ से ठेकेदार रात में सरकारी गोदाम से माल उठवा लेता है। इंजीनियर साहब जमकर पैसा बनाते हैं, मुअत्तल होते हैं फिर स्थगन - आदेश से लेते हैं। उपन्यास में शोषक और शोषित के विभाजन को लेखक ने स्पष्टता से पहचाना है।

'राग दरबारी' (1968) श्रीलाल शुक्ल की प्रतिनिधि रचना है। इसमें उन्होंने कुछ प्रतीकों के माध्यम से सत्ता की वास्तविकता को समझाने का प्रयत्न किया है, शिवपालगंज के कुछ संस्थानों की यथार्थ स्थिति से परिचय कराकर उसके क्रमशः भ्रष्ट और मूल्यविहीन होते जाने की त्रासदी को प्रस्तुत किया है। लोकतंत्र, शिक्षा, ग्राम पंचायत न्यायालय आदि शब्दों के वजन को उन्होंने अपने भोगे गए अनुभवों के आधार पर तौलने की कोशिश की है। 'मकान' (1972) उपन्यास में एक मध्यवर्गीय पात्र नारायण बनर्जी की कहानी है जो दफ्तर में नौकरी करता है और साथ ही सितारवादक भी है। वह रहने के लिए एक मकान की खोज में है। मकान की निरंतर और

अविराम खोज उसके भटकन को सांकेतित करती है। उसे जब मकान मिलता है तो उसका आकर्षण खत्म हो चुका होता है। मकान नहीं रहने के कारण उसे होटल में रहना पड़ता है, जहाँ उसकी कामुक प्रवृत्ति उत्तेजना की हद तक पहुँचती है। वह अपने पत्नी और बच्चे को छोड़कर सिम्मी और श्यामा से अवैध संबंध बनाता है श्यामा नारायण बनर्जी की रमणी सचिव, सखी और शिष्या है। इसलिए उसके और नारायण बनर्जी के संबंध भी अत्यंत जटिल हैं। आकर्षण और पलायन का द्वंद्व उसके चरित्र को नाटकीय बना देता है। उपन्यास के अंत में उसकी हत्या हो जाती है।

'बिस्रामपुर का संत' (1998) एक राजनीतिक उपन्यास है। इस उपन्यास की राजनीति भूदान आंदोलन से संबंधित है। उपन्यास में कुँवर जयंती प्रसाद सिंह को फोकस में रखा गया है। सत्ता से चिपकने के बाद भोग विलास की लालसा उनके बूढ़े शरीर को लगातार परेशान करती है। वे सुविधा, सुरक्षा, सौन्दर्य, यश और कीर्ति को एक साथ पाना चाहते हैं। उनका चरित्र पाखंडी धूर्त और कामुक व्यक्ति के रूप में उभरता है। कुँवर जयंती प्रसाद को अस्सी साल की उम्र में सुंदरी और जयश्री के सुंदर शरीर स्वप्न में याद आते हैं। उनमें उसे भोगने और पाने की बेहद उत्कंठा है। जीवन की संध्या में विश्रामपुर में आश्रमवास करना उनकी राजनैतिक असफलता की असहाय मनोवेदना को प्रकट करता है। वे अपनी परिस्थिति से मजबूर होकर आश्रमवास का निर्णय लेते हैं। उपन्यास के अंत में वे आत्महत्या कर लेते हैं परंतु त्रासदी यह है कि उस पर कोई शोक प्रकट करने वाला शेष नहीं है। इस उपन्यास के माध्यम से भूदान आंदोलन के संदर्भ में राजनीतिक व्यभिचार का एक क्रूर सच पाठक के सामने लेखक ने उपस्थित किया है। राजनीतिक मानवीय व्यभिचार का यह क्रूर सत्य मानवीय निष्ठा और गरिमा को संदेहास्पद बनाता प्रेरित होता है।

उपन्यास के अतिरिक्त कहानी एवं व्यंग्य लेखन के क्षेत्र में भी श्रीलाल शुक्ल का महत्वपूर्ण स्थान है। 'यह घर मेरा नहीं' (1962) में दो पीढ़ी के अंतराल और उसके तनाव को अभिव्यक्त किया गया है। 'उमराव नगर' (1985-88) ऐसा गाँव है जहाँ विकास का कोई कार्यक्रम नहीं पहुँचा है, पर जिसे नियोजित विकास के लिए चुना गया है। 'लुढ़कता पत्थर' उनकी चर्चित कहानी है, जिसमें उन्होंने मध्यवर्ग की मानसिकता को व्यंग्य का निशाना बनाया है। 'मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ', 'कुछ जमीन कुछ हवाएँ' तथा 'आओ बैठ लें कुछ देर' उनके चुनिंदा व्यंग्य निबंध संग्रह हैं। उनके व्यंग्य समाज की संवेदनहीनता पर कटाक्ष करते हैं। वस्तुत: उनकी व्यंग्य रचनाएँ दो प्रकार की हैं - एक में वे पाठक को हँसी में सराबोर करते चलते हैं और दूसरे प्रकार के व्यंग्य निबंधों में समाज में चल रहे घातक षड्यंत्र को बेनकाब करते प्रतीत होते हैं।

कब लिखी गई

रागदरबारी सन् 1968 में प्रकाशित हुई थी। इसे सन् 1970 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से पुरस्कृत किया गया था। सन् 1992 में गिलियन राइट ने इसका अंग्रेजी में अनुवाद किया, जो बाद में 'पेंगुइन' से प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास के लिखे जाने और छपने के बीच बड़ा लंबा अंतराल है। इसका कारण वही नौकरशाही व्यवस्था है जिसकी आलोचना उपन्यास में की गई है। श्रीलाल शुक्ल सरकारी अधिकारी थे, इसलिए उपन्यास के प्रकाशन के लिए उन्हें विभाग से अनुमति लेना आवश्यक था। परंतु विभाग के अधिकारियों ने इसमें कई तरह के ऐतराज जाहिर किए, जिससे उपन्यास के प्रकाशन में विलम्ब हुआ। अंत में श्रीलाल शुक्ल ने जब नौकरी छोड़ने की धमकी दी तब कहीं जाकर यह व्यवधान समाप्त हुआ। और उपन्यास छपकर पाठक वर्ग को उपलब्ध हो सका।

अंतर्वस्तु

इस उपन्यास का शीर्षक लेखक ने रागदरबारी रखा है। 'राग दरबारी' संगीत का एक राग और धुन है, जो मध्यकालीन सामंतों के दरबार में उन्हें रिझाने के लिए गाया जाता था। लेखक ने राग दरबारी के माध्यम इस संदेश को संप्रेषित करना चाहा है कि सत्ता के साथ जुड़े रहने के लिए एक खास किस्म के लोचदार व्यक्तित्व की जरूरत होती है, जो अवसर के

अनुकूल नया तेवर अपनाता है। उपन्यास के आरंभ में ही व्यवस्था के उस चरित्र को लेखक एक ट्रक के बिंब के माध्यम से रेखांकित करता है। उपन्यास का आरंभिक वाक्य है - "वहीं एक ट्रक खड़ा था। उसे देखते ही यकीन हो जाता था, इसका जन्म केवल सड़कों के साथ बलात्कार करने के लिए हुआ है।" हर प्रकार की सत्ता और व्यवस्था मनुष्य के शोषण पर आधारित है। ट्रक का संपूर्ण बिंब लोकतंत्र के विभिन्न पहलुओं को उद्घाटित करता है। लोकतंत्र में पुलिस, व्यवस्था का एक अंग है। पुलिस की मनोवृत्ति में मध्यकालीन सामंती अंदाज है। थाने का जिक्र करते हुए उपन्यासकार लिखता है "आराम कुर्सी ही नहीं सभी कुछ मध्यकालीन था। तख्त, उसके ऊपर पड़ा हुआ दरी का चीथड़ा, कलमदान, सूखी हुई स्याही की दवातें, मुड़े हुए कोने वाले मटमैले रजिस्टर - सभी कुछ शताब्दी पुराने दिख रहे थे।" उपन्यास के तीसरे भाग में छंगामल विद्यालय इंटर कॉलेज का जिक्र आता है जो भ्रष्ट राजनीति और सत्ता के व्याभिचार की रंगभूमि है। शिक्षा की शोचनीय हालत के लिए लेखक, शिक्षक और प्रिंसिपल दोनों को संयुक्त रूप से दोषी मानता है। उद्देश्यहीन शिक्षा, व्यक्तित्व के विकास की अपेक्षा व्यक्तित्व के लिए घातक होती है उसका उदाहरण छंगामल विद्यालय के शिक्षक और छात्र हैं। इस विद्यालय की बागडोर जिन मठाधीश के हाथ में है, वे तथाकथित रूप से सेवक हैं। अंग्रेजों के जमाने में अंग्रेजों के लिए, देशी हुकूमत के दिनों में देसी हाकिमों को लिए श्रद्धा दिखाते हैं। अपना वर्चस्व बनाए रखने के लिए वे हर प्रकार के कार्य कर सकते हैं। फिर वे चाहे नीतिपूर्ण हों अथवा अनीतिपूर्ण। विद्यालय के प्रिंसिपल इन सत्ताधारियों के चाटुकार है। वे वैद्यजी के साथ बैठकर भांग पीते हैं और स्कूल की राजनीति पर चर्चा करते हैं। वे अवसर को देखकर फायदा उठाने के लिए हमेशा तैयार रहते हैं। इसी क्रम में लंगड़ का अवांतर प्रसंग आता है। वह हमारी न्याय व्यवस्था पर ही नहीं अपनी जिद्दी मानसिकता पर भी व्यंग्य करता प्रतीत होता है।

ग्रामीण और शहरी रिक्शावाला के प्रसंग के बहाने लेखक ने आधुनिकता के विषय में प्रचलित भ्रम को समझाने का प्रयत्न किया है। वास्तव में हमारे समाज में शहरी आधुनिक समझे जाते हैं जबकि यह यथार्थ नहीं है। उपन्यासकार ने शहरी और ग्रामीण मानसिकता को आलोचनात्मक दृष्टि से देखा है। इसलिए गाँव के प्रति भी उसमें उस प्रकार की मोह या आकर्षण नहीं है। निर्मम होकर लेखक ने ग्रामीण जीवन के विविध पहलुओं को उजागर किया है।

इसी संदर्भ में दुरबीन सिंह के प्रसंग का उल्लेख करना उचित होगा। दुरबीन सिंह के प्रसंग के माध्यम से लेखक ने गाँव समाज के नैतिक पतन का संकेत दिया है। ग्रामीण लोगों में अपराधी को उदात्त हीरो की तरह स्वीकार करने की मानसिकता है। यह हमारे समाज की पतित मनोवृत्ति को सूचित करता है। पढ़े लिखे लोगों में प्रचलित औपनिवेशिक मानसिकता की भी लेखक आलोचना करता है।

इस संदर्भ में रंगनाथ शिवपालगंज में रंगनाथ का टूरिस्टों के समान आगमन होता है। टूरिस्ट गाँव के समाज को आत्मीयता से महसूस नहीं कर पाते हैं। वे कुछ चीजों को देखकर अपना विचार निर्धारित कर लेते हैं। लेखक इस निर्धारित विचार श्रेणी से असहमत है। कुछ विदेशी जो भारत के बारे में अपना निश्चित मत अभिव्यक्त करते हैं लेखक उससे सहमत नहीं है। भारत के विषय में फैली प्राच्यवादी अवधारणा का भी वे विरोध करते हैं। लेखक कुछ प्रसंगों के माध्यम से इस प्रकार के खोखले विचार की हँसी उड़ाता है। कॉलेज में मैनेजर के चुनाव के प्रसंग के बहाने लेखक लोकतंत्र की वास्तविकता को पाठक के सामने रखता है।

कॉलेज की सालाना बैठक में मैनेजर और प्रिंसिपल के चुनाव की योजना वैद्यजी ने बनाई। गयादीन की चुनाव के विषय में धारणा है कि चुनाव से कोई मौलिक परिवर्तन नहीं होता, केवल सत्ता का हस्तांतरण होता है। लोकतंत्र की यह सबसे बड़ी विसंगति है। लेकिन कॉलेज के इस चुनाव में सत्ता हस्तांतरण का भी प्रश्न नहीं उठा। बाहुबल से वैद्यजी ने प्रतिरोधी

आवाज को चुप कर दिया। छोटे पहलवान बलराम सिंह और बद्री पहलवान ने ऐसा इंतजाम किया कि चुनाव किसी संघर्ष के बिना संपन्न हो गया।

वैद्यजी के प्रभुत्व को सिद्ध करने के लिए लेखक ने जोगनाथ की गिरफ्तारी की योजना को उपन्यास का महत्वपूर्ण संदर्भ बनाया है। जोगनाथ गयादीन के घर चोरी के जुर्म में गिरफ्तार होता है। परंतु उसके खिलाफ पुलिस के पास एक भी सबूत नहीं हैं। लेकिन फिर भी नया दरोगा उसे गैर जमानती कें तहत छोड़ने से इनकार करता है। इस प्रकार वह वैद्यजी की बातों की प्रकारांतर से अवहेलना भी करता है। उस दरोगा का शिवपालगंज थाने से स्थानांतरण हो जाता है। यह वैद्यजी के सत्ता की ताकत है, जो बिना कुछ बोले अपने अपमान का प्रतिशोध ही नहीं लेते हैं अपितु अपना वर्चस्व भी स्थापित करते हैं।

शिवपालगंज के ग्राम प्रधान के चुनाव की तैयारी हो रही है। जनता हर उम्मीदवार को वोट देने का आश्वासन देती है। वास्तव में उसमें इतनी ताकत ही नहीं है कि प्रत्याशियों के मुँह पर वोट नहीं देने की बात कह सके। शिवपालगंज में चुनाव जीतने की तीन तरकीबें हैं-एक रामनगर वाली, दूसरी नेवादावाली और तीसरी महिपालपुर वाली। रामनगर वाली तरकीब में ग्राम प्रधान पुलिस की सहायता से सत्ता हथियाता है। नेवादावाले तरीकों में धर्म को आधार बनाया जाता है। महिपालपुर वाली तरकीब में चुनाव अधिकारी के सहयोग से चुनाव जीता जाता है। सनीचर किसी भी तरीके से चुनाव जीत जाता है। वह अब वैद्यजी की सत्ता को और अधिक मजबूत बनाता है। वह स्कूल की राजनीति में भी हस्तक्षेप करता है। स्कूल की भयानक गुटबाजी अब व्यक्तिगत लांछना पर उतर चुकी थी। खन्ना मास्टर पर चरित्रहीनता के आरोप लगाए गये थे। डिप्टी डायरेक्टर एजुकेशन का दौरा होने वाला था। लेकिन वह अंत तक नहीं आता है। अंत में वैद्यजी को ही निर्णय लेना पड़ता है। उनके निर्णय के अनुसार खन्ना मास्टर को स्कूल छोड़ने के लिए बाध्य होना पड़ा। खन्ना मास्टर के पद के लिए रंगनाथ का नाम प्रिंसिपल प्रस्तावित करता है। इस प्रसंग में लोकतंत्र, शिक्षा, समाज, सत्ता, गाँव की भ्रष्ट होती मानसिकता को लेखक ने बखूबी उकेरने का प्रयत्न किया है।

बेला, रुप्पन और बद्री पहलवान के प्रसंग के द्वारा वर्चस्ववादी मानसिकता की व्यापकता को उठाया गया है। गाँव समाज में गयादीन जैसे धनवान किंतु निर्बल आदमी का इज्जत बचाना मुश्किल हो गया है। शिवपालगंज में राजनीति केवल राजनीति तक ही सीमित नहीं थी अपितु व्यक्तिगत और निजी जीवन में भी उसका दुरुपयोग होने लगा। यह किसी भी सभ्य समाज के लिए शर्मनाक स्थिति है। उपन्यास के अंत में वैद्यजी की गुप्त कामना प्रकट होती है। वे स्वयं राजनीति से संन्यास लेकर बद्री पहलवान को सहकारी संघ के पद पर तथा रुप्पन बाबू को कॉलेज के मैनेजिंग का भार देना चाहते थे। अब वे इन दोनों अभिलाषाओं का भार बद्री पहलवान को ही सौंपने के लिए कृत संकल्प हैं। इस प्रकार से उपन्यास में पीढ़ी परिवर्तन होता है। यह देश की वंशवादी राजनीति का कठोर व्यंग्य ही नहीं कड़वी सच्चाई भी है।

महत्व

राग दरबारी का परिवेश ठेठ ग्रामीण नहीं है, बल्कि एक कस्बाई प्रकार का समाज है। उसकी समस्या यह है कि वह न पारंपरिक समाज रह गया है और न आधुनिक हो पाया है। इसलिए एक विचित्र प्रकार का अंतर्विरोध उस समाज में पैदा हो गया है। यही उपन्यास के व्यंग्य का भी मूलाधार है। व्यंग्य के कारण उपन्यास की मूल प्रकृति में संगठनहीनता का भाव पैदा हो गया है। इससे उपन्यास के कथ्य में ठोस वस्तु तथ्य नहीं उभर पाया है। वास्तव में घटना और परिस्थिति के द्वंद्वात्मक तनाव के अभाव ने उपन्यास के कलेवर को प्रभावित किया है। लेखक गंभीर से गंभीर बात को भी सहज मखौल बना देता है, यह वास्तविकता हमारी जिंदगी का अंग है। लेकिन इसे उपन्यास के पूरे परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत नहीं किया गया है। वह टुकड़ों-टुकड़ों में बँटा हुआ प्रतीत होता है। उपन्यास पढ़ते हुए हमें स्थान-स्थान पर यह अनुभव होता है।

उपन्यास में स्वातंत्र्योतर भारत के विकास की अवधारणा को खंडित होता हुआ दिखाया गया है। स्वतंत्रता, लोकतंत्र, सहकारिता, पंचायत, आदि संस्थान भ्रष्ट लोगों के हाथ के कठपुतली बनकर रह गए हैं। सत्ता में दलाल किस्म के लोगों का बोलबाला है। वही सत्ता के नियामक और नियंता है, उसमें आम लोगों की भागीदारी नगण्य और न्यून है। व्यक्तिगत स्वार्थ का भाव राजनीति को इस तरह से प्रभावित करता है कि सभी संस्थानों पर वर्चस्व न केवल कुछ मुट्ठी भर लोगों का हो जाता है अपितु वे नैतिक ह्रास के शिकार होते हैं। शिवपालगंज का विद्यालय, पंचायत और सहकारी संस्था इसके गवाह हैं। कस्बे में राजनीति और अपराध के बीच एक साँठ-गाँठ है जो लोकतांत्रिक मूल्यों के विघटन का संकेत है। लेखक राग दरबारी में इस विघटन के लिए जितना मठाधीशों को दोषी ठहराता है, उतना ही सामान्य जनता की मानसिकता की भी आलोचना करता है। सामान्य जन का गलत मूल्यों के खिलाफ लड़ने का प्रश्न ही नहीं उठता है, उल्टे वे एक आरोपित मानसिकता के तहत इस प्रकार के कार्यों की सराहना करते हैं। उपन्यासकार की चिंता सत्ता की अमानवीयता को लेकर ही नहीं है, इससे अधिक चिंता इस बात की है कि सामान्य मनुष्य अन्याय को कितनी सहजता में स्वीकार करने का आदी होता जा रहा है। राग दरबारी का मौलिक महत्व इस प्रकार की मानसिकता को पहचानने में है।

राग दरबारी उपन्यास में मुख्य कथा के साथ कई छोटे-छोटे प्रसंगों की भी योजना की गई है। इसमें रंगनाथ के बौद्धिक अनुभव, रुप्पन बाबू की आवेगमय प्रतिक्रिया, बद्री पहलवान का बाहुबल, लंगड़ की संघर्षशीलता, गयादीन की लाचारी, प्रिंसिपल साहब की स्वामिभक्ति के अतिरिक्त शराब, जुए, चोरी, डकैती, गंदगी, गरीबी और मक्कारी के अनेक प्रसंग उपन्यास में भरे पड़े हैं। ये हमारे सामाजिक जीवन की यथार्थता का प्रत्यक्ष अंकन करते हैं। उपन्यासकार ने जीवन की विषम और यथार्थ परिस्थिति को प्रहसनात्मक बनाकर प्रस्तुत किया है। उपन्यास में कथ्य को जिन घटनाओं और पात्रों के बीच रचा गया है उसमें मानवीय करुणा और पीड़ा को उत्तेजित करने वाली चेतना का अभाव मिलता है।

भाषा शैली

हास्य और व्यंग्य के नये तेवर राग दरबारी उपन्यास में सर्वत्र दिखाई देते हैं। भाषा की यह व्यंजना संवेदना को अधिक विक्षुब्ध बनाती है। कहीं कहीं तो यह व्यंजना काव्यात्मक सौन्दर्य के स्तर तक पहुँच गई है। यह राग दरबारी उपन्यास की भाषा की शक्ति का प्रमाण है। उदाहरण के लिए उपन्यास के आरंभ में ही ट्रक का पूरा बिंब लोकतांत्रिक व्यवस्था की मूल्यविहीनता का संपूर्ण प्रतीक है। ग्रामीण और शहरी रिक्शावाले हमारे सामाजिक जीवन दृष्टि के दो रूपों को प्रतिबिंबित करते हैं। इसी प्रकार गँजहापन एक विशिष्ट प्रकार की जीवन शैली है। उसका भाषा प्रयोग, लोक व्यवहार और रिवाज अलग है। उसमें गाँव की मासूमियत और शहरी चतुराई का सुखद संयोग है। व्यावहारिक जीवन में कार्यों की अतार्किक परिणति से व्यंग्य की सृष्टि हुई है। व्यंग्य केवल पात्र, परिवेश और संस्थान के प्रति ही नहीं अपितु उससे जीवन पद्धति का भी अंतर्विरोध प्रकट हो गया है। छंगामल विद्यालय पर टिप्पणी करते हुए लेखक लिखता है "इन्हीं सब इमारतों के मिले-जुले रूप को छंगामल विद्यालय इण्टरमीजिएट कॉलेज शिवपालगंज कहा जाता था। यहाँ से इण्टरमीजिएट पास करने वाले लड़के सिर्फ इमारत के आधार पर कह सकते थे कि हम शांतिनिकेतन से भी आगे हैं, हम असली भारतीय विद्यार्थी हैं, हम नहीं जानते कि बिजली क्या है, नल का पानी क्या है, पक्का फर्श किसको कहते हैं, सैनिटरी फिटिंग किस चिड़िया का नाम है। हमने विलायती तालीम तक देसी परंपरा में पायी है और इसलिए हमें देखो, हम आज भी उतने प्राकृत हैं। हमारे इतना पढ़ लेने पर भी हमारा पेशाब पेड़ के तने पर उतरता है, बंद कमरे में ऊपर चढ़ जाता है।"

जीवन और समाज की विश्वसनीय अभिव्यक्ति के लिए राग दरबारी की भाषा की भंगिमा पात्र, परिवेश और विषय वस्तु के अनुसार बदलती है। उदाहरण के लिए थाना और अदालत की भाषा में उर्दू मिश्रित शब्दों का प्रयोग मिलता है। चूँकि उत्तर भारत में कचहरियों में आज

भी उर्दू का प्रचलन व्यापक रूप से है। कानून की भाषा का उदाहरण - "बैजनाथ ने सबूत का पूरा मुकदमा दोहरा दिया। बताया जोगनाथ के घर की तलाशी मेरी मौजूदगी में हुई, ये तीन जेवर मेरे सामने से बरामद हुए, इन्हें मेरे सामने मुहर बंद किया गया, बरामदगी की रिपोर्ट मेरे सामने लिखी गयी, इस पर मेरा दस्तखत मेरे सामने ही हुआ" आदि। इस उपन्यास की भाषा में अनुभव की विविधता है। यह विविधता समाज का गहराई से निरीक्षण करने के बाद ही उपजी है। गँजहा लोगों की भाषा में भदेसपन है, प्रिंसिपल साहब वैद्य जी की भाषा में औपचारिकता है, रंगनाथ की भाषा बौद्धिकता से संपन्न है, रुप्पन बाबू रोमांटिक भाषा का प्रयोग करते हैं और सनीचर में निरीहता है। पात्रों में भाषा का यह अंतर सामाजिक पृष्ठभूमि से संचालित है। एक ही पात्र की मन:स्थिति के नाटकीय परिवर्तन से भाषा का लहजा भी बदल जाता है। सैक्स के विभिन्न प्रतीकों द्वारा लेखक ने रंगनाथ, रुप्पन और बेला की मन:स्थिति के लिए एक विशेष प्रकार की शब्दावली का प्रयोग किया है।

उपन्यास कैसे पढ़ें

राग दरबारी उपन्यास में जीवन की विविध स्थितियों पर व्यंग्य है। व्यंग्य जीवन और समाज को गहराई से निरीक्षण करने के बाद उपजता है। इसलिए व्यंग्य के भीतर की सामाजिक वास्तविकता को ध्यान में अवश्य रखें। अनुभव, कार्य और विचार में समानता नहीं होने के कारण जीवन में कई प्रकार अंतर्विरोध पैदा होते हैं। यह व्यंग्य के तेवर को धारदार बनाते हैं। इसलिए राग दरबारी उपन्यास के संदर्भ में इन्हें भी पहचानने की जरुरत है। सत्ता को पाने के लिए किस प्रकार पुलिस अधिकारी और स्थानीय नेता को बीच एक गठबंधन बनता है और फिर उसका किस प्रकार से दुरुपयोग किया जाता है इसे भी समझने का प्रयत्न कीजिए। उपन्यास में प्रतीक और बिंबों का भी प्रयोग मिलता है। इन प्रतीकों और बिंबों को समझने के साथ कथानक के प्रसंग में उसकी सार्थकता भी विचारणीय है।

कठिन शब्दावली

नक्ब	-	सेंध मारना
भम्भड़	-	भीड़भाड़
काँखना	-	कराहना
इजलास	-	न्यायालय में न्यायाधीश की कार्रवाई
पन्साखा	-	एक प्रकार की मशाल जिसमें तीन या पाँच बत्तियाँ एक साथ जलती हैं
टिलौं-टलौं	-	धक्का
कल्लायेगी	-	एक प्रकार की पीड़ा
तफरीह	-	मनबहलाव
कुकुरहाव	-	कुत्ते की तरह भूँकना
मुलजिम	-	अपराधी
मरखत्ता बैल	-	मारने वाला बैल
बुर्राकदार साफा	-	उजली पगड़ी
तखलिया	-	एकान्त
तकावी	-	वह धन जो गरीब खेतिहरों को बीज खरीदने या कुआँ बनाने के लिए दिया जाए
चकर चित्ती	-	चारों तरफ घूमना
दस्तयाबा	-	प्राप्त होना
साकिन	-	निवासी

लियाक़त	-	सामर्थ्य
शिकमी	-	वह काश्तकार जिसे दूसरे से जोतने के लिए खेत मिला हो
चिकवे	-	मांस बेचने वाला
अहलकार	-	कर्मचारी
मजमून	-	लेख
सिरफिरे	-	पागल
भगत	-	वेश में

व्याख्या के लिए अंश

1. लड़का वैसे ही खड़ा रहा। कुछ दिन पहले इस देश में यह शोर मचा था कि अपढ़ आदमी बिना सींग-पूँछ का जानवर होता है। उस हल्ले में अपढ़ आदमियों के बहुत से लड़कों ने देहात में हल और कुदालें छोड़ दीं और स्कूलों पर हमला बोल दिया। हज़ारों की तादाद में आये हुए ये लड़के स्कूलों, कॉलेजों, यूनिवर्सिटियों को बुरी तरह से घेरे हुए थे। शिक्षा के मैदान में भभ्भड़ मचा हुआ था। अब कोई यह प्रचार करता हुआ नहीं दीख पड़ता था कि अपढ़ आदमी जानवर की तरह है। बल्कि दबी जबान से यह कहा जाने लगा था कि ऊँची तालीम उन्हीं को लेनी चाहिए जो उसके लायक हो, इसके लिए 'स्क्रीनिंग' होनी चाहिए। इस तरह से घुमा-फिराकर इन देहाती लड़कों को फिर से हल की मूठ पकड़ाकर खेत में छोड़ देने की राय दी जा रही थी। पर हर साल फेल होकर, दर्जे में सब तरह की डाँट-फटकार झेलकर और खेती की महिमा पर नेताओं के निर्झरपंथी व्याख्यान सुनकर भी वे लड़के हल और कुदाल की दुनिया में वापस जाने को तैयार न थे। वे कनखजूरे की तरह स्कूल से चिपके हुए थे और किसी भी कीमत पर उससे चिपके रहना चाहते थे।

2. अंग्रेजों के जमाने में वे अंग्रेजों के लिए श्रद्धा दिखाते थे। देसी हुकूमत के दिनों में वे देसी हाकिमों के लिए श्रद्धा दिखाने लगे। वे देश के पुराने सेवक थे। पिछले महायुद्ध के दिनों में जब देश को जापान से खतरा पैदा हो गया था, उन्होंने सुदूर-पूर्व में लड़ने के लिए बहुत से सिपाही भरती कराये। अब जरूरत पड़ने पर रातोंरात वे अपने राजनीतिक गुट में सैकड़ों सदस्य भरती करा देते थे। पहले भी वे जनता की सेवा जज की इजलास में जूरी और असेसर बनकर, दीवानी के मुकदमों में जायदादों के सिपुर्ददार होकर और गाँव के जमींदारों में लम्बरदार के रूप में करते थे। अब वे कोऑपरेटिव यूनियन के मैनेजिंग डाइरेक्टर और कॉलेज के मैनेजर थे। वास्तव में वे इन पदों पर काम नहीं करना चाहते थे क्योंकि उन्हें पदों का लालच न था। पर उस क्षेत्र में जिम्मेदारी के इन कामों को निभानेवाला कोई आदमी ही न था और वहाँ जितने नवयुवक थे, वे पूरे देश के नवयुवकों की तरह निकम्मे थे, इसलिए उन्हें बुढ़ापे में इन पदों को सँभालना पड़ा था।

3. सब वर्गों की हँसी और ठहाके अलग-अलग होते है। कॉफी-हाउस में बैठे हुए साहित्यकारों का ठहाका कई जगहों से निकलता है, वह किसी के पेट की गहराई से निकलता है, किसी के गले, से किसी के मुँह से और उनमें से एकाध ऐसे भी रह जाते है जो सिर्फ़ सोचते हैं कि ठहाका लगाया क्यों गया है। डिनर के बाद कॉफी पीते हुए, छके हुए अफसरों का ठहाका दूसरी ही किस्म का होता है। वह ज्यादातर पेट की बड़ी ही अन्दरूनी गहराई से निकलता है। उस ठहाके के घनत्व का उनकी साधारण हँसी के साथ वही अनुपात बैठता है जो उनकी आमदनी का उनकी तनख्वाह से होता है। राजनीतिज्ञों का ठहाका सिर्फ मुँह के खोखल से निकलता है और उसके दो ही आयाम होते हैं, उसमें प्रायः गहराई नहीं होती। व्यापारियों का ठहाका होता ही नहीं है और

अगर होता भी है तो ऐसे सूक्ष्म और सांकेतिक रूप में, कि पता लग जाता है, ये इनकम-टैक्स के डर से अपने ठहाके का स्टॉक बाहर नहीं निकालना चाहते। इन नौजवानों ने जो ठहाका लगाया था, वह सबसे अलग था। यह शोहदों का ठहाका था, जो आदमी के गले से निकलता है, पर जान पड़ता है, मुर्गों, गीदड़ों और घोड़ों के गले से निकला है।

4. यह सही है कि 'सत्य' 'अस्तित्व' आदि शब्दों के आते ही हमारा कथाकार चिल्ला उठता है, "सुनो भाइयों - यह किस्सा-कहानी रोककर मैं थोड़ी देर के लिए तुमको फिलासफी पढ़ाता हूँ, ताकि तुम्हें यकीन हो जाय कि वास्तव में मैं फिलासफर था, पर बचपन के कुसंग के कारण यह उपन्यास (या कविता) लिख रहा हूँ। इसलिए हे भाइयों, लो, यह सोलह-पेजी फिलासफी का लटका: और अगर मेरी किताब पढ़ते-पढ़ते तुम्हें भ्रम हो गया कि मुझे औरों-जैसी फिलासफी नहीं आती, तो उस भ्रम को इस भ्रम से काट दो।

तात्पर्य यह है, क्योंकि फिलासफी बघारना प्रत्येक कवि और कथाकार के लिए अपने-आपमें एक 'वैल्यू' है, क्योंकि मैं कथाकार हूँ, क्योंकि 'सत्य', 'अस्तित्व' आदि की तरह 'गुटबंदी' - जैसे एक महत्वपूर्ण शब्द का जिक्र आ चुका है, इसलिए सोलह पृष्ठ के लिए तो नहीं, पर एक-दो पृष्ठ के लिए अपनी कहानी रोककर मैं भी पाठकों से कहना चाहूँगा कि सुनो-सुनो हे भाइयो, वास्तव में तो मैं एक फिलासफर हूँ, पर बचपन के कुसंग के कारण.....

5. वेदान्त हमारी परम्परा है और चूँकि गुटबंदी का अर्थ वेदान्त से खींचा जा सकता है, इसलिए गुटबंदी भी हमारी परंपरा है, और दोनों हमारी सांस्कृतिक परम्पराएँ है। आजादी मिलने के बाद हमने अपनी बहुत-सी सांस्कृतिक परम्पराओं को फिर से खोदकर निकाला है। तभी हम हवाई जहाज से यूरोप जाते है, पर यात्रा का प्रोग्राम ज्योतिषी से बनवाते हैं: फॉरेन ऐक्सचेंज और इन्कमटैक्स की दिक्कतें दूर करने के लिए बाबाओं का आशीर्वाद लेते है, स्कॉच व्हिस्की पीकर भगन्दर पालते हैं और इलाज के लिए योगाश्रमों में जाकर साँस फुलाते हैं, पेट सिकोड़ते हैं। उसी तरह विलायती तालीम में पाया हुआ जनतंत्र स्वीकार करते हैं और उसको चलाने के लिए अपनी परम्परागत गुटबन्दी का सहारा लेते हैं। हमारे इतिहास में-चाहे युद्धकाल रहा हो, या शान्तिकाल-राजमहलों से लेकर खलिहानों तक गुटबन्दी द्वारा 'मैं' को 'तू' और 'तू' को 'मैं' बनाने की शानदार परम्परा रही है। अंग्रेजी राज में अंग्रेजों को बाहर भगाने के झंझट में कुछ दिनों के लिए हम उसे भूल गये थे। आजादी मिलने के बाद अपनी और परम्पराओं के साथ इसको भी हमने बढ़ावा दिया है। अब हप गुटबन्दी को तू-तू मैं-मैं, लात-जूता साहित्य और कला आदि सभी पद्धतियों से आगे बढ़ा रहे हैं। यह हमारी सांस्कृतिक आस्था है। यह वेदान्त को जन्म देनेवाले देश की उपलब्धि है। यही, संक्षेप में, गुटबन्दी का दर्शन, इतिहास और भूगोल है।

6. उन्होंने देखा कि प्रजातंत्र उनके तख्त के पास ज़मीन पर पंजों के बल बैठा है। उसने हाथ जोड़ रखे हैं। उसकी शक्ल हलवाहों - जैसी और अंग्रेजी तो अंग्रेजी, वह शुद्ध हिन्दी भी नहीं बोल पा रहा है। फिर भी वह गिड़गिड़ा रहा है और वैद्यजी उसका गिड़गिड़ाना सुन रहे हैं। वैद्यजी उसे बार-बार तख्त पर बैठने के लिए कहते हैं और समझाते हैं कि तुम गरीब हो तो क्या हुआ, हो तो हमारे रिश्तेदार ही, पर प्रजातंत्र उन्हें बार-बार हुजूर और सरकार कहकर पुकारता है। बहुत समझाने पर प्रजातंत्र उठकर उनके तख्त के कोने पर आ जाता है और जब उसे इतनी सान्त्वना मिल जाती है कि वह मुँह से कोई तुक बात निकाल सकें, तो वह वैद्यजी से प्रार्थना करता है मेरे कपड़े फट गये हैं, मैं नंगा हो रहा हूँ। इस हालत में मुझे किसी के सामने निकलते हुए शर्म लगती है, इसलिए, हे वैद्य महाराज, मुझे एक साफ-सुथरी धोती पहनने को दे दो।

7. हिन्दुस्तान में पढ़े-लिखे लोग कभी-कभी एक बीमारी के शिकार हो जाते हैं। उसका नाम 'क्राइसिस ऑफ कांशस' है। कुछ डॉक्टर उसी में 'क्राइसिस ऑफ फेथ' नाम की एक दूसरी बीमारी भी बारीकी से ढूँढ निकालते हैं। यह बीमारी पढ़े-लिखे लोगों में आमतौर से उन्हीं को सताती है जो अपने को बुद्धिजीवी कहते हैं और जो वास्तव में बुद्धि के सहारे नहीं, बल्कि आहार-निद्रा-भय-मैथुन के सहारे जीवित रहते हैं (क्योंकि अकेली बुद्धि के सहारे जीना एक नामुमकिन बात है)। इस बीमारी में मरीज़ मानसिक तनाव और निराशावाद के हल्ले में लम्बे-लम्बे वक्तव्य देता है, जोर-जोर से बहस करता है, बुद्धिजीवी होने के कारण अपने बीमार और बीमार होने के कारण अपने को बुद्धिजीवी साबित करता है और अन्त में इस बीमारी का अन्त कॉफी-हाउस की बहसों में, शराब की बोतलों में आवारा औरतों की बाँहों में, सरकारी नौकरी में और कभी-कभी आत्महत्या में होता है।

8. रात के लगभग नौ बजे थे, पर कहीं खामोशी न थी। तहसील के सामने तम्बोली की दुकान पर बैटरीवाला रेडियो अब भी बज रहा था और फिल्मी गानों के परनाले से 'अरमान, साजना, हसीन, जादूगर, मंजिल, नज़र, तू कहाँ, सीना, गले लग जा, गले लग जा, मचल-मचलकर, आँधियाँ, गम, तमन्ना, परदेशी, शराब, मुस्कान, आग, जिन्दगी, मौत, बेरहम, तस्वीर, चाँदनी, आसमाँ, सुहाना सपन, जोबन, मस्ती, उभार, इन्तजार, बेज़ार, इसरार, इनकार, इकरार.....' जैसे शब्द लगातार गिर रहे थे जो भूखमरे देशों में नवजागरण का सन्देश देने के लिए सब प्रकार से उपयुक्त है। इस परनाले के गिरने की आवाज दूर-दूर तक फैल रही थी और इस पुलिया तक भी हवा का झोंका आ जाने पर पहुँच जाती थी। आसपास सियार बोल रहे थे और इससे प्रमाणित होता था कि उनमें सामूहिक रूप से रहने की शक्ति काफी मात्रा में मौजूद है और गाँव के आसपास सारा जंगल कट जाने के बावजूद - अपने देश में उखड़े हुए यहूदियों की तरह - वे कहीं बसने के लिए आन्दोलन-जैसा छेड़नेवाले हैं। पर इन आवाज़ों को दबा देनेवाली सबसे जोरदार आवाज उन ट्रकों की थी जो हॉर्न बजाते हुए सत्तर मील फी घण्टे की रफ्तार से शहर की ओर भागे जा रहे थे।

9. उच्च स्तर के कई राजनीतिज्ञों और अधिकारियों को इस प्रकार परास्त करके अन्त में वे उस बंगले पर पहुँचे जहाँ से काऑपरेटिव-इन्स्पेक्टर की रक्षा का आदेश निकल रहा था। वहाँ उन्हें विदित हुआ कि सहकारिता-आन्दोलन में अब एक नये चिन्तन का संचार हुआ है जो भाई-भतीजावाद, जातिवाद, समाजवाद आदि उच्चवर्गीय सिद्धान्तों को एक में लपेटकर भविष्य के कार्यकर्ताओं की प्रेरणा का स्रोत होता। यह चिन्तन कुछ इस प्रकार का था: यदि तुम्हारे हाथ में शक्ति है तो उसका उपयोग प्रत्यक्ष रूप से उस शक्ति को बढ़ाने के लिए न करो। उसके द्वारा कुछ नयी और विरोधी शक्तियाँ पैदा करो और उन्हें इतनी मजबूती दे दो कि वे आपस में एक-दूसरे से संघर्ष करती रहें। इस प्रकार तुम्हारी शक्ति सुरक्षित और सर्वोपरि रहेगी। यदि तुम केवल अपनी शक्ति के विकास की ही चेष्टा करते रहे और दूसरी परस्पर-विरोधी शक्तियों की सृष्टि, स्थिति और संहार के नियन्त्रक नहीं बने तो कुछ दिनों बाद कुछ शक्तियाँ किसी अज्ञात अप्रत्याशित कोण से उभरकर तुम पर हमला करेंगी और तुम्हारी शक्ति छिन्न-भिन्न कर देंगी।

10. वैद्यजी को तब बताया गया कि हमें जनता के सामने आदर्श उपस्थित करना चाहिए। ऐसा न हुआ तो जनता का आचरण बिगड़ जायेगा। वह बिगड़ा तो पूरा देश बिगड़ेगा वर्तमान बिगड़ेगा और भविष्य बिगड़ेगा। राम ने क्या किया था? सीता का त्याग किया था कि नहीं तभी हम आज तक रामराज्य की याद करते हैं। त्याग द्वारा भोग करना चाहिए। यही हमारा आदर्श है। 'तेन त्यक्तेन भुंजी था' -कहा भी गया है। आज भी सभी यशस्वी नेता यही करते हैं, भोग करते हैं, फिर उसका त्याग करते हैं, फिर

त्याग द्वारा भोग करते हैं। अमुक वित्त-मंत्री ने क्या किया? त्यागपत्र दिया कि नहीं? अमुक रेल-मंत्री ने भी यही किया और अमुक सूचना-मन्त्री ने भी यही किया। इस समय देश को, इस राज्य को, इस जिले को, इस काऑपरेटिव यूनियन को ऐसे ही त्याग की आवश्यकता है। आरोपों की खुली जाँच हो, इसके स्थान पर यह अधिक उत्तम है कि वैद्यजी जनता के सामने आदर्श उपस्थित कर दें। आदर्श की इमारत खड़ी करते ही सारे आरोप उसकी नींव के नीचे दब जायेंगे। अत: वैद्यजी को चाहिए कि वे मैनेजिंग डाइरेक्टर के पद से त्यागपत्र दे दें। उनको विरुद्ध जो रिपोर्ट आयी हैं, उसका यही जवाब है। वे चाहें तो अपना त्यागपत्र किसी स्थिति के विरोध में दें, चाहे किसी सहकर्मी को कमीना बताकर दें, चाहे किसी सिद्धान्त की रक्षा के लिए दें। यदि वे त्यागपत्र दे रहे हों तो उसका कारण ढूँढने की उन्हें पूरी छूट रहेगी। पर त्यागपत्र के साथ अगर-मगर न होना चाहिए। होना चाहिए तो केवल त्यागपत्र होना चाहिए। नहीं तो कुछ न होना चाहिए। पर यदि कुछ हुआ, तो बहुत-कुछ हो जायेगा, जो कदाचित् वैद्यजी को अच्छा न लगेगा।

11. तुम मँझोली हैसियत के मनुष्य हो और मनुष्यता के कीचड़ में फँस गये हो। तुम्हारे चारों ओर कीचड़-ही-कीचड़ है।

कीचड़ की चापलूसी मत करो। इस मुगालते में न रहो कि कीचड़ से कमल पैदा होता है। कीचड़ में कीचड़ ही पनपता है। वही फैलता है, वही उछलता है।

कीचड़ से बचो। यह जगह छोड़ो। यहाँ से पलायन करो।

वहाँ, जहाँ की रंगीन तसवीरें तुमने 'लुक' और 'लाइफ' में खोजकर देखी हैं; जहाँ के फूलों के मुकुट, गिटार और लड़कियाँ तुम्हारी आत्मा को हमेशा नये अन्वेषणों के लिए ललकारती हैं; जहाँ की हवा सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर है, जहाँ रविशंकर-छाप संगीत और महर्षि-योगी- छाप अध्यात्म की चिरन्तन स्वप्निलता है... ।

जाकर कहीं छिप जाओ। यहाँ से पलायन करो। यह जगह छोड़ो।

नौजवान डाक्टरों की तरह, इंजीनीयरों, वैज्ञानिकों, अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के लिए हुड़कने वाले मनीषियों की तरह, जिनका चौबीस घण्टे यही रोना है कि वहाँ सबने मिलकर उन्हें सुखी नहीं बनाया, पलायन करो। यहाँ के झंझटों में मत फँसो।

अगर तुम्हारी किस्मत ही फूटी हो, और तुम्हें यहीं रहना पड़े तो अलग से अपनी एक हवाई दुनिया बना लो। उस दुनिया में रहो जिसमें बहुत-से बुद्धिजीवी आँख मूँदकर पड़े हैं। होटलों और क्लबों में। शराबखानों और कहवाघरों में, चण्डीगढ़-भोपाल-बंगलौर के नवनिर्मित भवनों में, पहाड़ी आरामगाहों में, जहाँ कभी न खत्म होने वाले सेमिनार चल रहे हैं। विदेशी मदद से बने हुए नये-नये शोध-संस्थानों में, जिनमें भारतीय प्रतिभा का निर्माण हो रहा है। चुरुट के धुएँ, चमकीली जैकेटवाली किताब और गलत, किन्तु अनिवार्य अंग्रेजी की धुन्धवाले विश्वविद्यालयों में। वहीं कहीं जाकर जम जाओ, फिर वहीं जमे रहो।

यह न कर सको तो अतीत में जाकर छिप जाओ। कणाद, पतंजलि, गौतम में,
अजन्ता एलोरा, ऐलिफेंटा में, कोणार्क और खजुराहो में,
शाल-भंजिका-सुर-सुन्दरी-अलसकन्या के स्तनों में जप-तप-मन्त्र में,
सन्त-समागम-ज्योतिष-सामुद्रिक में-जहाँ भी जगह मिले, जाकर छिप रहो।

भागो, भागो, भागो। यथार्थ तुम्हारा पीछा कर रहा है।

व्याख्या के लिए निर्देश

तुम मँझोली हैसियत के.....यथार्थ तुम्हारा पीछा कर रहा है।

राग दरबारी उपन्यास का टेक्सचर स्वांतत्र्योतर भारत के जटिल यथार्थ से बुना गया है। उपन्यासकार श्रीलाल शुक्ल ने इस उपन्यास रचना को सभ्यता समीक्षा के रूप में प्रस्तुत किया है। वस्तुत: राग दरबारी व्यवस्था के आंतरिक यथार्थ से परिचय करवाता है, जिसके अंतर्विरोध को देखकर व्यंग्य और विक्षोभ पैदा होता है। यह हमारे मूल्यों के क्षयग्रस्त होने को संकेत है। वस्तुत: यह उपन्यास चुनौतियों से घिरे समाज के उलझे हुए बौद्धिक विमर्श तथा सत्ता के अमानवीय और क्रुर चेहरे को पाठक के सामने रखता है।

व्याख्यांश का संदर्भ उपन्यास के अंतिम खंड पलायन से उद्धृत है। छंगामल विद्यालय में डिप्टी डाइरेक्टर ऑफ एजुकेशन आने वाले थे परंतु अन्य कार्यक्रम में व्यस्तता की वजह से नहीं आ सके। उनके दौरे का उद्देश्य शिक्षक के दो गुटों के राजनीतिक आरोप प्रत्यारोप के विषय में निरीक्षण करना था। उनके नहीं आने से विद्यालय के सर्वाधिक प्रभावशाली व्यक्ति वैद्यजी अपना निर्णय सुनाते हैं। उनका निर्णय था कि खन्ना मास्टर को विद्यालय की नौकरी छोड़नी पड़ेगी। इस स्थान पर उपन्यास कथानक का संपूर्ण तनाव समाप्त हो जाता है। परंतु सत्ता के सामने एक व्यक्ति की निरीह विवशता सोचने के लिए बाध्य करती है। लेखक का निशाना रंगनाथ का व्यक्तित्व है, जो अन्याय को देखता हुआ चुपचाप रहता है। उसके जैसे लोगों के लिए ही लेखक इस प्रकार की टिप्पणी करता है।

मध्यवर्ग की विवशता और उसके छल को लेखक ने इन पंक्तियों में उधेड़कर रख दिया है। मध्यवर्ग अपनी सीमाओं के कारण एक संगठित संघर्ष नहीं कर सकता है और बिना इसके सामाजिक परिवर्तन का परिदृश्य उपस्थित नहीं हो सकता। लेखक का यह वक्तव्य कि कीचड़ में कीचड़ ही पैदा होते हैं, परिस्थिति की जटिलता को ही नहीं टूटी मन: स्थिति को भी प्रस्तुत करता है। यह निराशा और हताश की चरम स्थिति है। इसके लिए लेखक मध्यवर्ग को ही दोष देता है। वह उसकी अवसरवादी प्रवृत्ति पर व्यंग्य करता है। जनजीवन से निरपेक्ष होकर कला अध्यात्म और बौद्धिक बहस करने के निरर्थक कार्य को भी लेखक आलोचना करता है। वास्तविकता से अलग हटकर स्वप्न की रंगीन दुनिया में मस्त रहने की रोमांटिक अनुभूति की वायवीयता से किसी समस्या का समाधान निकलने वाला नहीं है। वास्तविकता से पलायन स्वांतत्र्योतर भारत के मध्यवर्ग का निर्मम सत्य है। इसका प्रभाव संपूर्ण समाज पर पड़ा। मुठभेड़ से मुँह चुराने की नपुंसक प्रवृत्ति में दिनोंदिन बढ़ोतरी हुई है।

उपन्यासकार स्वातंत्र्योतर भारत के पढ़े लिखे लोगों की मनोवृत्ति से विक्षुब्ध है। उसमें सोचने और कार्य करने के बीच जो द्वैध मानसिकता मिलती है, वह अत्यंत ही निराशाजनक है। व्यंग्य के लहजे में लेखक ऐसे मनुष्य को जीवन की जटिलता से पलायन करने का संदेश देता है। दो प्रकार के अतिवाद में अपने जीवन का हल ढूँढना और विशिष्ट प्रकार के चमत्कार में विश्वास करना इस प्रकार के मनुष्य की नियति है। शोध, बौद्धिक, बहस, सेमिनार, अंग्रेजी के चमकीले जिल्दवाले किताब में रूचि इनकी पहचान है। वास्तव में सुविधाभोगी मानसिकता और जीवन के यथार्थ से बचने के लिए नये किस्म का तिलस्म पैदा करना धोखा और पाखंड है। उपन्यासकार इसे पहचानता ही नहीं इस पर आक्रमण भी करता है। लेखक दूसरी ओर अतीत पर प्रवचन देने वाले इंडोलोजिस्ट पर भी व्यंग्य करता है। षड दर्शन की परंपरा के कपिल कणाद आदि में रूचि रखना, अजंता, ऐलोरा, खजुराहों के रहस्य को सुलझाने में दिलचस्पी लेना, ज्योतिष और समुद्री विद्या की जानकारी प्राप्त करने की इच्छा अच्छी बात है परंतु समकालीन जनजीवन को समझे बिना ये सब बौद्धिक छल के नमूने बनकर रह जायेंगे। इन विद्याओं में रुचि रखना लेखक के लिए यथार्थ से भागने का एक नया और असरदार तरीका है।

विशेष

1. संपूर्ण अनुच्छेद में गहरी निराशापूर्ण मन:स्थिति का संकेत मिलता है।
2. स्वांतत्र्योतर भारत के बुद्धिजीवी पर कड़ा व्यंग्य है।
3. बुद्धिजीवी की अतिवादी मानसिकता की आलोचना की गई है।
4. सपूर्ण अनुच्छेद में बुद्धिजीवी की मनोवृत्ति को एक पेरोडी के रूप प्रस्तुत किया गया है।
5. भाषा में व्यंग्य की तीव्रता है।

Notes